

**‘अब्दुल बिस्मिल्लाह के कथा साहित्य का
मनोवैज्ञानिक अध्ययन’**

A

Thesis

Submitted to



L OVELY
P ROFESSIONAL
U NIVERSITY

For the award of

DOCTOR OF PHILOSOPHY (Ph.D)

in

HINDI

By

RAVINDER KUMAR

41400207

Supervised By

DR. VINOD KUMAR

**LOVELY FACULTY OF BUSINESS AND ARTS
LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY
PUNJAB
2019**



L OVELY
P ROFESSIONAL
U NIVERSITY

CERTIFICATE BY ADVISOR

I hereby affirm as under that:

1. The thesis entitled '*अब्दुल बिस्मिल्लाह के कथा साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन*' submitted to the Department of Hindi, Lovely Professional University, Phagwara, presented by Ravinder Kumar is worthy of consideration for the award of the degree of Doctor of Philosophy.
2. He has pursued the prescribed course of research.
3. The work is original contribution of the candidate carried under my supervision and guidance.
4. The thesis has not formed the basis for the award of any degree /diploma/ associate ship/fellowship or any other similar title to any candidate by any university.
5. The candidate has incorporated all the suggestions made by the Department Doctoral Board during Pre-submission Seminar held on 23rd of March 2019.

Date: 25.05.2019

Dr. Vinod Kumar
(9876758830/Vinod17203@lpu.co.in)
Associate Professor
Department of Hindi
School of Social Sciences & Languages
Lovely Professional University
Phagwara-144411(Punjab)

DECLARATION

I do hereby acknowledge that:

1. The thesis entitled '*अब्दुल बिरिम्मल्लाह के कथा साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन*' is a presentation of my original research work done under the guidance of my thesis advisor/supervisor Dr. Vinod Kumar. Where ever contributions of the others are involved, every effort has been made to indicate this clearly, with due reference to the literature, and acknowledgement of collaborative research and discussions.
2. The thesis is free from any plagiarized material and does not infringe upon any rights of others. I also confirm that if any third party owned material is included in my thesis which required a written permission from the copyright owner, I have obtained all such permissions from respective copyright owners.
3. I have carefully checked the final version of printed copy and soft copy of the thesis for the completeness and for incorporation of all suggestions of Doctoral Committee.
4. This final submission of the FINAL VERSION of the printed copy of my thesis is as per the guidelines and the exact content is in the CD in a separate PDF file to be uploaded to 'Shodhganga'.

Date: 25.05.2019

Ravinder Kumar

Regd. 41400207

विषयानुक्रमिका

अध्याय एक

पृष्ठ-01—58

1. भूमिका

- 1.1 प्राक्कथन, समस्या का औचित्य, शोध का उद्देश्य, शोधकार्य में चुनौतियाँ, परिसीमांकन, शोध प्रविधि
- 1.2 मनोविज्ञान की सैद्धांतिक अवधारणा
- 1.3 अब्दुल बिस्मिल्लाह: व्यक्तित्व एवं कृतित्व

अध्याय दो

पृष्ठ-59—118

2. हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान

- 2.1 कहानी साहित्य और मनोविज्ञान
- 2.2 उपन्यास साहित्य और मनोविज्ञान

अध्याय तीन

पृष्ठ-119—198

3. अब्दुल बिस्मिल्लाह के कथा साहित्य में असामान्य मनोविज्ञान

- 3.1 उपन्यास साहित्य में असामान्य मनोविज्ञान
- 3.2 कहानी साहित्य में असामान्य मनोविज्ञान

अध्याय चार

पृष्ठ-199—270

4. अब्दुल बिस्मिल्लाह के कथा साहित्य में समाज मनोविज्ञान

- 4.1 उपन्यास साहित्य में समाज मनोविज्ञान
- 4.2 कहानी साहित्य में समाज मनोविज्ञान

अध्याय पाँच

पृष्ठ-271—352

5. अब्दुल बिस्मिल्लाह के कथा साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन

5.1 उपन्यास साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन

5.2 कहानी साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन

अध्याय छह

पृष्ठ-353—422

6. अब्दुल बिस्मिल्लाह के कथा साहित्य में नारी मनोविज्ञान

6.1 उपन्यास साहित्य में नारी मनोविज्ञान

6.2 कहानी साहित्य में नारी मनोविज्ञान

उपसंहार

पृष्ठ-423—435

परिशिष्ट

पृष्ठ-436—447

संदर्भ ग्रंथ सूची

पृष्ठ-448—456

अध्याय एक

1. भूमिका

1.1 प्राक्कथन:

इस बात से कदापि इन्कार नहीं किया जा सकता कि शोध-कार्य ने मानवीय जीवन के विभिन्न पहलुओं में विकासात्मक प्रवृत्ति के मद्देनजर अपना पूर्ण सहयोग न दिया हो। बल्कि यह बात तो निष्पक्ष रूप से सभी के समक्ष रखी जा सकती है कि शोध तो मानवीय जीवन के अग्रसर होने में एक प्रेरक के रूप में अपना वर्चस्व कायम रखने में कामयाब हो पाया है।

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के संबंध में अध्ययन के उपरांत मुख्य रूप से यह परिलक्षित होता है कि भारतीय समाज में कुछ ऐसे परम्परागत बिन्दु अथवा पहलू परम्पराओं एवं मान्यताओं के रूप में रहे हैं जो सदियों से केवल एक ही लड़ी के अंतर्गत चले आ रहे हैं। उनसे संबंधित जो भी धारणाएँ प्रचलित थीं। वह सामाजिक दायरे के अनुकूल अथवा प्रतिकूल होने के बावजूद निर्विघ्न चलती आ रही थी। इसका मुख्य कारण हमारी धार्मिक प्रवृत्ति होने के साथ-साथ हमारी बीमार अथवा कट्टरता भरपूर मानसिकता भी रही है। किन्तु बदलते समयानुसार इसमें थोड़ा बदलाव नज़र आता गया। तुलनात्मक अध्ययन के साथ-साथ नये बिन्दुओं की खोज में बहुत से ऐसी बातें निकल कर बाहर आईं जो कदाचित् परम्परागत एवं रूढ़ियुक्त विचारधारा से प्रभावित व्यक्ति की सोच से सर्वथा दूर थीं। इन बातों, विचारों एवं बिन्दुओं ने परम्परागत एवं रूढ़ियुक्त मानसिकता पर हल्की हल्की चोट करनी शुरू की और मानव का एक नये युग में प्रवेश करने को आतुर करवाया।

प्रकृति निर्मित इस संसार में प्रत्येक कार्य के पीछे कोई न कोई रहस्य, आश्चर्यजनक सत्य एवं नयेपन के साथ साथ विभिन्न प्रकार की समस्याएँ रही हैं। किन्तु इतिहास इस बात का गवाह रहा है कि प्रत्येक कार्य के सकारात्मक परिणामों के पीछे व्यक्ति ने अथक मेहनत है। साथ ही साथ बहुत सी मुसीबतों का भी निडरता से सामना भी किया है। आलोचनाएँ भी बहुत हुईं

2-रवीन्द्र

हैं। किन्तु वह अडिग रहे। बदलते समय के बहाव में आज लगभग वह सभी बातें सही व सत्य साबित हो रही हैं। कारण यह है कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है। कदाचित् विचारधारा अथवा मान्यताओं के अंतर्गत नैतिकता से संबंधित कुछेक बातों को छोड़कर कुछ भी शाश्वत् नहीं है। बहुत पुरानी बात अथवा कथन या विचारधारा समकालीन समयानुसार अथवा परम्परागत नियमों के अंतर्गत हमें सही महसूस हो रही थी तो यह कदापि आवश्यक नहीं कि वह आज के समय में भी वर्तमान समाज में प्रासंगिक रहे। इस संदर्भ में शोधकार्य अपनी विशेष भूमिका अदा करता है। इससे उन सभी सामाजिक कार्यों एवं विचारधाराओं से पर्दा उठ जाता है जो वर्तमान समाज में अपनी अप्रासंगिकता के साथ जमे हुए हैं।

शोध-कार्य का यह योगदान मानवीय जीवन के सभी पहलुओं को अपने कार्य क्षेत्र में ले लेता है। जब से भाषा का जन्म हुआ है या फिर यह कहें कि जब से भाषा का प्रचलन हुआ है। कदाचित् साहित्य भी तभी से ही प्रफुल्लित हुआ है। यह बात सभी भाषाओं पर लागू होती है। हिन्दी भाषा की बात करें तो इसके इतिहास से संबंधित हमें जो भी सबूत मिलते हैं उसके आधार पर यह तो स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि इसका जन्म लगभग एक हजार साल पहले ही खड़ी बोली के सुधार के रूप से हुआ है। उससे पहले इसी देवनागरी लिपि में संस्कृत से होती हुई यह कई भागों से होती हुई हिन्दी तक पहुँची है। इसके साहित्य के इतिहास के अध्ययन से यह कथ्य स्पष्ट है कि आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के सफर में बदलते सामाजिक परिपेक्ष में हिन्दी साहित्य के इतिहास ने भी अपना स्वरूप निरंतर बदला है। किन्तु इस बदलते परिपेक्ष में एक बात तो स्पष्ट है कि इसके साहित्यकारों, विद्वानों, कवियों, लेखकों इत्यादि ने समाज के साथ बदलती प्रत्येक परिस्थितियों के अनुसार उन्होंने इससे संबंधित अपनी भावनाओं एवं कल्पनाओं का भरपूर चित्रण किया है। युद्ध के दौर अथवा समय में रौद्र रस की अभिव्यक्ति का प्रदर्शन किया है; प्रेम के दौर में संयोग-वियोग की परिस्थितियों से संबंधित करुण रस का भरपूर पदर्शन किया है। कहने का तात्पर्य यह कि बदलती सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार ही लेखकों ने

अपनी भावाभिव्यक्ति का सुन्दर चित्रण अपनी कल्पनाओं के समावेश सहित अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है।

दूसरी ओर यदि बात करे 'मनोविज्ञान' की तो इस विषय के कार्य-क्षेत्र के अध्ययन से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस विषय से संबंधित कार्य तो सामाज में बहुत पहले से होता आ रहा है। किन्तु वह किसी निश्चित दायरे में नहीं था। 19वीं शताब्दी में जब इसने दर्शनशास्त्र से भिन्न कर एक पूर्ण विषय के रूप में शिक्षा जगत में अपना अस्तित्व कायम किया तो इसका एक निश्चित कार्यक्षेत्र बना, जिसके अंतर्गत विभिन्न पहलुओं से होते हुए इसे मानवीय व्यवहार के अध्ययन के रूप में ख्याति हासिल हुई। जिससे यह बात स्पष्ट हुई कि मनोविज्ञान का अतीत तो बहुत पुराना है। किन्तु इतिहास नया है। इसकी कार्य शैली के अनुसार वर्तमान समाज में इस विषय ने मानवीय जीवन से संबंधित प्रत्येक पहलू को अपने कार्य क्षेत्र का एक हिस्सा बना लिया है। आज प्रत्येक क्षेत्र अपनी समस्याओं के संबंध में मनोविज्ञान को एक समाधान की दृष्टि से देखता है। मुख्य रूप से यही इस विषय की विशेषता रही है।

स्नातक स्तर से ही हिन्दी साहित्य और मनोविज्ञान इन दोनों विषयों में रुचि के कारण आज तक इनके अध्ययन का कार्य प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मेरे द्वारा होता रहा। इन दोनों विषयों के अध्ययन-अध्यापन का कार्य निर्विघ्न चलता आ रहा है। इन दोनों विषयों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हुई कि दोनों ही विषयों में मानवीय जीवन की अनुभूतियों एवं संवेगों को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने की कार्य शैली रही है। यह बात जुदा है कि दोनों विषयों में संवेदनाओं की प्रस्तुति की कार्यविधि भिन्न है। साहित्य में लेखक भावनाओं की अभिव्यक्ति कल्पनाओं के समावेश सहित प्रस्तुत करता है और वह प्रस्तुति भी गद्य अथवा पद्य के रूप में होती आ रही है। मनोविज्ञान में यह प्रस्तुति विभिन्न एवं निरंतर घटित हो रही घटनाओं से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर तय करने के उपरांत निकाले गये निष्कर्ष के आधार पर होती है। मुख्य रूप से यह कहा जा सकता है कि दोनों विषयों

4-रवीन्द्र

का मुख्य कार्य क्षेत्र सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार मानवीय व्यवहार में आए बदलाव का; उनकी संवेदनाओं का; उनकी भावनाओं का निरीक्षण कर अपनी अपनी कार्य शैली अथवा कार्य विधि के अनुसार प्रस्तुत करना है।

देखने में यह आया कि दोनों विषयों की लगभग समान विशेषताएँ होने के बावजूद भी हिन्दी साहित्य में इस संबंध में बहुत की कम शोध-कार्य हुआ है। देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में इन दोनों विषयों के तुलनात्मक एवं अन्य किसी भी प्रकार की दृष्टि से जितना भी कार्य हुआ है वह कुछ हद तक संतुष्टिजनक तो कहा जा सकता है किन्तु इन दोनों विषयों की समानता के कुछ लक्षणों के आधार पर अभी बहुत कार्य होना शेष है। दूसरा एक ओर बहुत ही बड़ी खामी जो दृष्टिपात हो रही है, वह यह है कि प्रस्तुत हुआ शोध-कार्य पुस्तकालयों में ही शोभायमान है। कदाचित् किसी भी शोधकर्ता अथवा प्रकाशक ने इन्हें प्रकाशित करने की कोशिश ही नहीं की। कारण चाहे कुछ भी रहे हों। किन्तु सत्य यही है कि इन दोनों विषयों के किसी भी दृष्टिकोण से आपसी संबंध के विषय में कार्य व्यापक फैलाव की अपेक्षा संतुष्टिजनक ही रहा है।

मैं अपने निरीक्षक डॉ. विनोद कुमार शर्मा जी का अति धन्यवादी हूँ, जिनके मार्गदर्शन एवं सहयोग प्राप्ति से इन दोनों विषयों के आपसी संबंधों पर शोधकार्य करने का अवसर विभिन्न टिप्पणियों के पश्चात् प्राप्त हुआ। 'मनोविज्ञान' विषय के अध्ययन का अवसर डॉ. हरीश शर्मा जिनकी वर्तमान संप्रति 'शहीद भगत सिंह सरकारी कॉलेज, कोटकपूरा, जिला फरीदकोट में मनोविज्ञान विभाग के विभागाध्यक्ष एवं सहायक प्रोफेसर के रूप में है, जी से प्राप्त हुआ और तीन वर्षों तक 'प्रयोगात्मक मनोविज्ञान' का अध्ययन किया। पश्चात् उसके शिक्षा में स्नातक के विद्यार्थी जीवन में 'शिक्षा मनोविज्ञान' एवं 'बाल मनोविज्ञान' के अध्ययन का अवसर मिला। उसके बाद शिक्षा में स्नातकोत्तर के विद्यार्थी जीवन में विभिन्न प्रयोगों एवं प्रेक्षणों के दौरान 'मनोविश्लेषण' के अध्ययन का अवसर प्राप्त हुआ। विभिन्न महाविद्यालयों में अध्यापन के दौरान 'हिन्दी शिक्षण' के साथ साथ हिन्दी साहित्य एवं

मनोविज्ञान के अध्ययन का अवसर मिला। जिसने इन दोनों विषयों पर एक साथ कार्य करने का विचार अप्रत्यक्ष रूप से मन में आया।

हिन्दी विषय में लघु शोध-प्रबंध के दौरान शोध के विषय में शोध-कार्य प्रविधि की भरपूर जानकारी देने वाले मेरे तीसरे मार्गदर्शक डॉ. निर्मल कौशिक जो कि आजकल महाविद्यालय के अध्यापन कार्य से सेवा-निवृत्त हैं, का मैं तहदिल से आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने अपने जीवन के संघर्ष को मेरे शोधकार्य हेतु एक प्रेरणा का मुख्य बिन्दु बनाया और स्वयं भी हिन्दी सेवी होने के साथ साथ मुझे भी हिन्दी साहित्य के अध्ययन के प्रति लालायित किया।

मनोविज्ञान अध्ययन के दौरान अक्सर 'कारण प्रभाव संबंध' एक बिन्दु के बारे में पढ़ते थे जिसका तात्पर्य यह था कि यदि कोई कार्य हुआ है तो उसका कोई न कोई कारण अवश्य रहा होगा और यदि कोई कारण पैदा कर दिया गया है तो उससे संबंधित कार्य अवश्य होगा। इसी बिन्दु को मैंने अपने शैक्षणिक जीवन में अमल में देखा। डॉ. निर्मल कौशिक जी की हिन्दी साहित्य के प्रति बेहतरीन कार्यशैली एवं गहन अध्ययन की रुचि के साथ साथ डॉ. हरीश शर्मा जी की मनोविज्ञान में मेरी दिलचस्पी पैदा करना एक ऐसा प्रभावशाली कारण पैदा हुआ जिस कारण से इन दोनों विषयों के प्रति कार्य करने का संबंध बन पाया। लवली प्रोफेशनल यूनीवर्सिटी, फगवाड़ा में शोध-प्रबंध के मेरे मार्गदर्शक डॉ. विनोद कुमार शर्मा जी ने इस संबंध को इतने व्यवस्थित विधि से प्रस्तुत कर मेरे मार्गदर्शक एवं मुख्य निरीक्षक बन मेरी मदद की कि फिर इन दोनों विषयों पर कार्य करने का प्रवाह निरंतर मेरे भीतर बना रहा। उन्होंने इन दोनों विषयों के आपसी संबंधों की बारीकियों को निकाल कर मेरे समक्ष रखा जिससे इस विषय पर कार्य करना मेरे लिए आसान रहा। उनकी अध्यापन के साथ-साथ निरंतर अध्ययन एवं शोध-कार्य तथा संपादन की कार्यशैली में निपुणता एवं दिलचस्पी ने इस शोध-कार्य में मेरे मन में अध्ययन की लगन को प्रफुल्लित किया। जिसके फलस्वरूप मेरे विभिन्न शोध-लेख राष्ट्रीय एवं अंतर राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न पत्रिकाओं में

6-रवीन्द्र

छपे। इसके साथ ही मैं इस विश्वविद्यालय की शोध-शाखा की उस पूरी टीम के उन सभी महानुभावों को भी धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने इस शोध-कार्य में मेरा निरीक्षण एवं मार्गदर्शन किया और सुझाव देकर मेरी संभव सहायता की।

शोधकार्य दौरान इसे विडम्बना ही कहेंगे कि यह देखने में आया कि इन दोनों विषयों के किसी भी प्रकार के संबंध के प्रति कार्य करने की बहुत की कम रुचि देखने को मिली। विभिन्न विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों के भ्रमण के दौरान यह पाया गया कि इस विषय में छिटपुट रचनाएँ ही मिलती हैं। 60 के दशक में केवल देवराज उपाध्याय थे जिनका शोध-प्रबंध किताब के रूप में प्रकाशित हुआ और हिन्दी साहित्य का मनोविज्ञान के साथ संबंध जोड़ने अथवा पैदा करने में मील का पत्थर साबित हुआ। विभिन्न विद्वानों एवं शोधार्थियों ने मनोविज्ञान के किसी विशेष पहलू को लेकर उनका हिन्दी साहित्य के किसी एक प्रसंग के साथ जोड़कर छिटपुट रचनाएँ तो लिखी हैं किन्तु देवराज उपाध्याय जैसी कार्यशैली एवं क्षेत्र विस्तार के अनुसार नहीं। सन् 2015 के आसपास इस विषय के आधार पर डॉ. सीमा श्रीवास्तव की एक किताब प्रकाशित हुई। किन्तु उसके अध्ययन से ज्ञातव्य हुआ कि उसमें कुछ आधुनिक लेखकों एवं रचनाओं को तो जरूर शामिल किया गया है, किन्तु इस विषय में इतनी लम्बी समयावधि के पश्चात् भी उस कसौटी पर पूरा नहीं उतर पाया है जितना हिन्दी साहित्य इसके प्रति आशाबन्धित था। किन्तु यदि इसके सम्पूर्ण क्षेत्र विस्तार की बात की जाए तो इतना तो मानना ही पड़ेगा कि कम से कम इस पर कार्य करने की कोशिश तो हुई।

दूसरों की अपेक्षा मनोविज्ञान का विद्यार्थी तो इस बात को समझ ही सकता है कि वर्तमान समाज विभिन्न प्रकार की उलझनों से ग्रस्त है। वह चाहकर भी इससे छटकारा नहीं पा सकता। दूसरी मुसीबत यह कि वह स्वयं भी इस बात से अनभिज्ञ है कि उसे क्या और कहाँ समस्या है? इसलिए वह अन्य पर आश्रित रहता है कि कोई उसकी समस्या को समझे और उसका हल निकाले। सामाजिक कल्याण हेतु इस नाजुक परिस्थिति पर साहित्य और

मनोविज्ञान दोनों विषयों का यह उत्तरदायित्व बन जाता है कि वह समाज कल्याण हेतु अपनी विशेष भूमिका निभाये। यदि आधुनिक साहित्यकार मनोविज्ञान के ज्ञान से सराबोर अपनी रचनाओं को सामाजिक समस्याओं के यथार्थ चित्रण के साथ-साथ उनके निवारण हेतु सुझाव भी अपनी बुद्धि एवं कल्पना के समावेश सहित अपनी रचनाओं में प्रदर्शित करें तो समाज में कम से कम पाठकगण तो इस प्रकार की समस्याओं से निजात पा सकते हैं और यदि पाठक इसका फैलाव करें तो धीरे धीरे सम्पूर्ण समाज अपनी विभिन्न प्रकार की मनोविकृतियों से निजात पाने की ओर अग्रसर हो पायेंगे। सत्य कहा जाए तो हमारा मानना है कि मानव एवं समाज कल्याण हेतु साहित्य की यही सम्पूर्ण विशेष भूमिका होगी और रही भी ही।

मैं अनभिज्ञ हूँ इस बात से कि क्यों अभी तक इन दोनों विषयों के आपसी विभिन्न प्रकार के संबंधों के प्रति कार्य करने, प्रस्तुति अथवा प्रकाशन में इतना विलम्ब हुआ है? लेखक 'अब्दुल बिरिस्मल्लाह के कथा साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' के दौरान हिन्दी साहित्य के मनोविज्ञान के साथ संबंध के विषय में जब इसके इतिहास पर दृष्टिपात किया गया तो आचम्भित होना पड़ा कि अभी तो इस पर बहुत ज्यादा काम होना बाकी है। सार्वजनिक रूप से यह बात कहते हुए हमें खुशी हो रही है और जहाँ तक हमारा व्यक्तिगत विचार भी यही है कि शोधार्थियों एवं भावी लेखकों को इस तरफ ध्यान देना चाहिए और इन दोनों विषयों के सम्भावित संबंधों के दृष्टिकोण पर अपनी कलम चलानी चाहिए।

शोध के पहले अध्याय में हमने इस शोधकार्य के कारण, शोध प्रविधि, मनोविज्ञान की आधारभूत धारणाएँ तथा लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह के जीवन एवं उनकी लेखनी तथा उनके साहित्यिक दृष्टिकोण पर प्रकाश डाला है।

दूसरे अध्याय में हमने हिन्दी साहित्य के इतिहास में से केवल कथा-साहित्य और मनोविज्ञान के आपसी संबंध, उन पर हुए कार्यों के संबंध में चर्चा की गई है कि किन-किन लेखकों ने मनोविज्ञान को आधार बना

8-रवीन्द्र

कहानियाँ और उपन्यास लिखें या कहानियों एवं उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक बिन्दुओं को उठाया।

तीसरे अध्याय में अब्दुल बिरिस्मल्लाह के कथा साहित्य में से असामान्य मनोविज्ञान पर आधारित बिन्दुओं पर चर्चा की गई है कि लेखक ने जिन पात्रों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। वह किस प्रकार का व्यवहार करते हैं? किस प्रकार के संवादों को इस्तेमाल करते हैं? उनका व्यवहार एवं संवाद सामान्य व्यवहार से किस प्रकार भिन्न है। उनके पात्र असामान्य मनोविज्ञान के किन-किन बिन्दुओं पर स्टीक बैठते हैं।

चौथे अध्याय में अब्दुल बिरिस्मल्लाह के कथा साहित्य में से समाज मनोवैज्ञानिक तत्वों पर चर्चा की गई है कि लेखक ने अपने किन-किन अनुभवों के आधार पर अपनी रचनाओं में सामाजिक वातावरण को दिखाने की कोशिश की है। बिल्कुल गरीब गाँव से लेकर विदेशी वातावरण तक के दृश्यों में लेखक ने बहुत कुछ बताने का प्रयास किया है। उनकी रचनाओं के यह सभी पात्र एवं वातावरण समाज मनोविज्ञान के किस सिद्धांत के अनुसार रहे हैं।

पांचवे अध्याय में अब्दुल बिरिस्मल्लाह के कथा साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन पर चर्चा की गई है। इसमें यह बताने की कोशिश की गई है कि वह कौन से अंदरूनी हालात रहे जो प्रत्यक्ष बताने की अपेक्षा से अप्रत्यक्ष रूप में लेखनी के माध्यम से प्रस्तुत हुए। मन में छिपी उन गहरी दमित भावनाओं को लेखक ने स्वप्नों, पुरानी यादों अथवा किसी अन्य रूप में बताने का भरपूर प्रयास किया है। उनका यह व्यवहार किस मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के अनुसार कार्य करता नज़र आया है।

छठे अध्याय में अब्दुल बिरिस्मल्लाह के कथा साहित्य में से नारी मनोविज्ञान से संबंधित बिन्दुओं पर चर्चा की है कि किस प्रकार चालीस-पचास सालों के अंतराल में सामाजिक वातावरण और विभिन्न धर्मों एवं जातियों के आधार पर औरत की क्या दशा रही है? किस प्रकार उसने स्वयं की स्थिति

को संभाला है? आज वह किस स्थान पर अपना अस्तित्व कायम कर पाने में सफल रही है।

इस विशाल एवं अहम कार्य में बहुत से ऐसे महानुभाव, संस्थाएँ, ग्रन्थ, पुस्तकालय इत्यादि सहयोग के रूप में उपस्थित हुए जिनके कारण यह कार्य बड़ी ही कुशलता से पूर्ण हो पाया। मैं अपने माता-पिता, भाई-बहन, धर्म-पत्नी, अध्यापकगण, मित्रगण एवं उन सभी संस्थाओं के महानुभावों का सदैव ऋणि रहूँगा, जिन्होंने मुझे आगे बढ़ने में सहयोग देने के साथ-साथ मेरे मार्गदर्शन एवं समस्याओं के समाधान हेतु अपने बहुमूल्य विचारों एवं दिशा-निर्देशों से अवगत करवाया। उन सभी संस्थाओं, विशेषकर 'नागरी प्रचारिणी सभा', 'बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय', 'जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय' इत्यादि का मैं आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके पुस्तकालय के इस्तेमाल से इस कार्य करने में हमें भरपूर सहयोग मिला। क्योंकि इन पुस्तकालयों में इस संबंध में किये कार्यों की विभिन्नता मिली।

स्वयं लेखक श्रीमान डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह ने भी हालाँकि उनके कथा-साहित्य पर ही मनोवैज्ञानिक अध्ययन पर ही यह शोधकार्य चल रहा है, मेरे इस शोध-कार्य में जानकारी मुहैया करवाने; शोधार्थियों एवं उनके शोध-कार्यों के आधुनिक संदर्भ में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करने; हिन्दी साहित्य में विदेशों एवं भारतीय शोध-कार्य के तुलनात्मक अध्ययन के संबंध में जानकारी देने के साथ-साथ इन विषयों के गहन अध्ययन के सुझाव हेतु तथा उनकी रचनावली के संबंध में मेरे कुछेक शंकाओं के निवारण हेतु मैं उनके प्रति कृतार्थ हूँ।

शिक्षा जगत में हिन्दी साहित्य और मनोविज्ञान का अहम स्थान है। साथ ही साथ सामाजिक दृष्टिकोण से इनका योगदान भी अतुलनीय है। मानवीय कल्याण हेतु एवं नये विचारों एवं शोध की दृष्टि के साथ-साथ सामाजिक उपादेयता की दृष्टिकोण से इन दोनों की विचारधाराओं एवं गुणवत्ता के लिहाज़ से इनके आपसी संबंधों पर कार्य करना वांछनीय है, क्योंकि इन दोनों पर अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न खण्डों में तो कार्य हो रहा है। किन्तु एक

व्यवस्थित रूप की कमी है जो भावी शोधार्थी एवं लेखक की पूरा कर सकते हैं। कदाचित् यह शोध-कार्य इस शृंखला में एक कड़ी का काम करे।

रवीन्द्र कुमार

शोधार्थी

15.12.2018

समस्या का औचित्य:

- समाज में विभिन्न प्रकार की मनोविकृतिआँ फैली हुई हैं। जो समाज को पतन की ओर ले रही हैं। साहित्यकार समाज को स्वस्थ रखने के लिए आदर्शवादी रचनाओं की रचना करता है ताकि मानवीय मन में साकारात्मक पहलुओं का समावेश करवाया जा सके।
- साहित्यकार समाज की चित्तवृत्तियों का वर्णन अपने अनुभवों के आधार पर अपनी रचनाओं के रूप में प्रस्तुत करता है। उसके विश्लेषण से मनोविकारों को दूर करने के उपाय खोजे जा सकते हैं ताकि मानव को मानसिक रूप से तन्दरुस्त बनाया जा सके।
- साहित्य और मनोविज्ञान का आपसी रिश्ता घनिष्ठ है। साहित्यकार के कथा-साहित्य के विश्लेषण से उसमें समाहित मनोविज्ञान से सम्बन्धित उन सभी पहलुओं को उजागर करना ताकि इन दोनों विषयों के सम्बन्ध को प्रस्तुत किया जा सके।
- साहित्यकार के कथा-साहित्य के मनोवैज्ञानिक अध्ययन से उन सभी मानसिक स्थितियों के प्रत्येक पहलू को उजागर करना ताकि भावी समाज के लिए साकारात्मक बदलावों के साथ-साथ नई शोध हेतु रास्ते खोलने के एक मजबूत कदम उठाया जा सके।

शोध के उद्देश्य

- साहित्य तथा मनोविज्ञान विषयों का आपसी सम्बन्ध प्रदर्शित करना।

वैसे तो प्रत्येक विषय का अपना एक महत्त्व होता है। किन्तु फिर भी आन्तरिक रूप से प्रत्येक विषय का दूसरे विषय के साथ अप्रत्यक्ष रूप से कोई न कोई संबंध बना रहता है। कोई भी व्यक्ति जब किसी विशेष विषय का अध्ययन करता है तो सर्वथा दूसरे विषयों से कट जाता है और उसे महसूस होता है कि अमुक विषय के बारे में उसे कोई जानकारी नहीं है। वास्तव में अप्रत्यक्ष रूप से वह दो, तीन या इससे भी अधिक विषयों का अध्ययन कर रहा होता है।

साहित्य के संबंध में भी यही बात लागू होती है। लोग अकसर जन साधारण से संबंधित हिन्दी विषय को केवल बोल-चाल या सरकारी कार्यों की दफ्तरी भाषा के रूप में लेते हैं। साहित्य से संबंधित कवि, लेखक या आलोचक वर्ग के लोग इसे अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम या इसे समाज के दर्शन का प्रतिबिम्ब मानते हैं। जबकि साहित्य में अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए यथार्थता के साथ-साथ कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। यथार्थता के चित्रण के लिए उसे लयबद्ध करने के लिए समाज में विचरित लोगों की भावनाओं को समझना पड़ता है, लोगों के व्यवहार को पढ़ना पड़ता है, लोगों की अनकही बातों को शब्दावली में पिरोना पड़ता है, लोगों के व्यवहार को समझ उसकी समीक्षा करनी पड़ती है, उसके व्यावहारिक कारणों को सामाजिक असर से जोड़ना पड़ता है तथा बहुतायत अपनी कल्पनाओं को भी पंख लगाने पड़ते हैं। इन सभी बातों से पता चलता है कि वह अप्रत्यक्ष रूप से मनोविज्ञान विषय तथा उसकी शाखाओं जैसे सामान्य-मनोविज्ञान, असामान्य-मनोविज्ञान, समाज-मनोविज्ञान, शिक्षा-मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण इत्यादि का साहित्य से घनिष्ठ रिश्ता है।

इस शोध का मुख्य उद्देश्य ही यह है कि इस शोध के माध्यम से साहित्य एवं मनोविज्ञान का आपसी संबंध स्थापित किया जा सके।

- **लेखक के कालक्रमानुसार साहित्य लेखन दौरान मानसिक स्थिति को स्पष्ट करना।**

यदि कोई भी लेखक एक लम्बे समय से साहित्य लेखन से जुड़ा हुआ है तो निश्चित है कि समाज में रहते हुए उसने अनेक सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक उतराव-चढ़ाव देखे होंगे। तो जैसा कि पहले भी स्पष्ट किया गया है कि साहित्य सामाजिक गतिविधियों का साक्षात् चित्रण है, प्रतिबिम्ब है। तो उसी के ध्यानार्थ शोध करने का दूसरा मुख्य उद्देश्य यह निर्धारित किया गया है कि अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने जीवन के लम्बे समय में जो भी साहित्य लेखन का कार्य किया है, उनकी विभिन्न रचनाओं और उनके लेखन के लम्बे समय के आधार पर लेखक की मानसिक स्थिति का पता लगाया जा सके ताकि समय की बदलती करवट के अनुसार उनकी मानसिकता में क्या-क्या परिवर्तन दृष्टव्य हुए हैं तथा वह उनकी लेखन कला में वह कहाँ-कहाँ नजर आये? क्योंकि प्रथम रचना से लेकर अन्तिम रचना काल तक काफी अंतर आ जाता है। इन दोनों रचनाओं के अन्तराल के दौरान लेखक की मानसिकता का प्रदर्शन करना ही दूसरा प्रमुख उद्देश्य है।

- **हिन्दी साहित्य लेखकों का मनोविज्ञान से सम्बन्ध प्रदर्शित करना।**

हिन्दी साहित्य में आज तक जितने भी लेखकों एवं आलोचकों ने कार्य किया, उन सभी ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मनोविज्ञान की विषय वस्तु, उसके क्षेत्र व उसके सिद्धांतों को अपनाया है तथा उसी के संदर्भ में अपनी रचनाओं को प्रदर्शित किया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास की ओर यदि दृष्टिपात किया जाये तो ज्ञात होता है कि हिन्दी साहित्य लेखन और मनोविज्ञान का रिश्ता घनिष्ठ रहा है। हिन्दी साहित्य में अनेक ऐसे कवि, कहानीकार व उपन्यासकार हुए हैं जिन्होंने मानवीय संवेदनाओं तथा वातावरण के अनुसार बदलती हुई मानसिकता का भरपूर व बड़े ही सुन्दर तरीके से व्याख्यान दिये हैं और आलोचकों ने भी उनके किये काम का विश्लेषण बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। मुंशी प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, भगवती चरण वर्मा, विष्णु प्रभाकर, उपेन्द्रनाथ अशक, मन्नु भण्डारी,

अमृत लाल नागर, उषा प्रियावंदा इत्यादि लेखक मनोवैज्ञानिक विचारधारा से सम्बन्धित रहे हैं। इन सभी लेखकों ने मानवीय विचारधाराओं के अनुरूप उनकी मानसिक स्थिति का बखूबी वर्णन किया है। इनकी रचनाओं के अध्ययन से कई बार प्रतिभास होता है कि यह लोग साहित्यकार कम और मनोवैज्ञानिक ज़्यादा रहे हैं।

- **मनोवैज्ञानिक विचारधारा से भावी हिन्दी साहित्य लेखन की सम्भावनाओं को स्पष्ट करना।**

जैसे-जैसे मानव जाति ने अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हुए विकासात्मक प्रवृत्ति को अपनाया है। उसी प्रकार प्रत्येक वस्तु, विचारधारा, शिक्षा, नीतियों, परम्पराओं इत्यादि में भी परिवर्तन की झलक देखने को मिलती है। शिक्षा के क्षेत्र में विकासोन्मुखी बदलाव के कारण साहित्य लेखन की शैली व प्रवृत्ति में भी बदलाव आया है।

मनोविज्ञान विषय का शिक्षा के कार्य क्षेत्र में विस्तार के कारण प्रत्येक साहित्यकार के मन में आदर्शोन्मुखी लेखन प्रवृत्ति की लौ जगी है। भावी लेखकों पर इस विषय और इसकी विचारधारा का गहरा असर पड़ा है। वह यथार्थ चित्रण के साथ-साथ आदर्शवाद को भी पकड़े हुए हैं। उनकी लेखन शैली में सुधार व विस्तार हो रहा है। मनोविश्लेषण के अध्ययन उपरांत साहित्यकार द्वारा ऐसी रचनाएँ लिखी जा रही है जिसे पढ़ने उपरांत पाठक की छोटी-छोटी मानसिक समस्याएँ तो तुरंत हल हो रही है और साथ ही उस समय, स्थान व वातावरण के कारण वहाँ के लोगों की मानसिकता का स्तर भी स्पष्ट हो रहा है जिस कारण वहाँ की मानसिकता के सुधार के नये आयाम खोजे जा सकते हैं।

आदर्शवादी प्रवृत्ति से ओतप्रोत साहित्य लेखन से पाठकों की भावी समस्याओं के हल भी निकलकर बाहर आ रहे हैं और यदि यह सिलसिला निर्विघ्न चलता रहा तो लोगों की साहित्य अध्ययन के प्रति लगन भी बढ़ जाएगी।

- **कथा-साहित्य में छिपे मनोवैज्ञानिक बिंदुओं से अवगत कराना।**

साहित्य में ऐसे अनेक बिन्दु हैं, जिनका सीधा संबंध मनोविज्ञान से होता है। जैसे कहानी में जब हम किसी घटना को उठाते हैं तो हम उसमें किन्हीं दो या तीन पात्रों के आपसी व्यावहारिक क्रिया-कलाप किसी एक बिन्दु पर दिखाते हैं। उसमें हम पात्रों की मानसिक स्थिति, उनकी बुद्धि, उनके आत्म, उनके भय, उसके सीखने या समझने की शक्ति इत्यादि को स्पष्ट कर रहे होते हैं। जब हम किसी सामाजिक घटना को कल्पना मिश्रित करके पेश करते हैं तो मुख्य रूप से हम उसमें सामाजिक मनोविज्ञान का चित्रण कर रहे होते हैं। कई बार किसी भी एक पात्र की मानसिक कुंठा या हताशा को मूल रूप बनाकर उसके व्यवहार का दूसरे पात्रों के साथ समन्वय बना देते हैं। वैसे तो आजकल प्रत्येक आधुनिक मनुष्य ऐसी कहानी या उपन्यास पढ़ते समय स्वयं को मुख्य पात्र के रूप में रखता है क्योंकि आधुनिक दौर मानसिक परेशानी व द्वन्द्व का दौर है, तो असल में हम पाठक के समक्ष मनोविश्लेषणात्मक स्थिति का प्रदर्शन कर रहे होते हैं। इसी प्रकार ढेरों ऐसे ओर भी बिन्दु हिन्दी साहित्य में भरपूर मात्रा में मौजूद हैं। जिनका विवरण सामान्य पाठक तक पहुंचाना ही शोध का एक मात्र उद्देश्य बन जाता है।

- **मनोविकारों को दूर करने के साधनों को स्पष्ट करना।**

जैसा कि पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है कि साहित्य तो मानव-कल्याण हेतु उठाया एक ऐसा विशेष कदम है जो अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक यथार्थ तथा आदर्शवाद पेश करता आया है। जब भी किसी साहित्यकार ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि को ध्यान में रखते हुए अपनी कलम चलायी है तो पाठकगण (खास कर मनोरोगियों) को सदैव ही उसमें अपना अस्तित्व नज़र आया है और धीरे-धीरे ऐसी रचनाओं के गहन अध्ययन से उसके मनोविकारों का दूर होना कदाचित् सम्भव है।

• **भावी शोधार्थियों एवं लेखकों में मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि का बीज बोना।**

जैसे-जैसे समाज ने तरक्की की है, सुख-सुविधाओं का प्रचलन शुरू हुआ है वैसे ही मानसिक परेशानियों का दौर भी चला है। आज व्यक्ति पदार्थवादी सोच के साथ पैसे कमाता हुआ सुख की आस करता है। किन्तु उतना ही दुखी होता है। उसकी शारीरिक व मानसिक परेशानियाँ बढ़ती जा रही हैं। उनसे बचने के लिए वह बहुत से झूठे आडम्बरो का सहारा ले रहा है, जो उसे व्यर्थ ही कर्मकाण्डों में फंसा कर अधिक असहाय बना रहे है। ऐसे हालात में साहित्यिक दृष्टि से भावी लेखकों का यह फर्ज और कर्म बन जाता है कि वह अपनी सोच को मनोविश्लेषणात्मक बनायें और इसी सोच के साथ ही, ऐसे उद्देश्य के ध्यान हित इस प्रकार की रचनाओं की रचना करें जिनके अध्ययन मात्र से जो पाठक वर्ग समाज में मनोविकारों से ग्रस्त हैं, उनको अपने विकारों के प्रति स्थिति स्पष्ट हो और उसके निवारण हेतु वह अग्रसर हों। लेखक भी अपनी भावाभिव्यक्ति के साथ-साथ पाठक की मानसिक स्थिति पढ़े एवं एक अच्छे मार्गदर्शक के रूप में प्रस्तुत हों। शोधार्थियों के लिए भी सामाजिक कल्याण हेतु यह एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व बन जाता है कि वह केवल अध्ययन प्रवृत्ति को ही न अपनायें। उसके साथ वह विद्वानों, महानुभावों के साथ वार्तालाप एवं साक्षात्कार के साथ-साथ गोष्ठियों एवं विचार-चर्चा को भी स्थान दें ताकि बहुत सी ऐसी बातों से अवगत हो जायें, जो उन्हें केवल रचनाओं में नहीं मिलती हैं।

इस प्रकार के विषय अध्ययन से केवल एक ही उद्देश्य निर्धारित किया गया है कि अब्दुल बिस्मिल्लाह के कथा साहित्य में से मनोविज्ञान के प्रत्येक पहलू को खोज निकाला जाये जिससे यह ज्ञात हो कि किस प्रकार उन्होंने व्यक्ति की तथा घटना की मानसिक स्थितियों को समझा और किस प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक कल्याण हेतु मानसिक स्थिति में सुधार लाने की कोशिश की। उन्होंने मानसिक द्वन्द्व के किन-किन पहलुओं को उठाया। वर्तमान समाज में किस प्रकार के विभिन्न व्यक्तियों ने अपने व्यवहार में क्या-क्या तथा किस प्रकार के बदलाव किये हैं? क्या वह वर्तमान

सामाज में प्रासंगिक है? इस प्रकार के व्यवहार को अगर आधार बनायें तो किस प्रकार के भावी साहित्य लेखन की संभावनायें है? तथा समकालीन साहित्य से किस प्रकार व्यक्ति का मन व व्यवहार प्रभावित होंगे?

शोधकार्य में चुनौतियाँ

समस्याएँ जीवन का एक अभिन्न अंग है। यह मुख्यतः मनुष्य के प्रत्येक कार्य में अपना अस्तित्व दिखाती है। सही अर्थों में तो यह किसी भी कार्य को प्रोत्साहित करने का तथा नये कार्यों की खोज करने का एक मात्र साधन है। हम अपने जीवन-काल दौरान समस्याओं से विमुक्त नहीं हो सकते। यही बात शोध कार्य पर भी लागू होती है। जैसे तो शोधकार्य अपने आप में एक चुनौती है किन्तु जब किसी विशेष समस्या को ध्यान में रखकर शोध की जाती है तो उसमें कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। शोध कार्य को शुरू करने से लेकर अन्त तक विभिन्न प्रकार की समस्यायों का सामना करना पड़ता है। यह समस्याएँ धर्म, आस्था, सिद्धांत, वर्ण, जाति, भाषा, क्षेत्रिय, तकनीकी, शोध प्रक्रिया की विधियों, समय, वित्तीय या फिर दूसरे शब्दों में कहें तो सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक राजनैतिक एवं सैद्धांतिक और न जाने इससे सम्बन्धित कितनी ही प्रकार की हो सकती है।

• सैद्धांतिक समस्यायें:

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अपने आप को सभ्य व समाज में समाहित करने हेतु उसने बहुत सारी सैद्धांतिक विचारधारायों जैसे: - रीति रिवाज, धर्म, जाति, सम्प्रदाय, सिद्धांत नैतिक मूल्य, परम्पराओं इत्यादि को अपनाया हुआ है।

शोध प्रक्रिया में शोध विषयानुसार बहुतायत इस प्रकार की समस्याएँ भी उत्पन्न हो जाती है। जिस समुदाय में प्राणी वास करता है, उसके लिए तो वह अनुकूल है। किन्तु दूसरे समुदाय के लोगों के लिए वह उस समय प्रतिकूल हो जाता है, जब व्यक्ति के मन में सैद्धांतिक कट्टरता या मानसिक संकुचितता आ जाती है। शोध प्रक्रिया दौरान जब कभी इस से सम्बन्धित कार्य करना

पड़ता है तो उस वर्ग या समुदाय की सैद्धांतिक अवधारणा हमारे शोध कार्य में विघ्न पैदा करती है।

प्रत्येक व्यक्ति वातावरण से प्रभावित है, वास्तव में व्यक्ति के साथ-साथ प्रत्येक वस्तु तथा विचारधारा भी वातावरण से ही प्रभावित है। आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक इत्यादि कारणों के साथ-साथ वैश्वीकरण तथा सोशल मीडिया के प्रभावीकरण के कारण, दिनों-दिन बढ़ रहे शीत युद्धों के कारण एवं व्यक्तिगत सम्बन्धों के तनावों के कारण व्यक्तियों की मानसिक स्थिति में काफी बदलाव आये हैं, जिस कारण हिन्दी साहित्य में इसका प्रतिबिम्ब साफ दिखलाई देता है।

वैसे तो यह साधारण बात है कि किसी भी प्राणी के किये किसी भी प्रकार के कार्य को उस वक्त ही सही ठहराया जाता है या मान्य होता है, जब वह समाज के बनाये नियमों की कसौटी पर खरा उतरता है। इसलिए शोध जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य हेतु सामाजिक व सांस्कृतिक मापदंडों का ध्यान रखना भी शोधकर्ता के लिए एक प्रमुख कर्तव्य एवं चुनौती है। मुस्लिम समुदाय की सैद्धांतिक अवधारणा हिन्दू वर्ग के समुदाय की सैद्धांतिक अवधारणा से नितांत भिन्न है। इसलिए शोध कार्य में इस प्रकार की समस्याओं का आगमन स्वाभाविक ही है। अगर शोध कार्य में वस्तुनिष्ठता चाहिए तो उस समुदाय प्रति स्टीक जानकारी प्राप्त करना और उसी के आधार पर कार्य करना शोधकर्ता के लिए अत्यावश्यक है। क्योंकि यहाँ पर यह ध्यान रखना होगा कि शोध कार्य दौरान लेखक के निजत्व, उसके विश्वास तथा उसकी लिखित रचनाओं पर किसी किस्म की आँच न आने पाये, उस सम्बन्ध में कुछ भी गलत जानकारी न प्रकाशित हो जाये। इसके अलावा लेखक की अपने समुदाय के प्रति और हिन्दु समाज के प्रति जो भी धारणाएँ दिमाग में संचरित है, उन सभी सिद्धांतों को, धारणाओं को बिना नुकसान पहुँचाये साथ लेकर चलते हुए कार्य करना शोध कार्य में बड़ी समस्या है।

- **भाषा की समस्या:**

विचारों की अभिव्यक्ति या उनके आदान-प्रदान हेतु भाषा ही एक ऐसा सशक्त साधन है जिसने मानव जाति को सभ्य, बोधगम्य व चिन्तक बनाया है। व्यक्ति के सामाजिक जीवन हेतु भाषा ही मुख्य आधार है। स्थान अंतराल से जब कभी भाषा में बदलाव आता है तो सम्प्रेषण में भी दिक्कत आना स्वाभाविक है। भाषा में बदलाव या भाषा की जानकारी के प्रति उदासीनता किसी भी भाषा से सम्बन्धित साहित्यिक शोध में सबसे बड़ी दिक्कत बन जाती है। इस शोध कार्य में अब्दुल विस्मिल्लाह की रचनाओं में भाषायों व क्षेत्रीय बोलियों के साथ-साथ शैली के भी विभिन्न रूप मिलते हैं। हिन्दी भाषा में रचित उनकी साहित्यिक रचनाओं में उनके मुस्लिम होने के कारण ऊर्दू के कितने ही शब्दों का समावेश है।

दूसरी तरफ मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए अंग्रेजी भाषा है। क्योंकि मनोविज्ञान विषय में बहुतायत किताबें विदेशी लेखकों द्वारा रचित हैं। भारत में इस संबंध में बहुत कम किताबें उपलब्ध हैं। अगर लिखी भी है तो वह भी अंग्रेजी भाषा में ही है। हिन्दी भाषा में बहुत कम प्रकाशित हुई हैं और यदि उपलब्ध हैं भी तो वह भी अनुवादित ही हैं। इसलिए हिन्दी, ऊर्दू, अंग्रेजी एवं क्षेत्रीय बोलियों का एक साथ अध्ययन आवश्यक है। भाषा से संबंधित इस प्रकार की साहित्यिक शोध में एक साथ इतनी भाषायों को साथ लेकर चलना भी एक समस्या है।

- **विषय सामग्री की उपलब्धता में कमी:**

भाषागत साहित्यिक शोध में विषय सामग्री अपना एक अहम स्थान रखती है। ऐसा भी कह सकते हैं कि विषय सामग्री ही इस प्रकार की शोध का आधार है। यहाँ पर ध्यातव्य है कि जो भी लेखक या साहित्यकार इस संसार में जीवित है उनकी साहित्यिक सामग्री तो शोध कार्य के लिए उपलब्ध हो जाती है किन्तु वह भी आसानी से नहीं। क्योंकि उनकी रचनाओं को देश के विभिन्न प्रकाशक प्रकाशित करते हैं। कोई रचना नई दिल्ली से प्रकाशित होती है, कोई कलकत्ता से, कोई बनारस से तो कोई मुम्बई से। इस प्रकार

स्थानीय विभिन्नता के कारण उनकी सभी रचनाओं की उपलब्धता में दिक्कत आ जाती है। उन पर किसी भी तरह से जो भी कार्य हुए है वह विभिन्न विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों में जमा है। कोई प्रकाशित कार्य देश के उत्तरी भाग में है तो कोई दक्षिणी भाग में है जिस कारण उनकी प्राप्ति, उनका अध्ययन करना टेढ़ी खीर बन जाता है।

वैसे तो आज कम्प्यूटर तथा इंटरनेट का युग है। दुनिया की सभी प्रकार की जानकारी इंटरनेट पर उपलब्ध है। आज हम मिंटों सैकण्डों में कम्प्यूटर तथा इंटरनेट की मदद से किसी भी प्रकार की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं किन्तु यह सभी प्रकार की जानकारी अधिकांश अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध है। हिन्दी भाषा से संबंधित जानकारी या विषय वस्तु का अभी अभाव है। अभी कुछ ही वेब साइट्स हैं, जो हिन्दी भाषा से सम्बन्धित कार्य में संलग्न हैं। इस लिए अभी इस साधन से भी कोई सन्तुष्टीजनक व भरपूर विषय सामग्री नहीं मिल पाती।

दूसरी तरफ जो भी लेखक या साहित्यकार इस संसार में जीवित नहीं है। उनकी मूल रचनाओं की उपलब्धता का अभाव है। अगर उनके जीवन या उनकी रचनाओं की जानकारी दूसरे या तीसरे सूत्र से प्राप्त करते हैं तो उनकी प्रामाणिकता के संबंध में संदिग्धता आ जाती है। वैसे इस प्रकार के आँकड़ों को द्वितीयक आँकड़े कहा जाता है। पुराने कितने ही साहित्यकार या लेखक हैं जिनकी रचनाओं के मूल रूप खत्म हो चुके हैं तो उन पर शोध कार्य में दिक्कत आ जाती है। इस लिए विषय सामग्री की उपलब्धता में कमी शोध कार्य में बहुत बड़ी समस्या है।

- **वित्तीय व समय से सम्बन्धित समस्या:**

किसी भी कार्य को करने हेतु धन और समय पर्याप्त मात्रा में वांछनीय है। किन्तु शोध जैसे कार्य के लिए इन्हें एक निश्चित मात्रा में बाँधना अपर्याप्त है। शोध के लिए विश्वविद्यालय से लेकर गाँव के किसी कोने में बसे घर में उस व्यक्ति से भी मिलना पड़ सकता है जो अज्ञात है। इस बात पर भी संदेह है कि वह मिलने का इच्छुक है भी कि नहीं। इस कार्य के लिए बहुत समय

चाहिए। हो सकता है वह व्यक्ति पहली बार में मिले या उसके लिए हमें दस बार चक्कर लगाने पड़ें। कभी हमें दिन में जाना पड़ सकता है कभी रात में भी। कभी इस शहर में या कभी दूसरे शहर में। इसलिए इन सभी कार्यों के लिए हमें समय की बहुत जरूरत है। साथ ही साथ विषय सामग्री के लिए किताबें, पत्र-पत्रिकाएँ, अखबार, रसाले, स्टेशनरी, टूल्स इत्यादि की जरूरत अति आवश्यक है जिसके लिए प्रयाप्त मात्रा में धन चाहिए। अगर समय और धन की कमी है तो शोध कार्य में यह बहुत बड़ी दिक्कत बनी रहती है।

• **कथा-साहित्य के तत्वों का वर्गीकरण की समस्या: -**

जैसे-जैसे समय बदल रहा है, उसी के साथ ही मनुष्य की विचारधारा, उसके सोचने समझने या समझाने के तरीके भी बदल रहे हैं। जिस कारण साहित्यिक कृतियों में भी बदलाव आ रहा है। आदिकाल में केवल पद्य विधा ही प्रधान होती थी। उस समय में जितनी भी रचनाएँ लिखी गईं वह सभी पद्य रचित हैं। वास्तव में भक्ति काल तथा रीतिकाल भी पद्यात्मक रचनाओं से ही सराबोर रहे हैं। किन्तु समय के बदलाव से गद्य ने भी अपने पैर जमाने शुरू कर दिये। आधुनिक काल तक पद्य तो नामात्र ही रह गया है किन्तु गद्य ने अपनी विभिन्न रूपों से साहित्य विधाओं में अपनी जगह पक्की कर ली। अब उसके रूपों या शाखाओं के तत्वों में भी बदलाव आने शुरू हो गये है। क्योंकि आज का युग विश्लेषणात्मक युग है। आज का मानव तत्वों की गहराई में जाने को तैयार है। जिस कारण साहित्य की विधाओं में एवं उसके रूपों में बदलाव आते रहते हैं।

अब्दुल बिरि-मल्लाह ने अपने कथा-साहित्य में कहानी, नाटकों व उपन्यासों की रचना की है। कथा साहित्य में सम्मिलित कहानियों, नाटकों और उपन्यासों के लेखन के समयानुसार आये सामाजिक बदलावों के अनुसार उनमें वर्गीकरण करना और उसी के आधार पर उनमें से तत्वों को निकालना एक समस्या है। लेखक लम्बे अरसे से लेखन कला में संलग्न है। उनकी प्रथम रचना से लेकर आज तक की रचनाओं में काफी बदलाव आये। लेखक की समय और स्थान को ध्यान में रखते हुए रचित रचनाओं को उसी के

बातावरण में विश्लेषण करना पड़ेगा और आये बदलावों में जो भी नये तत्व निकल कर आये है बदलते वातावरण के परिपेक्ष्य में साहित्य के जितने भी रूप प्रभावित हुए है उनका वर्तमान संदर्भ में संबंध स्थापित करना भी एक समस्या है।

परिसीमांकन

वैसे तो मनोविज्ञान एक विकासशील तथा प्रगतिशील विषय है। यह दिन-प्रतिदिन अपनी शाखाएँ बढ़ाता जा रहा है। इसने मानवीय व्यवहार के प्रत्येक पहलू पर अपनी विशेष अध्ययनशीलता के कारण अपनी अनेक शाखाएँ फैला ली हैं। जैसे शिक्षा-मनोविज्ञान, सामान्य-मनोविज्ञान, असामान्य-मनोविज्ञान, नारी-मनोविज्ञान, समाज-मनोविज्ञान, खेल-मनोविज्ञान, चिकित्सा-मनोविज्ञान इत्यादि। किन्तु हम यहाँ पर केवल उन शाखाओं से सम्बन्धित बातों का वर्णन करने की कोशिश की है जिनका जिक्र अब्दुल विस्मिल्लाह ने अपनी कथा-साहित्य के दौरान अपनी रचनाओं में उठाया है या इस बात का भी ध्यान रखा है कि जिन बातों को या कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए जो बातें उठाई हैं वह इस विषय या इसकी शाखाओं के किन-किन हिस्सों से सम्बन्धित है। हमने केवल उन मुद्दों पर ही चर्चा की है। क्योंकि वैसे तो लेखक की रचनाओं में ओर भी ढेर सारे मुद्दे हैं। किन्तु हम उन सभी हिस्सों से अपने शोध कार्य से दूर रखा है जो इस कार्य क्षेत्र में समाहित नहीं होते हैं।

इस शोध कार्य में हमारा लक्ष्य केवल उक्त एक निर्धारित किये गये लेखक की साहित्यिक रचनाओं के संबंध में ही है। बाकी हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित किसी अन्य लेखक या आलोचक के संबंध में नहीं है। क्योंकि हम जानते हैं कि हिन्दी साहित्य में ढेरों ऐसे लेखक हैं जिनकी रचनाओं में इस विषय से सम्बन्धित विषय सामग्री उपलब्ध है या जिनका मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता है। किन्तु हमारे शोध कार्य का परिसीमांकन केवल एक ही लेखक के कथा साहित्य का अध्ययन करना है। क्योंकि हम यदि सभी लेखकों की या साहित्यकारों की विषय सामग्री को अपने कार्य क्षेत्र में जगह

देते हैं तो यह कार्य बहुत बढ़ जाएगा जिसे समेटना अत्यन्त मुश्किल हो जाएगा तथा प्रमाणिकता तथा गुणवत्ता पर भी प्रश्न उठ जाएगा।

इसलिए हमने केवल हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग के नए प्रगतिशील लेखक अब्दुल बिसमिल्लाह और उनकी कथा साहित्य संबंधी रचनाओं को ही उठाया है तथा उनका गहन विश्लेषण किया है कि साहित्यकार ने किन बिन्दुओं को उठाया है, छुआ है, महसूस किया है तथा उसकी व्याख्या की है। यह बिन्दु मनोविज्ञान के किस भाग से सम्बन्धित है। क्योंकि मनोविज्ञान के बहुत से सिद्धांत हैं, सम्प्रदाय हैं, विशेषताएँ हैं। उन सभी पर उनकी रचनाओं के सभी बिन्दु स्पर्श नहीं कर सकते। इस लिए इस शोध कार्य का परिसीमांकन एक निर्धारित किए लेखक की एक निश्चित रचनाओं में से मनोविज्ञान के निश्चित बिन्दुओं को ढूँढना है।

शोध-प्रविधि:

किसी भी कार्य को या समस्या के हल करने के तरीकों को विधि कहते हैं। यही बात शोध-कार्य पर भी लागू होती है। किन्तु शोध के लिए एक निश्चित दायरे में रहकर, सुनिश्चित तरीकों का इस्तेमाल करते हुए एक निर्धारित किए गये उद्देश्य की पूर्ति हेतु कार्य करना होता है। इसके लिए किसी भी एक या एक से अधिक निश्चित की गई विधियों का सहारा लिया जा सकता है। हमने जिन माध्यमों एवं विधियों का सहारा लिया है। वह निम्नलिखित हैं।

● मनोविश्लेषणात्मक विधि: -

इस विधि के जन्मदाता प्रसिद्ध मनोचिकित्सक सिगमंड फ्रायड हैं। इस विधि में मन के भागों की व्याख्या, व्यक्तित्व के भागों की व्याख्या, व्यावहारिक को नियन्त्रण करने वाले मूल बिन्दुओं की व्याख्या तथा सपने एवं गलतियों इत्यादि का विश्लेषण किया जाता है। कोई भी व्यक्ति जो अपने मन की बातों को कहने से परहेज करता है। अत्यंत दुखी बातों को दमित रखना चाहता है। व्यक्ति उन सभी बातों को अचेतन मन में रखता है। उन सभी बातों को उस अचेतन भाग से बाहर निकालने के लिए इस विधि का प्रयोग किया जाता है।

इसके लिए साक्षात्कार, अधूरे व खाली छोड़े गये वाक्यों को पूरा करना, किसी वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ संबंध जोड़ना जैसे कार्य किये जाते हैं। इस विधि के माध्यम से व्यक्ति के मानसिक विकारों तथा दमित की गई उन सभी बातों को बाहर निकाल कर उनका निदान किया जाता है। सही शब्दों में यह एक निदानात्मक विधि है। हमने लेखक अब्दुल बिस्मिल्लाह के साथ-साथ अन्य हिन्दी के महानुभावों से साक्षात्कार कर तथा और भी अन्य तरीकों से बातचीत कर इस विधि के इस्तेमाल करने की विधि को अपनाने की कोशिश की है ताकि लेखक से उन सभी बातों एवं विचारों से अवगत हुआ जाये जो कदाचित् लेखक ने अपनी रचनाओं में कहने से परहेज़ किया है।

● तुलनात्मक विधि: -

शोध कार्य के दौरान किसी भी एक निश्चित विधि का प्रयोग यथा-सम्भव नहीं है। शोध के दौरान बहुत से ऐसे हालात आते है जब हमें किसी एक साहित्यकार की तुलना किसी दूसरे साहित्यकार अथवा उसकी रचना से करनी होती है। तब हम वहां पर आवश्यकतानुसार तुलनात्मक विधि का प्रयोग करते हैं। तुलनाओं के परिणामस्वरूप अमुक व्यक्ति के व्यवहार एवं उसकी रचनाओं की विभिन्न दृष्टिकोण से हमें जानकारी प्राप्त हो जाती है जो शोधकार्य में हमारी विभिन्न स्थानों पर मदद करती है। इसी विधि के माध्यम से ही किसी भी कार्य की गुणवत्ता में सुधार लाया जा सकता है। क्योंकि संसार का यह नियम ही है कि अकेले कार्य करने की तुलना में प्रतिस्पर्धा से किया कार्य अधिक श्रेष्ठ एवं श्रेयकारी होता है। हमने इस शोध-कार्य में विभिन्न स्थानों पर इस विधि का प्रयोग किया है।

● निगमनात्मक विधि: -

साहित्यकार की रचनाओं के विश्लेषण दौरान बहुत से विचारों को सैद्धांतिक नियमों या व्यवहारिक नियमों के तहत अपनाने के पश्चात् उदाहरण पेश करने पड़ते है। तब हमें निगमनात्मक विधि का प्रयोग करना होता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर किये गये कार्यों में यह विधि न चाहते हुए भी आपको प्रयोग में लानी पड़ती है। क्योंकि मनोविज्ञान में किसी के भी प्रति निकाले गए परिणाम प्रयोगों के आधार पर साबित किये गये होते हैं।

उन्हीं के अधार पर हम भविष्यवाणी भी कर सकते हैं। तो शोधकार्य में किसी भी प्रकार से अपनी बात को सिद्ध करने के लिए हमें बेजिझक मनोविज्ञान के नियम उठाकर साहित्य के किसी भी पहलू के साथ जोड़कर उनका आपसी संबंध प्रस्तुत करना पड़ता है। साहित्य में ऐसे बहुत से प्रसंग भरे पड़े हैं जिनको सिद्ध करने हेतु पहले मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय एवं आधारों की उदाहरण आगे रखनी पड़ती है। विभिन्न स्थानों पर हमने इस विधि को अपनाया है।

● **आगमनात्मक विधि: -**

शोध कार्य के दौरान अपने लक्ष्य प्राप्ति हेतु अनेक प्रकार के दृष्टांत, उपमाएँ तथा उदाहरणों के माध्यम से अपनी बात को स्पष्ट करना होता है ताकि उस बात की सिद्धि हो सके। तब हम आगमनात्मक विधि का प्रयोग कर रहे होते हैं। क्योंकि दोनों तरफ से यदि उदाहरणें रखकर अपनी बात को सिद्ध करने का प्रयास करेंगे तो बात अथवा विचार में भी गुणवत्ता आएगी और नयापन भी आएगा। यह दृष्टांत मनोविज्ञान अथवा किसी दूसरे साहित्यकार की रचना में से भी हो सकते हैं। शोधकार्य में निर्धारित किये गये अपने उद्देश्यों की पूर्ती हेतु हमने विभिन्न स्थानों पर विभिन्न साहित्यकारों, उनकी रचनाओं एवं मनोविज्ञान के विभिन्न साहित्यिक प्रसंगों से मनोवैज्ञानिक आधारों को जोड़ने का प्रयास किया है ताकि लेखक की रचना में से झलक रही उसकी विचारधारा को वर्तमान सामाजिक संदर्भ में किसी प्रकार से निश्चित एवं स्टीक बैठाया जा सके जो वर्तमान दौर में प्रासंगिक भी रहे।

अब्दुल बिरिस्मल्लाह के कथा साहित्य के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए उपर्युक्त सभी विधियों के साथ-साथ मनोविश्लेषणात्मक विधि को ही हमने उत्तम माना। इस विधि के जरिए हमने यहाँ पर दो कार्य किये। एक तरफ तो अब्दुल बिरिस्मल्लाह की मानसिक स्थिति का पता लगाने की कोशिश की कि उनके मन में कौन सी टीस या कुण्ठा है जिसने उनके मन में हिन्दी साहित्य के लिए कलम उठाने के लिए विवश किया। ऐसे कौन से हालात या वातावरण रहा है जिनका यथार्थ वर्णन और उनके सुधार का जिक्र उनहोंने अपने उपन्यासों में, कहानियों में या अपने नाटकों में किया। उनके जीवन से सम्बन्धित ऐसी कौन सी वेदना रही है जो उन्होंने अपनी रचनाओं में पात्रों के

माध्यम से उजागर किया। क्योंकि जैसा कि हम मनोविश्लेषण विधि में पढ़ चुके हैं कि भूतकाल में अधुरी रह चुकी अकांक्षाओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति कई बार वर्तमान में कुछ विशेष कार्य करता है। दूसरी तरफ हम अब्दुल बिरिस्मल्लाह की रचनाओं में पात्रों की मानसिक स्थिति का पता लगाने की कोशिश की कि किन हालातों में किस प्रकार का कार्य कर रहे हैं तथा कार्यों की पूर्ति न होने पर वह किस प्रकार का व्यवहार रहे है।

इस विधि के जरिए हम उनकी रचनाओं में छिपी भावनाओं को समझने और यह पता करने की कोशिश की है कि सामाजिक हालातों के बदलने से किस प्रकार के साहित्य की रचना होती है और साहित्यकार किस प्रकार के आदर्शवाद की रचना कर समाज को कोई विशेष दिशा देता है। इस विधि के प्रयोग के साथ-साथ हम हिन्दी साहित्य के उन सभी सम्भावित साहित्यकारों व उनकी रचनाओं तथा आलोचकों व उनकी आलोचनाओं का भी आंकलन किया जिन्होंने मनोवैज्ञानिक दृष्टि को ध्यान में रखते हुए रचनाएँ लिखी या उनका विश्लेषण किया।

1.2 सैद्धांतिक मनोविज्ञान की रूप-रेखा: -

प्रकृति निर्मित इस संसार में केवल मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसमें बुद्धि है; विवेक है; कर्म करने की शक्ति है; भावनाएँ हैं जिसके आधार पर उसने दुनिया के प्रत्येक हिस्से पर प्रत्येक प्राणी पर अपना आधिपत्य स्थापित किया है। उसकी जिज्ञासु प्रवृत्ति एक ऐसा कुदरती लक्षण है जिससे वह अपनी बुद्धि का इस्तेमाल कर सृष्टि के प्रत्येक रहस्य को जानने का इच्छुक है। मानवीय प्रवृत्ति को जानना भी उन रहस्यों में से एक है। इस संबंध में आदिकाल से ही खोज प्रक्रिया जारी है एवं आधुनिक युग में कुछ ज्यादा ही जोर पकड़ रही है।

मन, आत्मा, भावना, चेतना, स्वप्न इत्यादि शब्द जो कि पहले आध्यात्मिक क्षेत्र के शब्द माने जाते थे। आज यह एक आधुनिक खोज के विषय बन चुके हैं, जो मनोवैज्ञानिक क्षेत्र के पात्रों के रूप में उपलब्ध है। 'मनोविज्ञान' जैसा कि नाम से ही ज्ञातव्य है कि यह मन के विज्ञान का

विषय है। मानवीय मन में विचार, भावनाएँ, मनोवेग, अनुभूतियाँ, उद्वेग स्वप्न इत्यादि चलते रहते हैं तथा उस के आधार पर हो रहे कार्य व्यवहार को समझने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रयत्न का नाम ही मनोविज्ञान है। 'मनोविज्ञान' शब्द अंग्रेजी भाषा के 'PSYCHOLOGY' का हिन्दी रूपांतरण है जो कि PSYCHE + LOGOS से मिलकर बना है, PSYCHE का अर्थ 'आत्मा' तथा LOGOS का अर्थ है 'ज्ञान'। इस प्रकार इसकी प्रथम परिभाषा 'आत्मा की व्याख्या' के नाम से जानी जाती है। अरस्तू, प्लेटो, डेकोर्टे इत्यादि यूनानी दार्शनिकों ने मनोविज्ञान को आत्मा का विज्ञान माना, किन्तु बाद में आत्मा के किसी भी तरह के भौतिक अस्तित्व न होने के कारण इस परिभाषा 16वीं शताब्दी को रद्द कर दिया गया। फिर 17वीं शताब्दी में इसे मन या मस्तिष्क का विज्ञान के नाम से जाना जाने लगा। इटली के प्रसिद्ध दार्शनिक पॉम्पोनीजी, जॉन लॉक, बर्कली इत्यादि इसके समर्थक में थे। इनमें से कोई भी मन की प्रकृति अथवा स्वरूप का निर्धारण नहीं कर पाया और कुछ समय पश्चात् यह धारणा भी समाप्त कर दी गई। तथा उसके बाद चेतना के विज्ञान की परिभाषा भी दी गयी। विलियम वुंट, विलियम जेम्स इत्यादि मनोवेज्ञानिकों ने इसे 19वीं शताब्दी में यह संज्ञा दी। विभिन्न मनोवेज्ञानिकों के विभिन्न प्रकार के प्रयोगों एवं अध्ययनशीलता के आधार पर लिए गये फेसलों के आधार पर 20वीं शताब्दी में वाटसन, वुडवर्थ, स्किनर, मेक्डूगल इत्यादि मनोवेज्ञानिकों ने मनोविज्ञान को व्यवहार के विज्ञान का नाम दिया।

इसकी परिभाषा के संबंध में जीवनायकम अपनी किताब 'मनोविज्ञान और शिक्षा' जिसका हिन्दी अनुवाद श्रीमति सुमित्रा भार्गव ने किया, में कहते हैं कि

“मनोविज्ञान की परिभाषा कई प्रकार से की गई है। कुछ समय पहले इसे 'आत्मा का विज्ञान', 'मन का विज्ञान' बाद में 'चेतना विज्ञान' और फिर 'व्यवहार का विज्ञान' समझा जाता था पहले को इस कारण त्याग दिया गया कि आत्मा एक दैविक शब्द है और उन समस्याओं को सुझाती है जिनके विषय में अभी तक कुछ पता नहीं लग सका है। 'मन

के विज्ञान' से एक स्थिर दिशा का ज्ञान होता है। मानों किसी यंत्र का निरीक्षण करना हो, परन्तु वह ऐसी कोई चीज नहीं है। मनोविज्ञान में वस्तुओं की अपेक्षा कार्यों का अध्ययन अधिक है। 'चेतना-विज्ञान' पद पुरे क्षेत्र के लिए व्यापक नहीं है, क्योंकि हम अचेतन कार्यों का भी अध्ययन करना होता है। इसी प्रकार 'व्यवहार' चेतना को छोड़ देता है। अतः वह भी विषय के एक अंग को ही आवृत करता है। अधिकांश परिभाषाएँ दोषपूर्ण होने से गलत थी, और मनोविज्ञान की प्रकृति तथा विस्तार को न समझा सकने की असफलता को इस प्रकार कहा गया है कि पहले मनोविज्ञान ने अपनी आत्मा नष्ट कर दी, फिर मन और बाद में चेतना। इसमें एक प्रकार का व्यवहार अभी है। परिभाषा के पीछे पागल होना व्यर्थ है। जिस प्रकार का ज्ञान वह प्राप्त करने की चेष्टा करता है, उसी के द्वारा हम मनोविज्ञान को समझ सकते हैं। यह वह विज्ञान है जो हमारी मानसिक क्रियाओं का वर्णन, वर्गीकरण तथा व्याख्या करता है। वह यह जानने का प्रयास करता है कि हम कैसे निरीक्षण करते हैं, कैसे सीखते हैं और कैसे स्मरण, कल्पना तथा चिन्तन करते हैं। हमारे संवेग और अनुभूति क्या है? कार्य के लिए कौन से संवेग, मूलप्रवृत्तियाँ तथा प्रकृतिक तथा प्राप्त प्रवृत्तियाँ हैं?" (जीवनायकम, श्रीमति समित्रा भार्गव-अनुवादक 05)

दरअसल 16वीं शताब्दी में मनोविज्ञान 'आत्मा का विज्ञान' के नाम से जाना जाता था। 17वीं शताब्दी में यह मन का विज्ञान के नाम से मशहूर हुआ। 18वीं शताब्दी में यह चेतन, अर्द्धचेतन तथा अचेतन के विज्ञान के नाम से जाना जाने लगा और 20वीं शताब्दी में यह 'व्यवहार का विज्ञान' के नाम से चला आ रहा है। जैसे-जैसे इस विषय पर कार्य होता आ रहा है उसी प्रकार इसकी वैज्ञानिक श्रेणी भी बदलती आ रही है। इतना कुछ होते हुए भी यह तो सत्य ही है कि यह मानवीय एवं पशु प्रवृत्ति के अध्ययन में ही सलंग्न है।

मानवीय व्यवहार में दिन प्रतिदिन आ रहे बदलाव के विश्लेषण करने की प्रक्रिया के मद्देनजर मनोविज्ञान को एक क्रियाशील व विकासशील विषय

के रूप में समझा जाता है। कोई भी विषय अगर इस श्रेणी में अपना स्थान रखता है तो उसे एक निश्चित रूप में परिभाषित करना आसान नहीं होता है इसी को आधार बना गहन अध्ययनशीलता के पश्चात् विभिन्न मनोवैज्ञानिकों व शब्दकोशों ने इसकी विभिन्न उदाहरणों प्रस्तुत की है।

साधारण शब्दों में कहें तो मनोविज्ञान मानवीय व्यवहार के अध्ययन का एक ऐसा व्यवस्थित विज्ञान है, जो इसकी दिन प्रतिदिन बदल रही क्रियाओं का सूक्ष्मता से अध्ययन, चिन्तन व मनन करता है तथा समाज पर पड़ने वाले व्यवहार की जाँच करता है।

• मनोविज्ञान: एक ऐतिहासिक परम्परा:

संसार पर यदि ऐतिहासिक दृष्टिकोण के अंतर्गत ध्यान दिया जाए तो एक बात निश्चित रूप से बाहर निकलती है कि समाज में जितने भी कार्य, विषय अथवा कोई भी वस्तु है। उसका कोई न कोई पुरातन रूप अथवा इतिहास अवश्य है। यही बात मनोविज्ञान विषय पर भी लागू होती है। शिक्षा के क्षेत्र में पाश्चात्य विद्वानों की ओर से दार्शनिकता के संबंध में आज हमें जो भी जानकारी हासिल हो पायी है। उसके अध्ययन से यही पता चलता है कि बहुत समय पहले से ही मनोवैज्ञानिक एवं धार्मिक तथा आध्यात्मिक पहलू को दर्शन के अंतर्गत ही पढ़ा जा रहा था। प्रत्येक दार्शनिक विचार में इन सभी का समाहित रूप ही हमारे समक्ष प्रगट हो रहा था। किन्तु बदलते समयानुसार यह सभी विषय अथवा पहलू अपनी-अपनी गुणवत्ता एवं कार्य में विभिन्नता के कारण दर्शन में से निकल कर अपना-अपना विशेष स्वरूप तैयार करते रहे और आज एक विभिन्न रूप में हम इन्हें देखते हैं, पढ़ते हैं।

अरूण कुमार ने अपनी किताब 'मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास' में मनोविज्ञान के संबंध में इबिंगहॉस के विचारों को बताते हुए कहते हैं कि "इबिंगहॉस" (Ebbinghaus) ने मनोविज्ञान के इतिहास के स्वरूप पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि

"मनोविज्ञान का अतीत लम्बा है परन्तु इतिहास छोटा है"
(Psychology has a long past but short history) यदि हम इस कथन

पर ध्यानपूर्वक देखें तो इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि इबिंगहॉस ने सचमुच में पूरे इतिहास को एक पंक्ति में कैद करते हुए गागर में सागर भर दिया है। मनोविज्ञान के तथ्यों की जानकारी के सबूत पौराणिक ग्रीक दर्शनशास्त्र लगभग छठी शताब्दी बी.सी. में मिलता है। अतः इसका अतीत निश्चित रूप से लम्बा है। परन्तु मनोविज्ञान को एक स्वतन्त्र शाखा के रूप में 1879 ई. में स्थापित किया गया। अतः इसका इतिहास निश्चित रूप से लगभग 120 साल से ही पुराना है। परन्तु इस 120 साल में मनोविज्ञान में जो परिवर्तन हुए हैं, वे इतने महत्त्वपूर्ण हुए हैं कि इसका इतिहास का स्वरूप पहले से बिल्कुल ही बदल गया है।” (अरुण 03)

मनोविज्ञान की यदि भारतीय परम्परा का अध्ययन किया जाये तो ज्ञात होता है कि इस विषय से सम्बन्धित हमारे पौराणिक ग्रन्थों में भी मानवीय व्यवहार के अध्ययन का वर्णन विभिन्न जगहों पर मिलता है। जब इस पर केवल आत्मा, जीव, आनन्दानुभूति, मुक्ति इत्यादि विषय पर चर्चा की जाती थी। संस्कृत-काव्यशास्त्र में जो भी रस या साधारणीकरण जैसे मुद्दों पर चर्चा की गयी है असल में यह सभी मानसिक प्रवृत्तियों के ही अंग मात्र है, जिन पर बड़े ही सूक्ष्म तरीके से चर्चा की गयी है।

भारतीय वेदों के अलावा वेदांतों, उपनिषदों दर्शन, जैन सम्प्रदाय, बौद्ध चिंतक तथा समकालीन भारतीय चिंतक श्री अरविंद, शंकराचार्य तथा अन्य सभी भारतीय चिंतकों ने अप्रत्यक्ष रूप से मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए आत्मा एवं मन के स्वरूप का बखूबी विवेचन किया है और करते आ रहे हैं। उन्होंने योग, साधना, तपस्या, ध्यान इत्यादि के माध्यम से मोक्ष की प्राप्ति हेतु अलौकिक शक्तियों का अध्ययन कर अप्रत्यक्ष रूप से मनोविज्ञान की लड़ी को आगे बढ़ाया। न्यायदर्शन तथा सांख्यदर्शन में भी बुद्धि, मन, ज्ञानेन्द्रियों इत्यादि के विषय में चर्चा होती रही है। रामायण में महाराजा दशरथ के महल में दासी मंथरा का रानी कैकयी को राम के खिलाव भड़काना, महाभारत में कुरुक्षेत्र के मैदान में श्री कृष्ण का अर्जुन को युद्ध के लिए उत्साहित करना, यह सभी मानसिक स्थितियों के वह उदाहरण हैं जो आज मनोविज्ञान विषय

के पात्र है। ऐसी अनेक सामग्रियों से हमारा इतिहास भरा पड़ा है। भारतीय मनोविज्ञान आध्यात्मिकता के आश्रय में से पला बड़ा है जिस कारण उसने आत्मा और परमात्मा को आधार बना मानवीय व्यवहार कर चिन्तन किया। पुरातन भारतीय विद्वानों द्वारा तो पुनर्जन्म के संबंध में भी बहुत अध्ययन कर उस पर विश्वास किया गया है।

भारतीय इतिहास पर गहन अध्ययन की दृष्टिपात से विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों के अलावा मन्दिरों, गुफाओं शिलालेखों इत्यादि के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप में आत्मा, मन, व्यक्ति के चरित्र निर्माण, उसके व्यवहार, यौन, मानसिक रोग, उनके संवेगों इत्यादि के पुख्ता सबूत मिलते हैं। पुरानी गुफाओं में तो यौन-क्रीड़ाओं से संबंधित बुत अथवा आकृतियाँ तो स्वाभाविक ही मिल जाती हैं। जिनके संबंध में सिगमंड फ्रायड ने मानवीय व्यवहार से जोड़कर प्रस्तुत किया था। जो यह मानते थे कि काम ही मानवीय व्यवहार का आधार है। भावार्थ यह कि मनोविज्ञान प्राचीनकाल से आधुनिक युग तक मानवीय व्यवहार की अध्ययनशीलता में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संलग्न रहा है।

पूरी दुनिया में इस विषय से संबंधित अध्ययनशीलता का क्रम चलता आ रहा है। वास्तव में पश्चिम में जितने भी दार्शनिक हुए हैं, उन सभी ने अपनी दार्शनिकता के आधार पर प्रत्येक विषय पर अपने-अपने मत परिभाषित किये हैं। पश्चिम में यूनानियों ने मानव मन के अध्ययन का प्रयत्न किया था। अरस्तू ने अपने ग्रन्थों में युवा और वृद्धावस्था की भावनाओं का, जागृत तथा सुषुप्त तथा स्वप्नावस्थाओं का, नर और नारी के मनोविज्ञान का, स्मृति और प्रज्ञा की प्रक्रियाओं का तथा रहस्यात्मक अनुभूतियों का वर्णन किया है।

मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के संबंध में अरुण कुमार अपनी किताब 'मनोविज्ञान के संप्रदाय एवं इतिहास' में आगे कहते हैं कि

“जब मनोविज्ञान दर्शनशास्त्र तथा अन्य विज्ञानों से अलग होकर एक स्वतन्त्र शाखा के रूप में 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विकसित हुआ तो स्वाभावतः एक मौलिक प्रश्न यह उठता है कि क्यों हम लोग अपने अध्ययन की शुरुआत पुरातन ग्रीक दार्शनिक के कार्यों से करें? पुरातन ग्रीक दार्शनिकों में अरस्तू को छोड़कर किसी ने भी मनोविज्ञान के

सम्बन्ध में कोई क्रमबद्ध बातें नहीं कही फिर भी इन पुरातन विद्वानों के कई ऐसी बातें थी जो मनोविज्ञान के लिए आज भी महत्त्व रखती हैं।”

(अरुण 13)

मनोविज्ञान मानवीय आत्मा, उसके मन, उसकी चेतना तथा उसके व्यवहार से संबंधित क्रियाओं का अध्ययन करता आ रहा है। जैसे-जैसे मानवीय व्यवहार में परिवर्तन आता जाएगा अथवा उसका विकास होता जाएगा। सम्भवतः मनोविज्ञान में भी बदलाव आता रहेगा। क्योंकि अभी तक के विकासक्रम में यह एक प्रकार से वैज्ञानिक पद्धति के अनुरूप अपना कार्य करता आ रहा है। भविष्य में भी इसका आधार वैज्ञानिक ही रहेगा।

• **मनोवैज्ञानिक सम्प्रदायः**

मनोविज्ञान व्यवहार की निरंतर खोज की अध्ययनशीलता का व्यवस्थित विज्ञान है। यह एक प्रकार से अन्य विज्ञानों की तरह ही तथ्यों के आधार पर कार्य करता है। मनोविज्ञान की कार्यविधि के आधार पर लालजी राम शुक्ल अपनी किताब ‘आधुनिक मनोविज्ञान’ में कहते हैं कि

“मनोविज्ञान एक ऐसा विषय है कि जिसमें पूर्व और पाश्चात्य ज्ञान का भली प्रकार से समन्वय होता है। मनोविज्ञान विज्ञान है, अतएव इस विज्ञान की विधि वही है जो दूसरे विज्ञानों की है। मनोविज्ञान में मान्यता के लिए, किसी प्रकार के आत वचन के लिए, हठधर्मी के लिए कोई स्थान नहीं है। जो बात प्रयोगों द्वारा ठीक सिद्ध होती है उसी को मनोविज्ञान मानता है, जो प्रयोगों के द्वारा ठीक नहीं उतरती उसे वह अपने विचार में स्थान नहीं देता। मनोविज्ञान का ज्येष्ठ प्रमाण आत वचन नहीं, अपितु अपनी निजी अनुभूति है। इस दृष्टि से मनोविज्ञान भौतिक विज्ञान के समान ही विज्ञान है।” (शुक्ल 04)

कहने का भाव यह कि मनोविज्ञान केवल किसी सोची समझी विचारधारा का नाम नहीं है बल्कि यह तो तथ्यों के आधार पर सम्पूर्ण किये गये कार्यों के परिणाम का एक विज्ञान है।

मनोविज्ञान के संबंध में प्रत्येक चिंतक ने अपने-अपने मतानुसार इस पर अपनी विभिन्न प्रतिक्रियाएं दी। अपनी प्रत्येक प्रतिक्रिया में मनोविज्ञान को

विभिन्न तरीके से प्रस्तुत किया गया। उसकी विषय-वस्तु, उसकी विधियाँ, उसके अध्ययन पर विभिन्न मत दिये। यही प्रतिक्रियाएं आगे चल कर सम्प्रदाय के नाम से परिभाषित हुईं। अरुण कुमार अपनी किताब 'मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास' में सम्प्रदाय के संबंध में मैकग्यू के विचारों को दर्शाते हुए कहते हैं कि "विषय के विशिष्ट सिद्धांतों एवं तथ्यों का एक संगत एवं अन्तर्देशित परन्तु लचीला संगठन एवं व्याख्या का मतलब ही मनोवैज्ञानिक संप्रदाय होता है।" (अरुण 03) मनोविज्ञान में विभिन्न प्रकार के सम्प्रदाय, स्कूल एवं विचारधाराएँ बनी, किन्तु मुख्यतः छह सम्प्रदाय हुए हैं, जो निम्नलिखित हैं।

➤ **साहचर्यवाद :**

यह सम्प्रदाय अन्य मनोवैज्ञानिक सम्प्रदायों की तरह मनोविज्ञान में अपनी कोई खास पहचान नहीं बना पाया था। 'इस सम्प्रदाय का मत है कि मनोवैज्ञानिकों को विचारों के साहचर्य के नियमों का अध्ययन करना चाहिए तथा जटिल घटनाओं को साधारण घटनाओं के रूप में विश्लेषित करके ही उसे ठीक ढंग से समझा जा सकता है। यह सम्प्रदाय मनोविज्ञान का सबसे पुराना सम्प्रदाय है। इसे कोई खास स्थान प्राप्त नहीं है। डॉ. महावीर प्रसाद गुप्ता और डॉ. ममता गुप्ता अपनी किताब 'शिक्षा मनोविज्ञान' में साहचर्यवाद के संबंध में कहते हैं कि

"मनोविज्ञान में साहचर्यवाद ब्रिटिश मनोविज्ञान की देन है। जिसकी नींव ब्रिटिश दार्शनिक जॉन लॉक ने 1690 में डाली थी। लॉक ने डेस्कार्ट के मत की आत्मा और शरीर की पृथक्-2 सत्ता द्वैतवाद का खण्डन करते हुए कहा था कि मन में जो कुछ भी पहुँचता है। अनुभव द्वारा ही पहुँचता है। नवजात शिशु का मन एक कोरी पट्टिया होती है, जिस पर अनुभव के द्वारा लिखा जाता है।" (गुप्ता 18)

इस सम्प्रदाय का मुख्य पहलू यह था कि जो भी विचार एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं वह व्यक्ति के मन में अनुभव के माध्यम से प्रवेश कर जाते हैं और उसी के आधार पर व्यक्ति समाज में सभी प्रकार के कार्य करता जाता है। इसमें 'सहचारिता का नियम', 'समानता का नियम', 'विपरीतता का

नियम' शामिल है। जैसे: - रोटी को देखकर सब्जी का स्मरण होना, टी.वी. को देखकर थियेटर का स्मरण होना, मोटे को देखकर पतले का स्मरण होना इत्यादि। विचारों के संबंध में बहुत पहले अरस्तु का कहना था कि विचार मन में परस्पर सम्बन्धित होकर विचार-प्रक्रिया का जन्म देते हैं। साहचर्यवाद ने बच्चों के सीखने के सिद्धांतों में अहम भूमिका निभाई। आगे चलकर साहचर्यवाद ने अपने विचारों के आधार पर प्रगति की। इस सम्प्रदाय में डेविड हार्टले, पैवलव, ई. एल. थॉर्नडाइक इत्यादि मनोवैज्ञानिकों का योगदान रहा है।

➤ संरचनावाद:

इस सम्प्रदाय की स्थापना ई. बी. टिचेनर जो विलियम तुण्ट के शिष्य थे, द्वारा अमेरिका में की गयी। इस सम्प्रदाय में चेतना के अध्ययन को ही मनोविज्ञान का मूल मंत्र माना गया। ई. बी. टिचेनर का विश्वास था कि मनोविज्ञान का मुख्य उद्देश्य मन व चेतना का अध्ययन करना है। इसे मन तथा शरीर का मनोविज्ञान भी कहा जाता है। यह सम्प्रदाय मन तथा शरीर दोनों के अस्तित्व को मानता है तथा उनके संबंधों को भी समानान्तर मानता है। इसे मनोदैहिक (मन+ देह) द्वैतवाद का सिद्धांत भी कहा जाता है। इस संबंध में डॉ. महावीर प्रसाद गुप्ता और डॉ. ममता गुप्ता अपनी किताब 'शिक्षा मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

“चेतना-रचनावाद वह मनोवैज्ञानिक विचारधारा है जो मनोविज्ञान का अध्ययन विषय चेतना की रचना मानती है और यह स्वीकार करती है कि चेतना में भिन्न-भिन्न मानसिक तत्त्वों एवं प्रत्ययों का जोड़-तोड़ रहता है। व्यक्ति के विभिन्न व्यक्तिगत संवेदनाओं के अनुभव के योग को चेतना कहा गया है और मनोविज्ञान का उद्देश्य चेतना की रचना को जानना तथा उन्हें निर्मित करने वाले तत्त्वों की खोज करना था। अतः चेतना रचनावाद के अध्ययन को केन्द्र बिन्दु चेतना की रचना है। चेतना की व्याख्या करते समय इस विचारधारा के लोग विभिन्न मानसिक क्रियाओं पर अधिक बल देते हैं।” (गुप्ता 35)

संरचनावादियों द्वारा व्यक्ति के व्यवहार का आणविक रूप (टुकड़ों में) के विश्लेषण पर अधिक बल डाला। वह व्यक्ति के व्यवहार में आत्मनिष्ठा अर्थात्

भाव, विचार, ध्यान, प्रतिमा, संवेदना, सोच, अनुभव इत्यादि को महत्त्वपूर्ण बतलाते हैं। मनोविज्ञान के संबंध में वह इस बात पर जोर देते हैं कि इसके नियम ही संतुष्टिजनक है। उनकी वास्तविक उपयोगिता पर वह ज्यादा ध्यान नहीं देते। 20वीं सदी की शुरुआत में मनोविज्ञान इस बात को पकड़ने के प्रयास में था कि चेतना किस प्रकार व्यक्ति को समाज में सामंजस्य स्थापित करने में सहयोग करता है? इस सम्प्रदाय का मुख्य औजार 'आत्मनिरीक्षण' है। संरचनावादियों ने अनुभव को बड़ा महत्त्व दिया।

➤ प्रकार्यवाद:

वैसे तो विलियम जेम्स को इस सम्प्रदाय का जन्मदाता माना जाता है। किन्तु वह अपने आप को कभी भी प्रकार्यवादी नहीं मानते थे। असल में इस सम्प्रदाय के जन्मदाता जॉन डिवी तथा जेम्स एंजिल द्वारा शिकागो विश्वविद्यालय में की गयी थी। यह सम्प्रदाय प्राणी और वातावरण को एक मानता है। इस संबंध में डॉ. महावीर प्रसाद गुप्ता और डॉ. ममता गुप्ता अपनी किताब 'शिक्षा मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

“चेतना कार्यवाद वह विचारधारा है जो चेतना के कार्य और उसके फलस्वरूप शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करती है। इस विचारधारा को मानने वाले प्रत्येक कार्य का अध्ययन उसकी उपयोगिता को ध्यान में रखकर करते हैं।” (गुप्ता 36) 'चार्ल्स डार्विन' के सिद्धांतों से यह सम्प्रदाय अपने विचारों में काफी समानता मानता है। इस सम्प्रदाय के कारण ही मनोविज्ञान को प्रयोगात्मक बनने में सहायता मिली। चार्ल्स डार्विन के विकासवादी सिद्धांत के कारण ही मनोविज्ञान 'जीव विज्ञान' के समीप आया शरीर विज्ञान पर अध्ययन करने शुरु किये।

प्रकार्यवादियों ने मानवीय व्यवहार में उसकी प्रत्यक्ष उपयोगिता को अहम स्थान दिया। उन्होंने 'क्यों' और 'कैसे' का उत्तर देने का प्रयास किया। वह यह ढूँढना चाहते थे कि व्यक्ति क्यों और कैसे कार्य करता है। वह मानते हैं कि प्रत्येक प्राणी चाहे वह मानव अथवा पशु हो बाहरी वातावरण से संपर्क स्थापित कर अपने व्यवहार में बदलाव लाता है। प्रकार्यवादी मानते हैं कि मनोविज्ञान का कार्य चेतना की रचना का अध्ययन करना नहीं, अपितु चेतना

के कार्य का अध्ययन करना है। यह एक प्रकार से प्रयोगवादी सम्प्रदाय रहा। इस सम्प्रदाय में थार्नडाइक और वुडवर्थ का भी अहम योगदान रहा।

➤ **व्यवहारवाद:**

यह सम्प्रदाय मन और शरीर के संबंध में केवल शारीरिक क्रियाओं को ही महत्त्व देता है। इसने लगभग 'मन' के अस्तित्व को खत्म ही कर दिया है। क्योंकि यह मानते हैं कि 'मन' को देखा नहीं जा सकता। इसलिए उसका कोई अस्तित्व नहीं है। 'इस सम्प्रदाय की स्थापना जे. बी. वाटसन द्वारा 1913 ई. में जॉन होपकिन्स विश्वविद्यालय में की गई। वाटसन का कहना था कि व्यक्ति का व्यवहार उसकी भीतरी व निजी अनुभूतियों पर आधारित नहीं होता। वह अपने माहौल से निर्देशित होता है। मानसिक स्थिति का पता लगाने के लिए किसी बाह्य उत्प्रेरक के प्रति व्यक्ति की अनुक्रिया का प्रेक्षण करना ही काफी है। व्यवहारवादियों का मानना है कि व्यक्ति के किसी भी प्रकार के व्यवहार के लिए उसकी जन्मजात पहलू कोई खास महत्त्व नहीं रखते। व्यक्ति पर्यावरण पहलुओं से ही अपना व्यवहार निश्चित करता है। बी. एफ. स्किनर और इवॉन पैवलव के जानवरों पर किये गये प्रयोगों ने इस सम्प्रदाय को प्रफुल्लित करने में अपना अहम योगदान दिया। पैवलव ने अपने प्रयोगों के आधार पर 'सम्बन्ध अनुक्रिया सिद्धांत' की रचना की जिससे मनोविज्ञान में पुराने चले आ रहे मन अथवा चेतना के अध्ययन की जगह उत्तेजना और अनुक्रिया ने ले ली। जिस कारण मापन और मूल्यांकन का उदय हुआ। इस संप्रदाय ने वस्तुनिष्ठता पर अधिक बल डाला है। इसे मनोविज्ञान का द्वितीय बल कहा गया है।

➤ **गेस्टाल्ट मनोविज्ञान:**

'गेस्टाल्ट' शब्द को हिन्दी भाषा में 'अवयवी' शब्द के रूप में जाना जाता है। जैसे इसका कोई विशेष हिन्दी में अर्थ नहीं है। यह एक जर्मन भाषा का शब्द है जिससे यह सिद्ध हुआ कि इस वाद का जन्म जर्मनी में हुआ। इस सम्प्रदाय की स्थापना मैक्स वरदाइमर द्वारा 1912 में की गयी। यह सम्प्रदाय मुख्य रूप से साहचर्यवाद के विपरीत था जो यह कहते थे कि समस्या को टुकड़ों में देखकर उसका अध्ययन और समाधान करना चाहिए। यह सम्प्रदाय

कहता है कि व्यक्ति को प्रत्येक वस्तु या दृश्य को साधारण परिपेक्ष्य में लेना चाहिए। किसी भी वस्तु को विभिन्न दृष्टियों में देखने की अपेक्षा उसे समग्र रूप में देखना ज्यादा बेहतर है। इन्होंने सिनेमा घरों में चलती फिल्म की उदाहरण देकर बताया कि सिनेमा घरों में हम जो पात्र चलते-फिरते, नाचते, गाते इत्यादि नज़र आते हैं तो दरअसल वह स्थिर होते हैं किन्तु उन्हें पर्दे पर इस तरतीब से फेंका जाता है कि हम उनका समग्र रूप देखकर पात्रों को चलते फिरते देखते हैं और फिल्म का आनन्द लेते हैं।

इस सम्प्रदाय ने मानवीय प्रत्यक्षीकरण की अद्भुत उदाहरण दी। वह कहता है कि जब हम संसार की वस्तुओं को देख रहे होते हैं तो हम केवल उस वस्तु को ही देख पा रहे होते हैं जिसे हम देखना चाह रहे हैं। यह सम्प्रदाय प्रकार्यवाद से अपनी भिन्नता इस प्रकार दर्शाता है कि यह व्यक्ति के व्यवहार के लिए जन्मजात पहलुओं को अधिक महत्त्व देता है। यह बाहरी वातावरण के अपेक्षा आंतरिक अनुभूतियों, सोच इत्यादि को अधिक महत्त्व देता है।

➤ मनोविश्लेषण सम्प्रदायः

सिगमण्ड फ्रायड जो कि जर्मनी के एक मनोचिकित्सक थे, इस सम्प्रदाय के प्रतिपादित थे। दरअसल इस सम्प्रदाय के सिगमण्ड फ्रायड के अलावा उनके शिष्य युंग और एडलर भी थे। किन्तु किन्हीं कारणों से उनके मतभेद होने से इन सभी ने अपने-अपने सिद्धांत बना लिये जो 'विश्लेषणवादी मनोविज्ञान' और 'व्यक्तिगत मनोविज्ञान' के नाम से जाने जाते हैं। इन तीनों के अध्ययन से इनमें बहुत कुछ समानता और कुछ असमानता भी नज़र आती है।

इस सम्प्रदाय में अचेतन मस्तिष्क, लिबिडो, दमन तथा इडिपस ग्रन्थि का विश्लेषण है। यह सम्प्रदाय मन और शरीर के संबंध में 'मन' के अस्तित्व को स्वीकार करता है। चेतन, अर्द्धचेतन तथा अचेतन मन के तीन भाग होते हैं जो मानवीय व्यवहार को सकारात्मक और नकारात्मक तरीके से प्रभावित करते हैं। मुख्य रूप से यह सम्प्रदाय अज्ञात मन की चेष्टाओं का अध्ययन करता है। किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व केवल वह नहीं है जो हमें ऊपरी

भाग अथवा रूप में नज़र आता है। व्यक्ति के मन के अंदर विभिन्न प्रकार की ऐसी क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ मचल रही होती हैं जो वह बाहर उजागर नहीं करना चाहता है। व्यक्ति के मन में उसकी विभिन्न प्रकार की अतृप्त कामनाएँ, इच्छाएँ, भावनाएँ महत्वाकाँक्षाएँ, अभिप्रेरणाएँ अथवा वासनाएँ होती हैं जिन्हें व्यक्ति दबाकर रखना चाहता है। क्योंकि उनकी पूर्ती न होने के कारण वह उसे किसी न किसी रूप में परेशान करती हैं; वह संतुष्ट होना चाहती हैं। दरअसल अचेतन मन ही हमारे व्यवहार को संचालित करता है क्योंकि अचेतन के बदले चेतन मन का भाग तो बहुत ही कम होता है जो हमें दिखाई देता है। किन्तु फिर भी इनमें संघर्ष बरकरार रहता है जिस वजह से मानव विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगों से ग्रस्त हो जाता है।

सिगमंड फ्रायड ने काम तत्वों को मानवीय आचरण में प्रमुख स्थान दिया। इस सम्प्रदाय को मनोविज्ञान का प्रमुख बल कहा गया है।

➤ प्रयोजनवादी सम्प्रदाय:

यह तो ज्ञातव्य ही है कि प्रत्येक सम्प्रदाय के मनोवेज्ञानिकों ने अपनी बुद्धि की विलक्षणता तथा अनुभव के आधार पर मानवीय व्यवहार का समाज में समायोजन के संबंध में अपने-अपने विचार रखे एवं उन्हें सिद्ध करने हेतु विभिन्न सामाजिक संदर्भ की उदाहरणें प्रस्तुत की। प्रयोजनवाद सम्प्रदाय भी उन्हीं की लड़ी को आगे बढ़ाता हुआ अपना पक्ष रखता है। इस सम्प्रदाय का पूरा श्रेय इंग्लैंड के प्रसिद्ध मनोविज्ञानी विलियम मैक्डूगल को जाता है। इन्होंने मनोविज्ञान पर कई महत्त्वपूर्ण किताबें लिखीं। मानवीय व्यवहार में वह सामाजिक संदर्भ में अपने अस्तित्व हेतु अपने जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किसी न किसी प्रयोजन, लक्ष्य अथवा उद्देश्य को ही एक मात्र ऐसा पहलू मानते हैं जो संसार में मानवीय जीवन का आधार बिन्दू है। इस संबंध में डॉ. महावीर प्रसाद गुप्ता और डॉ. ममता गुप्ता अपनी किताब 'शिक्षा मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

“शरीर धारियों (मनुष्य और पशु) का सम्पूर्ण व्यवहार प्रयोजन से युक्त है। दूसरे शब्दों में, व्यवहार निश्चित लक्ष्यों की ओर अग्रसरित होता है। प्राणी जब तक लक्ष्य प्राप्त नहीं कर लेता तब तक बैचेन तथा क्रियाशील

रहता है। वह अपने गन्तव्य तक पहुँचने कि लिए लगातार प्रयासरत रहता। इसे लक्ष्यगामी चेष्टा कहते हैं।” (गुप्ता 46)

कहने का तात्पर्य यह कि संसार का प्रत्येक व्यक्ति यदि समाज में किसी भी प्रकार से कार्यरत है तो उसके पीछे उसका कोई लक्ष्य अथवा ध्येय है जो उसे कार्य करने को अमादा किये हुए है।

विलियम मेकडूगल का मानना है कि व्यक्ति के अंदर कुछ मूल प्रवृत्तियाँ अथवा शक्तियाँ होती हैं जो उसके व्यवहार को संचालित करती हैं और उसे कार्य के लिए प्रेरित करती हैं। प्रत्येक मूल प्रवृत्ति के साथ एक संवेग जुड़ा हुआ होता है और वह शक्ति अथवा प्रवृत्ति व्यक्ति को उस संवेग से संबंधित व्यवहार कराने को ही बाध्य होती है। जैसे दुख की बात से हमें रोना ही आएगा हँसी नहीं। तात्पर्य यह कि प्रत्येक मूल प्रवृत्ति व्यक्ति से केवल वही कार्य करवाती है जो उससे संबंधित संवेग से जुड़ा हुआ होता है। यह मूल प्रवृत्तियाँ प्रत्येक प्राणी चाहे वह मनुष्य हो या पशु, में पायी जाती हैं। प्रत्येक छोटे बच्चे को उसकी माता प्यार करती है। उससे संबंधित अपना वात्सल्य प्रकट करती है फिर चाहे वह आदमी का बच्चा हो या पशु का।

मेकडूगल ने ही सबसे पहले मनोविज्ञान को व्यवहार का विज्ञान कहा। सीखने की प्रक्रिया में इसने अपनी क्रान्तिकारी भूमिका निभाई। अपने इस सम्प्रदाय में उन्होंने इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया है कि मनुष्य सामाजिक व्यवहार क्यों और कैसे सीखता है।

● मनोविज्ञान की विशेषताएँ:

➤ मानवीय व्यवहारों एवं विचारों का अध्ययन:

संसार में भ्रान्ति-भ्रान्ति के लोग रहते हैं और आपसी बोलचाल एवं विचारधारा के कारण सामाजिक व्यवहार का निर्माण करते हैं। मनोविज्ञान एक ऐसा विषय है जिसका कार्य क्षेत्र असल में बहुत विशाल है तथा दिनों-दिन बढ़ता ही जा रहा है। आज कोई भी प्राणी ऐसा नहीं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इससे संबंधित नहीं है। वास्तव में यह समाज में विचरित मानव जाति के आपसी क्रियाकलापों का प्रदर्शन है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति की क्रिया से दूसरे व्यक्ति के कार्य एवं मन-मस्तिष्क पर पड़ने वाले

प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। इसमें मानवीय व्यवहारों को प्रभावित करने वाले सभी कारकों को शामिल किया जाता है और लगातार हो रही क्रियाकलापों को ध्यान में रखते हुए भावी परिणामों के बारे में राय स्थापित की जाती है। इसमें राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक और क्षेत्रीयों कारणों को ध्यान में रखते हुए उनसे पनपने वाले विचारों का अध्ययन किया जाता है।

➤ **प्रयोगात्मक एवं तथ्यात्मक विज्ञानः -**

मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है इसमें कोई भी बात बिना तथ्य के नहीं कही जाती। हर बात को सिद्ध करने कि लिए उसे पहले उसके तथ्यों को इकट्ठा किया जाता है फिर उसका प्रयोगात्मक तरीके से निरीक्षण करके परिणाम निकाले जाते है। पैवलव, स्किनर, क्रो एण्ड क्रो इत्यादि ऐसे कई मनोविज्ञानी हुए हैं जिन्होंने अलग अलग तरीके से अनेक जानवरों पर प्रयोग करके मानवीय व्यवहारों के सुधार के लिए अनेक सिद्धांत बनाये। आज इस विषय का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में, चिकित्सा के क्षेत्र में, सुधार गृह के क्षेत्र इत्यादि में किया जाता है।

➤ **साकारात्मक विज्ञानः -**

मनोविज्ञान केवल मानवीय व्यवहारों के केवल तथ्य या आँकड़े ही इकट्ठे नहीं करता बल्कि उनके सुधार के लिए भी वचनबद्ध होता है। इसके लगातार बढ़ रहे कार्य क्षेत्र में इसकी कितनी ही शाखायें जैसे: - असामान्य मनोविज्ञान, व्यस्क मनोविज्ञान, पशु मनोविज्ञान, चिकित्सा मनोविज्ञान, शिक्षा मनोविज्ञान, समाज मनोविज्ञान, अपराध मनोविज्ञान इत्यादि हैं जो केवल और केवल सुधारात्मक पक्ष में ही अटल है।

➤ **प्रगतिशील विज्ञानः -**

हम सब जानते ही है कि आदि मानव से लेकर आधुनिक मानव तक हमने किस प्रकार तरक्की की है और यह प्रक्रिया आज भी निरंतर जारी है। ठीक उसी प्रकार जैसा कि हमने पहले ही कहा कि यह मानवीय व्यवहारों के अध्ययन का विज्ञान है तो जिस प्रकार मानव जाति तरक्की कर रही है उसी को अध्ययन करता हुआ यह विषय भी प्रगति की राह पर है जिसका

किसी एक बिन्दु पर ठहर जाने का प्रश्न ही नहीं है, बल्कि यह तो अपनी शाखाओं को निरंतर बढ़ाता ही जा रहा है। इसके सामाज मनोविज्ञान की शाखा में आपसी व्यक्तिगत संबंधों से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय तक के अंतः सम्बन्धों के विश्लेषणों का एक साधारण व्यक्ति के जीवन स्तर पर पड़ने वाले सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों का अध्ययन किया जाता है।

कुछ प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों की धारणाएँ:

आदिकाल से लेकर अत्याधुनिक काल में मानवीय व्यवहार पर विभिन्न प्रकार से कार्य होता आया है और निरंतर एवं निर्विघ्न जारी है। जब से मनोविज्ञान ने दर्शनशास्त्र से अलग होकर अपनी अस्मिता कायम की है और एक प्रयोगों के आधार पर एक विशेष विज्ञान का दर्जा हासिल किया है। उसके बाद तो मानवीय मन, उसके व्यवहार के बारे में तो बहुत अच्छे से अध्ययन और कार्य होने लगा है, किन्तु इस पर तो बहुत पहले से ही कार्य होता चला आ रहा है। कुछ प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों की यहाँ पर चर्चा करना वांछनीय है।

• विलियम जेम्सः -

मनोविज्ञानी होने के साथ-साथ एक दार्शनिक होने के अलावा इनके प्रभावशाली कार्य के कारण इन्हें अमेरिकन मनोविज्ञान का पितामा कहा जाता है। इन्होंने मनोविज्ञान के विकास में अपनी अहम भूमिका निभाई। इनके द्वारा लिखी किताब 'मनोविज्ञान के सिद्धांत' ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक मील के पत्थर का कार्य किया है। इन्होंने प्रकार्यवाद की नींव रखी। प्रकार्यवाद के संबंध में अरुण कुमार सिंह अपनी किताब 'मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास' में कहते हैं कि

“आधुनिक मनोविज्ञान में उनकी प्रसिद्धि का मुख्य कारण उनका 'उपयोगितावाद' था जिसकी शुरुआत उन्होंने 1909 में की। यह उनके द्वारा प्रारम्भ किया गया एक महत्त्वपूर्ण आन्दोलन था जो मूलतः इस बात पर जोर डालता था कि किसी ज्ञान की वैधता उसके उपयोगी परिणामों के रूप में जाँची जानी चाहिए। इसके पीछे जो महत्त्वपूर्ण पूर्वकल्पना छिपी थी, वह यह थी कि मनोविज्ञान में प्रकार्य का अध्ययन किया

जाना चाहिए और इसी पूर्वकल्पना में छिपी थी प्रकार्यवाद का बीज। शायद यही कारण है कि विलियम जेम्स को प्रकार्यवाद का एक अग्रदूत माना गया है।” (अरूण 120)

कहने का भाव यह है कि विलियम जेम्स व्यक्ति की चेतना के कार्य और उन कार्यों का शरीर पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन को ही मानते थे। वह संरचनावादियों की तरह चेतना के स्वरूप पर नहीं बल्कि उसकी उपयोगिता पर अधिक बल डालते थे। हालाँकि उनके इस वाद पर चार्ल्स डार्विन के विकासवाद का पूरा प्रभाव पड़ा। मनोविज्ञान के संबंध में वह कहते थे कि ‘मनोविज्ञान मानसिक जिन्दगी की घटना तथा अवस्थाओं दोनों का ही विज्ञान है।’ इनके साथी वुण्ट और टिचेनर के चेतना के संबंध में कुछ मतभेद थे, किन्तु फिर भी वह सभी प्राणी और वातावरण को एक ही मानते थे। जेम्स का मानना था कि मनोविज्ञान प्राकृतिक विज्ञान का एक हिस्सा है। किसी भी व्यक्ति का अध्ययन करने के लिए कुदरती वातावरण को भिन्न नहीं करना चाहिए। वातावरण के सामायोजन के साथ ही व्यक्ति को आँकना चाहिए। इसी के साथ ही वह व्यक्ति के मन तथा शरीर दोनों के अस्तित्व को मानते थे। उनका कहना था कि यह दोनों एक-दूसरे के साथ अन्तः क्रिया करते हैं।

विलियम जेम्स ने बहुत ही कम प्रयोग किये। इन्होंने अन्य मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये प्रयोगों को बड़े ही व्यवस्थित विधि से रखा और उनमें अपनी विचारधारा को रखा। कदाचित् इसलिए अपनी पहली प्रयोगशाला तैयार करवाने के बाद भी इन्हें पहला प्रयोगवादी मनोवैज्ञानिक नहीं माना जाता। यह श्रेय विलियम वुण्ट को ही जाता है, क्योंकि उन्होंने ही प्रयोगशाला स्थापित करने और प्रयोग करने की प्रक्रिया को सही अंजाम दिया। विलियम जेम्स ने चेतना के स्वरूप तथा उसकी प्रक्रिया के संबंध में अपनी पुस्तक ‘प्रिन्सिपल ऑफ साइकोलॉजी’ में बहुत ही अच्छे से वर्णन किया है।

• जॉन लॉक: -

इंग्लैंड के रहने वाले जॉन लॉक एक प्रसिद्ध राजनैति दार्शनिक थे। उनके द्वारा किये गए कार्यों ने आधुनिक मनोविज्ञान पर बहुत ज़्यादा असर

डाला। यूँ भी कह सकते हैं कि आधुनिक मनोविज्ञान की रीढ़ की हड्डी बने। मुख्य रूप से वह एक चिकित्साशास्त्री थे। किन्तु उनकी एक किताब 'एन एस्से कनसरनिंग ह्यूमन अन्डरस्टैंडिंग' ने मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर बहुत गहरा असर डाला। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के अंतर्गत लॉक यह मानते थे कि मनुष्य और समाज का बहुत ही गहरा रिश्ता है। मनुष्य समाज का एक अभिन्न अंग है। मनुष्य के मन में विचार जन्मजात नहीं होते हैं वह समाज में रहकर संबंधित वातावरण के अनुभवों से विचार ग्रहण करता है। अरुण कुमार सिंह अपनी किताब 'मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास' में कहते हैं कि

“लॉक का मत है कि मन निष्क्रिय होता है और मात्र दो तरह की क्रियाएँ करता है। पहला, यह बाह्य वातावरण से अनुभव ग्रहण करता है। बाह्य वातावरण से जब ज्ञानेन्द्रियाँ प्रभावित होती हैं, तो इससे संवेदन उत्पन्न होता है और सभी तरह के ज्ञान का मुख्य स्रोत यही संवेदन ही होता है। अतः विचार की उत्पत्ति का एक प्रमुख स्रोत संवेदन है। दूसरा, मन अपने आप को प्रतिबिम्बित करता है। इस प्रतिबिम्बन जिसका आधुनिक समय में उपयुक्त अर्थ अन्तर्निरीक्षण होगा, द्वारा व्यक्ति चिन्तन कर पाता है और उससे मन में विचार उत्पन्न हो पाते हैं। इसे आन्तरिक ज्ञान का सिद्धांत कहा गया। इस तरह लॉक के अनुसार विचार की उत्पत्ति के दो स्रोत होते हैं-संवेदन एवं प्रतिबिम्बन।” (अरुण 29)

लॉक ने समाज में संतुलन बनाये रखने एवं मनुष्य की उसमें अस्मिता की रक्षा हेतु सामाजिक समझौता सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इस समझौते के अनुसार व्यक्ति और समाज में दो प्रकार के समझौते होते हैं। एक तो मानव का मानव से और दूसरा मानव का शासक के बीच। पहले समझौते से समाज का निर्माण होता है और दूसरे समझौते से समाज को विधिवत् चलाने हेतु एक क्रिया प्रणाली का निर्माण होता है जिसे सरकार कहा जाता है। लॉक के अनुसार समाज और सरकार में अंतर होता है जिससे लोग सरकार के विरोध में विद्रोह करने का हक पाते हैं यदि वह ठीक से कार्य न करने में समर्थ न

हो तो। हालाँकि उनके इस सिद्धांत की बहुत सी अन्य बातों पर बहुत से विद्वानों ने विरोध भी जताया। सामाजिक और राजनैतिक संबंध में उन्होंने अपनी किताब 'टू ट्रीटाइजेज़ ऑफ गवर्नमेंट' में अपने विचार लिखे। जो समाज मनोविज्ञान का आधार बने। वह मनुष्य के नैसर्गिक अधिकारों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं संपत्ति के अधिकारों को शामिल करते हैं।

● **सिगमंड फ्रायडः -**

मनोविज्ञान जगत में सिगमंड फ्रायड एक ऐसी मनोवैज्ञानिक के रूप में उभरे जिन्होंने अपने अध्ययन, कार्यों एवं खोजों से मनोविज्ञान एवं मानव जाति को बड़े ही विलक्षण ढंग से प्रभावित किया। मुख्य रूप से यह चिकित्सा शास्त्री थे। तंत्रिका विज्ञान में इन्हें विशेष दिलचस्पी थी। शुरुआती दौर में इन्होंने हिस्ट्रीया पर एक लेख लिखा जो बहुत ही चर्चा का विषय बना, किन्तु उस से संबंधित कार्य करने पर इन्हें बहुत सी नई बातों का पता चला कि व्यक्ति जो भी कार्य करता है वह केवल अपनी चेतना के कारण ही नहीं बल्कि उससे कहीं ज्यादा कार्य तो वह अपने अचेतन मन के कारण करता है। इस संबंध में अरुण कुमार अपनी किताब 'मनोविज्ञान के इतिहास एवं सम्प्रदाय' में कहते हैं कि

“फ्रायड के अनुसार अचेतन मन का सबसे बड़ा हिस्सा होता है। इसमें वे सारे मानसिक तत्व होते हैं जो चेतन में नहीं आ पाते हैं या बड़ी कठिनाई से चेतन में आ पाते हैं। इसमें बाल्यकाल की इच्छाएँ, लैंगिक इच्छाएँ, तथा मानसिक संघर्ष आदि से संबंधित इच्छाएँ होती हैं जिन्हें सामान्यतः व्यक्ति अपने दिन प्रतिदिन की जिन्दगी में पूरा नहीं कर सकता।” (अरुण 248)

उन्होंने व्यक्तित्व के तीन भाग उपाह, अहं तथा पराहं के बारे में भी जानकारी दी। व्यक्तित्व के इन तीन भागों एवं अचेतन की क्रियाशीलता ने तो मनोविज्ञान में एक नई क्रान्ति ही ला दी थी। इसी के साथ ही इन्होंने स्वप्नों के विश्लेषण पर भी बहुत अच्छा कार्य किया। स्वप्नों के संबंध में इनकी बहुत ही महत्वपूर्ण किताब 'इन्टरप्रटेसन ऑफ ड्रीम्स' 1900 में प्रकाशित हुई। इन्होंने मानवीय जाति से अचानक होने वाली गलतियों के संबंध में भी बहुत ही

अच्छे से वर्णन किया। सोते समय आने वाले स्वप्नों एवं अचानक होने वाली गलतियों के पीछे इन्होंने अध्ययन एवं प्रयोग कर बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं स्टीक उदाहरणें प्रस्तुत की जिससे मानवीय मन के अचेतन भाग की बहुत सी गुत्थियाँ सुलझी।

मानवीय जीवन का समाज में अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए इन्होंने 'काम शक्ति' को अहम माना। उन्होंने इसे 'लिबिडो' का नाम दिया। हालाँकि बहुत से विद्वानों ने उनके इस तथ्य को नकारा भी। किन्तु फिर भी यह काफी हद तक कायम और कामयाब रहा। इस संबंध में डॉ. महावी प्रसाद गुप्ता और डॉ. ममता गुप्ता अपनी किताब 'शिक्षा मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

“लिबिडो उन समस्त प्रवृत्तियों के शक्ति प्रदान करती है जो प्रेम के व्यपार, आनन्द की प्राप्ति, अनुभूति और प्रकाशन से संबंधित है। यह काम प्रवृत्ति से अधिक व्यापक है। प्रेम के सभी रूप एवं भाव-मिश्रता, स्नेह, आत्मप्रेम, वात्सल्य, सहानुभूति, कामुकता आदि लिबिडो से उत्पन्न हैं, एवं इसी में ही निहित हैं। लिबिडो शक्ति शरीर के सभी अवयवों में आजीवन व्याप्त रहती है। अचेतन मन में छिपे हुए सभी विचार भावनाएँ और आवेग, काम सम्बन्धित रहते हैं, क्योंकि लिबिडो प्रेरणाओं का मूल स्थान अचेतन मन है।” (गुप्ता 51)

फ्रायड ने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति काम शक्ति का शिकार है। जो भी व्यक्ति इसका खुलकर प्रयोग या इस्तेमाल कर लेते हैं वह संतुष्ट हो जाते हैं और जो लोग इसे दमित कर देते हैं वह किसी न किसी प्रकार के मानसिक रोग के शिकार हो जाते हैं और उनके व्यवहार में असामान्यता आ जाती है।

● **कार्ल गुतसव युंगः -**

सिगमंड फ्रायड के बहुत ही नजदीक रहे कार्ल युंग ने भी मानवीय व्यवहार और उसके समाज में अपना अस्तित्व कायम रखने के मकसद को अपने अध्ययन, प्रयोग एवं विचारधारा के अनुसार दर्शाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। फ्रायड और युंग ने मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मनोविश्लेषणवाद का गठन किया और इसके माध्यम से मानवीय व्यक्तित्व के स्वरूप एवं विकास पर गहन अध्ययन और महत्त्वपूर्ण प्रयोगों के माध्यम से सराहनीय कार्य किये।

किन्तु दोनों व्यक्तिगत जीवन और पालन-पोषण के आधार से इनकी आपसी विचारों में अंतर आ गया और एक दूसरे से अलग होकर अपना-अपना कार्य करने लगे। जबकि इससे पहले दोनों ने कई वर्षों तक एक साथ काम किया।

कार्ल गुतसव युंग के सिगमंड फ्रायड से अलग होने के तीन मुख्य बिन्दु थे। एक तो यह कि फ्रायड ने 'काम प्रवृत्ति' को मानवीय जीवन का अभिन्न अंग माना जबकि युंग इससे पूरी तरह सहमत नहीं थे। दूसरा यह कि फ्रायड ने बीते समय को मानवीय व्यक्तित्व में अहम स्थान दिया जबकि युंग ने अतीत के साथ-साथ भविष्य को भी व्यक्तित्व का अभिन्न अंग माना। तीसरा यह कि युंग ने फ्रायड के मुकाबले अचेतन मन पर बहुत ही अच्छे से काम किया। यह तीनों ही कारण उन दोनों के मतभेद का कारण बनें।

कार्ल गुतसव युंग ने अपना सिद्धांत 'विश्लेषणात्मक सिद्धांत' के नाम से दिया। इन्होंने मानवीय व्यक्तित्व को दो भागों में विभाजित किया। एक तो मनोवृत्ति तथा दूसरा कार्य। मनोवृत्ति के दो भाग अन्तर्मुखता और बहिर्मुखता बताये। कार्य के चार भाग चिन्तन, भाव, ज्ञान और अंतर्ज्ञान बताये। यह सभी भाग व्यक्ति के चेतन और अचेतन दोनों ही स्तरों पर कार्य करते हैं। इस संबंध में डॉ. महावी प्रसाद गुप्ता और डॉ. ममता गुप्ता अपनी किताब 'शिक्षा मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

“जुंग के अनुसार अज्ञात चेतना, ज्ञात चेतना की क्षतिपूरक है। यदि कोई व्यक्ति ज्ञात चेतना में डरपोक है तो अज्ञात चेतना में वीर और साहसी हो सकता है। अज्ञात चेतना केवल बुरी बातों को शरणालय नहीं है इसमें अच्छी बुरी दोनों प्रकार की बातें निहित रहती हैं क्योंकि हम कभी-कभी अच्छी भावनाओं का भी अवदमन कर देते हैं। इसके अतिरिक्त जातीय स्मृति भी अज्ञात चेतना का अंग होती है। अतः स्पष्ट है कि जुंग के विचार फ्रायड तथा एडलर की अपेक्षा अधिक दार्शनिक हैं।” (गुप्ता 53)

कहने का तात्पर्य यह कि युंग ने अचेतन मन पर बेहतररीन कार्य कर मानवीय व्यक्तित्व की बहुत सी गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास किया।

● **अलफ्रेड एडलर: -**

एडलर भी सिगमंड फ्रायड के बहुत अच्छे दोस्त थे। एडलर बचपन में काफी बीमार हो गए थे। यह बीमारी ही इनके लिए प्रेरणा का कारण बनी और इन्होंने डॉक्टर बनने का फैसला किया। अपनी विलक्षण बुद्धि के कारण यह डॉ. बन पाये और 'मनश्चिकित्सक' को अपना पेशा बनाया। फ्रायड के कार्य से यह बहुत प्रभावित थे। उनके बुलाने पर वह उनकी संस्था के एक जिम्मेदार सदस्य बने और कई वर्षों तक कार्य करते रहे। फिर अपने सैद्धान्तिक मतभेद के कारण यह उनसे अलग हो गये और अपना एक नया संघ 'सोसाइटी फॉर इन्डीविडुयल साइकोलॉजी' का निर्माण किया।

मानवीय व्यक्तित्व के स्वरूप के संबंध में इन्होंने अपना एक अलग ही सिद्धांत पेश किया। इसके लिए इन्होंने अपने सिद्धांत को छह भागों अथवा सम्प्रत्ययों में विभाजित कर मानवीय व्यक्तित्व के लक्षण रखे। इनमें से सबसे पहला है 'व्यक्तित्व एकता'। इसमें इन्होंने वर्णन किया है कि व्यक्ति के अंदर जो भी चेतन, अचेतन, भाव, संवेग इत्यादि गुण अथवा पहलू मौजूद हैं, वह सभी मिलकर व्यक्ति के निर्धारित किये गये लक्ष्य अथवा ध्येय में अपना पूरा सहयोग देते हैं। दूसरा है 'प्रत्यक्षण की आत्मनिष्ठा'। इसके अनुसार एडलर बताते हैं कि व्यक्तित्व के निर्माण में बाह्य कारकों की अपेक्षा व्यक्ति के आंतरिक गुण अथवा विचार ही उसकी मदद करते हैं। जैसे व्यक्ति के अपने मौलिक विचार होंगे, व्यक्ति का व्यक्तित्व भी वैसा ही होगा। यह सभी विचार अतीत की अपेक्षा भविष्य पर आधारित होते हैं।

'श्रेष्ठता की चाह' इन्होंने अपना तीसरा सम्प्रत्यय बताया। इसमें वह कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति में आगे बढ़ने की चाह होती है। आगे बढ़ने की चाह किसी भी व्यक्ति में तब पैदा होती है जब उससे संबंधित किसी प्रकार की क्षति अथवा हीनता का भाव उसे परेशान करता है। 'हीनता का भाव' ही व्यक्ति के लिए प्रेरणा का स्रोत बन जाता है। उसके बाद उन्होंने 'सामाजिक अभिरुचि' नामक सम्प्रत्यय को व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक बताया। इस पहलू में वह कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। इसमें रहते हुए उसे विभिन्न प्रकार के उत्तरदायित्व निभाने होते हैं। घर में वह एक पिता,

भाई, पति इत्यादि की भूमिका निभाता है। स्कूल में अध्यापक, विद्यार्थी, चपरासी इत्यादि का रोल निभाता है। कहने का तात्पर्य यह कि समाज के प्रत्येक हिस्से में वह अपनी विशेष भूमिका निभाता है। किसी में वह सफलता पाता है और किसी में असफल भी हो जाता है। यह उसके सामाजिक अन्तः क्रियाओं के आधार पर निर्भर करता है। इसी के आधार पर उसके व्यक्तित्व में निखार आता है।

व्यक्तित्व के स्वरूप हेतु इन्होंने 'जीवन शैली' को महत्त्वपूर्ण बताया। इसके बारे में यह कहते हैं कि व्यक्तित्व हेतु 'अहं' अनिवार्य एवं महत्त्वपूर्ण है। अरुण कुमार अपनी किताब 'मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास' में कहते हैं कि

“एडलर ने स्पष्ट किया कि इसमें उपाह एवं पराह जैसे कारक सम्मिलित नहीं होते हैं। इससे उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व तथा साथ-ही-साथ उनके अनोखे मनोवृत्ति का ज्ञान होता है। जीवन शैली का निर्माण चार या पाँच साल की आयु तक हो जाती है। जीवन शैली का एक बार निर्माण हो जाने के बाद सामान्यतः उसमें परिवर्तन नहीं होता है।” (अरुण 257)

अपने छोटे सम्प्रत्यय में इन्होंने 'सृजनात्मक शक्ति' को व्यक्तित्व की रचना में अहम भूमिका दी। प्रत्येक व्यक्ति में वर्तमान समय में जो भी गुण अथवा सामाजिक स्थिति है, वह उससे सामाजिक संदर्भ में अपने ध्येय प्रति अपनी सृजनात्मक गुण के कारण उसमें बढ़ोतरी चाहता है और वह इसमें निरंतर संलग्न रहता है।

• ऑगस्ट कॉमटे: -

ऑगस्ट कॉमटे एक फ्रांसीसी विद्वान थे। इन्होंने समाज को समझने व उसे सिद्धांतक रूप देने के लिए अपना भरपूर सहयोग दिया। इससे पहले भी अन्य विद्वानों ने सामाजिक संदर्भ के विषय 'सामजशास्त्र' के बारे में अपने विचार रखे थे, किन्तु 'समाजशास्त्र' को एक पूर्ण विषय बनाने, उसका अध्ययन करने तथा उसका आधार बनाने के कार्य के कारण इन्हें समाजशास्त्र का पिता कहा जाने लगा। इस विषय के प्रति कॉमटे की रुचि इस प्रकार थी कि इन्होंने इस के बारे में अध्ययन कर अपने विचारों को 'कॉर्स इन पॉज़ीटिव

फिलॉसफी और सिस्टम ऑव पॉज़ीटिव पॉलीटीक' नामक किताबें लिख कर समाज के सम्मुख किया।

अन्य देशों में घटित हो रही विभिन्न प्रकार की घटनाओं एवं आन्दोलनों ने कॉमटे को यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि समाज को कैसे पुनर्गठित किया जाए। इस कार्य का शाश्वत् बनाने के मकसद से कौन-कौन से नियम बनाये जायें ताकि समाज एक व्यवस्थित संस्था का स्वरूप धारण कर सके। उन्होंने अपने अध्ययन के आधार पर तीन प्रकार के नियम बनाये जो समाज को एक समन्यवाद स्थिति में बनाये रखने में अपनी भूमिका निभाते थे। इसे इनका त्रिस्तीर सिद्धांत कहते हैं। इन्होंने इसे तीन भागों धार्मिक स्तर, तात्विक स्तर और प्रत्यक्षवादी स्तर में विभाजित किया। धार्मिक स्तर में वह कहते हैं कि प्रत्येक घटना के पीछे कोई न कोई धार्मिक अथवा रहस्यमयी शक्ति का वास होता है। बहुत से लोग इसे भूत प्रेत का कारण मानते हैं, किन्तु अन्य इन घटनाओं को पीछे परमात्मा के एक रूप को ही मानते हैं।

दूसरे स्तर में वह कहते हैं कि यह तो सत्य है कि प्रत्येक घटना के पीछे आलौकिक शक्ति है, किन्तु यह शक्ति प्रत्येक मानव में समाहित है जिस कारण हम उनका मानवीयकरण कर सामाजिक संदर्भ में उसे देखते हैं। इसे तत्ववाद के नाम से जाना गया। इसमें भौतिकवाद का बोलबाला अधिक रहा। तीसरे स्तर में वह कहते हैं कि प्रत्येक घटना के पीछे कुछ न कुछ कारण होते हैं और उसका एक परिणाम भी निश्चित होता है। इसमें तर्क शक्ति का समावेश होता है। प्रत्येक व्यक्ति घटित हो रही घटना के पीछे अपना दिमाग लगाता है; उसके कारण जानने की कोशिश करता है। घटना के घटित होने के पश्चात् हम उसके कार्य-कारण-संबंध के बारे में चर्चा करते हैं। इसे प्रत्यक्षवाद के नाम से जाना गया। दरअसल प्रत्यक्षवाद एक प्रकार की पद्धति है जिससे किसी घटना की सार्वभौमिक व्याख्या संभव है। ऐसा उन्होंने समाजशास्त्र को वैज्ञानिक स्तर के माध्यम से आगे ले जाने के लिए किया।

समाजशास्त्र के अलावा अन्य विज्ञानों के संबंध में उन्होंने एक लड़ी के रूप में उन्हें उनकी प्रतिबद्धता एवं एक दूसरे पर आश्रित होने के मद्देनजर

रखा। पहले उन्होंने गणित को फिर खगोल, फिर भौतिक विज्ञान, फिर रसायन विज्ञान, फिर जीव विज्ञान और अंत में समाज विज्ञान को रखा।

• **मैक्स वेबर:** -

वेबर जर्मनी के एक प्रसिद्ध समाजशास्त्री थे। संतुलित पारिवारिक परिवेश के कारण इनका शिक्षा प्राप्ति के क्षेत्र में इनको विशेष सहयोग और अवसर मिले जिस कारण यह कानून, राजनीति, इतिहास, अर्थशास्त्र, धर्म इत्यादि के क्षेत्र में अच्छा अध्ययन और कार्य कर पाये। मैक्स वेबर ने अपने अध्ययन के आधार पर समाज शास्त्र के प्रत्यक्षवाद का घोर खंडन किया। वह इस बात से सर्वथा भिन्न थे कि समाजशास्त्र को वैज्ञानिक पद्धति से आगे ले जाया जा सकता है।

मैक्स वेबर ने समाज शास्त्र के संबंध में अपने अध्ययन, विचारों एवं प्रयोगों के आधार पर पाँच सिद्धांत दिये जिन्होंने समाज शास्त्र के स्वरूप की बहुत ही अच्छे से व्याख्या की जिस कारण इन्हें व्याख्यात्मक समाज शास्त्र का पितामा कहा जाता है। अपने सिद्धांतों में इन्होंने पहला सिद्धांत 'सामाजिक क्रिया' का सिद्धांत दिया। इसमें इन्होंने वर्णन किया कि सामाजिक क्रिया क्या और कैसे होती है और उसके घटित होने के लिए कौन-कौन से कारक जिम्मेदार हैं। उनका दूसरा सिद्धांत 'आदर्श प्रारूप' है जिसमें यह कहते हैं कि समाज की घटनाओं को समझने के लिए हम अपने दिमाग में किसी के भी कुछ अच्छे गुणों एवं सिद्धांतों के आधार पर एक संकल्पना तैयार कर लेते हैं और उसी के आधार पर आगे समाज में विचरित होते हैं। तीसरा सिद्धांत शक्ति और सत्ता के रूप में प्रस्तुत कर कहते हैं कि यह समाज और उसकी प्रक्रिया को प्रभावित और संचालित करते हैं। चौथा सिद्धांत नौकरशाही के संबंध में कहते हैं कि यह एक तार्किक शासन प्रणाली का एक हिस्सा है जिसके अधीन देश अथवा राज्य के आदेशों के पालन हित सामाजिक संदर्भ में कार्य किये जाते हैं। पांचवा सिद्धांत ईसाई नीतिशास्त्र और पूंजीवाद की भावना है। इसमें वह अपने स्तर पर छह विभिन्न प्रकार के धर्मों का अध्ययन किया और ईसाई धर्म के कारण पैदा हुए पूंजीवाद अथवा पूंजीवाद के कारण पैदा हुए

ईसाई धर्म के बारे में चर्चा करते हैं और साथ ही उस धर्म के कारण समाज में आए बदलाव की बात करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जितने भी पुरातन दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक हुए उन्होंने अपने अध्ययन एवं प्रयोगों को सामाजिक संदर्भों के अधीन कार्यान्वित किया और समाज के कल्याण हेतु अपने सिद्धांत एवं विचारधारा को लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया। वर्तमान में भी बदलते सामाजिक एवं मानसिक हालातों के मद्देनजर इस पर आधुनिक विद्वानों के माध्यमों से कार्य निरंतर चलन में है।

1.3 अब्दुल बिरिस्मिल्लाह: व्यक्तित्व एवं कृतित्व

समाज में किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके द्वारा किसी भी सामाजिक कार्य क्षेत्र में किए गए असाधारण, अमूल्य एवं बेहतरीन कार्य तथा उसकी कार्यशैली के उपर आधारित होता है। इतिहास इस बात का गवाह रहा है कि जिस किसी भी व्यक्ति का नाम आज के संदर्भ में साकारात्मक एवं प्रेरणा के रूप में याद किया जाता है तो इसका अर्थ ही यह होता है कि उस व्यक्ति ने चाहे थोड़ा ही सही। किन्तु सामाजिक कल्याण हेतु अपना पूर्ण योगदान दिया है। यह बात संसार के सभी पहलुओं पर उन सभी महान विभूतियों पर लागू होती है।

साहित्य भी संसार के समाज में विद्यमान व्यक्तियों के जीवन का एक अभिन्न अंग रहा है। साहित्य ही एक ऐसा कारक है जिससे व्यक्ति अपनी भावाभिव्यक्ति के माध्यम से आत्मिक संतुष्टि प्राप्त करने की कोशिश करता है। साहित्य में वह सभी साहित्यकार, लेखक, कवि इत्यादि महान विभूतियाँ एक प्रकार से समाज सुधारक रहे हैं जिन्होंने समाज को उसी के छिपे हुए रूप को आईना दिखाने का साहसिक एवं महत्वपूर्ण कार्य किया। अब्दुल बिरिस्मिल्लाह भी आधुनिक युग के ऐसे ही साहित्यकार रहे हैं जिन्होंने अपने संघर्षमयी जीवन का आधार ही लेखनी को बनाया और बाल्यकाल से आज तक निर्विघ्न इस पर कार्य कर रहे हैं।

➤ जन्म:

अब्दुल बिस्मिल्लाह का जन्म उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जिले के बलापुर गाँव में 05.07.1949 को बहुत ही साधारण परिवार में हुआ। इनके पिता जी का नाम वली महम्मद और माता जी का नाम करीमन-बी था। धार्मिक प्रवृत्ति होने के कारण इनके पिता जी को पढ़ने का शौक था। उन्हें अपने जमाने का अरबी, ऊर्दू और फारसी भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। घर में जैसा माहौल होता है। उसका असर उस परिवार में पल रहे बच्चों पर अवश्य पड़ता है। यही हाल अब्दुल बिस्मिल्लाह जी के साथ हुआ। इनके पिता की मनोवृत्ति का असर इन पर भी हुआ। और बचपन से ही आपकी रुचि पढ़ाई में होने लगी। जन्म के कुछ सालों बाद ही पहले इनकी माता जी का देहांत हो गया और उसके लगभग एक वर्ष पश्चात् इनके पिता जी स्वर्ग सिधार गये। आर्थिक हालात कोई खास अच्छी न होने के कारण इनका जीवन समस्याओं से भरपूर रहा। बचपन में ही अनाथ होने का दुख इनके सिवा कोई नहीं जान सकता।

अपने शब्दों में लेखक स्वयं बताते हैं कि जब उनके पिता जी की मृत्यु हुई तो ऐसा लगा कि मानों सब कुछ ही खत्म हो गया है। जीवन का कोई औचित्य ही नहीं रह गया है। अपनी रोज़ी रोटी के लिए उन्होंने मजदूरी जैसे वह सभी कार्य किये जो उन्होंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था। क्योंकि रोज़ी रोटी के साथ-साथ पढ़ना भी उनके लिए उतना ही जरूरी था।

➤ शिक्षा:

लेखक की प्राथमिक शिक्षा माण्डला जिले में ही हुई। उसके बाद इलाहाबाद विश्वविद्यालय से आपने एम.ए. हिन्दी साहित्य तथा डी.फिल. किया। शिक्षा प्राप्ति के संबंध में इनके साथ बड़े ही विचित्र प्रसंग हैं जो उस समय तो सिवाय दुख और निराशा के कुछ नहीं देते थे। आज भी याद करने पर बेचैन कर देते हैं।

शोध-कार्य के दौरान लेखक से हुई वार्तालाप के दौरान उनकी शिक्षा के संबंध में जब बात चली तो उन्होंने बताया कि “में इस बात से बहुत ही

ज्यादा परेशान था कि चूँकि मैं एक मुस्लिम धर्म से संबंध रखने के कारण मुसलमान हूँ। यह बात भारत जैसे देश में रहते हुए झेलना अत्यंत कष्टदायी है। इस देश के मध्यवर्ती राज्यों में तो यह इतनी भयंकर बीमारी के रूप में फैल चुकी है कि रहना भी मुश्किल हो जाता है। लेखक स्वयं बताते हैं कि प्राथमिक शिक्षा से ही मुझे हिन्दी विषय में दिलचस्पी थी तो कॉलेज स्तर में भी मैंने उसे में अपनी पढ़ाई शुरू की। हैरानी की बात देखिए कि मेरे मुस्लिम होने के कारण हिन्दी पढ़ते देख लोग मुझसे खरफा थे। अप्रत्यक्ष रूप से वह मुझे ताना देते थे कि तुम तो मुसलमान हो हिन्दी क्यों पढ़ते हो? तुम्हें तो उर्दू पढ़ना चाहिए। यह बात सुन मैं झल्ला जाता था कि भाषा का धर्म से क्या लेना देना है। भाषा तो केवल भाषा है; भावाभिव्यक्ति का एक मात्र साधन है। इस पर कोई रोक-टोक अथवा बंधन कैसे लगा सकता है? हद तो तब हो गयी जब कॉलेज में मैंने हिन्दी भाषा पढ़ने के लिए प्रपत्र भरा और कक्षा में बैठ गया। हमारे एक हिन्दू प्राध्यापक ने मुझे हिन्दी पढ़ाने से मना कर दिया। बोले, तुम तो मुसलमान हो। तुम उर्दू क्यों नहीं पढ़ते?

बाल्यकाल में यदि धर्म एवं भाषा के नाम पर ऐसे मतभेद का हमें सामना करना पड़े तो निश्चित रूप से ही हम नकारात्मक रूप से प्रभावित होंगे। यही हाल अब्दुल बिरिस्मल्लाह जी का हुआ। इस प्रसंग से वह बुरी तरह टूट पड़े थे। किन्तु फिर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और किसी न किसी न किसी प्रकार से हिन्दी की कक्षा में बैठने के लिए उन्होंने उस प्राध्यापक को मना लिया था। किन्तु ऐसे प्रसंग समाजिक वातावरण के लिए सदैव खतरनाक एवं नुकसानदेय ही होते हैं।

लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह ने वार्तालाप के दौरान आगे अपनी पढ़ाई के संबंध में अपनी आर्थिकता एवं गरीबी से संबंधित जोड़ते हुए बताया कि गरीबी बहुत बड़ी प्राकृतिक आपदा है। इससे आप बहुत जल्दी छुटकारा नहीं पा सकते हैं। इससे छुटकारा पाने के लिए ताउम्र कठिनाइयों में ही बीत जाती है। लेखक बताते हैं कि उन्हें हिन्दी साहित्य और मनोविज्ञान पढ़ने का शौक था। एक बार अपने मित्र के साथ मनोविज्ञान की प्रयोगी परीक्षा देने के लिए विषय

के रूप में मैं उसके साथ गया तो उस प्रयोगी परीक्षा के सारे प्रश्नों के उत्तर मैंने स्वाभाविक ही दे दिये तो परीक्षक ने मुझे अपने पास बुलाया और कहने लगे कि तुम्हें मनोविज्ञान का इतना ज्ञान है तो तुम इसे आगे क्यों नहीं पढ़ते तो मैंने उन्हें बताया कि इस विषय को मैंने इण्टरमीडियट तक ही पढ़ा है। आगे भी पढ़ने की इच्छा है किन्तु इसकी प्रयोगी परीक्षा देने के पैसे न होने के कारण मैं इसे आगे नहीं ले सकता।

कहने का भाव यह कि इस प्रकार की सभी बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि अब्दुल बिरिस्मल्लाह को पढ़ने में बेहद रुचि रही है। किन्तु पैर-पैर पर उन्हें अपनी आर्थिकता से जूझना पड़ रहा था।

धर्म एवं भाषा के क्षेत्र में इतनी विसंगति होने पर भी लेखक का हिन्दी भाषा में अध्ययन एवं अध्यापन कराना अपने आप में साहसिक कार्य एवं विपरीत हालातों में जूझने की झलक दिखलाता है।

➤ व्यवसाय:

समान में प्रत्येक व्यक्ति को अपना जीवन यापन करने हेतु कोई न कोई कार्य अथवा व्यवसाय करना होता है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो अपने अस्तित्व को ज़्यादा दिनों तक नहीं चला पाएगा, खत्म हो जाएगा। अब्दुल बिरिस्मल्लाह के जीवन के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ। जैसा कि विगत भी इस बात का वर्णन किया जा चुका है कि उनका जीवन बचपन से ही संघर्षमयी रहा है। अनाथ बच्चों को बचपन कैसा होता है? यह बात शब्दों में कहना भी होसले की माँग करता है और जिसने बिताया हो, उसके सिवा कोई नहीं जान सकता। ऐसे हालात में विश्वविद्यालय के शिखर तक पहुँचना स्वयं ही स्पष्ट कर देता है कि हिम्मत एवं होसला क्या होता है। कारखाने में बीड़ियाँ बनाने से लेकर विदेशों में एसोसिएट प्रोफेसर तक के सफर में जितने भी जीविका चलाने के कार्य हो सकते हैं। लगभग वह सभी कार्यों में से लेखक ने स्वयं को गुजारा। विभिन्न प्रकार के ताने सहे। सामाजिक कुरीतियों को अपने उपर लिया। किन्तु कभी भी हाताश नहीं हुए। अध्ययन मनन का कार्य निर्विघ्न मन में संजोए रखा और आज लगभग तीस वर्षों तक के

विश्वविद्यालय के अध्ययन अध्यापन के कार्य से सेवा निवृत्त होकर दिल्ली में साहित्य की सेवा में संलग्न हैं।

➤ साहित्यिक दृष्टिकोण:

किसी भी सामाजिक कार्य क्षेत्र के अंतर्गत कोई भी ऐसा कार्य जो मानवीय कल्याण के साथ-साथ स्वयं को मानसिक संतुष्टि भी देता हो, सदेव ही सराहनीय रहा है और रहेगा भी। अब्दुल बिस्मिल्लाह भी ऐसी ही प्रवृत्ति के व्यक्ति रहे हैं। उनके कथा-साहित्य के अध्ययन के दौरान तथा उनके साथ हुई वार्तालाप के दौरान दो बातें निकल कर बाहर आती हुई नज़र आई हैं। एक तो यह कि अपने संघर्षमयी जीवन में उन्होंने जिस प्रकार की भी सामाजिक कुरीतियों को अपने उपर सहन किया और किसी को कह नहीं पाये; बता नहीं पाये। जिस कारण बहुत सी बातें कदाचित् उनके मन में दमित हालत में पड़ी रही। उनको बाहर निकालने का, अपनी भावाभिव्यक्ति को प्रस्तुत करने का केवल एक ही माध्यम किसी भी विधा के जरिए साहित्य रचना ही रह जाता है जो लेखक ने अपनाया।

दूसरा यह कि जिस प्रकार के सामाजिक हालात रहे हैं जिनमें धर्म एवं भाषा जैसे मुद्दों पर भी संकुचित सोच जैसे लोग एक दूसरे को बहका रहे हैं; उनमें मतभेद पैदा कर रहे हैं। और भी विभिन्न प्रकार की असामाजिक अवधारणाएँ पदा कर रहे हैं। उन जैसे लोगों से गरीब, शोषित, दलित, अनपढ़ एवं मेहनतकश लोगों को बचाना। लेखक के कथा साहित्य के अध्ययन से इन दोनों प्रकार की बातों का स्पष्ट एवं बाखूबी वर्णन हमें मिलता है।

साहित्य रचना कोई रटने वाली अथवा सीखी सिखाई जाने वाली प्रक्रिया का हिस्सा नहीं है। यह तो एक कोमल हृदय की भावविभोर अभिव्यंजनात्मक भावाभिव्यक्ति है जो स्वयं ही मन की अथाह गहराइयों में से निकलती है। लेखक ने अपनी रचनाओं के माध्यम से यही बताने की कोशिश की है। आज के मशीनी एवं कम्प्यूटर के दौर में वह साहित्य के प्रति चिंतित भी हैं। अपने नजदीकि समय में प्रकाशित हुए 'रावी लिखता है' नामक उपन्यास में उन्होंने इस बात को बड़े ही स्पष्ट तरीके से रखा है। वह अपने

जमाने के लोगों एवं आज की पीढ़ी के अंतराल में साहित्य को पीछे छोड़ता हुआ पा रहे हैं। यदि इस पर कोई कार्य हो भी रहा है तो वह साहित्यिक दृष्टि से अधुरा एवं खोखला सा ज्ञान पडा हुआ मानते हैं।

वह एक सकारात्मक दृष्टिकोण वाले प्रगतिशील लेखक रहे हैं। उनका मानना है कि साहित्य तभी साहित्य है यदि वह सामाजिक कल्याण में अपनी विशेष भूमिका अदा करता है। अब्दुल बिरिमल्लाह का दृष्टिकोण भी इसी प्रकार का ही रहा। वह समाज में से गली सड़ी परम्पराओं अथवा मान्यताओं को निकाल फेंक देने पर अमादा हैं। वह एक प्रकार से सिस्टम को बदल देने में अपना पूर्ण सहयोग देने में राजी हैं। वह अन्य को भी इसी दृष्टिकोण को अपनाए रखने में लालायित देखना चाहते हैं। केवल यथार्थ चित्रण को चित्रित करना वह साहित्य नहीं मानते।

उनके द्वारा रचित रचनाओं का विवरण निम्नलिखित है।

उपन्यासः -

अभी तक उनके सात उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। जो हमें गाँवों के निहायत ही दरिद्रता भरपूर हालात से लेकर विदेशों के मनमोहक दृश्यों से अवगत कराते हुए नज़र आते हैं।

1. 'समर शेष है' — 1984 में प्रकाशित
2. 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' — 1986 में प्रकाशित
3. 'जहरवाद' — 1987 में प्रकाशित
- 4 'दंतकथा' — 1990 में प्रकाशित
- 5 'मुखड़ा क्या देखें' — 1996 में प्रकाशित
- 6 'अपवित्र आख्यान' — 2008 में प्रकाशित
- 7 'रवी लिखता है' — 2010 में प्रकाशित

उपन्यासों के क्षेत्र में जब उनसे वार्तालाप के दौरान बात चली कि 2010 से 2018 तक के समय के लम्बे अंतराल में कोई रचना क्यों नहीं आई? तो उनका उत्तर था कि अभी मन की गहराइयों में विचार पल रहे हैं। समय आने पर स्वयं ही कागज़ पर उतर जाएँगे।

कहानी संग्रह: -

1. 'टूटा हुआ पंख' 1981 में प्रकाशित
2. 'कितने कितने सवाल' 1984 में प्रकाशित
3. 'अतिथि देवो भव' 1990 में प्रकाशित
- 4 'जीनिया के फूल' 1991 में प्रकाशित
- 5 'रैन बसेरा' 1993 में प्रकाशित
- 6 'रफ रफ मेल' 2000 में प्रकाशित
- 7 'शादी का जोकर' 2013 में प्रकाशित

सन् 2014 में इनके पुराने कहानी संग्रह 'टूटा हुआ पंख', 'कितने कितने सवाल', 'जीनिया के फूल' और 'रैन बसेरा' इत्यादि को अब्दुल बिरिस्मल्लाह जी के कहने पर राजकमल प्रकशन ने एक ही जिल्द 'ताकि सनद रहे' में पिरो दिया है।

● **अब्दुल बिरिस्मल्लाह के कथा-साहित्य पर अभी तक किया गया कार्य:**

सम्बन्धित शोध कार्य में लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह के कथा-साहित्य पर अभी तक जितना भी कार्य हुआ है। वह उनकी अलग-अलग विचारधाराओं के मद्देनजर विभिन्न विश्वविद्यालयों के तहत लघु शोध प्रबंध व शोध प्रबंध के तहत हुआ है। जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

➤ **कथाकार अब्दुल बिस्मिल्लाह की रचना दृष्टि: -**

यह शोध-कार्य गोवा विश्वविद्यालय से बाले शिल्पा द्वारा रवीन्द्रनाथ मिश्र के निर्देशानुसार किया गया है। इस शोध कार्य में शोधकर्ता ने उनकी रचना यात्रा का विवरण किया है। उनकी रचनाओं में प्रगतिशील दृष्टि, राजनीतिक चेतना तथा उनके सांस्कृतिक भावबोध का विवरण किया गया है। साथ ही साथ उनकी रचनाओं में रचनागत शिल्प दृष्टि के अन्तर्गत जिस तरह की भी शब्दावली चाहे वह तत्सम, तद्भव, देशी, विदेशी, मुहावरे एवं आलंकारिक भाषा का इस्तेमाल किया गया है। उन सभी का बड़े ही सुन्दर तरीके से विवरण किया गया है। इस प्रकार शोधकर्ता ने उनकी सम्पूर्ण साहित्यिक यात्रा में से उनकी रचना दृष्टि के अनुसार विभिन्न पहलुओं का प्रदर्शन किया है।

➤ **अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यास झीनी झीनी बीनी चदरिया में सामाजिक सरोकार: -**

यह शोध-कार्य पंजाबी विश्वविद्यालय से रेखा रानी द्वारा डा. सुधा सिंह के निर्देशानुसार किया गया है। इस शोध कार्य में झीनी झीनी बीनी चदरिया उपन्यास के सामाजिक सरोकार के सैद्धांतिक पक्ष के प्रत्येक पहलू को उठाया गया है। साथ ही साथ व्यवहारिक पक्ष में से बुनकर समाज, विवाह, स्त्रियों की स्थिति आदि का बारंबारी वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् आर्थिक सरोकार में श्रमिक वर्ग, दलाल, सेठ, पड़ोसी इत्यादि का प्रदर्शन किया गया है। राजनीतिक सरोकार में नगर पालिका, पुलिस, शिक्षा व्यवस्था, चिकित्सा, निर्वाचन, आपातकालीन स्थिति का वर्णन किया गया है। सांस्कृतिक सरोकार में कलाएं, मेले, व्यसन, मनोरंजन तथा क्रीड़ा विनोद, लोक गीत तथा लोक प्रथा इत्यादि का प्रदर्शन किया गया है। कहने का अर्थ यह कि शोधकर्ता ने झीनी-झीनी बीनी चदरिया उपन्यास के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक पहलुओं का बड़े ही सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है।

➤ **अब्दुल बिस्मिल्लाह के कथा-साहित्य में सामाजिक यथार्थ: -**

यह शोध-कार्य पंजाबी विश्वविद्यालय से प्रदीप सिंह द्वारा डॉ. राम निवास शर्मा के निर्देशानुसार किया गया है। इस शोध कार्य में शोधकर्ता ने

सामाजिक यथार्थ के प्रत्येक पहलू जैसे: समाज की अवधारणा, समाज और व्यक्ति, समाज और परिवार, समाज और धर्म, समाज और साहित्य तथा सामाजिक यथार्थ के विभिन्न आयाम जैसे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक पक्ष का बारंबारी वर्णन किया है। कहने का अर्थ है कि सामाजिक यथार्थ के सैद्धांतिक पक्ष का प्रदर्शन किया गया है। दूसरे अध्यायों में सामाजिक यथार्थ के प्रत्येक आयाम को अब्दुल बिस्मिल्लाह के कथा-साहित्य में से निकाल कर उसका वर्णन किया गया है। जैसे :- सामाजिक आयाम, राजनैतिक आयाम, सांस्कृतिक आयाम इत्यादि का बड़े ही सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है।

➤ **अब्दुल बिस्मिल्लाह के कथा-साहित्य का कथ्य एवं अभिव्यक्ति अध्ययन: -**

यह शोध-कार्य गुरु नानक देव विश्वविद्यालय से हरिशंकर कुमार द्वारा बलदेव कुमार लथुरा के निर्देशानुसार किया गया है।

➤ **अब्दुल बिस्मिल्लाह का उपन्यास-साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन: -**

यह शोध-कार्य श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कलेडी, केरला से जय कुमार द्वारा डा0 के श्रीलत्था के निर्देशानुसार किया गया है।

➤ **मुस्लिम समाज जीवन और अब्दुल बिस्मिल्लाह: - डा0 बाबा साहिब रसूलशेख**

इसके अलावा भी विभिन्न प्रकार से विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में पाठ्यक्रम के अनुसार बहुत से विद्यार्थियों ने इन की रचनाओं पर शोध कार्य किए हैं।

अध्याय दो

2. हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान

2.1 कहानी साहित्य और मनोविज्ञान

वर्तमान समाज मनोवैज्ञानिक दौर से गुजर रहा है। इसने विश्व के प्रत्येक विषय को अपनी प्रभावशीलता के कारण अपने आगोश में ले लिया है। साहित्य भी इससे अछूता नहीं रह सका। जैसे तो साहित्य किसी भी देश की तथा उसके समाज की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का प्रतिबिम्ब ही होता है, किन्तु वह उसका शुभचिन्तक भी होता है। अप्रत्यक्ष रूप से यह अवलोकन करना भी उसके दायरे में आता है कि कहीं भी कोई भी ऐसा कार्य न जाये जिसका असर अथवा प्रभाव भावी पीढ़ियों के विकास में बाधा उत्पन्न करे। साहित्य समाज के हित अहित का भी ध्यान रखता है। इसके साथ ही साहित्यकार का उत्तरदायित्व भी बढ़ जाता है। उस समय वह साहित्यकार होने के नाते समाज का प्रतिनिधित्व भी करता है।

साहित्य: -

इस शब्द के संदर्भ में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के जितने भी विद्वान हुए हैं, उन सभी ने अपने-अपने दृष्टिकोण से इसे प्रभाषित किया है। डॉ. मुकेश अग्रवाल अपनी किताब 'भाषा, साहित्य और संस्कृति' में साहित्य की परिभाषा के संबंध में कहते हैं कि "साहित्य की व्युत्पत्ति है—सहित+यत् प्रत्यय। अर्थात् शब्द और अर्थ का यथावत सहभाव, या साथ होना। इस प्रकार सार्थक शब्द मात्र को साहित्य कहा जा सकता है। साहित्य की इस परिभाषा में मनुष्य की सारी बोधन और भावन-चेष्टा को समाविष्ट किया जा सकता है। इस दृष्टि से समस्त ग्रन्थ समूह 'साहित्य' के अंतर्गत समाहित हो सकता है। (अग्रवाल 311) कहने का भाव यह कि शब्द और उसके स्टीक अर्थ के यथावत एवं विधिवत सहभाव को साहित्य कहा जाता है।

पदुमलाल बरखी तथा हेमचन्द्र मोरी द्वारा संपादित किताब 'साहित्य शिक्षा' में साहित्य के बारे में मुंशी प्रेमचन्द जी के विचारों के माध्यम से उनके 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की अध्यक्षता के दौरान दिये गये भाषण की पंक्तियों को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि "साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़ परिमार्जित और सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हो।" (बरखी और मोरी, 04) कहने का भाव यह कि वह सभी मौलिक एवं सच्ची घटनाओं पर आधारित रचनाएँ जो समाज कल्याण में अपनी विशेष भूमिका निभाती हों, साहित्य कहलाती हैं। वह कहानी, नाटक, लेख, कविता, संस्मरण, रिपोर्ताज इत्यादि किसी भी रूप में हो सकती हैं।

हमने यहाँ पर हिन्दी साहित्य में मनोविज्ञान के उद्देश्य के माध्यम से हुए कार्य के अंतर्गत कार्य करने के ध्येय से शुरुआत की है। अध्ययन के दौरान हमने पाया कि जहाँ एक तरफ लेखक के उत्तरदायित्व में अपनी लेखनी के माध्यम से समाज को अथवा अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को सही राह दिखाना, उसका सही मार्गदर्शन करना उसके लिए अत्यावश्यक बन जाता है, किन्तु वहीं दूसरी तरफ यह पाया कि हिन्दी साहित्य के लेखकों ने साहित्य और मनोविज्ञान के आपसी संबंध के संदर्भ में किंचित मात्र ही कार्य किया है तथा आलोचकों ने भी इस दृष्टि से विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति को कम ही अपनाया। शोधार्थियों की ओर से छिट-पुट रूप में इस पर शोध पत्र निकलते रहे हैं और यह परम्परा बदस्तूर जारी भी है। किन्तु उस स्तर पर जाकर नहीं, जितना होना चाहिए। पत्र-पत्रिकाओं ने भी इस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। यहाँ पर एक बात कहना असंगत नहीं होगा कि साहित्यकार की रचना की कोई भी शैली हो सकती है। किन्तु उसे केवल अपने आरामदायक कमरों में बैठकर केवल किताबों में घुस कर ही अपने कार्य को अंजाम नहीं देना चाहिए। यथार्थ की प्राप्ति हेतु उसे अपने कमरे से, अपनी किताबों से बाहर निकल कर समाज के शहरों, वहाँ की सड़कों, गलियों तथा उनके घरों में

जाकर उनसे मिल कर, उनसे बात करके सच्चाई को जानने को आतुर होना चाहिए। क्योंकि सच्चाई तो तभी बाहर आएगी जब हम उसे बाहर लाने को खुद मन से प्रयत्नशील होंगे। निराला जी की यह क्रान्तिकारी पंक्तियाँ कदाचित् यही समझाने का प्रयास कर रही है-

“वह तोड़ती पत्थर

देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर

वह तोड़ती पत्थर.....

कोई न छायादार

पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार

श्याम तन, भरा बँधा यौवन

नत नयन प्रिय, कर्म रत मन

गुरु हथौड़ा हाथ

करती बार-बार प्रहार. (http://kavitakosh.org/kk/तोड़ती_पत्थर_/16.06.2016)

कहना असंगत न होगा कि इस प्रकार की रचनाएँ आरामदायक कमरों में बिराजमान हो केवल किताबों के अध्ययन से नहीं लिखी जा सकती। साहित्यकार समयानुसार सामाजिक यथार्थ के दर्शन से यदि स्वयं को तथा हमें अवगत नहीं कराएगा तो वह स्वयं तथा समाज के प्रति असंगत व अन्यायी होगा।

निराला जी द्वारा रचित इस प्रकार की रचनाएँ मनोवैज्ञानिक दृष्टि से एडलर के व्यक्तित्व सिद्धांत के अनुसार ‘जीने की चाह’ के अंतर्गत गिनती में आती हैं जिसके अनुसार यह सारांश निकलता है कि यदि व्यक्ति में जीने की इच्छा हो तो वह किसी भी प्रकार के किन्हीं भी हालात में अपने जीने के

तरीकों को ढूँढ ही लेता है और यदि वह अनुकूल न भी हों तो वह उससे अपना सामंजस्य कायम कर लेता है।

अभी तक इस दृष्टि के अंतर्गत जितना भी कार्य हुआ है वह हिन्दी के कुछ विद्वानों द्वारा ही हुआ है। उसे हम अब तक के हुए कार्य के संदर्भ में देखें तो उसे प्रशंसनीय कार्य कहने में हमें कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए। वर्तमान समाज में सामाजिक सुधार हेतु, अन्तर्त्मा की संतुष्टि हेतु, वैर, विरोध, अकेलेपन, भय, शंका, कामकुंठा, ईर्ष्या इत्यादि की मुक्ति हेतु इस पर कार्य करना विद्वानों, लेखकों एवं आलोचकों सहित शोधार्थियों हेतु अनिवार्य है तथा कदाचित् समाज कल्याण हेतु वांछनीय भी है।

साहित्य और मनोविज्ञान के आपसी संबंधों व रिश्तों का यदि उनके सिद्धांतों एवं सम्प्रदायों के आधार हित निक्र किया जाए तो यह पाया जाता है कि पाठकों में इन दोनों को आपसी संबंधों के बारे में पढ़ने की इच्छा भरपूर जागृत रहती है बजाए अन्य विषयों के। देश में प्रकाशित हो रही विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखकों, विद्वानों व शोधकर्ताओं द्वारा किसी विशेष व्यक्ति या लेखक एवं उसके किसी विशेष कार्य में मनोवैज्ञानिक तथ्य ढूँढने के काम को लेकर बहुत कार्य हो रहा है। हिन्दी की किसी भी पत्रिका में प्रकाशित हो रहे शोध लेखों में से केवल मनोवैज्ञानिक विचारधारा से संबंधित लेखों को उनके पढ़ने वालों की संख्या की दर से यदि नोट किया जाए तो अचंभित करने वाले नतीजे हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। वैबजाल पर इसके देखने तथा डाउनलोड करने वालों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है।

समय समय पर इस संबंध में जब डाटा एकत्रित किया गया तो नतीजे समझ से परे थे कि पाठकगण साहित्य व मनोविज्ञान के आपसी रिश्तों के बारे में पढ़ने हेतु अत्यन्त अपनी उत्सुकता का प्रदर्शन करते हैं। जब भी कहीं ऐसा मौका मिलता है। उसे अधिक से अधिक पढ़ते हैं। यदि इसे बड़े स्तर पर शुरू किया जाए तो मानवीय व्यवहार में बहुत बड़ा साकारात्मक परिवर्तन देखने को मिलेगा।

इस अध्याय में हमने यह जानने का प्रयत्न किया है कि अभी तक के हुए हिन्दी साहित्य के इतिहास के कथा-साहित्य में मनोवैज्ञानिक चित्रण की कि कहाँ-कहाँ किन रचनाओं पर किस-किस लेखक या विद्वान ने किस प्रकार अपनी रचनाओं को मनोवैज्ञानिक बिंदुओं के माध्यम से उठाया है। हिन्दी साहित्य में कथा-साहित्य को दो भागों में विभाजित किया गया है। कहानी साहित्य व उपन्यास साहित्य। इन दोनों का समय लगभग 1850 से मानकर चले तो आज हम इस पर 150 सालों के समय पर हुए कार्यों पर बात करेंगे।

कहानी साहित्य मनोविज्ञान की दृष्टि से: -

‘हिन्दी कहानी’ हिन्दी साहित्य का एक अभिन्न अंग है। साहित्यिक रचनाओं के प्रकाशन में यह एक आधुनिक युग की विधा है। 19 वीं सदी के अंत से इसका प्रारम्भ हुआ जो आजतक निर्विघ्न एवं निरंतर चलता आ रहा है। जब हम ‘हिन्दी कहानी’ शब्द का इस्तेमाल करते हैं तो ‘हिन्दी भाषा’ की प्रमाणिकता पर प्रश्न उठ जाता है कि क्या यह भाषा का सही व प्रमाणिक रूप है? इसका आरम्भ कब हुआ? किस भाषा से हुआ?, क्या इसकी कोई उपबोली या उपभाषा है? यदि है तो वह किस भाषा के साहित्य की श्रेणी में गिनी जाएगी। अपने आलोचनात्मक ग्रंथ ‘भाषा-विज्ञान एवं हिन्दी भाषा का इतिहास’ में श्रीमती सरोज वर्मा कहती हैं कि

“सर्वसाधारण की भाषा का मूल्य साहित्यिक भाषा की अपेक्षा अधिक होता है। उदाहरणार्थ—मेरठ और देहली की एक विभाषा खड़ी बोली विकासोन्मुख होते-होते सब भाषाओं को अपने आधिपत्य में रखकर राष्ट्रभाषा बन गई।” (वर्मा 41)

दूसरी बात, किस समय हिन्दी कहानी का आरम्भ मानते हैं? यदि 19 वीं सदी के अंत से, तो उस समय ऊर्द भाषा भी प्रचलित थी तो स्वाभाविक है कि ऊर्द में भी कहानियाँ लिखी जाती रही होंगी। अब प्रश्न यह खड़ा होता है कि क्या इन सब को मिलाकर ही ‘हिन्दी कहानी का इतिहास’ की संज्ञा दी जाए?

प्रसिद्ध आलोचक गोपाल राय का अपनी किताब 'हिन्दी कहानी का इतिहास भाग-1' के माध्यम से यह मानना है कि

“मैं इस विवाद में नहीं पड़ता कि हिन्दी और उर्दू दो स्वतन्त्र भाषाएँ हैं। या, कि एक ही भाषा की दो शैलियाँ हैं। यही बात 'हिन्दी' और 'हिन्दी क्षेत्र' में अब तक बोलियों के रूप में अभिज्ञेय भाषाओं- भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी आदि पर भी लागू है। बहुत तेजी से ये भाषाएँ 'भाषा' के रूप में मान्यता पाने की ओर बढ़ रही हैं। इनमें साहित्य लिखा जाता रहा है, और अब इनमें और भी उत्साह के साथ साहित्य-रचना होने लगी है। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में भी इन्हें जगह मिलने लगी है। मैं अनुभव करता हूँ और इसके समर्थन में मेरे पास तर्क भी हैं, कि इन्हें 'स्वतन्त्र भाषाएँ मान लेने के बावजूद हिन्दी साहित्य के इतिहास में इन्हें स्थान देने को औचित्य है। इसी समझ के तहत मे इस किताब में हिन्दी कहानी के साथ उर्दू, भोजपुरी, मैथिली और राजस्थानी के कहानी साहित्य को भी स्थान दे रहा हूँ।”

(राय 10)

हिन्दी और उर्दू भाषा के संबंध में अपने आलोचनात्मक ग्रंथ 'भाषा-विज्ञान एवं हिन्दी भाषा का इतिहास' में श्रीमती सरोज वर्मा कहती हैं कि “हिन्दी और उर्दू का भेद तो शेरशाह के काल से माना जाता है। इससे पहले हिन्दी और उर्दू में कोई भेद नहीं था” (वर्मा, 238)

भाषा की यदि बात चली है तो यहाँ पर एक बात कहना नितांत आवश्यक है कि भाषा के संबंध में जानकारी हमें भाषा विज्ञान के माध्यम से प्राप्त होती है और भाषा विज्ञान एवं मनोविज्ञान का भी आपस में गहरा रिश्ता है। इस संबंध में श्रीमती सरोज वर्मा अपने आलोचनात्मक ग्रंथ 'भाषा-विज्ञान एवं हिन्दी भाषा का इतिहास' में कहती हैं कि

“भाषा-विज्ञान की दृष्टि में कोई भी भाषा, जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार प्रगट करता है, एक मूल वस्तु है। परन्तु

भाषा-विज्ञान-संबंधी-सिद्धांतों या नियमों का पता लगाने के लिए वे बोलियाँ जिनका साहित्य से कोई संपर्क नहीं हुआ है, भाषा विज्ञान की दृष्टि से अधिक मूल्य रखती है। एक शब्द के बन जाने के बाद भी उसमें अपनी रुचि के अनुसार परिवर्तन एवं परिवर्द्धन होता रहा है। उच्चारण में मुखसुख, प्रयत्नलाघव आदि के आधार पर ध्वनि परिवर्तन और अर्थ परिवर्तन होता है। यह सब मनोविज्ञान से ही संबंध रखते हैं। शब्दों और प्रयोगों की बनावट, विकास और ह्वास में मनोविज्ञान बहुत सहायक है। हम देखते हैं कि कोई-कोई मनुष्य बोली के सभी अवयवों के सही रहते हुए भी तुतलाते हैं, रुक-रुककर बोलते हैं इस दोष का हेतु मनोविज्ञान ही बता सकता है। इस तरह भाषा में जो परिवर्तन एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आते आते हो जाते हैं, उसका कारण मनोविज्ञान से ही मालूम हो सकता है। इस प्रकार भाषा विज्ञान मनोविज्ञान का ऋणी है।” (वर्मा 15)

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि भाषा और मनोविज्ञान का भी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से संबंध है। जैसे-जैसे भाषा ने अपने स्वरूप एवं क्षेत्र में विकास किया उसी प्रकार मनोविज्ञान भी उसी राह पर चलता आ रहा है। 19 वीं सदी के अंत तक भाषा के विभिन्न रूप सम्पूर्ण भारत में अपना योगदान दे रहे थे और उनमें साहित्यिक रचनाएँ (कहानी, उपन्यास इत्यादि) भी लिखी जाने लगी थी।

यदि इन सभी को एक मान भी लिया जाए तो हिन्दी, ऊर्दू, खड़ी बोली, मराठी, मैथिली, भोजपुरी इत्यादि भाषाओं, उपभाषाओं में, बोलियों इत्यादि में लिखित कहानियों को हिन्दी कहानी साहित्य में ही गिना जाएगा। इसी संबंध में अपनी किताब ‘हिन्दी कहानी का इतिहास भाग-1’ में गोपाल राय कहते हैं कि “प्रेमचन्द जी के अलावा उपेन्द्रनाथ अशक, सुदर्शन, हंसराज रहबर आदि भी ऊर्दू और हिन्दी के साथ-साथ लिख रहे थे।” (राय 10) कहने का भाव यह कि भाषा परिवर्तनशील है। समयानुसार इसमें बदलाव होते रहते हैं। क्षेत्रीय परिस्थितियों के कारण भी यह अपना रूप बदलती रहती है। जिस

कारण हिन्दी भाषा के रूप में विविधता आई और विभिन्न लेखक सभी उपभाषाओं को इस्तेमाल करते हुए कहानी लेखन में मगन रहे।

हिन्दी व उससे सम्बन्धित अन्य भाषाओं की चर्चा उपरांत 'कहानी' शब्द पर भी चर्चा करना समीचीन होगा। हिन्दी शब्दकोश के अनुसार मौखिक या लिखित, कल्पित या वास्तविक तथा गद्य या पद्य में लिखी हुई कोई भाव प्रधान या विषय प्रधान घटना, जिसका मुख्य उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करना, उन्हें कोई शिक्षा देना अथवा किसी वस्तु स्थिति से परिचित कराना होता है, कहानी कहलाती है। इस बारे में गोपाल राय अपनी किताब 'हिन्दी कहानी का विकास भाग-1' में कहते हैं कि

“संस्कृत साहित्य में 'कहानी' का एक अतिप्राचीन पर्याय 'कथा' है, जिसके किंचित् अर्थान्तरों के साथ, 'आख्यान', 'उपाख्यान', 'आख्यायिका', 'वृत', 'इतिवृत', 'गाथा', 'इतिहास', 'पुराण', 'वार्ता', 'चरित', आदि का रूप प्रचलित है। 'कथा' शब्द ही अपभ्रंश में 'कहा' का रूप ग्रहण कर अवधी, भोजपुरी आदि भाषाओं में 'कहनी', 'कहानी' आदि पदों में बदल गया है। 'हिन्दी' में यह शब्द वस्तुतः अवधी, भोजपुरी आदि से ही आया है।” (राय 17)

'डॉ. सीमा श्रीवास्तव' अपनी किताब 'हिन्दी साहित्य में मनोविज्ञान' में कहानी के संबंध में प्रेमचन्द जी की विचारधारा को दर्शाती हैं।

“‘मानसरोवर भाग-1' के प्राक्कथन में प्रेमचन्द ने लिखा था, “वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ के स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमें कल्पना की मात्रा कम, अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है।” (श्रीवास्तव 197)

हिन्दी साहित्य के इतिहास में यदि कथा-साहित्य पर दृष्टिपात किया जाए तो मूलतः यह ज्ञात होता है कि गद्य विधा का यह भाग ब्रज भाषा से होता हुआ खड़ी बोली एवं पश्चात् इसके यह हिन्दी व ऊर्दू में चलता आ रहा है। किन्तु ब्रज भाषा व खड़ी बोली में गद्य का जो रूप था वह आधुनिक हिन्दी

में आकर काफी बदल गया। क्योंकि जब 1860 में फोर्ट विलियम कॉलेज के हिन्दी-उर्दू अध्यापक 'जॉन गिलक्रास्ट' ने गद्य पुस्तकों पर कार्य करना शुरू किया तो मुंशी सदासुखलाल, सैयद इंशाअल्ना खां, लल्लू लाल और सदल मिश्र ने इनका भरपूर साथ दिया। रामचन्द्र शुक्ल अपनी किताब 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में भाषा के संबंध में कहते हैं कि "गद्य की एक साथ परम्परा चलाने वाले उपर्युक्त चार लेखकों में से आधुनिक हिन्दी का पूरा-पूरा आभास मुंशी सदासुखलाल और सदल मिश्र की भाषा में ही मिलता है।" (शुक्ल 232)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जो कि आधुनिक हिन्दी साहित्य के अग्रदूत माने जाते हैं, ने हिन्दी साहित्य की गद्य विधा को अपनी अल्पायु में ही सींच कर इतनी आगे ले गये कि आज वह गद्य साहित्य के प्रवर्तक के रूप में माने जाते हैं। उन्होंने कविता के साथ-साथ गद्य की प्रत्येक विधा पर अपनी लेखनी चलाई। उस काल के उनके लेखक साथियों के यदि कार्य को देखा जाय तो वह समय गद्य काल की शुरुआत कहा जा सकता है। तात्पर्य यह कि यह भारतेन्दु हरीशचन्द्र के समय से शुरू होकर आगे बढ़ता रहा। इसके साथ हिन्दी साहित्य में विभिन्न विधाएँ जैसे कहानी, नाटक, उपन्यास, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी इत्यादि शुरू हुईं। इन विधायों के शुरू होने से इसमें इतना विस्तार हुआ कि सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य के इतिहास पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो पता चलता है कि पहले तीन काल आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल एक तरफ और आधुनिक काल एक तरफ।

यहाँ पर हमारे शोध का उद्देश्य केवल इतना ही है कि आधुनिक काल के केवल कथा-साहित्य में मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के ध्यानहित कौन-कौन से लेखक रहे हैं और उन्होंने अपनी किन-किन रचनाओं में इस प्रवृत्ति सम्बन्धित कार्य अथवा लेखनी चलाई है। वैसे तो साहित्य एवं मनोविज्ञान का गहरा सम्बन्ध है क्योंकि दोनों में ही मानवीय भावों एवं व्यवहार का चिंतन एवं विश्लेषण किया जाता है। साहित्यकार तथा मनोवैज्ञानिक की मुख्य रूप से एक ही मंजिल होती है। किन्तु रास्ते अलग-अलग होते हैं। कार्यविधि भिन्न होती

है। साहित्यकार जहाँ अपने अनुभव तथा कल्पना के आधार पर व्यक्ति का मानसिक चित्रण चित्रित करता है, वहीं दूसरी ओर मनोवैज्ञानिक अपने सिद्धांतों के आधार पर व्यक्ति के मानसिक व्यवहार की जाँच पड़ताल कर उसका चित्रण चित्रित करता है।

हमारा शोध ध्येय केवल गद्य विधा की कहानी व उपन्यास विधा तक ही सीमित है। हमारा उद्देश्य अथवा अभिप्राय केवल हिन्दी साहित्य की इन दोनों विधायों में आज तक हुए मनोवैज्ञानिक चित्रण को ढूँढना है। इस संबंध में विगत कार्य में मुख्य रूप से केवल देवराज उपाध्याय ऐसे व्यक्ति दिखाई देते हैं जिन्होंने इस पर कलम चलाई। अपनी किताब 'आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान' में वह हिन्दी साहित्य में मनोवैज्ञानिक तत्वों के संबंध में कहते हैं कि

“यों तो साहित्य में मनोवैज्ञानिकता का पुट रहता ही है परन्तु हिन्दी में भक्तिकाल के प्रारम्भ से हम मनोवैज्ञानिकता की झलक स्पष्ट पाते हैं। सूर और तुलसी के काव्य में अनेक स्थल हैं जहाँ मनोवैज्ञानिकता का निर्देशन और चमत्कार इतना स्पष्ट है कि ऐसा मालूम पड़ता है कि वे जीवन के गहनतम अनुभव और निरीक्षण के आधार पर उसी भूमि पर पहुँच गये थे जहाँ आधुनिक मनोविज्ञान अथवा उससे प्रभावित साहित्य पहुँचता है। मंथरा और कैकयी के अकाण्ड ताण्डवों को हम अचेतन में दमित भावनाओं के विस्फोटक रूप में समझ सकते हैं। सूर का साहित्य तो मानों मनोविज्ञान का सागर ही है।” (उपाध्याय 330)

इसी लक्ष्य को साथ लेते हुए यदि हम आधुनिक गद्य साहित्य के इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो पता चलता है कि भारतेन्दु युग में कहानी को अनदेखा कर लगभग सभी गद्य विधाओं पर कार्य हुआ। यदि हम कहानी साहित्य पर चर्चा करें तो भारतेन्दु युग पूर्व भी कहानियाँ लिखी जा रही थी। इंशा अल्ला ख़ाँ की 'रानी केतकी की कहानी' सन् 1805 में लिखी गई एक लम्बी कहानी है। किन्तु उसमें कहानी जैसा कोई भी लक्षण नहीं है। कुछ विद्वानों ने ओर भी कहानियाँ लिखी किन्तु वह अनुदित या रूपान्तरित ही रही। इस दौर में

तो अधिकांश अंग्रेजी, संस्कृत और बंगला साहित्य से संबंधित कहानियों का अनुवाद ही हुआ। अधिकांश कहानियाँ तिलिस्म, ऐतिहासिक या मानवता से दूर कोरी कल्पना पर ही आधारित रही। इन सभी कहानियों या कहानीकारों में से केवल बंग महिला ही एक ऐसी कहानीकार रही, जिन्होंने इन सभी प्रकार की परम्पराओं को तोड़ते हुए मानवीय जीवन के यथार्थ का साक्षात् चित्रण किया और वह भी एक स्त्री को माध्यम बनाकर। कहानी के जन्म के संबंध में डॉ. सीमा श्रीवास्तव अपनी किताब 'हिन्दी साहित्य में मनोविज्ञान' में कहती हैं कि "‘सरस्वती’ (1900) पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी कहानी का जन्म मान्य है।" (श्रीवास्तव 194)

कहानी के उद्भव से लेकर विकास तक विभिन्न शैली में कहानियाँ लिखी जाती रही हैं। प्रेमचन्द-प्रसाद युग से पहले अधिकांश कहानियों को लिखने के लिए स्वप्न शैली का इस्तेमाल होता था जो कि वास्तविकता से कहीं दूर होती थी। डॉ. सुरेश सिन्हा अपनी किताब 'हिन्दी कहानी का उद्भव और विकास' में स्वप्न शैली में लिखी गई कहानियों के संबंध में कहते हैं कि

“भारतेन्दु युग में इस शैली को बहुत लोकप्रियता प्राप्त हुई और इस शैली में कुछ कहानियाँ भी लिखी गईं। केशव प्रसाद सिंह का ‘आपत्तियों का पहाड़’ नामक ऐसी ही कहानी है जो इस शैली में लिखी गई है।” (सिन्हा, 203)

इसी शैली में लिखित एक अन्य कहानी के संबंध में गोपाल राय अपनी किताब 'हिन्दी कहानी का इतिहास' में जिक्र करते हैं कि "प्रेमचन्द की एक कहानी 'ज्वालामुखी' में एक स्वप्न कथा के माध्यम से दुनिया में व्याप्त अमानवीय व्यवहारों की प्रमुखता का स्तय संकेतिक हुआ है।" (राय 83)

हिन्दी कहानी के शुरुआत के दौर में समाज में पारिवारिक दशा कुछ बेहतर नहीं थी। भारतीय जन आक्रोश का युग अथवा आन्दोलन का माहौल था। इसलिए इस परिपेक्ष में कहानियों का केन्द्र बिन्दु कम ही रहा। किन्तु जितनी भी कहानियाँ लिखी गईं उनमें कल्पना एवं रोमांच को ही स्थान

मिला। असल में यह कहानी की शैशावस्था थी। बाद में सुधार की प्रक्रिया जारी रही। कहानियों के लिखने के दौर से ही उनमें आकरिष्मकता का दौर चला आ रहा था। चमत्कार की घटनाओं से ओतप्रोत कहानियाँ पाठकों को भा रही थी। किसी दुखी की मदद हेतु बहादुर योद्धा का प्रगट हो जाना, चोट लगने से किसी भी पुरानी बात का याद आ जाना, किसी बिछुड़े दोस्त का अचानक आ मिलना, सारा धन अचानक चोरी हो जाना इत्यादि ऐसी रहस्यात्मक घटनाएँ कहानियों में जान डाल रही थी। बदलते समयानुसार कहानियाँ अब सामाजिक होने लगी थी। डॉ. देवराज उपाध्याय अपनी किताब 'आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

“सच पूछा जाए तो, कहानी कला के विकास क्रम की तत्कालीन अवस्था में इस चमत्कार-वादिता की प्रधानता स्वाभाविक थी। यह हमारे प्रारंभिक युग की प्रवृत्ति का संस्कृत रूप है जो लख लखा सुंघा कर लोगों को चेतना शून्य कर देती थी अथवा ताली बजाते ही हमारी आँखों के सामने गैबी खजाने को खोल सकती थी, राह में पड़े मुर्दों या किसी पुराने खंडहर में सजा कर रखी मूर्तियों से तलवार चलवा सकती थी। उस युग के विश्वासी और आस्थावान हृदय के लिए किसी संभव या असंभव बात में विश्वास कर लेना कठिन नहीं था। पर समय के विकास के साथ जब लोगों का विश्वास हिलने लगा तो कथाकारों की ओर से ऐसी घटनाओं की योजना होने लगी जो पाठकों को हैरत से दंग कर देने की सीमा के पास पहुँचा देने पर भी बौद्धिकता की सीमा का अतिक्रमण नहीं करने पावे, किसी न किसी तरह उनकी युक्ति-युक्त और तर्क सम्मत संगति बैठाई जा सके।” (उपाध्याय 195)

19वीं शताब्दी में समाज में कई सम्प्रदायों की ओर से समाज में मानवीय सुधारों पर भरपूर जोर दिया। आर्य समाज ने तो स्त्री सुधार पर भरपूर योगदान दिया। सामाजिक हालातों में विसंगतिआँ भी बहुत थी। किन्तु सुधारक कोशिशों की दरकरार भी थी। इसका असर साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक ही था। प्रेमचन्द ने हिन्दी कहानी को प्रगति की एक नई राह दी।

पुरानी कल्पना, जासूसी, रोमांच, तिलस्मी इत्यादि के चक्र को तोड़ा। कहानियों के माध्यम से जीवन की यथार्थता को प्रस्तुत किया। कहानी व उपन्यासों के माध्यम से वह साहित्य की सेवा करना चाह रहे थे। उनकी कहानियों में यथार्थ के साथ-साथ आदर्श की झलक भी बाखूबी दिखाई देती है। इस शताब्दी के पहले दशक में प्रेमामयी संवेदना से सम्बन्धित कहानियाँ लिखी गईं। शुरुआत प्रेमचन्द व किशोरीनाल गोस्वामी ने की। किन्तु मनोवैज्ञानिक आधार की कहानियाँ दूसरे दशक में जयशंकर प्रसाद ने ही शुरू की।

हिन्दी कहानी का आरम्भ सही अर्थों में जयशंकर प्रसाद से ही हुआ। उनकी पहली कहानी 'ग्राम' 1912 में 'इन्दू' पत्रिका में छपी। हिन्दी कहानी के जनक के रूप में विख्यात मुंशी प्रेमचन्द ने भी हिन्दी साहित्य में कहानी के जन्म और विकास में अपना पूर्ण योगदान डाला। उनकी पहली कहानी 'सौत' थी किन्तु कुछ लेखक 'पंच परमेश्वर' को उनकी पहली कहानी मानते हैं। अपनी जीवन काल में प्रेमचन्द जी ने लगभग 20 साल कहानियाँ लिखी। उनकी अन्तिम कहानी 'कफन' 1936 में प्रकाशित हुई। हिन्दी कहानी के विकास में 'सरस्वती', 'इन्दू', 'हिन्दी गल्प माला' इत्यादि पत्रिकाओं का विशेष योगदान रहा। इन पत्रिकाओं में बहुत सी मौलिक व अनुवादित कहानियाँ छपी थी।

आधुनिक हिन्दी कहानी के विकास में प्रसाद और प्रेमचन्द ने प्रारम्भिक बीज बोया और विश्व विख्यात कहानियाँ लिख हिन्दी साहित्य को अमर बनाया। प्रेमचन्द ने समाज के प्रत्येक हिस्से का गहनता से अध्ययन किया और उनकी बारीकियों के व्याख्यान को अपनी कहानियों तथा उपन्यासों का शृंगार बनाया। प्रेमचन्द ने कहानियों में अपनी भाषा पर पूरा ध्यान दिया। साधारण बोलचाल की भाषा के माध्यम से ही उन्होंने प्रभावित किया। जबकि दूसरी ओर प्रसाद जी की भाषा में सांस्कृतिक समावेश के कारण जन साधारण की पहुँच से बाहर होने के कारण उनकी कहानियाँ अच्छी होने के बावजूद भी आम जन की समझ से परे रही। जयशंकर प्रसाद की भाषा के संबंध में डॉ.

सुरेश सिन्हा अपनी किताब 'हिन्दी कहानी उद्भव और विकास' में कहते हैं कि "जयशंकर प्रसाद ने संस्कृत गर्भित भाषा का प्रयोग किया और क्लिष्ट प्रयोगों के कारण प्रायः उनकी कहानियाँ दुरूह हो गई हैं।" (सिन्हा 225) प्रेमचन्द ने जहाँ एक तरफ यथार्थ को पकड़े रखा तथा उसमें आदर्शवादिता का समावेश करते रहे वहीं दूसरी ओर प्रसाद जी भावनाओं पर जोर देते रहे। सियाराम शरण गुप्त जी ने भी इसी तर्ज पर कहानियाँ लिखी। प्रेमचन्द तथा उनके कुछ साथी कहानीकार देहाती जीवन से संबंधित कहानियाँ लिखते रहे। किन्तु कुछ समय पश्चात् कहानियों के दौर में बदलाव आने लगे। कुछ कहानियाँ मनोवैज्ञानिक एवं मनोविश्लेषणात्मक तर्ज पर भी लिखी जाने लगी। प्रसाद की 'आकाशदीप' कहानी में मन के गहन अंतर्द्वन्द्व को देखा जा सकता है। उनकी 'ग्राम' कहानी में भी महाजन के पुत्र की संवेदना का मार्मिक चित्रण किया गया है। इस युग के अन्य कहानीकारों चन्द्रधरशर्मा गुलेरी, विश्वम्भर नाथ कोशिक, बद्दीनाथ भट्ट, पद्मलाल पुन्नालाल बरख्शी, शिवपूजन सहाय, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, प्रफुल्लचन्द ओझा, चन्द्रगुप्त विध्यालंकार, राधिका रमण प्रसाद सिंह इत्यादि लेखकों ने व्यक्ति तथा समाज के सम्बन्ध को समझा तथा उनका विश्लेषण कर चित्रण करने की भरसक कोशिश की। चन्द्रधरशर्मा गुलेरी ने अपने जीवन काल में तीन ही कहानियाँ लिखी 'उसने कहा था', 'बुद्धू का कांटा' एवं 'सुखमय जीवन'। यह तीनों ही कहानियाँ हिन्दी साहित्य संसार में अमर हैं। गुलेरी ने इनमें मानवीय प्रेमामयी संवेदना का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। समाजवादी प्रयोगवादी विचारधारा से संबंधित कहानियाँ भी लिखी जाने लगी। रवीन्द्रनाथ टैगोर की 'काबुलीवाला' भी मनोवैज्ञानिक स्तर को छूती हुई कहानी है।

देवराज उपाध्याय अपनी किताब 'आधुनिक हिन्दी साहित्य और मनोविज्ञान' में कहते हैं कि "आधुनिक युग में प्रेमचन्द के आविर्भाव के साथ पुनः मनोविज्ञान का प्रवेश हिन्दी साहित्य में प्रारम्भ हुआ और तब से आज तक इसकी धारा निश्चित रूप से विकसित होती चली आ रही है।" (उपाध्याय 331) प्रेमचन्द हिन्दी कहानियों के आचार्य के रूप में विख्यात हैं। वैसे उनकी कहानियों में कथानक अपने उपन्यासों की भान्ति कुछ ज्यादा ही लम्बे हैं।

कुछ कहानियाँ तो लघु उपन्यासों का अहसास करवाती हैं। किन्तु उनकी कहानियों में यथार्थवाद के गहन दर्शन होते हैं। असल में वह आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी कहानीकार रहें हैं। यथार्थवाद के संबंध में डॉ. सुरेश सिन्हा जी अपनी किताब 'हिन्दी कहानी उद्भव और विकास' में ठीक कहते हैं कि

“यथार्थवाद वह साहित्यिक मिश्रण है, जो चयन शक्ति एवं सृजनात्मकता से पाठकों को यथार्थ समझने की शक्ति को विकसित करता है। हमारी मानसिक उदात्तता की प्रेरणा का प्रतीक बनकर उभरता है और हमें काल्पनिकता की कृत्रिमता से हटाकर जीवन की सत्यता की ओर दिशान्मुख करता है।” (सिन्हा 233)

प्रेमचन्द ने भी जीवन की कठोरता को नजदीक से देखा। उनकी लगभग सभी कहानियाँ दलित, किसान, मजदूर-साहूकार इत्यादि के संबंधों से संबंधित रही हैं। उनकी कुछ ही कहानियाँ मनोवैज्ञानिक आधार को छूती हैं। अपने जीवन के अन्तिम छह-सात साल के समय के दौरान मुंशी प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में मनोविज्ञान का प्रयोग भी किया है। उनकी 'कफन', 'बड़े भाई साहब', 'पूस की रात', 'नशा', 'मनोवृत्ति' तथा 'जादू' इत्यादि कहानियाँ मनोवैज्ञानिक पद्धति पर ही आधारित हैं। कुछ कहानियाँ जैसे 'बेटों वाली विधवा', 'गुल्ली डन्डा', 'ईदगाह', 'शान्ति', 'नया विवाह', 'दो कब्रें', 'लेला', 'अलग्योजा', 'तीतर', 'मेरी सुजान भगत', 'मुक्ति मार्ग', पत्र परमेश्वरी', 'दिल की रानी', 'ननकु चौधरी', 'कर्तव्य', 'तावान', 'ठाकुर का कुआँ' इत्यादि ऐसी कहानियाँ हैं, जिनका अन्त मनोवैज्ञानिक सत्य पर है। एक बात और यहां पर कहना उचित महसूस हो रहा है कि 'मनोविज्ञान' विषय के रूप में भारत में आजादी के बाद काफी विकसित हुआ। इससे पहले भारतीय विचारधारा में इसकी कोई खास भूमिका नहीं थी। किन्तु फिर भी प्रेमचन्द जैसे विद्वान लेखकों ने अपनी रचनाओं में मानवीय व्यवहार का इतनी सूक्ष्मता से वर्णन किया है कि उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण बड़े अच्छे से किया जा सकता है। हालाँकि उनकी रचनाएँ विशेष मनोवैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर नहीं लिखी गई हैं। उनकी कुछ कहानियों में मानसिक

द्वन्द्वतात्मकता के चित्रण का अन्त एक झटके में ही चित्रित होता नजर आया है।

इलाचन्द्र जोशी अथवा अज्ञेय की भान्ति प्रेमचन्द का मूल मकसद मनोवैज्ञानिक तथ्यों के आधार हित कहानियों की रचना करना नहीं है। किन्तु उन्होंने अपनी कहानियों में पात्रों के माध्यम से ही मानवीय जीवन की यथार्थता को इस प्रकार पेश किया है कि उनका विश्लेषण करने पर मनोवैज्ञानिक तथ्य स्वयं ही बाहर निकलते हैं। उनकी 'मनोवृत्ति' इसी प्रकार की कहानी है। 'पूस की रात' कहानी में पशु संवेदना का बड़ा ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। शिशु संवेदना से संबंधित भी प्रेमचन्द ने कलम चलाई है। उनकी 'चोरी' व 'कजाकी' इसी प्रकार की मार्मिक व मनोवैज्ञानिक कहानियाँ हैं। उनकी करुणा एवं प्रेमामयी संवेदना से भरपूर कहानी 'प्रेम की होली' है। 'आदर्श विरोध' कहानी में प्रेमचन्द ने बुद्धिजीवियों की मानसिकता का चित्रण बड़े सुन्दर तरीके से किया है। यह दौर लगभग राजनैतिक व आर्थिक उथल-पुथल का रहा जिस कारण मनोवैज्ञानिक स्तर की कहानियों का अंकन छिटपुट ही मिलता है। हाँ, उनके पश्चात् जयशंकर प्रसाद ने मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में थोड़ा अच्छा प्रभाव डाला एवं कुछ कहानियाँ पूर्णतः मनोविज्ञान को आधार बनाकर लिखीं। प्रसाद जी के बोध के बारे में आचार्य ब्रह्मनारायण शर्मा अपनी किताब 'हिन्दी उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' में कहते हैं कि "प्रसाद में यद्यपि वह उसी युग के थे, आज के कथाकारों जैसी सूझ थी। वे बाहर तो देखते ही थे किन्तु व्यक्ति के भीतर पैठने का भी प्रयास करते थे। उनमें मनोविश्लेषण करने की सूझ का उदय हो गया था जो आज के युग में विकास पा रहा है।" (शर्मा, 06) दरअसल जयशंकर प्रसाद एक कवि थे और उन पर बौद्ध का भी प्रभाव था जिस कारण उनका हृदय करुणामयी रहा। उनके संबंध में डॉ. सीमा श्रीवास्तव अपनी किताब 'हिन्दी साहित्य में मनोविज्ञान' में कहती हैं कि

"अन्तर्मुखी कलाकार होने के नाते उनकी कहानियों का संबंध बाह्य जगत, सामाजिक समस्याओं का चारों ओर के वातावरण और स्थितियों

से उतना नहीं है जितना मानव मन की ऊहापोंह आंतरिक आवेगों और भावनाओं के सूक्ष्म द्रव्य से है।” (श्रीवास्तव 199)

भारतीय संस्कृति के प्रति भी उनका विशेष लगाव था जिस कारण उनकी लेखनी सांस्कृतिक चेतना से प्रभावित रही। उनकी शुरुआती दौर की कहानियों में मनोवैज्ञानिकता का कोई भी अंश नहीं मिलता।

इसी संदर्भ में उनकी ‘आकाशदीप’ कहानी है जिसमें नायिका चम्पा अपने ही पिता के कातिल से ही प्यार भी करती है तथा दिल के किसी कोने में उससे नफरत भी करती है। प्रसाद जी ने चम्पा का एक ही व्यक्ति के प्रति प्यार व नफरत के भावों के संघर्ष का द्रव्यात्मक चित्रण बड़ी ही खुबसूरती से प्रदर्शित किया है। इनकी कहानियों ने मानवीय हृदय को झंकोर कर रख दिया था। उनकी कहानियों की इसी प्रवृत्ति के संबंध में डॉ. सीमा श्रीवास्तव अपनी किताब ‘हिन्दी साहित्य में मनोविज्ञान’ में कहती हैं कि “‘इन्द्रजाल’ और ‘आंधी’ ये प्रसाद की रचनात्मक ईमानदारी, गहरी संवेदनशीलता, मनोभावों का कलात्मक सांकेतिक चित्रण उनकी कला का प्रमाण है।” (श्रीवास्तव 200) अपने दौर की राजनैतिक व आर्थिक उथल-पुथल की प्रक्रिया का जयशंकर प्रसाद की मानसिकता पर नहीं पड़ा। उनकी कहानियों में भी राजनैतिक चित्रण न के बराबर ही है। उनकी विचारधारा कुछ अलग ही प्रकार की थी। वह एक तरह से कल्पना, प्रेम व सौन्दर्य के लेखक थे। जयशंकर प्रसाद जी की कहानियों के संबंध में डॉ. सुरेश माथुर अपनी किताब ‘आधुनिक हिन्दी साहित्य’ में कहते हैं कि

“प्रसाद की अधिकांश कहानियाँ प्रतीकात्मक हैं जिनमें अनुभूति की गहराई तो है ही साथ ही वातावरण की प्रधानता भी दिखाई देती है। इन कहानियों को समाप्त करने पर एक कचोट पाठक के मन पर बनी रह जाती है।” (माथुर 14)

प्रसाद की अधिकांश कहानियाँ प्रेम पर आधारित हैं। जिनमें गम्भीर विचारानुभूति के साथ-साथ मनोभावनाओं का सूक्ष्म परिवेक्षण का पुट भी

मिलता है। 'आधुनिक हिन्दी साहित्य और मनोविज्ञान' में देवराज जी कहते हैं कि

“कहानियों में प्रसाद जी को प्रेमचन्द तथा अपने समकालीन अन्य लेखकों से भी अधिक मनोवैज्ञानिकता लाने का श्रेय मिला है। उनमें मनोवृत्तियों का सूक्ष्म निरीक्षण, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और दार्शनिक तथ्य की अभिव्यक्ति बहुत ही सुन्दर और उच्च कोटि की बन पड़ी है।”

(उपाध्याय 195)

प्रेमचन्द जी के अलावा किशोरीलाल गोस्वामी ने भी संवेदनाओं को आधार बना कहानियाँ लिखी। माधवराव सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी में संवेदनाओं का भरपूर जिक्र है। 'बड़े घर की बेटी' मुंशी प्रेमचन्द की ऐसी कहानी है जो एक परिवार के मन में आए आर्थिक-सामाजिक एवं मध्यवर्गीय परिवार एवं संयुक्त परिवार के अंतर्विरोध का भरपूर मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत करती है। मुंशी प्रेमचन्द की 'दोनों तरफ से' नामक कहानी के संबंध में गोपल राय अपनी किताब 'हिन्दी कहानी के इतिहास' में कहते हैं कि “पति-पत्नी की एक दूसरे के प्रति भावनाओं से, उन्हीं की सोच के माध्यम से, पाठक का साक्षात्कार करा कर प्रेमचन्द ने कहानी में मनोविज्ञान का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है।” (राय 72) उनकी 'ईश्वरीय न्याय' कहानी में भी विचारों के सही एवं गलत के आपसी द्वन्द्व का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। 'अनिष्ट शोक' कहानी में भी अनिष्ट की आशंका का अंशिक मनोवैज्ञानिक चित्रण है। प्रेमचन्द 1930 के बाद की कहानियों में घटनाओं की अपेक्षा पात्रों के संवाद के माध्यम से संवेदनाओं को व्यक्त करने लगे थे।

बेचन शर्मा उग्र की अधिकांश कहानियाँ समाज मनोविज्ञान पर आधारित रही हैं। 'प्रस्ताव स्वीकार', 'तीन कलाकारों की एक भूल' उनकी मनोवैज्ञानिक कहानियाँ हैं।

विश्वम्भरनाथ कौशिक भी प्रेमचन्द परम्परा के ही लेखक रहे हैं। विश्वम्भर नाथ कौशिक ने भी पारिवारिक जीवन से संबंधित छोटी-छोटी

घटनायों पर अनेक कहानियाँ लिखी हैं। मनोवैज्ञानिक स्तर को छूती हुई कई चरित्र प्रधान कहानियाँ भी लिखी हैं। उनकी अधिकांश कहानियाँ चरित्र प्रधान रही हैं। जिनमें मनोविज्ञान की भरपूर झलक मिलती है। उनकी चरित्र प्रधान सुप्रसिद्ध कहानी 'ताई' रही है। जिसमें स्त्री के मानस पटल के द्रुद्धात्मकता सहित मनोवैज्ञानिक परिपेक्ष का वर्णन है। इस बारे में गोपाल राय अपनी किताब 'हिन्दी कहानी का इतिहास' में कहते हैं कि "ताई एक मध्यवर्गीय संयुक्त परिवार के परम्परागत मूल्यों, निपूती माँ की कुंठाजन्य घृणा और नैसर्गिक वात्सल्य के द्रुद्ध की उल्लेखनीय मनोवैज्ञानिक कहानी है।" (राय 159) 'अशिक्षित का हृदय', 'माता का हृदय' इत्यादि कहानियों में भी इसी परिपेक्ष का पुट मिलता है। कौशिक मुख्यतः नैतिक मूल्यबोध की कहानियाँ लिखने वाले एक सामान्य कहानीकार हैं। उनकी अधिकांश कहानियों में मध्यवर्गीय परिवारों में स्त्री की स्थिति व उनके सम्बन्धों का चित्रण देखने को मिलता है।

वैसे तो जी. पी. श्रीवास्तव हास्य रस के लेखक के रूप में विख्यात हैं। किन्तु फिर भी उनकी 'मैं न बोलूंगी' कहानी पर गोपाल राय अपनी किताब 'हिन्दी कहानी का इतिहास भाग-1 में डॉ. लाल जी विचार बताते हैं कि "इसमें कथावस्तु जैसा कोई विशेष तत्व नहीं है, बल्कि समुची कहानी की संवेदना एक मनोवैज्ञानिक भाव बिन्दु पर आधारित है।" (राय 95) उनकी 'झूठमूठ' कहानी में भी मनोवैज्ञानिक चित्रण देखने को मिलता है।

सुदर्शन भी प्रेमचन्द मण्डल के ही सदस्य थे। हिन्दी साहित्य के विकास में उनका अच्छा योगदान रहा। उन्होंने दरअसल मानवीय दैनिक जीवन की सामान्य अनुभूतियों को अपनी कहानियों में स्थान दिया है। मानवीय संवेदनाओं को चित्रित करती उनकी कहानी 'बैजू बांवर' है। द्रुद्धात्मक भावनाओं का चित्रण करती हुई 'पन्थ की प्रतिष्ठा' भी उनकी मनोवैज्ञानिक कहानी है। सुदर्शन के विषय में गोपाल राय अपनी किताब 'हिन्दी कहानी का इतिहास भाग-1 में कहते हैं कि "सुदर्शन की अधिकांश कहानियों का कथ्य नैतिक बोध और शील निरूपण से जुड़ा हुआ है।" (राय 160) उनकी 'हार की

जीत', 'सच्च का सौदा' आदि कहानियाँ हृदय परिवर्तन जैसे नैतिक मूल्यों के प्रतिपादन की कहानियाँ हैं।

इलाचन्द्र जोशी अपने बहुमुखी प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के कारण हिन्दी साहित्य के अग्रणी साहित्यकार रहे हैं। मनोविज्ञान को अपने उपन्यासों के माध्यम से हिन्दी साहित्य में स्थान देने के कारण जोशी हिन्दी साहित्य में पहले मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में विख्यात हैं। अपने उपन्यासों के पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण अथवा कथानक को मनोवैज्ञानिक प्रणाली के माध्यम से प्रस्तुत करने के हुनर जोशी में आन्तरिक रूप से विद्यमान था। अपनी कुछ कहानियों में भी इसी प्रवृत्ति को अपनाया है और चिन्तन शैली को बढ़ावा दिया। उनकी 'सजनवा' कहानी मनोवैज्ञानिक स्तर को छूती हुई चलती है। जहाँ प्रेमचन्द्र ने अधिकांश व्यक्ति के बाहरी वातावरण का चित्रण किया उसी प्रकार जोशी ने व्यक्ति के आन्तरिक वातावरण का चित्रण किया, जिस कारण उन्हें मनोवैज्ञानिक कहानियों का प्रवर्तक माना जाता है। अपने जीवनकाल के दौरान उन्होंने मनोविज्ञान से संबंधित पुस्तक 'दैनिक जीवन और मनोविज्ञान' भी लिखी। जोशी जी की कहानियों के अध्ययन उपरांत यह प्रतीत होता है कि उनकी कहानियाँ साधारण पाठकों हेतु वर्णनीय नहीं हैं, उनके लिए पाठक मनोविज्ञान का विद्यार्थी होना चाहिए। उनकी 'क्रय-विक्रय', 'रोमांटिक छाया', 'किडनैप', 'प्रेम और छाया', 'आत्मा का खून' इत्यादि इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। 'आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान' में देवराज आगे कहते हैं कि "जोशी जी के कहानी संग्रह 'खण्डहर की आत्मार्ये' की कहानियाँ तो मानो उन मानसिक विकारों की बात को ही सामने रखकर लिखी गई हैं जिन्हें मनोविदों ने असाधारण मनोविज्ञान कहा है।" (उपाध्याय 262) उनकी 'पागल की सफाई', 'यज्ञ की आहुति' तथा 'विद्रोही' इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। इनके 'होली और दीवाली' कहानी संग्रह में से लगभग सभी कहानियाँ मनोवैज्ञानिक दृष्टि को छूती नजर आती हैं। जिस आधार पर हम कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य को मनोवैज्ञानिक रंग में डूबाने वाले जोशी जी एक अहम किरदार में नजर आये हैं। जयशंकर

प्रसाद के बारे में डॉ. दिनेश प्रसाद अपनी किताब 'कहानी: नई कहानी' में कहते हैं कि

“जयशंकर प्रसाद ने सामाजिक दायित्व के आलोक में व्यक्ति के अंतर्मन का विश्लेषण अपनी कहानियों में जिस मनोविश्लेषणात्मक पद्धति से किया था, जैनेन्द्र और इलाचन्द्र जोशी ने इसी प्रशस्त मार्ग पर आगे की मंजिल तय की” (प्रसाद 17)

हिन्दी साहित्य को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने और उस पर कलम चलाने का साहस केवल जैनेन्द्र में ही था और वह भी उस समय जब प्रेमचन्द्र अपनी लेखनी से लोगों को जीवन के कठोर यथार्थ का चित्रण बड़ी कुशलता से कर रहे थे। उस समय इस प्रकार के प्रयोग आन्तरिक साहस की बारखूबी मिसाल का प्रदर्शन है। हिन्दी साहित्य में उनको एक प्रकार से प्रयोगवाद का जनक कहा जा सकता है। क्योंकि उस दौर में कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक चित्रण करना, समाज की परवाह किए बिना स्त्रियों के बारे में चिन्तन व मनन कर उनका चित्रण करना इत्यादि। एक बात और देखने लायक है कि उनके लगभग सभी उपन्यासों व कहानियों में मुख्य पात्र स्त्रियाँ ही रही हैं। समय की नज़ाकत को देखते हुए इस प्रकार की साहसिक लेखनी चलाना नये प्रयोग के साथ-साथ हिम्मत भरपूर कार्य रहा है। वह अपनी कहानियों को अन्तिम छोर पर लाकर पाठको को अपनी बुद्धि एवं कल्पना के सहारे सोचने के लिए छोड़ देते हैं जबकि प्रेमचन्द्र समाधान के साथ प्रस्तुत करते थे। उस समय इस प्रकार का जोरिखम उठाना जैनेन्द्र जी का साहसिक कार्य रहा है। जैनेन्द्र ने अपने पात्रों में उनके सूक्ष्म संकेतों का चित्रण बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है। उन्होंने कथानक या घटना की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक सोच युक्त चरित्र पर ध्यान केन्द्रित किया। उनकी 'हत्या', 'दो चिड़िया', 'अपना-अपना भाग्य', 'बाहुबली', 'पानेब', 'धुवयात्रा', 'खेल', 'एक रात', 'ग्रामोफोन का रिकार्ड', 'मास्टर जी' इत्यादि इसी प्रकार की कहानियाँ हैं, जो पात्रों के मानसिक द्वन्द्व इत्यादि को प्रदर्शित करती हैं। उनकी बहुत सी कहानियाँ 'पानेब', 'आत्म-शिक्षण', 'खेल', 'किसका रुपया', 'अपना-अपना भाग्य', 'चोर',

‘तमाशा’, ‘दो चिड़ियाँ’, ‘बिल्ली का बच्चा’, ‘रामू की दादी’ इत्यादि बाल-मनोविज्ञान पर आधारित है। जैनेन्द्र की कहानियों में मनोवैज्ञानिकता के संबंध में देवराज उपाध्याय अपनी किताब ‘आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान’ में कहते हैं कि

“यदि कथा में आन्तरिक दृष्टि की स्थापना करना, पात्रों के मानस की गहराई में चलती रहने वाली तरंग का सच्चा चित्र उपस्थित करना मनोवैज्ञानिक कथाकार का मापदण्ड है तो जैनेन्द्र की कहानियाँ कहीं कहीं तो अद्वितीय हो उठी है।” (उपाध्याय 154)

उनके विशाल साहित्य पर दृष्टिपात से ज्ञातव्य है कि उनको समझने हेतु उनकी ‘समय और हम’ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है, जिसमें उनके मनोविज्ञान, धर्म, ईश्वर, स्वर्ग एवं नरक इत्यादि पर गहन चिन्तन का प्रदर्शन है।

अज्ञेय और जैनेन्द्र के साहित्य को पढ़ने व समझने पश्चात् यह बात दृष्टव्य होती है कि अज्ञेय जैनेन्द्र के नवशेकदमों पर चलते हुए मनोविज्ञान का हिन्दी गद्य साहित्य में समावेश करवाते हुए आगे लेकर गये। जैनेन्द्र ने तो अपनी कहानियों में पति-पत्नी के रिश्ते के संबंधों का अत्यन्त मार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है। प्रमोद मीणा द्वारा संपादित ‘मूक आवाज’ हिन्दी जर्नल में डॉ. दीप्ति गौड़ अपने शोध लेख ‘स्त्री-पुरुष संबंधों का मनोवैज्ञानिक: जैनेन्द्र’ ‘मूक आवाज’ हिन्दी जर्नल अंक अप्रैल-जून 2016 के माध्यम से यह कहते हैं कि

“जैनेन्द्र जी ने स्त्री-पुरुष संबंधों पर आधारित कहानियों में ‘नारी मनोविज्ञान’ का सूक्ष्मता से विश्लेषण किया है। जैनेन्द्र ने अपनी कहानियों में पतित्व धर्म और पत्नीत्व धर्म, दोनों को ही चुनौती दी है। उन्होंने व्यापक सांस्कृतिक संदर्भों में पति-पत्नी की मूल चेतना को उभारा है।” (डॉ. दीप्ति गौड़ 43)

उनकी ‘मान-रक्षा’ और ‘प्रणय-दंश’ कहानियाँ प्यार और विवाह के द्वन्द्व पर आधारित कहानियाँ हैं। उनकी कुछ इस प्रकार की कहानियों को देख कर ऐसा

लगत है कि जैनेन्द्र अपने पाठकों को उलझन में फंसे देखना चाहते हैं। उन्होंने अपने खुद के मनोविज्ञान पर आधारित कहानियाँ लिखी हैं और आशा रखते हैं कि पाठक उनको समझे। जैनेन्द्र पाठकों की उलझन भरी दशा को बनाये रखना ही अपनी सिद्धि मानते हैं। उनकी 'बिखरी कहानी' और 'बीमारी' आदि जटिल मनोवैज्ञानिक कहानियाँ हैं।

अज्ञेय साहित्य की प्रत्येक विधा पर कलम चलाने वाले मनोवैज्ञानिक साहित्यकार रहे हैं। इनके कहानी साहित्य के अध्ययन उपरांत यह सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि उनकी कहानियों में बाहरी वातावरण बहुत कम पर आन्तरिक वातावरण का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। डॉ. माधवी शर्मा द्वारा संपादित *International journal of Hindi research (Pushpanjali)*, में अज्ञेय जी के संबंध में हरीश कुमार सोनी अपने शोध लेख 'अज्ञेय की कहानियाँ और मनोविज्ञान' vol 2; Issue3; May 2016 में कहते हैं कि "अज्ञेय एक कुशल शिल्पकार हैं, वे व्यक्ति के अंतर्मन में झाँककर, उसकी मनःस्थिति को समझकर, मन की ऊहा-पोह की पड़ताल करते हैं। उनकी कहानियों मानव के अंतर्मन को छूने की अपार ऊर्जा-शक्ति विद्यमान है।" (हरीश कुमार सोनी 01) अज्ञेय की 'पुरुष का भाग्य' और 'कविता और जीवन' विशुद्ध मनोविज्ञान पर आधारित कहानियाँ हैं इन कहानियों में लेखक ने व्यक्ति की द्वन्द्वत्मक स्थिति का बाखुबी वर्णन किया है। 'रोज' एवं 'हीलीबोन की बत्तखें' कहानियों में अज्ञेय ने नारी मनोविज्ञान का अत्यन्त सूक्ष्म चित्रण किया है। इनके अतिरिक्त 'अलिखित कहानी', 'दुख और तितलियाँ', 'शान्ति हँसी थी', 'इन्दु की बेटी', 'अछूते फल', 'नंबर दस', 'सिगनेलर' इत्यादि इनकी मनोविज्ञान से संबंधित कहानियाँ रही हैं। अक्सर उनकी कहानियों में मनोभावों के द्वन्द्वत्मक संघर्ष धीमे-धीमे और लम्बे चलने वाले होते हैं। पती-पत्नी के आपसी मानसिक संघर्ष ज्वालामुखी की तरह एक ही बार में प्रस्फुटित न होकर धीमी आग की तरह सुलगते नजर आते हैं। अज्ञेय की कहानियों में पात्रों के द्वन्द्वत्मकता का चित्रण दूसरों की तुलना से न होता हुआ स्वयं अपनी से मनोस्थिति का व्यखान करता नजर आता है। अज्ञेय के

बारे में देवराज उपाध्याय अपनी किताब 'आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

“आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में इस वर्ग के मनोवैज्ञानिकों का नेतृत्व अज्ञेय के हाथ में है। उन्होंने सतर्क होकर चेष्टापूर्वक कहीं न कहीं मनोविश्लेषण की मान्यताओं को अपने साहित्य में स्थान दिया है। जहाँ ऐसा नहीं हो सका है वहाँ उन्होंने अति साधारण सी घटनाओं को ही अपनी प्रतिभा की आँच से गला कर हमारी मानसिक तरलता के समान-धर्मी बताकर उस से संयोजनीय बना दिया है।” (देवराज उपाध्याय 215)

यशपाल एक पंजाबी व्यक्तित्व थे। किन्तु हिन्दी साहित्य की अथाह सेवा उपरांत इन्होंने हिन्दी साहित्य में अपनी एक खास जगह बना ली थी। अपने शुरुआती दौर में वह एक कहानीकार के रूप में ही प्रतिष्ठित हुए थे। मध्यवर्गीय जीवन से संबंधित उनकी कहानियों में विपरीत परिस्थितियों का विशुद्ध प्रदर्शन है। उनकी 'एक राज' कहानी में नौकर और मालकिन की मनोवृत्तियों का बाखूबी चित्रण है। उनकी 'तीस मिन्ट' कहानी भी मनोवैज्ञानिक स्तर को छूती हुई चलती है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री की कहानियाँ छोटी किन्तु हृदय को झंकोर देने वाली रही हैं। इनका लेखन कार्य लगभग 40 वर्षों तक रहा। 'राजकण' और 'अक्षत' इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं। वैसे तो इनकी लेखनी से ऐतिहासिक दृश्य ही निकले हैं। इनकी 'कमल किशोर', 'अब्बा जान' और 'मुखबिर' कहानियों में मनोवैज्ञानिक तत्व दृश्यमान होते हैं। इनकी कहानियों में मनोवैज्ञानिकता के बारे में गोपाल राय अपनी किताब 'हिन्दी कहानी का इतिहास भाग-1' में कहते हैं कि “‘मुखबिर’ ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए किये जाने वाले क्रान्तिकारियों के कष्ट, बलीदान और निष्ठा की कहानी है। इस कहानी में मनोवैज्ञानिक दृष्टि को उभारने की कोशिश की गयी है।” (राय 176)

भगवती प्रसाद वाजपेयी की कतिपय कहानियाँ असाधारण परिस्थितियों में पति पत्नी के आपसी संबंधों में पैदा हुए टकरावों का अत्यन्त सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया है। उनकी 'मानलीला', 'पुनर्विवाह', 'खिलौने' तथा 'मुखबिर' कहानियाँ इसी तर्ज की कहानियाँ हैं। वाजपेयी जी के बारे में गोपाल राय अपनी किताब 'हिन्दी कहानी का इतिहास भाग-1' में कहते हैं कि

“‘झरोखे की रानी’ में व्यक्तिगत प्रेम और देश प्रेम का द्वन्द्व भावुकता के स्वर पर ही चित्रित हुआ है। कुछ कहानियों में प्रेम और सामाजिक-आर्थिक विसंगतियों के द्वन्द्व से उत्पन्न मनःस्थितियों का अंकन किया गया है।” (राय 178) इसी संबंध में वह आगे कहते हैं कि “वाजपेयी जी की कहानियों का मुख्य विषय ‘प्रेम’ है। ‘बारात’, ‘एक आदर्श वाक्य’, ‘लिली’, ‘मैना’, ‘थोड़ी सी पी ली’, ‘स्वयंवर’, आदि कहानियों में प्रेम की स्वायत्तता का अंकन मनोवैज्ञानिक धरातल पर ही हुआ है।” (राय 373)

उपेन्द्रनाथ अशक पंजाब के रहने वाले थे। उनका जीवन बहुत ही संघर्षशील रहा ‘मनुष्य यह!’ कहानी मनोवैज्ञानिक मोड़ लेती हुई उनकी पहली कहानी है। ‘पिंजरा’, ‘सभ्य असभ्य’ और गोखरू भी उनकी ऐसी ही कहानियाँ हैं। इनकी कहानी ‘बच्चे’ माँ बाप की बातचीत और खेल में बच्चे के बार बार हस्तक्षेप करने, पिता के खीझकर उसे पीट देने और बाद में पश्चात्ताप करने की यथार्थपरक और मनोवैज्ञानिक कहानी है।

विश्वम्भर नाथ कौशिक तथा सुदर्शन की कहानियों का पुट भी प्रेमचन्द से ही मिलता जुलता है। कौशिक ने अपनी कहानियों में संवादों के माध्यम से पात्रों की मनोस्थिति का चित्रण बड़े अच्छे से किया है।

भीष्म साहनी ने छठे दशक में कहानीकार के रूप में विख्यात हुए। वैसे उन्होंने पांचवे दशक में ही कहानी लिखना प्रारम्भ कर दिया था। उनकी

‘पहचान’ कहानी ने मनोवैज्ञानिक कहानी के रूप में अपनी पहचान बनाई है।

कृष्णा सोबती भी हिन्दी साहित्य की आधुनिक युग की लेखिका रही हैं। उनकी ‘बादलों के घेरे’ कहानी में मनोवैज्ञानिक शैली के अंतर्गत ‘स्मृति’ का ऐसा उल्लेख किया है कि कहानी पढ़ने उपरांत बीती बातें चलंत घटनायें प्रस्तुत होती हैं।

धर्मवीर भारती की ‘हरिनाकुस और उसका बेटा’ भी पुरातन विचारधारा के अनुरूप नये जमाने की मनोवैज्ञानिक स्तर को छूती हुई मानवीय चरित्र के बदलाव की बड़ी ही अनूठी कहानी है।

मोहन राकेश की ‘उसकी रोटी’ कहानी भी मनोवैज्ञानिक स्तर की मानवीय संवेदना का चित्रण करती हुई बड़ी ही संवेदनशील कहानी है। उनकी ‘मलबे का मालिक’ और ‘भूखे’ कहानियाँ भी संवेदनात्मक दृष्टि से उच्च कहानियाँ हैं। ‘मवाली’ कहानी में भी कृष्णा सोबती की ‘बादलों के घेरे’ कहानी की तरह ही स्मृति संवेदना की अच्छी अभिव्यक्ति है।

राजेन्द्र यादव की ‘किनारे से किनारे तक’ एक लम्बी कहानी है। जिसमें एक पुत्र के नाजायज़ होने के संबंध में एक पिता के मन की उधेड़-बुन का चित्रण है। इस कहानी में एक प्रकार का असामान्य मनोवैज्ञानिक चित्रण दर्शाया गया है।

कमलेश्वर की कहानियों के संबंध में गोपाल राय अपनी किताब ‘हिन्दी कहानी का इतिहास भाग-2’ में कहते हैं कि कमलेश्वर की “‘रात, औरत और गुनाह’ संतानहीन स्त्री की सामाजिक स्थिति, उसके अकेलेपन की पीड़ा और मनोवैज्ञानिक स्थिति को व्यक्त करनेवाली एक उल्लेखनीय कहानी है।” (राय 86) उनकी ‘गर्मियों के दिन’ कहानी भी दरिद्रता का उल्लेख करती हुई एक मनोवैज्ञानिक कहानी है।

अमरकांत की ‘केले, पेसे और मूंगफली’ कहानी मध्यवर्गीय परिवार की पेसे की तंगी के कारण धर में पैदा हुए अजीब से वातावरण से जूझते हुए पैदा

हुई संवेदनाओं की विलक्षण कहानी है, जिसमें पारिवारिक सदस्यों की भावनाओं का विशिष्ट चित्रण प्रस्तुत किया गया है। उनकी 'शुभचिन्ता' कहानी भी मनोवैज्ञानिक स्तर को स्पर्श करती है।

शिवप्रसाद सिंह की अधिकांश कहानियाँ मानवीय संवेदनाओं से लबरेज़ रही हैं। उनके पात्रों के साथ-साथ कहानियों के वातावरण भी संवेदनशील रहे हैं। संवेदना के संबंध में गोपाल राय अपनी किताब 'हिन्दी कहानी का इतिहास भाग-2' में शिवप्रसाद सिंह के बारे में कहते हैं कि "शिवप्रसाद सिंह गाँव की धरती से ऐसे पात्रों की खोज कर लाते हैं या सृष्टि कर डालते हैं जो हमारी संवेदना को तिलमिला देते हैं।" (राय 110) उनकी 'गंगा-तुलसी' और 'बीच की दीवार' इसी प्रकार की कुंठाग्रस्त संवेदनशील कहानियाँ हैं जिनमें मानवीय मन की द्वन्द्वत्मक ऊहा-पोह का भरपूर वर्णन है।

रामकुमार की 'हुस्ना बीवी' कहानी अतीत की स्मृतियों में गुम होने की बड़ी ही संवेदनशील कहानी है। दरअसल रामकुमार की कहानियों के अधिकांश पात्र अपने अकेलेपन और अतीत की यादों में जीते हैं। रामकुमार ने अपनी कहानियों में मन के रहस्यों को उधेड़ने की कोशिश की है। स्मृतियों का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

कमल जोशी जी ने यथार्थ से जुड़ी कहानियाँ लिखी हैं। किन्तु बीच-बीच में मनोविज्ञान का भी सहारा लिया है। 'स्वप्न के अखीर में', 'लच्छो' आदि कहानियों में इसी प्रकार के अंश मिलते हैं। उनकी 'नायक-नायिका' कहानी भी मनोविश्लेषण का अच्छा उदाहरण पेश करती है।

मार्कण्डेय की 'हंसा जाय अकेला', 'गुलरा के बाबा' मानवीय संवेदनाओं को प्रस्तुत करती एक विलक्षण कहानी है। उनकी 'सवरइया' और 'पान-फूल' पशु-संवेदना से संबंधित कहानियाँ हैं। मार्कण्डेय की कहानियों में संवेदना के संबंध में गोपाल राय अपनी किताब 'हिन्दी कहानी का इतिहास भाग-2' में कहते हैं कि

“मार्कण्डेय की कुछ कहानियों में ग्रामीण परिवेश में प्रेम की संवेदना का बहुत प्रभावी अंकन हुआ है। ‘नीम की टहनी’, ‘रेखाएँ’, ‘सात बच्चों की माँ’, ‘एक दिन की डायरी’, ‘बिन्दी’ आदि इस दृष्टि से उल्लेखनीय कहानियाँ हैं। इन कहानियों में प्रेम की संवेदनात्मक तीव्रता, मौन संवेदना की शक्ति, दर्द की अनुभूति, स्त्री की विवशता, मनोवैज्ञानिक जटिलता आदि का यथास्थान समावेश बहुत प्रभावी है।” (राय 131)

मन्नु भण्डारी की अधिकांश कहानियों में संवेदनात्मक तीव्रता अधिक है। उनकी ‘तीन निगाहों की तस्वीर’ गहरी संवेदनशील कहानी है। ‘स्यानी बुआ’ कहानी में उन्होंने उनके अकेलेपन के दर्द की स्थिति को गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। ‘खच्चर फगणू नहीं होते’ उनकी पशु-संवेदना से संबंधित अच्छी कहानी है। उनकी ‘एक कमज़ोर लड़की की कहानी’ मानसिक अंतर्द्वन्द्व को दर्शाती बहुत ही सुन्दर कहानी है। जो कि अपने प्रेमी के साथ भाग जाने एवं अपने पति से स्वयं की प्रशंसा सुनने के कारण उसके मन में पैदा होती है। उनकी ‘क्षय’ कहानी भी इसी मानसिकता पर आधारित है। उनकी ‘क्या सच्च है क्या नहीं’, बंद दरानों का साथ’, ‘बाहों का घेरा’, ‘घुटन’, ‘त्रिशंकु’ इत्यादि इसी स्तर की कहानियाँ हैं। मन्नु भण्डारी जी के संबंध में कोच्चुराणी जॉसफ़ अपने शोध-प्रबंध ‘मन्नु भण्डारी की कहानियों में नारी मनोविज्ञान’ में कहते हैं कि “मन्नु जी का रचना-संसार वैविध्य की दृष्टि से आकर्षण का केन्द्र है। नारी मन की थाह तक पहुँचना उनका अभिष्ट लक्ष्य रहा है।” (जॉसफ़ 16) कहने का भाव यह कि मन्नु भण्डारी जी ने नारी मन को अंदर से झकरोर कर उसे साहित्य की लेखनी का आधार बनाया। उनकी लगभग सभी कहानियों में नारी मन के मनोवैज्ञानिक स्तर का वर्णन उनके द्वारा हुआ है। मन्नु भण्डारी जी के नारी के मनोवैज्ञानिक चित्रण के संबंध में प्रा कल्पना वी. भट्ट अपने शोध-प्रबंध ‘मन्नु भण्डारी की कहानियों में नारी संवेदना’ में कहते हैं कि

“साहित्य की युगों पुरानी कथा-रूढ़ियों के मलबे के नीचे से नारी के मौलिक व्यक्तित्व का अन्वेषण, उसके चरित्र का यथार्थ निरूपण जैसी

गहरी अन्तर्दृष्टि और निस्संग विश्लेषण की अपेक्षा रखता है, वह मन्नु जी के पास है, उसके साथ-साथ मन्नु जी की कहानियों की दो विशेषताएँ उसे अपने समकालीनों से अलग करती हैं.....त्यर्थ कि भावोच्छ्वास में नारी के आंचल का दूध और आँखों का पानी दिखाकर उसने पाठकों की दया नहीं वसूलीवह एकदम यथार्थ के धरातल पर नारी का नारी की दृष्टि से अंकन करती हैं” (भट्ट 210)

कहानियों में द्रुद्ध के संबंध में गोपाल राय अपनी किताब ‘हिन्दी कहानी का इतिहास’ भाग-2 में चतुर्वेदी के बारे में अपने विचार रखते हैं कि

“जगदीश चतुर्वेदी अपनी ‘जीवन का संघर्ष’, ‘वैभव का त्याग’, ‘महाकाव्य का अंत’, ‘शबनम मुस्कुरा उठी’, ‘मानवता की ओर’, ‘दमन का चक्कर’, ‘रम्मी’, ‘आलम की रंगरेजिन’ आदि कहानियों में मानवीय अन्तर्दृष्टियों के यथार्थ चित्रण और संवेदना को विशिष्ट महत्त्व देने की बात रेखांकित करते हैं।” (राय 139)

कहानियों में मनोवैज्ञानिक सोच के बारे में चोपड़ा जी के बारे में गोपाल राय अपनी किताब ‘हिन्दी कहानी का इतिहास भाग-2’ में कहते हैं कि मोहन चोपड़ा ने अपनी अधिकांश कहानियों में मनोवैज्ञानिक स्तर को छूने की कोशिश की है। उनकी कहानी “ ‘ऑपरेशन’ में अस्पताल में प्रसव के लिए प्रतीक्षारत औरतें और बाहर उनकी प्रतीक्षा करते पतियों की अलग अलग सोच और मानसिकता का समाज-मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है।” (राय 140) उनकी ‘तीन बहनें’ कहानी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बेहतरीन कहानी है।

शेखर जोशी की ‘रास्ते’, ‘आदमी का डर’, और ‘व्यतीत’ नामक कहानियाँ मनोवैज्ञानिक स्तर को छूती हुई चलती हैं।

कहानी आन्दोलन में नई कहानी का आरम्भ माने जाने वाले निर्मल वर्मा जी हिन्दी कहानी में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। उनकी अधिकांश कहानियाँ अतीत की स्मृतियों में खोये हुए पात्रों के माध्यम से हैं जो भूतकाल की यादों को दुहराता हुआ चलता है।

गुलशेर खाँ शानी जिन्होंने 60 के दशक में कहानियाँ लिखी। 'डाली नहीं फूलती' कहानी में उन्होंने मुस्लिम लड़कियों तथा उनके विवाह से संबंधित समस्याओं के संदर्भ में उनकी मानसिकता एवं संवेदनाओं का बहुत ही सुन्दर विश्लेषण किया है।

राजेन्द्र अवरथी भी 60 के दशक के ही कहानीकार रहे हैं। उनकी कहानियों में भी संवेदनात्मक तीव्रता की अच्छी पकड़ है। 'लमसेना', 'विभाजन', 'हिरोदा' उनकी इसी प्रकार की उल्लेखनीय कहानियाँ हैं।

मधुकर गंगाधर भी इसी दशक के कहानीकार रहे हैं। उन्होंने भी अपनी कहानियों में मनोवैज्ञानिक दृष्टि को अपनाए रखा था। मधुकर की कहानियों में मनोवैज्ञानिकता के संबंध में गोपाल राय अपनी किताब 'हिन्दी कहानी का इतिहास भाग-2' में कहते हैं कि " 'मनहूस' कहानी में गाँव से शहर आए एक बाल घरेलू नौकर की बदलती मनःस्थितियों का अंकन किया गया है।" (राय 166) उन्होंने अपनी 'हाथ की सफाई' कहानी में एक बाल पॉकेटमार के मन चोरी के दौरान उपजे विभिन्न प्रकार के भय, डर तथा चिन्ता का बड़ी ही सुन्दरता से विश्लेषण किया है। यह डर या भय उसके मन में चोरी करने से पहले उपजते हैं कि यदि वह पकड़ा गया तो उसके साथ क्या होगा। 'तीन लोक का राजा' कहानी में भी लेखक ने प्रेम की स्मृति से संबंधित संवेदनात्मक तीव्रता का अच्छा विश्लेषण किया है।

'हिन्दी कहानी का इतिहास भाग-2 में लेखक रॉबिन की कहानियों में मनोवैज्ञानिकता के संबंध में कहते हैं कि रॉबिन शॉ 'पुष्प' ने भी अपनी कहानी " 'सुबह के आँसू और औरत' में देह का सौदा करके जीवन व्यतीत करने वाली स्त्रियों की सामाजिक और मनोवैज्ञानिक स्थितियों का आंकन किया गया है।" (राय 170)

सन् 1960 से 1975 तक का समय भारत में राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक व सामाजिक आराजकता का युग था। जिसका असर साहित्य पर भी पड़ना वांछनीय था

समय परिवर्तनशील है, जिस कारण उसके प्रभाव में आने वाली प्रत्येक घटना, वस्तु अथवा मानव प्रवृत्ति में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है। साहित्य के विषय में भी यही हुआ। प्रेमचन्द-प्रसाद युग में जहाँ यथार्थवाद, ऐतिहासिकता अथवा कल्पना का समावेश था वहीं प्रेमचन्दोत्तर युग में कहानियों में काफी बदलाव आया। इस बारे में डॉ. दिनेश प्रसाद सिंह अपनी किताब 'कहानी: नई कहानी' में कहते हैं कि

“इस दौर में कहानी कई दौर से प्रभावित हुई। एक ओर इस कहानी पर गाँधीवाद का प्रभाव परिलक्षित होता है तो दूसरी ओर मार्क्सवाद की स्पष्ट छाप है, तीसरे इसे मनोवैज्ञानिक और मनोविश्लेषणवादी विचारधाराएँ आकर्षित करती हैं। इस कहानी में आदर्श के स्थान पर यथार्थ, सामाजिक के स्थान पर वैयक्तिक, राजनीति तथा धर्म के स्थान पर मनोविज्ञान की प्रतिष्ठा हुई।” (सिंह 07)

विष्णु प्रभाकर ने सातवें दशक में अपनी कहानियाँ निकाली। उनकी लगभग सभी कहानियों की मुख्य पात्र स्त्री ही रही। मध्यवर्गीय जीवन का उल्लेख करना उनका मुख्य केन्द्र था। 'बेमाता' और 'चन्द्रलोक की यात्रा' उनकी मध्यवर्गीय जीवन से संबंधित बेबसी, तंगी एवं घुटन भरी जिन्दगी के विवरण की मानवीय संवेदना से भरपूर कहानियाँ हैं। 'एक अनचीन्हा इरादा' नामक कहानी भी पति-पत्नी के आपसी लड़ाई-झगड़े से उत्पन्न बच्चे के मानसिक विकास पर पड़ रहे असर की सुन्दर कहानी है। 'चितकबरी बिल्ली' और 'अपने-अपने मूल्य' पशु संवेदना के उपर लिखी अच्छी कहानियाँ हैं।

भीष्म साहनी की कहानियों में भी गुलामी के समय दौरान युवा लोगों की अच्छी मानसिकता का वर्णन किया गया है। पंजाब के पारिवारिक संबंधों से संबंधित 'सिर का सदका' एक स्त्री की मानसिकता का वर्णन करने वाली उल्लेखनीय कहानी है। जिसमें पत्नी और प्रेमिका एक साथ रह रही हैं। भीष्म साहनी जी ने इस कहानी में उस पत्नी की मानसिकता का सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। 'सिफारिशी चिट्ठी' कहानी भी अत्यन्त मनोवैज्ञानिक तथ्यों की गहराई में जाकर लिखी गई कहानी है जिसमें एक

क्लर्क की डरपोक एवं दयनीय स्थिति का उसकी पत्नी के समेत चित्रण दिखाया गया है। 'अमृतसर आ गया' भी विभाजन की दहशत से भरे मासूम व निर्दोष लोगों की अच्छी मानसिकता प्रस्तुत करती हुई कहानी है।

मोहन राकेश ने आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य में अपनी एक खास पैठ जमा रखी है। आधुनिकता के दौर के चलते सामाजिक यथार्थता का इन्होंने उल्लेखनीय चित्रण किया है। इनके कहानियों, उपन्यासों एवं नाटकों में पारिवारिक संबंधों के विघटनों के संदर्भ में साक्षात् चित्रण मिलता है। इनकी 'ग्लास टैंक' कहानी में मछलियों के माध्यम से मध्यवर्गीय परिवार की रित्रियों की मानसिक दशा का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है। दर्शाया गया है कि किस प्रकार झूठी शान या फिर खोखले रीति रिवाजों के बदले यह औरतें अपनी सारी जिन्दगी ग्लास टैंक में तैर रही मछलियों की भान्ति बाहर निकले को तरसती है। किन्तु अपना सारा जीवन अन्दरूनी मन के असंगत विचारों में ही सोच सोच कर बीता देती हैं। लेखक ने कहानी को इतना घुमावदार बनाया है कि कदाचित् वह यह सोचते होंगे कि पाठक इसे खुद ही समझे। 'फौलाद का आकाश' कहानी भी ऐसी ही स्त्री की मनोवैज्ञानिक दशा की दास्तां है जो आधुनिक युग की पढ़ी लिखी तो है किन्तु अपने पति द्वारा बात बात पर उपेक्षित होती है। 'क्वार्टर' कहानी में भी आधुनिक युग के परिवार की बीमार मानसिकता से संबंधित कहानी है। जिसमें परिवार का प्रत्येक सदस्य एक दूसरे पर शक करता है, एक दूसरे की जिन्दगी में निरर्थक हस्तक्षेप करता है। परिवार बेचैनी, टकराव और खालीपन की जिन्दगी जीता है। 'खाली' कहानी में भी पति-पत्नी के नीरस संबंधों, उनके दोनों के रहते अकेलेपन एवं घुटन भरी जिन्दगी की कहानी है। 'धुँधला दीप' कहानी भी इसी प्रकार के पति-पत्नी के खटास भरे संबंधों की खाली पड़ी जिन्दगी की कहानी है। जो लेखक ने बड़े ही मनोवैज्ञानिक मन से उल्लेखनीय बनाई गयी हैं। अपनी लगभग सभी कहानियों में मोहन राकेश ने पारिवारिक विघटन का समावेश कराया है। कई बार पढ़ते-पढ़ते यह अहसास होता है कि कदाचित् यह सब कुछ लेखक ने खुद तो नहीं भोगा।

राजेन्द्र यादव ने भी इस नयी कहानी के दौर में अपना भोगा हुआ अनुभव ही कहानियों में उतार दिया है। उनकी कहानियों में नगरीय उलझनें अपने पूरे यौवन में दिखाई पड़ती हैं। उनकी 'प्रतीक्षा' कहानी जो कि एक लम्बी कहानी है, में एक ऐसी ही स्त्री की मानसिकता दिखाई गयी है जो अपने प्रेम में असफलता प्राप्त कर ताउम्र कुंवारी रहने का प्रण करती है। लेखक कदाचित् यह दर्शाने की कोशिश कर रहे हैं कि उस दशक में इसी प्रकार के प्रेम होते थे जो होते तो सभी को थे किन्तु सफल नहीं होते थे। 'अनुपस्थित संबोधन' कहानी भी कुछ इसी प्रकार की सम्बन्धों में जटिलता की कहानी है। इसमें अपने पति व लड़की के रहते माँ किसी ओर को चाहती है। लाख समझाने पर भी न मानने से उसका पति आत्महत्या कर लेता है। लड़की अपनी माँ के प्रति घृणा भाव रखती है। लेखक ने इस तरह के माहौल से उपस्थित वातावरण के कारण पारिवारिक सदस्यों की मानसिकता को बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। 'तनाव' कहानी में भी पत्नी के बेवजह बातों को दिल दिमाग में रखने के कारण मानसिक तनाव का अच्छा उदाहरण पेश किया है। 'अपने पार' लघु कहानी में एक बच्चे की मानसिकता का सुन्दर वर्णन है जिसके माता-पिता तलाक कारण अलग अलग जिन्दगी जी रहे हैं। 'घर की तलाश' भी एक बच्चे की मनोकल्पनाओं पर आधारित सुन्दर कहानी है। 'भविष्य के आस पास मंडराता अतीत' भी एक पिता ही अपनी ही कुरूपता के कारण छोड़ चुकी पत्नी व लड़की कारण पैदा हुई अकेलेपन भरी मानसिकता का सुन्दर चित्रण है। तनाव में आकर वह खुद को आग लगा लेता है किन्तु मरने की अपेक्षा उसका चेहरा ओर भी कुरूप हो जाता है। अपनी लड़की को मिलने के बहाने भी ढूँढता है। पर मन में आशंकाओं के चलते वह उससे नहीं मिल पाता। 'मेहमान', 'टूटना' और 'सिलसिला' भी मध्यवर्गीय परिवार की हीनभावना, डर, कुंठा, झूठी शान बनाने, अशंकाओं तथा भावनाओं के वेग में बहने वाली सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ हैं जिनमें लेखक ने सुन्दर संवादों के माध्यम से अच्छा मनोवैज्ञानिक चित्रण पेश किया है।

कमलेश्वर भी आधुनिक हिन्दी नयी कहानी के रचयिता में अपना स्थान रखते हैं किन्तु यदि उनकी लेखनी की बात की जाए तो ज्ञातव्य है कि

बीस सालों के अन्तराल के दौरान केवल 40 के लगभग ही उनकी कहानियाँ प्रकाशित हुई थी। इस बात से अंदाजा लगाया जा सकता है कि उनका ध्यान लेखनी की ओर कम तथा कहानी आन्दोलन की ओर ज्यादा था। उनकी 'लहर लोट गयी' कहानी एक ऐसी मध्यवर्गीय लड़की की कुंठाग्रस्त कहानी है जिसके तीन भाई हैं और तीनों की शादी हो चुकी है और खुद अभी तक कुंवारी बैठी है। लड़की की इस प्रकार की स्थिति में पैदा हुए मनोभावों का सुन्दर अंकन लेखक ने किया है। 'जो लिखा नहीं जाता' कहानी भी पति-पत्नी के एक दूसरे पर शंकाग्रस्त होने व तनावों से भरे संबंधों की मनोवैज्ञानिक चित्रण वाली कहानी है। कहानी के अंत तक पति-पत्नी और उसका प्रेमी तीनों ही तनाव सहित अकेलेपन के शिकार दिखाये गये हैं।

2.2 उपन्यास साहित्य मनोविज्ञान की दृष्टि से

हिन्दी कथा-साहित्य में कहानियों में मनोविज्ञान की परम्परा के साथ-साथ ही उपन्यास साहित्य में भी मनोविज्ञान की दृष्टि बाखूबी झलकती रही है। अपने शोध कार्य के केन्द्र बिन्दु के ध्यानहित हमारी ओर से सदैव इस बात से परहेज किया गया है कि कौन सा उपन्यास हिन्दी का पहला उपन्यास है, या उपन्यास दृष्टि के ध्यानहित किसे पहला उपन्यास माना जाए अथवा वह किस लेखक की रचना रही है। हमने कहानियों की तर्ज पर ही उपन्यास साहित्य पर भी इसी प्रकार कार्य करने का प्रयास किया है कि किन-किन उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक तथ्य प्रदर्शित होते हैं या फिर किन लेखकों ने किस मनोवैज्ञानिक तथ्य या सम्प्रदाय के ध्यानहित उपन्यासों की रचना की।

हिन्दी साहित्य की विडम्बना देखिए कि उपन्यास तथा कहानी के अन्तर्गत उपन्यास की अपेक्षा कहानी जीवन से संबंधित किसी एक घटना का सुसंगत, संगठित व सजीव चित्रण होने के बावजूद भी लोगों के दिलो-दिमाग में उपन्यासों ने अपनी एक खास जगह बनाई। हालाँकि शुरुआती दौर में उपन्यास लिखे जाने के बावजूद भी तकरीबन एक शताब्दी तक किसी को इसकी सुध तक नहीं थी। 1870 में लिखे गये 'देवरानी जेठानी की कहानी' की तरफ लोगों का लगभग 100 साल तक ध्यान ही नहीं गया था। किन्तु

चन्द्रकांता जैसे उपन्यासों को पढ़ने हेतु लोगों ने हिन्दी तक सीखी। किन्तु कहानी के मामले में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। किन्तु उपन्यास के संबंध में एक यह बात भी सामने निकल कर आती है कि उन्नीसवीं सदी के मध्य से ही भारत में भाषा संबंधी तकरार इतनी ज्यादा हो चुकी थी कि एक बार तो यह भी लगने लग गया था कि भारत में से कदाचित् हिन्दी खत्म ही हो जाएगी। क्योंकि मुस्लिम लोग फारसी को इस्तेमाल करना चाहते थे और अंग्रेज अंग्रेजी भाषा को अपने सरकारी कार्य का माध्यम बनाना चाहते थे। इस खींचतान के बीच सामान्य हिन्दी पाठक की ओर सोचने का किसी ने कोई ज्यादा ध्यान ही नहीं दिया था। वो तो हिन्दी भाषी लोगों को फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यापक लल्लू लाल जी का धन्यवादी होना चाहिए, जिन्होंने हिन्दी को बचाने के लिए अपने प्रयास जारी रखे। विभिन्न प्रांतों में से भी हिन्दी भाषी प्रेमियों की ओर से कुछ अन्दोलन जारी रहे जिन्होंने अपने प्रयासों के माध्यम से हिन्दी को जीवन दान दिया। हिन्दी समाचार पत्रों ने भी हिन्दी को बचाने में अपनी विशेष भूमिका निभाई। भारतेन्दु जी द्वारा निकाले गये 'कवि वचन सुधा' पत्र ने हिन्दी भाषा के प्रति लोगों में रुचि उत्पन्न की तथा हिन्दी को बचाने में अपना विशेष सहयोग दिया। 70 के दशक में और भी अनेक सम्प्रदाय उठ निकले थे जिन्होंने भारतीय समाज में हिन्दी भाषा व स्त्री शिक्षा के प्रचार प्रसार में अपना विशेष सहयोग दिया। इन सभी क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं की बदौलत हिन्दी का पहला उपन्यास 'देवरानी जेठानी की कहानी' लिखा गया। तदोपरान्त उपन्यास लेखन का कार्य धीरे-धीरे जोर पकड़ता गया। भारत में 1800 के पश्चात् प्रेस की स्थापना के साथ ही उपन्यास छपने का कार्य जोर पकड़ने लगा था। दरअसल यह प्रेस ईसाई मिशनरियों के धर्म प्रचार के लिए ही खुली थी। जिनके सहाने उपन्यास व कहानियाँ छपने का कार्य चलने लगा।

हिन्दी साहित्य में तकरीबन सवा सौ साल पहले से चली आ रही उपन्यास विधा में से अनेक रूप परिलक्षित होते हैं। 19वीं सदी के सातवें व आठवें दशक के दौरान लिखे गये लगभग सभी उपन्यास जीवन की यथार्थता से या कल्पना से जुड़े थे। इन सभी में से केवल बाल कृष्ण भट्ट जी द्वारा

रचित 'श्यामा स्वप्न' ही मनोवैज्ञानिक पद्धति के अनुसार स्वप्न पर आधारित है। हालाँकि इसमें मनोवैज्ञानिक उपन्यास या मनोवैज्ञानिक तथ्य जैसी कोई विशेष बात नहीं है फिर भी जाने अनजाने में इसमें स्वप्न पर लेखनी चली है। किन्तु हिन्दी में उपन्यास लिखने की परम्परा से पहले ही मराठी व बँगला में उपन्यास लिखने की परम्परा की शुरुआत हो चुकी थी। उपन्यासों की इस शृंखला में मनोवैज्ञानिकता के पहलुओं के संबंध में डॉ. सीमा श्रीवास्तव अपनी किताब 'हिन्दी साहित्य में मनोविज्ञान' में कहती हैं कि "मनोविज्ञान उपन्यास की पहचान को सबसे पहले पत्र शैली में लिखे गये उपन्यासों से जोड़ा गया है जिसमें पाठक पत्रों के बहाने चरित्रों के अंतः व्यापार से जुड़ता चला जाता है।" (श्रीवास्तव 97)

हिन्दी साहित्य में उपन्यास साहित्य के इतिहास पर चर्चा करें व प्रेमचन्द युग को मध्य रख कर उससे पूर्व व पश्चात् की शृंखला को रखना ही वांछनीय रहेगा। क्योंकि पूरे भारतवर्ष के अतिरिक्त संसार का लेखकवर्ग एवं पाठकगण भी उन्हें उपन्यास सम्राट मान चुके हैं। प्रेमचन्द पूर्व युग को भारतेन्दु युग का नाम दें तो उस युग में केवल इतना तो कहा जा सकता है कि उपन्यास लेखन की कम से कम जमीन तो तैयार हो ही चुकी थी। उस युग के उपन्यास केवल मनोरंजन प्रधान ही रहे। तिलिस्मी, ऐयारी, जासूसी इत्यादि उपन्यासों से समाज को कोई दिशा नहीं मिली। किसी एकाध उपन्यास में किसी पात्र का अच्छा मानसिक चित्रण मिलता है। इस संबंध में गोपाल राय अपनी किताब 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास' में कहते हैं कि

"चन्द्रकांता संतति के अन्तिम हिस्से में खत्री जी ने भूतनाथ नामक एक ऐयार पात्र की सृष्टि की है जो नैतिक मूल्य के ढ्रुद्ध का शिकार है। ...खत्री जी ने भूतनाथ के इस मानसिक ढ्रुद्ध का अच्छा चित्रण किया है। यह ढ्रुद्ध मध्यवर्गीय मानस के ढ्रुद्ध का प्रतिबिम्ब भी बन गया है।" (राय 122)

भारतेन्दु युग के दौर में जहाँ देवकी नन्दन खत्री, गोपाल राम गहमरी, किशोरी लाल गोस्वामी इत्यादि लेखकों ने समाज को दिशा देने वाले उपन्यास

साहित्य को इस प्रवृत्ति से परे ही रखा तो वहीं दूसरी ओर भारतेन्दु व उनके सहयोगी साथी बाल कृष्ण भट्ट समेत अन्य कई लेखक उपन्यास साहित्य को समाज के साथ जोड़ने के कार्य में संलग्न थे।

प्रेमचन्द युग के अनुसार यदि हम प्रथम लेखक के रूप में मुंशी प्रेमचन्द जी को लेते हैं तो हम जानते ही हैं कि यह पहले ऊर्दू में लिखा करते थे और बाद में हिन्दी की तरफ उन्मुख हुए। प्रथम वह हिन्दी कहानीकार के रूप में, पश्चात् वह हिन्दी उपन्यास के रूप में विख्यात हुए। वह अपनी सीधी चाल व भाषा के चलते मानवीय व्यवहार को निहारते परखते व उसका विश्लेषण करते रहे जिस कारण वह काफी आगे निकल गये। एक बात यहाँ कहना जरूरी हो जाता है कि मनोवैज्ञानिक अध्ययन हेतु हम चेतन अवचेतन मन की बात करते हैं। किन्तु जब तक हमें चेतन मन की जानकारी नहीं है। तब तक हम अवचेतन मन के बारे में कुछ नहीं कह सकते क्योंकि चेतन मन की क्रियाओं के बदले ही हम अवचेतन तक पहुँच पाते हैं। बिना चेतनता की जानकारी के अवचेतनता के बारे में विचार देना साहित्य और समाज दोनों के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। इसलिए सबसे पहले चेतनता के संबंध में जानकारी वांछनीय है। यह कार्य प्रेमचन्द जी ने बहुत अच्छे से कर दिखाया है। उन्होंने केवल चेतनता से संबंधित मानवीय व्यवहार को इस कदर परोसा कि वह सभी घटनाएँ सजीव हो उठी। इन्होंने अपना पहला हिन्दी उपन्यास 'सेवासदन' लिखा जिसमें उन्होंने वेश्या को आधार बना समाज का चित्रण किया है। उनके इस उपन्यास से पहले भी कई उपन्यास वेश्याओं पर लिखे जा चुके थे। उनकी इसी विचारधारा के आधार पर गोपाल राय अपनी किताब 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास' में कहते हैं कि "उन्होंने सामाजिक-आर्थिक कारणों के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक कारण को भी जोड़कर उसे अधिक विश्वसनीय बना दिया है।" (राय 128) उन्होंने इस उपन्यास में स्त्रियों के प्रति समाज के परम्परागत दृष्टिकोण को पर भी तमाचा जड़ा है। देवराज उपाध्याय उपन्यासों के बदलते स्वरूप के संबंध में मुंशी प्रेमचन्द जी के उपन्यास 'सेवासदन' के माध्यम से अपनी किताब 'आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

“सेवा सदन के प्रथम परिच्छेद में ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हम ऐसे औपन्यासिक के सम्पर्क में आ रहे हैं जिसका ध्यान बाह्य स्तूपकार घटनाओं की सजावट के साथ हृदय के अन्तर्द्वन्द्व की ओर भी गया है।”

(उपाध्याय 75)

इस उपन्यास की प्रमुख नायिका ‘सुमन’ के माध्यम से नारी जाति के प्रति चली आ रही समाज की नीचता भरी सोच को बदलने का अपने दम पर जोखिम उठाया है। समाज मनोविज्ञान के बहुत सारे तथ्य इस उपन्यास में हमें प्राप्त होते हैं। हालाँकि यह उपन्यास मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की अवहेलना करता हुआ उस समय की सामाजिक यथार्थता का चित्रण अधिक करता है। किन्तु उनके चित्रण की शैली इस उपन्यास के अनुसार असभ्य न होकर सभ्य रही है। इसमें उन्होंने वेश्याओं की संवेदनाओं से संबंधित अनेक दृश्य प्रस्तुत कर उपन्यास को नया आयाम दिया है।

देवराज उपाध्याय जी अपनी किताब ‘आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान’ में प्रेमचन्द की उपन्यास कला के विकास के संबंध में आगे लिखते हैं कि “ज्यों-ज्यों प्रेमचन्द की उपन्यास कला का विकास होता गया है त्यों त्यों इस मनोवैज्ञानिक जटिलताओं एवं पेच के रहस्योद्घाटन के अवसर भी प्रेमचन्द जी ने प्राप्त कर लिए हैं।” (उपाध्याय 80) प्रेमचन्द जी के रंगभूमि व कर्मभूमि जैसे उपन्यासों में समाज मनोविज्ञान विभिन्न दृश्य परिलक्षित होते हैं। उनमें कहीं कहीं हीनभावना तथा ईर्ष्या से संबंधित साक्षात् दृश्य परिलक्षित होते हैं। अपने उपन्यासों में उन्होंने मानवीय व्यवहार को इतनी सूक्ष्मता से चित्रण किया कि उनमें से मनोवैज्ञानिक तथ्य स्वयं ही बाहर निकल आते हैं। उनके ‘वरदान’ उपन्यास में बाल मनोविज्ञान के अन्तर्गत अबोध बालक की मिठाई, कहानियों और पैसे के प्रति जिज्ञासा व कोतूहल को बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। ‘सेवासदन’ उपन्यास में बाल मनोविज्ञान के अन्तर्गत जैनेन्द्र और अज्ञेय की भान्ति यह दिखाया गया है कि अगर बच्चों की बचपन से ही सही शिक्षा-दीक्षा, पालन-पोषण एवं खान-पान की तरफ ध्यान न दिया जाय तो बच्चों का व्यक्तित्व प्रभावित होता है। इस उपन्यास में

भी माता-पिता के अतिशय लाड़-प्यार से बच्चे की आदतें खराब हो जाती है। वह विद्रोही किस्म का हो जाता है। अगर जरूरतें पूरी न हों तो उसके लिए वह चोरी करता है; लड़ाई करता है। अपनी गलती छिपाने के लिए दूसरों को दोष देता है। प्रत्येक समय उसके मन में यह डर बना रहता है कि उसे कोई डांट न दे। वह अपने ही घर में भी डरा-डरा सा रहता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचन्द जी ने बाल्य जीवन से संबंधित घटनाओं का अच्छा मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। यथार्थवाद के दर्शन के साथ साथ आदर्शवादिता से समझाने का दम भी रखते हैं। 'प्रेमाश्रय' उपन्यास में भी तेजशंकर एवं पदमशंकर नामक माता-पिता के संरक्षण के अभाव में उदण्डी और अवारा हो जाते हैं। किसी की कही सुनी बातों में आकर या निराधार कल्पना के कारण अपनी जिन्दगी गवां बैठते हैं। 'निर्मला' उपन्यास में भी बच्चों की जिज्ञासा का अच्छा उदाहरण प्रेमचन्द जी ने प्रस्तुत किया है। 'कायाकल्प' में भी प्रेमचन्द जी ने यह दिखाया है कि बच्चों के मन में जिज्ञासा उत्पन्न होती रहती है। जो भी उसे शांत करता है। वह उन्हें अच्छा लगता है और जो नहीं कर पाता वह उन्हें बुरा लगता है। इस उपन्यास में मनोरमा नामक तेरह वर्ष की लड़की अपने माता पिता से बात करने या प्रश्न पूछने से डरती है क्योंकि उसका मजाक उड़ाया जाएगा किन्तु अपने अध्यापक चक्रधर से प्रश्न पुछती है, तर्क-वितर्क करती है और अपनी जिज्ञासा को शांत करती है। उसे पता है कि उसका यहाँ मजाक नहीं उड़ाया जाएगा। प्रेमचन्द जी बच्चों के अभिभावकों से आग्रह करते हैं कि बच्चों की जरूरतों, इच्छाओं, जिज्ञासाओं की तरफ विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। उनकी जिज्ञासा की शान्ति आवश्यक है। यही उनकी मूल प्रवृत्ति बन जाती है और उनके व्यक्तित्व का निर्माण करती है। यदि इनमें कोई कमी रह जाए तो यह ग्रन्थि बन जाती है और बच्चे असामान्य हो जाते हैं। पारिवारिक संस्कार बच्चे के व्यक्तित्व निर्माण में अहम रोल अदा करते हैं। बालकों के संरक्षण हेतु उसे अनुकूल रखना चाहिए।

इसी प्रकार उनके 'कर्मभूमि' में अमरकांत, 'गोदान' की रूपा और सोना, 'निर्मला' की कृष्णा इत्यादि बालकों का प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में किसी न किसी कारणवश असामान्य व्यवहार दिखा, माता-पिता को

संस्कारहीन, स्नेहहीन दिखा उनका असर बच्चों के व्यक्तित्व पर दिखाकर एक तरफ तो बाल मनोविज्ञान पर खुद की पकड़ दिखाई है तथा दूसरी तरफ बच्चों के सुन्दर व्यक्तित्व निर्माण हेतु अभिभावकों से उनकी तरफ प्रत्यक्ष रूप से ध्यान देने का आग्रह किया है। प्रेमचन्द उपन्यास संबंधित कहते हैं कि यह तो मानव जीवन का एक चित्र मात्र है। इसका मुख्य कार्य व्यक्ति के रहस्यों को खोलना एवं उसकी क्रियाओं पर प्रकाश डालना है।

जैनेन्द्र ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को एक नया आयाम देने को कोशिश की। उन्होंने सामाजिक यथार्थ के साथ साथ मनोवैज्ञानिक यथार्थ पर भी अपनी लेखनी चलाई। उन्होंने मानवीय जीवन के अनेक पहलुओं को उधेड़ा। उन्होंने समाज में पैदा होती समस्याओं को नहीं वरन् उनके पैदा होने के कारणों को समझा और अपने उपन्यासों के माध्यम से लोगों को समझाने की कोशिश की कि इन सभी प्रकार की समस्याओं की जड़ मानवीय कुंठा, शंका, उलझनें, विकार इत्यादि हैं जो मानव के भीतर बिराजमान हैं। मीणा प्रमोद द्वारा संपादित 'मूक आवाज' हिन्दी शोध जर्नल में डॉ. दीप्ति गौड़ अपने हिन्दी शोध लेख में जैनेन्द्र की लेखनी के संबंध में कहते हैं कि

“हिन्दी के विराट साहित्याकाश में जैनेन्द्र कुमार का रचनात्मक आलोक तेज पुंज के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है। उन्होंने प्रेमचन्द जी के काल में ही सामान्तर कथा-परम्परा का प्रखर प्रस्थान प्रस्फुटित किया। जैनेन्द्र कुमार हिन्दी के एक ऐसे विरल एवं विदग्ध रचनाकार हैं, जिन्होंने भाषा और साहित्य को अपनी मौलिकता, सहजता व दार्शनिकता से समृद्ध किया। हिन्दी साहित्याकाश के रचनाकार आलोक पुंज एवं मनोविश्लेषणवादी लेखन के पुरोधा श्री जैनेन्द्र कुमार का व्यक्तित्व एवं कृतित्व अपने आप में अनूठा है। जैनेन्द्र जी ने हिन्दी के एक प्रौढ़ साहित्यकार के रूप में अपनी विभिन्न विधाओं की रचनाओं के लेखन द्वारा साहित्य की श्रीवृद्धि की है।” (डॉ.दीप्ति गौड़ 39)

जैनेन्द्र के कथा-साहित्य लेखन में गेस्टाल्टवादी मनोविज्ञान का दृष्टिकोण साफ झलकता है। जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों के माध्यम से जहाँ एक तरफ समाज

में बसे लोगों के दिल और दिमाग की नब्ज़ पकड़ने की कोशिश की, वहीं दूसरी ओर औरत से जुड़े प्रत्येक पहलू पर मनोवैज्ञानिक विधि से अपनी विचारधारा रखी। उनके उपन्यासों को पढ़कर पाठक सोचने पर मजबूर हो जाता है कि उन्होंने नारी जीवन व उससे संबंधित समस्याओं को कैसे इतने नजदीक से देखा है। जैनेन्द्र ने व्यक्ति के बाहरी जीवन की अपेक्षा भीतरी मन की द्वन्द्वआत्मक स्थिति, उलझन, विवशता, भय, चिन्ता इत्यादि के चित्रण में अपनी लेखनी चलाई और जिसमें वह सफल भी रहे। देवराज उपाध्याय अपनी किताब 'आधुनिक हिन्दी साहित्य और मनोविज्ञान' में जैनेन्द्र के संबंध में कहते हैं कि उनका मानना था कि

“हम उसे ही क्यों न जाने जिसे लेकर सब कुछ है। हम नदी में सीधे ही डुबकी क्यों न लगायें जिसके जीवन रस से अभिसंचित होकर तट हर खड़ी विश्व वाटिका फल फूल रही है। उसी को पा लेने पर हम मानव और जीवन को पा सकेंगे। यों तो सारा संसार जंजाल है उसे पकड़ने के लिए मुट्ठी मारो तो अन्दर से वह खाली ही निकलेगी। मनुष्य अपने इर्द गिर्द जाला फैला कर अपने मन को पकड़ना चाहता है न। बस उसी मन को पकड़ो। मनुष्य इतना तो कर ही सकता है। उसे उतना ही करना चाहिए। कथाकार भी तो मनुष्य ही है। वह और कुछ करने क्यों जाय ?” (उपाध्याय 128)

उन्होंने अपने कथा साहित्य में बाहरी आवरण को हटा मन के भीतर गहरी वेदनाओं को उठाया है जिनके आधार पर व्यक्ति बाहरी आचरण करता है।

उनका 'परख' उपन्यास इसी विवशता पर आधारित है। जिसमें बाल विधवा युवती से एक मर्द के प्रेम की दासता का, उसके सामाजिक बंधनों की उलझन की विवशता का, वातावरण से प्रभावित द्वन्द्वआत्मक स्थिति का बाखूबी चित्रण प्रस्तुत है। 'सुनीता' उपन्यास में तो उन्होंने मानवीय मस्तिष्क में दबी कुचली भावनाओं के उजागर करने के साहस का परिचय देते हुए सामाजिक दबावों को भी सहन किया। इस उपन्यास में उन्होंने सर्वप्रथम पुरुष प्रधान समाज में स्त्री के अदम्य साहस, उसके दिल की भावनाओं की खुलकर

प्रस्तुतिकरण का, उसके चुनौतीपूर्ण कार्यों का विवरण बहुत ही सुन्दरता से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में घटनाओं की अपेक्षा मानवीय मानसिक विकारों के व्यापारों का बहुलता से चित्रण की प्रस्तुति है। पति पत्नी के मानसिक संबंधों के ध्यानहित चतुरसेन शास्त्री व भगवती प्रसाद वाजपेयी जी ने भी भरपूर प्रयास किया। भगवती प्रसाद वाजपेयी जी ने अपने उपन्यासों में प्रेम के चित्रण के माध्यम से मनोवैज्ञानिक चित्रण देने की कोशिश तो की है लेकिन वह बात नहीं जो जैनेन्द्र की प्रस्तुतिकरण में पाई गयी है। उनका 'कल्याणी' उपन्यास इसी तर्ज पर है। इसमें जैनेन्द्र ने आधुनिक नारी की मानसिकता, उसके शोषण का बेहतरीन पक्ष प्रस्तुत किया है। हालाँकि यह उपन्यास सामाजिक यथार्थता को अधिक प्रस्तुत करता है। किन्तु फिर भी शोषण के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से उपन्यास उल्लेखनीय रहा है। इनका 'त्यागपत्र' उपन्यास भी इसी तर्ज पर अपनी उल्लेखनीयता को सिद्ध करता है। इसमें मुख्य पात्र मृणाल नारी आचार संहिता जो कि पुरुष प्रधान समाज में न तो नारी को जीने देता है, न प्यार करने देता है और न ही चैन से मरने देता है, के प्रति ऐसा विद्रोह खड़ा करती है कि समाज उसके इस प्रकार के व्यवहार के प्रति आचम्भित हो उठता है और मृणाल इसके लिए दंडित भी होती है। इनके उपन्यासों के बारे में सीमा श्रीवास्तव अपनी किताब 'हिन्दी साहित्य में मनोविज्ञान' में कहती हैं कि "‘त्यागपत्र’ मनुवादी हिन्दू व्यवस्था पर बौखलाहट पैदा करने वाला उपन्यास है।" (श्रीवास्तव 85)

जैनेन्द्र के उपन्यासों में अन्य की अपेक्षा शारीरिक चित्रण कम व आत्मिक ज़्यादा है। वह प्रेम को ही सृष्टि का मूलाधार मानते हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में पति-पत्नी को प्रेमी व प्रेयसी के रूप में दिखाया है और पत्नी या प्रेयसी की मनोरिस्थिति का वर्णन प्रेमी की अपेक्षा में अत्यधिक प्रस्तुत किया है। वे अहं को खत्म करने हेतु आत्म समर्पण को ही स्वोपरि मानते हैं। देवराज उपाध्याय जैनेन्द्र जी के उपन्यासों की कसौटी के बारे में अपनी किताब 'आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

“जैनेन्द्र के उपन्यास सच्चे अर्थ में मनोवैज्ञानिक कहे जा सकते हैं। यों वे सब उपन्यास जिनमें मानव के आन्तरिक जीवन के चित्रण का प्रयत्न किया गया हो मनोवैज्ञानिक कहे जा सकते हैं। कौन ऐसा उपन्यास है जिसमें पात्रों के आन्तरिक जीवन पर थोड़ा प्रकाश न पड़ता हो ? रानी केतकी की कहानी तथा खत्री जी के उपन्यासों में भी तो पात्रों के राग, विराग, ईर्ष्या, क्रोध, द्वेष, प्रेम इत्यादि का वर्णन रहता ही था। प्रेमचन्द्र ने भी तो पात्रों के आन्तरिक चेतना प्रवाह का चित्रण किया ही है पर फिर भी वह वैज्ञानिक उपन्यासों की श्रेणी में नहीं रखे जा सकते। कारण कि उनके पात्र दुनिया के बाहरी रंगमंच पर अधिक क्रियाशील है।...पर जैनेन्द्र के पात्रों के चारों ओर जगत परिभ्रमणशील है, वे बाहर जाते भी हैं पर बाहर न होकर अन्दर ही अधिक रहते हैं।” (उपाध्याय 132)

जैनेन्द्र का लगभग सारा कथा साहित्य नर-नारी के जीवन के अन्तःसम्बन्धों पर ही आधारित रहा है। उन्होंने नर नारी की आपसी अभिनायाओं का अच्छा चित्रण प्रस्तुत किया है। उन्होंने नर की नारी के प्रति अपनी हीनता एवं अहं का तथा नारी का नर के प्रति दबावपूर्वक तथा शंकालु व्यवहार जैसे मुद्दों पर अपने सम्पूर्ण कथा साहित्य में उल्लेखनीय चित्रण किया है। स्त्री का पर-पुरुष की ओर झुकाव दिखाकर आधुनिक नारी के कुण्ठाग्रस्त मन पर प्रकाश डाला है। इनकी कहानियों में स्त्री-पुरुष की मानसिक गतिविधियों की सुन्दर अभिव्यक्ति है। ‘नारी मनोविज्ञान’ पर अच्छी पकड़ के कारण वह इतना सूक्ष्म चित्रण कर पाये हैं। इनकी अभिव्यक्ति से ज्ञात होता है कि यह मानव मन में बैठकर उसका विश्लेषण करने की क्षमता रखते हैं। मन की सूक्ष्म हरकतों को ढूँढने में वह दक्ष हैं।

विश्वम्भरनाथ कौशिक भी प्रेमचन्द्र की श्रेणी के ही लेखक हैं। इन्होंने अपने सम्पूर्ण कथा लेखन में पात्रों के चरित-चित्रण में मनोविज्ञान का सहारा लिया। इनके कथा के पात्रों में नारी वेदना का अहम रोल होता है। जिससे पता चलता है कि इन्होंने नारी मनोविज्ञान पर अच्छी दक्षता रखते थे। अपने

उपन्यास 'माँ' और 'भिखारिणी' में इन्होंने नारी हृदय का अच्छा मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

हिन्दी साहित्य में अज्ञेय की लेखनी का डंका बजता है। उनके उपन्यासों में समसामयिक समस्याओं की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। इनका 'शेखर: एक जीवनी उपन्यास जो कि अभी तक दो भागों में प्रकाशित हो चुका है। तीसरा अभी शेष है, हिन्दी साहित्य में अपनी एक अच्छी पैठ सिद्ध कर चुका है। अगर मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की श्रेणी की चर्चा करें तो यह उपन्यास मनोविज्ञान के कार्य-कारण तथ्य के आधार पर चलता है। अज्ञेय के उपन्यासों के में आयी भावनाओं के संबंध में सीमा श्रीवास्तव अपनी किताब 'हिन्दी साहित्य में मनोविज्ञान' में कहती हैं कि "अनुभूतियाँ विशेषतः वे जिनका संबंध मानव के प्रौढ़ जीवन की असंगतियों, विकृतियों और असाधारणताओं से है, उनका मूल उसके बाल्यकाल के संघर्ष और दुःखद अनुभूतियों से होता है।" (श्रीवास्तव 161) दरअसल यह उपन्यास फ्रायड के मनोवैज्ञानिक 'नियतिवाद सिद्धांत' पर आधारित है जिसके अनुसार यह मान्यता है कि बचपन के पहले छह वर्षों के भीतर जिस प्रकार का वातावरण उपजित होकर बच्चे का पालन पोषण होता है, उसी के आधार पर उसका सारा जीवन निर्भर करता है। यदि बच्चे को अच्छा या बुरा वातावरण प्राप्त होता है वह उससे उसी प्रकार प्रभावित होता है। इस उपन्यास में भी ऐसा ही होता है। शेखर को बचपन से ही अपने भाई-बहनों की गिणती ज्यादा होने के कारण माता पिता द्वारा उससे स्नेह, लगाव इत्यादि से किनारा करने के कारण पैदा हुई हीन भावना आगे चल कर उसे असामान्य बना देती है। पिता का अत्यंत कठोर व्यवहार व माता का स्नेहहीन व्यवहार उसे कठोर बना देता है। उसके व्यक्तित्व में विद्रोहीपन पनप जाता है। उसके सामान्य जीवन में बाधा उत्पन्न होती है। प्यार हेतु तरसते शेखर के लिए ऐसा समाज बेमानी है, प्रतिकूल है। वह अपनी मां के प्रति विद्रोही है। उसके मन में कई प्रश्न हैं। किन्तु उसका उसे उत्तर नहीं मिलता। लेखक ने इन सभी वातावरणिक परिस्थितियों का मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुरूप चित्रण किया है।

उनका 'नदी के द्वीप' उपन्यास एक प्रकार की प्रेमकथा ही है। जिसमें विभिन्न प्रकार के पात्रों का मानसिक चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में गोपाल राय अपनी किताब 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास' में अज्ञेय की विचारधारा के बारे में कहते हैं कि "स्वयं अज्ञेय ने नदी के द्वीप को 'चार संवेदनाओं' का अध्ययन कहा है।" (राय 206)

भगवती चरण वर्मा बहूमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने साहित्य की प्रत्येक विधा पर अपनी लेखनी चलाई। उनका 'चित्रलेखा' उपन्यास काफी चर्चित रहा। यह उपन्यास मुख्यतः ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर लिखा गया योगी और भोगी क्रियाओं के प्रति पाप और पुण्य की परिभाषा पर आधारित है। पद्यात्मक शैली में लिखा गया यह उपन्यास मनोवैज्ञानिक पद्धतियों का सहारा लेकर चलता है। इसमें वर्मा जी ने योगी कुमारगिरि की मानसिक दुर्बलता के कारण उसके भीतर चलने वाले द्वन्द्व का सजीव चित्रण बड़े ही मनोवैज्ञानिक बुद्धि से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में वर्मा जी साहित्य के माध्यम से मनोविज्ञान एवं दर्शन का समन्वय कर मानवीय जीवन की सत्यता दिखाने की भरपूर कोशिश की है और सफलता भी हासिल की है। इस बारे में आचार्य ब्रह्मनारायण शर्मा अपनी किताब 'हिन्दी उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' में वर्मा जी के उपन्यासों में 'काम' के प्रति कहते हैं कि "मनुष्य की मूलप्रवृत्ति 'काम' को आपने भी महत्ता दी है और उसके प्रभाव को 'चित्रलेखा' में विज्ञान की कसौटी पर रखते हुए अपने ढंग से स्वीकार किया है।" (शर्मा 162)

इलाचन्द्र जोशी ने गद्य साहित्य के रूप में हिन्दी साहित्य को एक अनुपम भेंट प्रदान की है। हम यहां पर मनोवैज्ञानिक उपन्यास या उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक चित्रण की बात कर रहे हैं तो अभी तक हम जितने भी उपन्यासकारों का वर्णन कर चुके हैं उन सभी के विश्लेषण से यह ज्ञातव्य है कि उन्होंने अपने उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक तथ्यों का समावेश करवाया है। यूँ भी कह सकते हैं कि इस प्रकार से उन्होंने अपनी लेखनी चलाई है। कि उनमें सम्भावित मनोवैज्ञानिक तथ्य निकाले जा सकते हैं। किन्तु इलाचन्द्र

जोशी ही अकेले ऐसे उपन्यासकार हैं जिन्होंने मनोवैज्ञानिक तथ्यों या मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों को औपन्यासिक नामा पहनाया है। तात्पर्य यह कि कहा जा सकता है कि उन्हें मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों की पूर्णतः जानकारी थी। उन सिद्धांतों को उन्होंने अपनी कला या कल्पना से साहित्यिक रूप दिया। देवराज उपाध्याय अपनी किताब 'आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान' में स्वयं जोशी जी के विचार बतलाते हैं कि

“कथा साहित्य पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करते समय हमें सदा यह याद रखना चाहिए कि रोगों को, असाधारणताओं को, मनोविकृतियों को सार्थकता की दृष्टि से देखें, इस रूप में देखें कि ये व्यक्ति विशेष के जीवन के लिए मनोवैज्ञानिक अनिवार्यता है। यह स्वर्था नूतन दृष्टिकोण है और मनोविज्ञान के प्रगतिशील अध्ययन ने हमें प्रदान किया है।”
(उपाध्याय 266)

समाज में फैली अराजकता, द्वेष, ईर्ष्या, अकेलापन, नीरसता इत्यादि के संदर्भ में जोशी जी का मानना है कि व्यक्ति समूह में रहते हुए भी अकेला रह गया है। वह किसी अन्य से कोई मतलब नहीं रखना चाहता। उसने अपनी मानसिकता को संकुचित कर लिया है। इन सभी का केवल एक ही कारण है कि वह अपनी अन्तर्मन की आवाज सुनने की अपेक्षा बाह्य संसार में ज्यादा विश्वास करता है। वही बाहरी चमक दमक को ही सब कुछ समझ बैठा है। अपने परिवार की उपेक्षा कर बाहरी लोगों के संपर्क से अपनी खुशियाँ ढूँढता है। अपने चरित्र में दोहरापन लाता है। अन्दर से दुखी है एवं बाहरी चेहरे पर मुस्कराहट दिखाता है।

उनके 'सन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया' इत्यादि उपन्यासों में पात्रों के मन में मनोवैज्ञानिक कुंठाएँ हैं, जिनके कारण उन पात्रों का चरित्र असामान्य हो जाता है। जिस कारण व असामान्य कार्यों को अंजाम देते हैं तथा जो अंजाम नहीं दे पाते वह हीन भावना का शिकार हो असामान्य व्यवहार करते हैं। जोशी जी ने अचेतन मन की अथाह गहराइयों में छिपे रहस्यों को चेतन मन से जोड़कर समस्याओं के समाधान के पक्ष में थे

इसलिए उन्होंने अपने उपन्यासों को इसका आधार बना इन रहस्यों को खोलने की भरसक कोशिश की तथा लोगों को इन रहस्यों के प्रति लालायित होने को प्रेरित किया और समाधान के प्रति जिज्ञासा प्रवृत्ति को उत्तेजित किया।

‘सन्यासी’ उपन्यास जो कि जोशी जी का अहम उपन्यास है, में केन्द्रीय पात्र कामोतेजना में लिप्त हो दो-दो स्त्रियों से प्रेम का नाटक करता है। दोनों में असफलता प्राप्त कर असामान्य जिन्दगी जीता है। अपने मन में दमित काम की प्रवृत्ति के कारण वह उनकी भावनाओं को कुचल देने में अमादा रहता है। किसी भी व्यक्ति के जीवन को नरक बनाने में उसके अहं एवं उसकी दमित काम की प्रवृत्ति अहम रोल अदा करती है। ‘पर्दे की रानी’ उपन्यास में भी जोशी जी ने एक ऐसे ही पात्र का चित्रण किया है जो अपने पारिवारिक संबंधों के दोषों के कारण खुद को मानसिक रूप से बीमार कर लेता है तथा मानसिक अन्तर्विरोधों की दुविधा में जलता रहता है। इस उपन्यास में जोशी जी ने एक ही स्त्री के परस्पर दो विरोधी स्वभाव प्रस्तुत कर पाठकों को मानवीय व्यवहार को समझने की इच्छा को लालायित किया है। जोशी जी ने इस उपन्यास में मुख्य पात्र के अचेतन मन की क्रियाओं का इतना सुन्दर वर्णन किया है कि कदाचित् साधारण पाठक इसे समझ न सके किन्तु मनोविज्ञान का विद्यार्थी इसे सहज ही ले लेगा कि उपन्यासकार को फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद की पूर्णतः जानकारी है। जोशी जी ने इस सिद्धांत को अपनी कल्पना के माध्यम से, पात्रों के संवाद के माध्यम से, उनकी क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं के माध्यम से, प्रतीक-बिम्बों के माध्यम से ऐसा सशक्त बना दिया है कि पढ़ते हुए पाठक आचम्भित हो उठता है।

‘प्रेत और छाया’ उपन्यास में मुख्य पात्र पारसनाथ के जीवन में भटकना को बहुत ही सुन्दर तरीके से दिखाया है कि किस प्रकार वह अनेक स्त्रियों के सम्पर्क में आने के पश्चात् भी अकेला रह जाता है। वह किसी को भी समर्पित नहीं होता। इस उपन्यास में इडिपस ग्रंथि का वर्णन परिलक्षित है। इस उपन्यास में भी मुख्य पात्र संतान प्राप्ति से कुंठाग्रस्त हो सम्पूर्ण नारी

जाति से बदले की भावना से अपने सम्पर्क में आने वाली प्रत्येक स्त्री से संबंध स्थापित कर, उन्हें दुख पहुँचाकर आत्म संतोष प्राप्त करता है।

‘निर्वासित’ उपन्यास में भी मुख्य पात्र नीलिमा की अपने भावी पती के कारण माँ के प्रति पैदा हुए असाधारण व्यवहार व मनोरिस्थिति को बहुत ही सुन्दर तरीके से दिखाया गया है।

जोशी जी के उपन्यासों की एक खास विशेषता यह है कि उन्होंने अपने उपन्यासों के मुख्य पात्रों को किसी न किसी मनोवैज्ञानिक बीमारी से ग्रस्त दिखाया है। जब कोई पाठक उपन्यास का अध्ययन करता है तो उसे अहसास होता है कि वह खुद ही उपन्यास का मुख्य पात्र है। उनके कई उपन्यासों में परोक्ष की अपेक्षा अप्रत्यक्ष रूप से सम्मोहन विश्लेषण का भी पता चलता है। दरअसल जोशी जी के उपन्यास मनोरंजक दृष्टि से संबंधित न होकर साहित्य तथा मनोविज्ञान विषयों का आपसी गहन संबंध स्थापित करते हैं। यह उपन्यास साहित्य के माध्यम से मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों की कल्पना मिश्रित व्याख्या है जो आधुनिक व्यक्ति के मन को झन्कोर के रख देती है। उनके यह उपन्यास हिन्दी साहित्य की अमूल्य भेंट है। ‘हिन्दी उपन्यास का इतिहास’ में गोपाल राय का विचार है कि

“इलाचन्द्र जोशी को हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यास का पुरस्कर्ता माना जा सकता है। यों तो जैनेन्द्र कुमार ने उपन्यास में सामाजिक प्रश्नों की तुलना में मनोवैज्ञानिक स्थितियों को अधिक महत्त्व देने की पहल की, पर शुद्ध मनोवैज्ञानिक समस्याओं को केंद्र में रखकर उपन्यास लिखने की पहली की पहली कोशिश जोशी जी ने ही की। जोशी जी के उपन्यासों में चेतन और अवचेतन मन में छुपी हुई वासनाओं और कुंठाओं का ही अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। इनकी भावभूमियाँ एकांगी, संकुचित और छोटी रही हैं। जोशी जी के स्वतन्त्रतापूर्व उपन्यासों में मानसिक विकारों, मनोगन्धियों, कुंठाओं और मनोरोगों के शिकार असामान्य पात्रों का चित्रण प्रमुखता के साथ हुआ है।” (राय 199)

उन्होंने फ्रायड के मनोविश्लेषण प्रणाली के सिद्धांतों को अपने उपन्यासों में कहानियाँ बना पाठकों के मन में पड़ी मनोग्रन्थियों को खोलने का भरसक प्रयास किया।

बीसवीं सदी के चौथे दशक में राहुल सांकृत्यायन ने उपन्यास लेखन में कार्य शुरू किया था। उन्होंने लगभग सभी उपन्यास इतिहास से संबंधित ही लिखे। किन्तु उनमें गहरी मानवीय संवेदनशीलता तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण विद्यमान है।

आज़ादी के पश्चात् भगवती प्रसाद वाजपेयी जी ने लगभग 20 वर्षों तक अनेक उपन्यास लिखे। उनके उपन्यासों में भी स्त्री-पुरुष के बीच संबंधों को लेकर द्वन्द्वात्मक स्थिति, सामाजिक नैतिकता से विभिन्नता की विवश्ता, अन्तर्मन की आत्मा से मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व की स्थितियों जैसे हालातों पर बाख़ूबी चर्चा की गई है। वे प्रेमचन्द जी की भान्ति यथार्थ चित्रण के साथ-साथ भाव पक्ष से आदर्शवादी रहे हैं। वे जीवन जीने तथा जीवन की बातें करने में पूर्णतः फर्क समझते हैं।

देवराज उपाध्याय ने इसी सदी के पांचवे दशक में दो खण्डों में विभाजित 'पथ की खोज' नामक उपन्यास लिखा। इस उपन्यास का मुख्य बिन्दू प्रेम है। इस संबंध में उपन्यासकार कुछ प्रश्नों को लेकर मन से चिंतित है। वह सोचता है कि किसी भी स्त्री को अथवा पुरुष को किसी भी समय शादी से पहले अथवा पश्चात् किसी से भी प्रेम हो सकता है। यदि कोई कहता है कि नहीं हो सकता तो उनका मानना है कि क्यों नहीं हो सकता ? उनका 'अनय की डायरी' एवं 'भीतर बाहर' उपन्यास भी मनोवैज्ञानिकता का पुट लिए हमारे समक्ष उपस्थित है। इन सभी उपन्यासों में देवराज ने विवाह उपरांत बाहर के प्रेम को उपन्यासों का आधार बनाया।

धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता' भी मनोवैज्ञानिक पद्धति की ओर अग्रसर उपन्यास है।

विष्णु प्रभाकर ने भी अपने 'अर्धनारीश्वर' उपन्यास में नारी से संबंधित अपनी संवेदनाओं को उसकी नैतिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं के संदर्भ में, पुरुषों के साथ उसके जटिलता भरे संबंधों के संदर्भ में प्रस्तुत किया है। इस कार्य में उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना द्वारा छठे दशक में निर्मित 'सोया हुआ जल' तथा 'पागल कुत्तों का मसीहा' नामक दो उपन्यास हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। इन दोनों उपन्यासों के आकार के संबंध में आलोचकों के अनुसार प्रथम तो यह समस्या उत्पन्न होती है कि इन्हें उपन्यास माने या लम्बी कहानी। क्योंकि नियमानुसार यह उपन्यासों की कोटि में खरा नहीं उतरता। इनमें से 'सोया हुआ जल' नामक उपन्यास पूर्णतः फ्रायड के 'दमित काम वासना' एवं 'स्वप्न सिद्धांत' पर आधारित है। इस उपन्यास में प्रमुख नर-नारी पात्रों का एक दूसरे से सम्बन्धित होने पर भी सम्बन्धहीन दिखाया है। बाहरी वातावरण से प्रभावित होकर आन्तरिक मन से एक दूसरे से दूर रहते हैं। किसी ओर के प्रति यौनाकर्षण रखते हैं। शारीरिक रूप से एक दूसरे के पास रहते हैं किन्तु स्वप्न में किसी दूसरे को चाहते हैं। इस उपन्यास में दमित काम वासना एवं स्वप्नों की निरंतरता दिखाई दी है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अपने इस उपन्यास में मनोविश्लेषणवाद के तथ्यों का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है।

कृष्ण बलदेव वैद जी का 'उसका बचपन' उपन्यास भी प्रेमचन्द्र व जैनेन्द्र की अनेक कहानियों की भान्ति बाल संवेदना पर ही आधारित है। जिसमें उन्होंने एक बीरू नामक बच्चे को केंद्र बिन्दु मानकर उसके परिवार की सामाजिक स्थिति को असंतुलित बनाकर उसकी भावनाओं के साथ जोड़ा है। परिवार की विभिन्न समस्याओं तथा अभिभावकों के आपसी तनाव एवं झगड़ों से बीरू का जीवन कुंठित हो जाता है। उनका 'नर नारी' उपन्यास भी स्त्री-पुरुष के वार्तालाप के माध्यम से कामकुंठाओं के संबंध में, फ्रायड के सिद्धांत के अनुरूप पिता का पुत्री के प्रति व माता का पुत्र के प्रति संबंधों के संबंध में अच्छा वर्णन मिलता है।

मोहन राकेश का उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे' मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सफलता प्राप्त उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखक ने समकालीन समाज में लेखकों, पत्रकारों की जिन्दगी में चल रही अथवा किन्हीं कारणों पैदा हो रही आन्तरिक कलह का सुन्दर वर्णन है। इस उपन्यास में दाम्पत्य जीवन में पैदा हो रही कड़वाहट के कारणों, घुटन भरी जिन्दगी जीते लोग निराशा, कुंठा, उत्तेजना, बीमार मानसिकता से भरे लोग, केवल अपने आप से मतलब रखने वाले लोग अपने अपने बंद कमरों में जिन्दगी जीते हैं। असल में वह जिन्दगी जी नहीं रहे हैं। वह जिन्दगी काट रहे हैं। इस उपन्यास में हाई प्रोफाइल लोगों की सूनी व अकेली पड़ी जिन्दगी का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है। लेखक ने मनोवैज्ञानिक तथ्यों को बड़ी सुन्दरता से उठाया है। गोपाल राय अपनी किताब 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास' में कहते हैं। कि "मोहन राकेश के उपन्यासों में व्यक्ति मन की छटपटाहट, प्रश्न, बेचैनी आदि की प्रधानता है और उनकी कथा भाषा भी उनके अनुरूप है।" (राय 277) उनके 'अन्तराल' नामक उपन्यास में भी बेबी नामक छोटी लड़की की मनोदशा तथा क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का सुन्दर सजीव वर्णन मिलता है। बेबी के पिता की मौत हो चुकी है। माता उसे अपने निकट संबंधी कुमार के पास बंबई ले आती है। वह सोचती है कि इससे बेबी की देखभाल अच्छे से हो जाएगी। किन्तु वह तो एक बहाना था दरअसल वह कुमार के निकट आना चाहती थी। इन परिस्थितियों में बेबी की देखभाल प्रभावित होती है। वह शरारतें करती है तो माँ बात बात पर उस पर गुस्सा होती है। लेखक ने सारा वातावरण बड़े ही मनोवैज्ञानिक तरीके से प्रस्तुत किया है। 'न आने वाला कल' उपन्यास भी यौन प्रवृत्ति पर आधारित उपन्यास है।

उषा प्रियवंदा ने मनोवैज्ञानिक उपन्यास लेखन की परम्परा में अपना 'रुकोगी नहीं राधिका' सदी के सातवें दशक में पेश कर हिन्दी साहित्य में अपनी धमाकेदार प्रस्तुति दी। यह उपन्यास मनोवैज्ञानिक तथ्यों व सिद्धांतों को आधार बना अपनी अच्छी कारगुजारी प्रस्तुत करता है। लेखिका ने मुख्य पात्र राधिका को बचपन से ही मातृहीन दिखा अपने पिता के संग जीवन व्यतीत कर, सौतेली माता के संग रहते हुए विभिन्न प्रकार की मानसिक विकृतियों को

दिखाते हुए तथा उसके हल हेतु बदले की भावना के संग कार्य कर अपनी मानसिक संतुष्टि प्राप्त करने की चेष्टा करते हुए और शान्ति न मिलने पर भटकाव की स्थिति का भावपूर्ण प्रस्तुति दी है। लेखिका ने इस उपन्यास में एक स्त्री के मन में असंतोष की भावना का वर्णन करते हुए उसकी बिखरी तथा भटकती हुई मानसिकता का सुन्दर वर्णन किया है।

निर्मल वर्मा मुख्यतः उदासी, नीरसता, निराशा भरी चेतना के लेखक हैं। उनके 'लाल टीन की छत' में 'काया' नामक एक लड़की की यौनचेतना संबंधी भावनाओं एवं संवेदनाओं को लेखक ने अपनी कल्पना के माध्यम से रहस्य भरपूर, भ्रम, अकेलापन, निर्जीव वातावरण पैदा कर प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में अन्य और बालकों का भी चित्रण किया है जो अपने अभिभावकों की लापरवाही या ध्यान न देने की प्रवृत्ति के कारण, या अज्ञानता के कारण अपने आप को अनाथों की तरह महसूस कर लेते हैं और अपनी जिन्दगी को नर्क बना लेते हैं। उनके 'एक चिथड़ा सुख' उपन्यास में भी लेखक ने यह जताने का प्रयास किया है कि व्यक्ति समूह में रहते हुए भी अन्दर से अकेला है। अपने 'रात का रिपोर्टर' उपन्यास में भी लेखक ने विभिन्न प्रकार की मानसिक यातनाओं की दशाओं की प्रस्तुति दी है। इस संबंध में गोपाल राय अपनी किताब 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास' में निर्मल वर्मा जी के बारे में कहते हैं कि "यह तो जाहिर ही है कि निर्मल वर्मा व्यक्ति संवेदना के उपन्यासकार हैं। वे समाज की किसी भी बाह्य स्थिति का चित्रण करने में उतनी रुचि नहीं दिखाते जितनी उसके व्यक्ति मानस पर पड़े प्रभावों के अंकन में।" (राय 288) उनका 'अन्तिम अरण्य' उपन्यास भी इसी प्रकार उदासी व अकेलेपन की संवेदनाओं से भरपूर है। व्यक्ति विवेक व भावनाओं के संदर्भ में मनोवैज्ञानिक तथ्यों की प्रस्तुति में निर्मल वर्मा जी ने हिन्दी साहित्य में अपनी अच्छी पहचान बनाई है।

मृदुला गर्ग का 'वंशज' का बाल मनोविज्ञान की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें उच्च वर्ग में पल रहे एक बालक के विक्षिप्त होने की कथा है। मणिका मोहिनी कृत 'पारू ने कहा था' नामक उपन्यास में भी

एक पति द्वारा अपनी पत्नी को छोड़ देने तथा इस घटना से उनके बच्चे के मन पर पड़ रहे दबाव के कारण असमय ही उसके व्यस्क होने की कथा के माध्यम से उसकी मानसिकता को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। भीमसेन त्यागी का 'काला गुलाब' में भी संयुक्त परिवार के विभिन्न जटिलताओं के कारण बालक के विकास पर पड़ते प्रभाव को दिखाया गया है। रंग भेद के आधार पर एक बालक को हेय दृष्टि से देखने के कारण उस पर पड़ने वाले प्रभाव का अच्छा मनोवैज्ञानिक चित्रण है। इसी के साथ ही सूर्यबाला का 'यामिनी कथा', डॉ. महीप सिंह का 'यह भी नहीं' इत्यादि उपन्यास हिन्दी साहित्य में मनोवैज्ञानिक उपन्यास की कड़ी को आगे ले जाने का कार्य करते हैं।

कृष्णा सोबती ने भी अपने 'दिलो-दानिश' उपन्यास में इसी प्रकार की तकलीफों, उलझनों, एवं मनोभावों इत्यादि का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। उसके 'सूरजमुखी अन्धेरे के' नामक उपन्यास में भी दस वर्षीय 'रत्ती' नामक बालिका की मानसिकता का सुन्दर वर्णन है जिसमें उसका बचपन में हुए बलात्कार के बाद समाज की दी हुई मानसिक यातनाओं को दिखाया गया है। यह मानसिक यातनाएँ समाज के अन्य लोगों के साथ-साथ पारिवारिक सदस्य भी देते हैं। वह उस जुर्म की सजा भुगतती है जो उसने किया ही नहीं। जिससे उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रभावित होता है। इस प्रकरण में उसके माता पिता उसे कोई सहारा न देकर उसके तिरस्कार ही करते हैं। कारणवश बच्ची के मन में मनोविकार पैदा होते हैं। बलात्कार की शिकार बच्ची की मनोस्थिति को उपन्यास बना प्रस्तुत कर कृष्णा सोबती ने साहसिक उदाहरण पेश की है।

मन्जु भण्डारी ने मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि के अन्तर्गत 'आपका बन्टी' उपन्यास में एक बच्चे को आधार बना तथा उसके आसपास के वातावरण में मनोवैज्ञानिक व सामाजिक असंतुलता पैदा कर ऐसा सशक्त प्रस्तुतिकरण दिया है कि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की श्रेणी में श्रेष्ठ ला खड़ा किया है। इस उपन्यास में मन्जु भण्डारी ने फ्रायड के अचेतन मन की गहन अध्ययनता के

साथ अत्यन्त सूक्ष्म प्रस्तुति दी है। माता-पिता के अहम् के बीच पिसता हुआ बंटी का मन जिस प्रकार से यहाँ सामने लाया गया है। वह अत्यन्त दुर्लभ है।

यशपाल के 'अमिता' नामक उपन्यास में भी लेखक ने छह वर्षीय अमिता नामक बालिका के माध्यम से बाल्य स्मृतियों का बाखूबी चित्रण किया है। 'आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान' में देवराज उपाध्याय यशपाल के उपन्यासों में मनोवैज्ञानिकता के संबंध में कहते हैं कि

“यशपाल में यद्यपि मनोविश्लेषण का गहरा पुट है पर चूँकि उनके पात्रों पर बाह्य वातावरण का प्रभाव अधिक है, उनके व्यक्तित्व का निर्माण अन्दर से उभारने वाली अचेतन प्रेरणाओं से अधिक बाहर की परिस्थितियों, विशेषतः आर्थिक से होता है। अतः हम कहना ही चाहें तो उन्हें आचरणवादी मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार कह सकते हैं।” (उपाध्याय 331)

द्वारिका प्रसाद कृत 'मम्मी बिगड़ेगी' एवं 'घरे के बाहर' उपन्यास भी मनोवैज्ञानिक पद्धतियों के अनुरूप ही चलते हैं। लेखक ने इस पर सेक्स और मनोवैज्ञानिक तथ्यों के उपर अच्छी लेखनी चलाई है। आकार के अनुसार यह उपन्यास भी विवादास्पद रहे हैं। आलोचक इन्हें उपन्यासों की अपेक्षा लम्बी कहानी मान रहे हैं।

ममता कालिया ने 70वें, 80वें तथा 90वें दशक के दौरान 'बेघर', 'प्रेम कहानी' तथा 'एक पति के नोट्स' इत्यादि उपन्यास लिखे। 'बेघर' उपन्यास में पति-पत्नी के संदर्भ में एक शक्की पति की अपनी पत्नी के प्रति संदेहपूर्ण व्यापार का दृष्टांकन है तथा अपनी बीमार मानसिकता के चलते असामान्य व्यवहार के माध्यम से अपनी जिन्दगी को भी नर्क बनाने की क्वायद प्रस्तुत की गई है। लेखिका ने नारी विषयक विचारधारा के अंतर्गत खोखले समान की आधारहीन परम्पराओं एवं रीति रिवाजों पर मनोवैज्ञानिक तथ्यों के अनुरूप बेबाक प्रस्तुति दी है। उनके अन्य उपन्यासों में भी इसी प्रकार के संवेदनहीन पतियों की विचारधारा, उनके कार्य, शिक्षित वर्ग का अन्दर से अनपढ़ होना,

निराधार परम्पराओं, शक की चक्की में पिसती स्त्री जाति के संदर्भ में अपने समग्र अनुभव का भरपूर तथा निडरता सहित उल्लेखनीय वर्णन किया है।

कामतानाथ कृत 'सुबह होने तक' उपन्यास में परिस्थितियों के वश से अबोध व साधारण बालक को अपराध प्रवृत्ति का होने तक की कथा का वर्णन है।

राजकमल चौधरी के 'मछली मरी हुई' तथा 'शहर था शहर नहीं था' नामक उपन्यासों में यौन प्रवृत्ति का मनोवैज्ञानिक संदर्भ में उल्लेखनीय चित्रण है। महेन्द्र भल्ला का 'एक पति के नोटस' और गिरिराज किशोर का 'यात्राएं' उपन्यास के पात्रों को किसी न किसी प्रकार से काम दृष्टि से असामान्य ही दिखाया गया है। इन उपन्यासों के सभी नायक पात्र मानसिक दृष्टि से अनिर्णयात्मक एवं नपुंसक दिखाया गया है जो खुशी या मुक्ति पाने की लालसा रखते हुए दुखी होते हैं।

गोपाल राय अपनी किताब 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास' के संबंध में द्रौणवीर कोहली के उपन्यासों के बारे में कहते हैं कि " 'काया-स्पर्श' धनार्जन के लिए अन्धी दौड़ लगाते एक परिवार की त्रासदी के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक उपन्यास भी है।" (राय 368)

कथा साहित्य में मनोविज्ञान पर चर्चा करते हम इस स्थान पर तो पहुँच ही चुके हैं कि यदि सारांश देखें तो पता चलता है। कि उपन्यास लेखन की शुरुआत से समकालीन समाज तक लिखे जा रहे उपन्यासों ने बहुत ज्यादा लम्बा समय तो कदाचित् व्यतीत नहीं किया है। किन्तु विभिन्ना जरूर देखने को मिलती है। केवल पाठकों के मनोरंजन से लेकर मनोवैज्ञानिक उपन्यासों तक की कड़ी में अनेक उतराव-चढ़ाव आए हैं। देवराज उपाध्याय अपनी किताब 'आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान' में उपन्यासों की शृंखला में से उनमें समाहित मनोवैज्ञानिकता के पुट पर अपने विचार रखते हैं कि

"पूर्व के उपन्यास केन्द्रनानुगामी होते थे। एक सीमित विषय को लेकर अपने स्वरूप का विस्तार करते थे। उसी को पूर्णरूप से विकसित कर,

उभार कर रखने में अपनी सार्थकता का अनुभव करते थे। उपन्यास की सारी शक्ति एक किसी विशिष्ट व्यक्ति या विषय पर आकर केन्द्रित हो जाती थी पर आज के उपन्यास केन्द्रापगामी होते जा रहे हैं। उनमें एक स्थान से उद्भूत होकर बिखर जाने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। गर्म लाल लोहे पर हथोड़ा मारने से जिस तरह चिनगारियाँ चारों ओर निकल पड़ती हैं उसी तरह आधुनिक उपन्यासों में एक स्थान से चलकर इतस्ततः बह जाने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होने लगती है।” (उपाध्याय 340)

किन्तु अभी भी मनोविज्ञान की किताबों की हिन्दी भाषा में उपलब्धता न होने के कारण लेखकों में इसके प्रति अज्ञानता का बोलबाला है जिस कारण भी इस पर कार्य उतनी मात्रा में नहीं हो रहा जितना अभी तक इस पर हो जाना चाहिए था।

यह सही है कि पुरातन चन्द्रकांता जैसे भारी भरकम उपन्यासों की तुलना में समकालीन उपन्यास आकार में छोटे, मनोरंजन की अपेक्षा एवं समाज के बाहरी चित्रण की अपेक्षा अन्तर्त्मा की गहराइयों को छूता हुआ अचेतन मन की बात करता है। अध्ययनशीलता से चाहे गम्भीर मुद्दे या बातें उपस्थित न हों क्योंकि इस संदर्भ में अभी शुरुआती दौर से गुजरना भी हो सकता है किन्तु भावी समय हेतु अत्यंत हैरानीजनक नतीजे हमारे समक्ष होंगे। इसी संबंध में डॉ. प्रेम भटनागर अपनी किताब ‘हिन्दी उपन्यास शिल्प: बदलते परिप्रेक्ष्य’ में कहते हैं कि

“कथा की अवधि और सामग्री में भी अन्तर आ गया है। अब कथा में जीवन की समग्री व्यापक क्षेत्र से नहीं उठायी जाती अपितु वह सीमित क्षेत्र से उपलब्ध हो जाती है। समाज, इतिहास और राजनीति के स्थान पर वैयक्तिक कुंठा अनेक प्रकार की सामग्री प्रस्तुत करने के योग्य सिद्ध हो चुकी है। महाकाव्यों की सी विशाल कथाएँ न सही, वीरों के से साहसिक चमत्कार न सही, खण्डकाव्यों की सी असीम कथाएँ अपने दुर्बल चरित्र व्यक्तियों के जीवनी से नाना मनोगन्धियों, दमित वासनाओं,

उन्मादों आदि की कथा जुटा पाई है। अवधिगत परिवर्तन भी दृष्टव्य है। अब 'यूलिसिस के रूप में चौबीस घण्टे की घटनाओं को 700 पृष्ठों का वृहदाकार दिया जा चुका है। 'चांदनी के खण्डहर' में एक दिन और एक रात की कथा है। 'शेखर: एक जीवनी में' केवल एक रात को देखे गये विज्ञान का प्रोक्षेपण है।" (भटनागर 49)

यह तो सत्य है कि जब तक साहित्यकारों ने, लेखकों ने मनोविज्ञान की अहमियत को नहीं जाना या समझा था, यूं भी कह सकते हैं कि जब तक उनका ध्यान बाहरी सामाजिक वातावरण की अपेक्षा व्यक्ति के अन्तर्मन की ओर नहीं गया था। कथा लेखन में कदाचित् वह बात नहीं थी जो आज विद्यमान है। तात्पर्य यह कि मनोविज्ञान ने कथा लेखन का नज़रिया ही बदल दिया है। अप्रत्यक्ष रूप से मनोरंजन तो होता ही है किन्तु प्रत्यक्ष रूप से जो मानवीय व्यवहार को समझने में, समाज में बदलाव या सुधार हेतु जो भी असर पड़ता है। उसका सारा उत्तरदायित्व इस विषय को ही जाता है। कहानी के माध्यम से इसका असर मानवीय व्यवहार अथवा समाज पर पड़ना वांछनीय है। क्योंकि कहानी मानवीय जीवन की घटनाओं का एक एक करके चित्रण है जिसके माध्यम से व्यक्ति को अपने ही जीवन से संबंधित उन रहस्यों की भी जानकारी मिल जाती है जिनसे कदाचित् वह अनजान रहा होगा। इन उपन्यासों में सामाजिक चित्रण की अपेक्षा व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्वों को अधिक महत्त्व दिया गया है। इस संदर्भ के आचार्य ब्रह्मनारायण जी अपनी किताब 'हिन्दी उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन में कहते हैं कि

“आज के उपन्यासकार का विश्वास है कि जब तक हम सत्य का दामन कस कर न पकड़ेंगे जीवन के वास्तविक तथ्यों का रहस्योद्घाटन नहीं हो सकता यद्यपि इसके हेतु अपने पूर्वजों की मान्यताओं की आलोचना करने का भी साहस करना पड़ेगा। इसी के आधार पर आज उपन्यास केवल मनोरंजन के साधन नहीं अपितु कथा की भाषा में मनोविज्ञान और दर्शन के ग्रन्थ हो गये हैं।” (शर्मा 28)

कदाचित् यह कहना गलत नहीं होगा कि प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास और प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास लेखन में कोरी कल्पना से लेकर मन के भीतरी परतों तक उघेड़ने तक के कार्य में जो भी फर्क हमें ज्ञात है अथवा नज़र आता है। वह केवल मनोविज्ञान का सामाजिक परिवेश के कारण ही है। क्योंकि हम सभी जानते हैं कि मनोविज्ञान व्यक्ति के बाह्य व्यवहार के साथ-साथ आन्तरिक उथल पुथल को भी अपनी जांच के दायरे में लेता है। वह उन सभी क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं, मूल प्रवृत्तियों के कारणों को भी अपने में शामिल करता है जो मानवीय व्यवहार को जांचने परखने में हमारी मदद करते हैं। तो आधुनिक उपन्यास की नवीन प्रवृत्तियों में लगभग वह सभी पद्धतियाँ शामिल हैं जो मानवीय व्यवहार को समझने परखने में हमारी मदद करते हैं। मन की उथल-पुथल को समझे बिना केवल बाह्य व्यवहार को समझना नितांत अधूरा कार्य है। यह हमारी अज्ञानता का सूचक कहलायेगा। इसलिए बाह्य व्यवहार को समझने की अपेक्षा आन्तरिक व्यवहार वांछनीय है और आधुनिक समाज में रह रहे मानवीय जीवन हेतु तो यह नितांत आवश्यक है।

आधुनिक दौर तो मानसिक संघर्ष का दौर है। व्यक्ति बाहर कम तो आन्तरिक संघर्ष ज़्यादा करता है। बाह्य व्यवहार की जांच हेतु मन की उथल पुथल में झांकना अत्यावश्यक है। भीतर की अपेक्षा में ही बाहर को समझा जा सकता है। जैसा कि यह तो दृष्टव्य है कि उपन्यास तो जीवन वृत्तांत की कथा है। तो आधुनिक उपन्यास इसकी अपेक्षा नहीं कर सकता। जिस उपन्यास में अवचेतन एवं चेतन मन की मनोरिस्थितियों का वर्णन होगा उसे मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहा ही जाएगा। आज का पाठक भी पूर्णतः सचेत है। वह केवल मनोरंजन ही नहीं ढूँढता। वह उसमें से अपने जीवन को ढूँढता है। उससे सम्बन्धित समस्याओं के हल को ढूँढता है। इसी संदर्भ में आचार्य ब्रह्मनारायण शर्मा जी डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के विचारों को अपनी किताब 'हिन्दी उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' में कहते हैं कि "जिस उपन्यासकार के पास आधुनिक युग की जटिल समस्याओं के समाधान के योग्य अपना प्रबल व्यक्तिगत मत नहीं है वह आधुनिक पाठको को आकृष्ट नहीं कर सकता।" (शर्मा 04)

जैसे-जैसे समय बीतता जाता है। समाज की समस्याओं के आँकड़े में भी वृद्धि होती जा रही है। लोगों के मन में भी विभिन्न प्रकार की दुविधाएँ घर करती जा रही हैं। उन सभी का चित्रण भी लेखकों के माध्यम से प्रकाशित हो रहा है। समस्या केवल आदर्श मानकों को वास्तविकता में लाने की है जिससे कि साहित्य समाज के उद्धार का कारण बन सके।

निष्कर्ष: -

हिन्दी कथा-साहित्य में मनोविज्ञान को आधार बना बहुत ही कम कार्य हुआ है। अभी तक के कार्य को आधार बना केवल देवराज उपाध्याय ने 'आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान' नामक किताब लिखी तथा 'हिन्दी कथा साहित्य में मनोविज्ञान' श्रीमति सीमा श्रीवास्तव ने लिखी। विडम्बना है कि इतने विशाल हिन्दी साहित्य व इतने विद्वान तथा लेखकों के रहते इन दोनों विषयों के आपसी सम्बन्धों को जोड़ने का कार्य बहुत कम हुआ है। बल्कि यह कहा जा सकता है कि केवल नामात्र ही कार्य हुआ है। हाँ किसी विशेष व्यक्ति के कार्य को लेकर उसे मनोवैज्ञानिक दृष्टि की आँख से देखने का कार्य बहुत से विद्वानों व लेखकों ने अपने रिचर्स पत्रों में किया है। वह कार्य वर्तमान समय में भी जारी है। किन्तु पूरे हिन्दी कथा-साहित्य को लेकर कार्य उतना संतुष्टिजनक नहीं रहा।

आचार्य ब्रह्मनारायण शर्मा 'विकल' ने अपनी किताब 'हिन्दी उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन' में समकालीन उपन्यासकारों के साथ-साथ उन सभी लेखकों के उपन्यासों का वर्णन किया है जिन्होंने साहित्य में मनोवैज्ञानिक तथ्यों को पिरोने का कार्य सम्पूर्ण किया। उस समय इस प्रकार के मुद्दे पर कार्य करना अत्यंत जोखिम व विलक्षण कार्य था। किन्तु आचार्य ब्रह्मनारायण शर्मा 'विकल' जी के इस साहस भरे कार्य के लिए हमें उनका धन्यवादी होना चाहिए। देवराज उपाध्याय ने भी जो अपनी किताब के रूप में कार्य किया है, अति प्रशंसनीय है। किन्तु वह कार्य आज से तकरीबन 50 वर्ष पूर्व हुआ था उस समय के अनुरूप जो भी साहित्य लेखन था अथवा जितने भी साहित्यकार थे उनको आधार बना देवराज जी ने मनोवैज्ञानिक पद्धति के

अनुसार तथा अपने चिंतनानुसार साहित्य एवं मनोवैज्ञानिक विषयों को आपस में जोड़ने का अच्छा कार्य किया है। यूं भी कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य में मनोवैज्ञानिक तथ्यों को ढूंढने का उन्होंने अच्छा कार्य किया है। उसमें से केवल चुनिन्दा व विख्यात विद्वानों व लेखकों जैसे मुंशी प्रेमचन्द, यशपाल, अज्ञेय, ईलाचन्द्र जोशी इत्यादि को स्थान दे उन्होंने भावी शोधार्थियों, आलोचकों हेतु इस क्षेत्र में कार्य करने हेतु मार्ग खोल दिया है, साथ ही साथ मार्गदर्शन भी किया है। सीमा श्रीवास्तव ने भी अपनी किताब 'हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान' जो कि सन् 2015 में प्रकाशित हुई में पुरातन उपन्यासकारों के साथ-साथ आधुनिक युग के भी अनेक उपन्यासकार उठाये हैं जिन्होंने मनोवैज्ञानिक पद्धतियों के अनुरूप कथा साहित्य में अपनी लेखनी चलाई है। इन पचास सालों के बड़े अंतराल के दौरान हिन्दी कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक तथ्यों को निकालने पर कोई विशेष कार्य नहीं हुआ। हाँ कुछ छुटपुट पत्र-पत्रिकाओं में शोध-पत्रों के अतिरिक्त किसी एक लेखक की किसी विशेष कहानी अथवा किसी विशेष उपन्यास पर मनोवैज्ञानिक चित्रण किया हुआ मिल जाता है। इसी समय दौरान उपन्यास साहित्य पर तो कुछ कार्य जैसे :- डॉ. कमलेश अग्रवाल कृत 'हिन्दी के मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास', डॉ. धनराज कृत 'हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास', डॉ. एम वेंकटेश्वर कृत 'हिन्दी उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन', मनीषा ठक्कर कृत 'हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास-एक विश्लेषणात्मक अध्ययन' इत्यादि मिल जाते हैं। इन पर ओर भी कार्य हो रहा है। किन्तु कहानी साहित्य को मनोविज्ञान से जोड़ने के संबंध में अभी तक कोई किताब प्रकाशित नहीं हुई है। विशेष लेखक अथवा विशेष कहानी या कहानी संग्रह को लेकर तो छुटपुट रचनाएं जैसे:- कहानियों में प्रगतिशील चेतना, कहानियों में ऐतिहासिकता इत्यादि तो मिल जाती है। किन्तु कहानी साहित्य में मनोविज्ञान या कहानियों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन जैसे कार्य के संदर्भ में नहीं।

अध्याय तीन

3. अब्दुल बिरि-मल्लाह के कथा साहित्य में असामान्य मनोविज्ञान

3.1 उपन्यास साहित्य में असामान्य मनोविज्ञान

मानवीय व्यवहार ही सामाजिक जीवन का मूलाधार है। मानवीय जीवन में जन्म से मृत्यु तक मानवीय व्यवहार के अभिन्न अंगों के तहत विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ एवं प्रतिक्रियाएँ बदस्तूर जारी रहती है। इन्हीं क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं के तहत मानव समाज में अपना अस्तित्व कायम रख पाता है; समाज में संतुलन कायम रख पाता है। समाज को सभ्य रूप में स्थापित करने हेतु स्वयं मानव ने ही बाहरी रूप में कुछ नियम कायदे निर्धारित किए गये हैं। साथ ही साथ आंतरिक रूप में भी स्वयं को सभ्य बनाने हेतु संस्कृति, नैतिकता, धर्म इत्यादि कुछ ऐसे कारक हैं जो व्यक्ति के व्यवहार पर अंकुश रखते हैं। यदि फिर भी कोई ऐसी मानवीय व्यवहारिक क्रिया जो समाज को असंतुलित करने में अपना योगदान देती है तो समाज उसको मान्यता नहीं देता। ऐसे व्यवहार को असामान्य व्यवहार कहा जाता है। वैसे असामान्य व्यवहार किसे माना जाए तथा सामान्य व्यवहार किसे माना जाए इस बात पर भी संदेह बरकरार है। पल्लवी भटनागर अपने साथियों सहित राबर्ट सी. कारसन एवं उनके साथियों द्वारा लिखित किताब 'असामान्य मनोविज्ञान' (हिन्दी अनुवादित) में समानता एवं असामान्यता के अर्थ के संदेह पर कहते हैं कि

“आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि आज तक 'असामान्यता' या 'विकृति' से हम क्या समझते हैं इस पर कोई सार्वभौमिक सहमति नहीं बन पाई है। इसका अर्थ यह नहीं कि हमारे पास परिभाषाएं नहीं हैं; परिभाषाएँ हैं परन्तु अब तक की प्रत्येक परिभाषा में समस्याएँ हैं।” (कारसन 05)

कोई एक बात अथवा व्यवहारिक क्रिया जिस पर कोई भी व्यक्ति अपनी सहमति प्रकट करता है। सम्भवतः किसी दूसरे व्यक्ति को अच्छी नहीं लगती है और दोनों अपनी-अपनी जगह सही सिद्ध होते हैं। दृष्टिकोण की भिन्नता से भी इस प्रश्न के उत्तर में कठिनाई आ रही है। गहन अध्ययन के तहत विभिन्न विद्वानों ने उपर्युक्त संस्कृति, नैतिकता, धर्म इत्यादि को कसौटी मान कर उस पर सामान्य एवं असामान्य व्यवहार को परखने की तर्ज पर कार्य किया। किन्तु प्रत्येक कसौटी पर इन दोनों प्रकार के व्यवहार पर कोई भी एक निर्णायक फैसला नहीं हो पाया। यदि किसी जमाने में किसी भी प्रकार का मानवीय व्यवहार आपत्तिजनक था; आज वही व्यवहार आजकल का फैशन बन गया है। तात्पर्य यह कि सामान्य एवं असामान्य व्यवहार में अंतर कर पाना मुमकिन नहीं है। किन्तु फिर भी सामाजिक व्यवहार में इन दोनों शब्दों में अंतर पाया जाता है तथा अपना-अपना अस्तित्व भी बरकरार रखे हुए हैं।

मानव के इस प्रकार के लीक से हट कर प्रदर्शित हो रहे व्यवहार के अध्ययन के लिए असाधारण मनोविज्ञान के अंतर्गत अध्ययन किया जाता है। दरअसल असाधारण मनोविज्ञान मनोविज्ञान की ही एक उस शाखा का नाम है जिसमें असामान्य मानसिक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। यदि इसके ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की बात की जाए तो इतिहास के पन्नों में तो इस प्रकार के व्यवहार की चर्चा एवं उस पर इलाज के अंतर्गत किये गए प्रताड़ित व्यवहारों का भी भरपूर वर्णन हमें मिल जाता है। किन्तु यदि मनोवैज्ञानिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अंतर्गत इस पर चर्चा करें तो इस संदर्भ में इसका इतिहास कोई ज्यादा लम्बा नहीं है। यह केवल दो सौ साल अन्दर की घटनाओं का ही क्रम है।

असामान्य मनोविज्ञान का संक्षिप्त इतिहास-

असामान्य मनोविज्ञान का अध्ययन उसके इतिहास के ज्ञान के बिना अधुरा है। किसी भी विषय की संपूर्ण जानकारी उसके ऐतिहासिक जानकारी के बिना वंचित है। इतिहास के पन्ने खंगाले तो इस संबंध में एक विचित्र सी बात निकल कर सामने आती है कि पुरातन समय में इस प्रकार के व्यवहार

को एक तरह से दैविक प्रकोप का कारण माना जाता था और उसके इलाज के संदर्भ में भी विचित्र सी कार्यविधियों को प्रयोग में लाया जाता था। अरुण कुमार सिंह अपनी किताब 'आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान' में असामान्य व्यवहार के संबंध में पुरातन समय के दृष्टिकोण के माध्यम से कहते हैं कि

“जब व्यक्ति के प्रति ईश्वर की कृपा दृष्टि समाप्त हो जाती है तो ईश्वर की ओर से अभिशाप या दण्ड के रूप में व्यक्ति में असामान्य व्यवहार विकसित हो जाता है और व्यक्ति किसी अपद्रुत के चंगुल में फँस जाता है।” (सिंह 01)

किसी भी व्यक्ति के इस प्रकार के व्यवहार को असामान्य मान उसके उपचार हेतु भी इनकी प्रक्रिया भी बड़ी ही विचित्र थी। यह उस व्यक्ति को बड़ी ही बेरहमी से प्रताड़ित करते थे और उसे लगभग मौत के ही घाट उतार देते थे। पल्लवी भटनागर अपने साथियों सहित राबर्ट सी. कारसन एवं उनके साथियों द्वारा लिखित किताब 'असामान्य मनोविज्ञान' के हिन्दी अनुवाद में असामान्यता की विभिन्नता के ऐतिहासिक विचार पर कहते हैं कि

“प्राचीन लेखों में असामान्य व्यवहार के उल्लेख दर्शाते हैं कि चीनी, मिस्रवासी, यहूदी और ग्रीस के लोग अकसर इस प्रकार के व्यवहार के लिए पिशाच या देवता को उत्तरदायी मानते थे जिन्होंने व्यक्ति को वश में कर लिया था। इस 'वशीकरण' में अच्छी आत्माएँ शामिल हैं या बुरी आत्माएँ इसका प्रमाण अधिकतर प्रभावित व्यक्ति के लक्षणों पर निर्भर करता था। यदि व्यक्ति की भाषा या व्यवहार धार्मिक अथवा आध्यात्मिक महत्त्व का प्रदर्शित होता था, तो सामान्यतया यह सोचा जाता था कि व्यक्ति पर अच्छी आत्मा या ईश्वर का स्वामित्व है।” (कारसन 34)

मनोविज्ञान की विभिन्न किताबों में असामान्यता अथवा अपसामान्यता से संबंधित विभिन्न धाराणाएँ एवं विचारधाराएँ प्रयुक्त हैं। विभिन्न विद्वानों ने सामान्यता एवं असामान्यता के अंतर को जताने के लिए अनेक प्रकार के कारण एवं कारकों के माध्यम से अपनी प्रस्तुति दी है। किन्तु फिर भी जो बात किसी एक जगह पर सही साबित हो रही है, बदलते सामाज के परिवेश एवं

परिदृश्य के कारण व किसी दूसरी जगह सही स्थान ले रही है। इतना होने के बावजूद भी प्रत्येक व्यक्ति एवं मनोवैज्ञानिक असामान्यता अथवा अपसामान्यता मानने को अमादा है। श्वेता उप्पल द्वारा सम्पादित 'मनोविज्ञान' नामक पुस्तक में मानवीय व्यवहार में समानता व असमानता पर अपना दृष्टिकोण रखा है कि

“यद्यपि अपसामान्यता की कई परिभाषाएँ अनेक वर्षों से प्रयुक्त होती रही हैं किन्तु किसी को भी सार्वभौमिक स्वीकृति नहीं मिली है। तथापि अधिकांश परिभाषाओं में कुछ सामान्य लक्षण हैं, बहुधा ये चार माने जाते हैं जैसे- विसामान्यता (*deviance*), कष्ट (*distress*), अपक्रिया (*dysfunction*), खतरा (*danger*)। अर्थात् मनोवैज्ञानिक विकार, विसामान्य (भिन्न, पराकोटि, असामान्य यहाँ तक कि बेतुकी), कष्टप्रद (अप्रीतिकर, व्यक्ति तथा दूसरों को विक्षोभित करने वाली), अपक्रियात्मक (दैनिक जीवन को ठीक करने में बाधा डालने वाली) तथा संभवतः खतरनाक (व्यक्ति तथा दूसरों के लिए) को कहते हैं। इस परिभाषा में एक उपयुक्त प्रारंभिक बिंदु है जहाँ से हम मनोवैज्ञानिक अपसामान्यता का अन्वेषण कर सकते हैं। चूँकि 'अपसामान्य' शब्द का शाब्दिक अर्थ है “जो सामान्य से परे हो”, इसका तात्पर्य हुआ जो स्पष्ट रूप से परिभाषित मानकों या मानदंडों से हट कर है। मनोविज्ञान में हमारे पास मानव व्यवहार का कोई 'आदर्श मॉडल' या 'सामान्य मॉडल' नहीं है जिसे तुलना के आधार के रूप में उपयोग किया जा सके।” (उप्पल 76)

जब हम इस विषय के पुरातन अध्ययन की बात करते हैं तो पाया जाता है कि इसका ऐतिहासिक पिछोकड़ युनान से संबंधित मिलता है। बहुत वर्षों पूर्व युनान इस मनोविज्ञान विषय पर अपनी अच्छी पैठ बना चुका था जिससे असामान्य मनोविज्ञान से संबंधित विभिन्न पद्धतियों का साकारात्मक स्तर पर जन्म तथा विकास हुआ। इससे पहले असामान्य व्यवहार से संबंधित व्यक्ति का मानसिक व शारीरिक स्थिति साधारण व्यवहार वाले व्यक्ति की तुलना में

अत्यधिक कष्टदायी व अनैतिकता के स्तर पर बहुत ही नीच रही थी। उन व्यथित व्यक्तियों को बहुत ही गंदी जगह पर रखा जाता था। खाने के लिए खाना भी बहुत ही गंदा दिया जाता था। उनके साथ बहुत मारपीट की जाती थी। समाज का व्यवहार उनके संग कठोर व घृणिता से भरपूर था। सारांश यह कि पूरी तरह से पशुता से संबंधित व्यवहार उनके संग किया जाता था।

युरोपीय मनोवैज्ञानियों ने इस संबंध में अपनी विद्वता एवं ज्ञान का परिचय देते हुए समयानुसार इस असामान्य व्यवहार के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए विभिन्न पद्धतियों का निर्माण किया। जिससे असामान्य व्यवहार वाले व्यक्तियों के संग हो रहे अमानवीय व घृणित कठोर व्यवहार पर अंकुश लगा। क्योंकि अंकुश से पहले उनके व्यवहार को दैत्य प्रकोप का कारण मान उनका इलाज जादू, टोना, झाड़-फूंक एवं विभिन्न टोटकों के माध्यम से किया जाता था। युनानी दार्शनिक एवं विभिन्न विद्वानों अल्कमेयन, इम्पीडोकिल्स, हिपोक्रेट्स, अफलातून, अरस्तू, स्टोइक्स, इपीक्यूरीयन्स इत्यादि ने असामान्य व्यवहार के कारणों का पता लगा पुरातन परम्पराओं को खत्म कर वैज्ञानिक उपचारों को अपनाया। जगदानन्द पाण्डेय अपनी किताब 'असामान्य मनोविज्ञान' में असामान्य मनोविज्ञान के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर अपने विचारों के माध्यम से बताते हैं कि

“अफलातून ने हिस्टिरिया को औरतों की व्याधि बतलाया और उसके शारीरिक कारण पर भी प्रकाश डाला। उसने व्याधि-ग्रस्तों की रक्षा और भलाई के लिए सुन्दरतम तरीकों को अपनाने को कहा। अरस्तू, स्टोइक्स, इपीक्यूरीयन्स आदि दार्शनिकों ने भी इन व्याधियों के संबंध में अपने दार्शनिक विचार व्यक्त किये। रोम प्रथम शताब्दी ई. पू. में एस्क्लीपियेड्स ने, जो अपने समय का धुरंधर विद्वान तथा चिकित्सक था, संवेगों के उपद्रव को मानसिक व्याधियों का कारण उद्घोषित किया और चिकित्सा के लिए रोगियों के शारीरिक एवं मानसिक आराम पर विशेष रूप से जोर दिया। उसने उनको आराम देने के विभिन्न तरीके भी बतलाये। उसने

रोगियों को जंजीर में रखने या गन्दे स्थानों में रखने की कड़ी निन्दा की और उनको स्वच्छ वातावरण में रखने पर जोर दिया।” (पाण्डेय 13)

रोम के ही अन्य विद्वानों सेल्सस, सोरेनस, गेलेन इत्यादि ने भी अपने-अपने मतानुसार मानसिक रोगियों एवं अमानवीय व्यवहार के संबंध में अपने-अपने विचार रखे। इन विद्वानों के असामान्य व्यवहार एवं मानसिक रोगियों के संबंध में किये गए अभूतपूर्व कार्यों का असर पूर्व के देशों में भी हुआ जिससे इस प्रकार के रोगियों के उपचार हेतु विभिन्न प्रकार के अस्पताल, पुस्तकालय एवं संस्थाएं खुली।

पश्चिमी देशों में इस संबंध में काफी कार्य हुआ। आगे चलकर शारीरिक चुम्बकत्व के सिद्धांत, सम्मोहन के सिद्धांत को भी प्रतिपादित किया गया। जगदानन्द पाण्डेय ने अपनी किताब ‘असामान्य मनोविज्ञान’ में इस संबंध में उस समय के चिकित्सा मनोवैज्ञानिकों के बारे में कहा है कि

“जोहानवेयर ने अपने जीवनकाल को मानसिक रोगियों के अध्ययन और उनकी सहानुभूतिपूर्ण चिकित्सा में ही व्यतीत किया। इसलिए लोग मानसोपचार का जन्मदाता भी कहते हैं। उसी के प्रयत्न से मनोविज्ञान धर्मशास्त्रों से अपने से अलग करने में समर्थ हो सका।” (पाण्डेय 15)

सत्रहवीं शताब्दी में भी मानवीय व्यवहार से संबंधित कार्य में काफी प्रगति आई। अठारहवीं शताब्दी में भी मानसिक अस्पतालों की स्थापना सहित मानसिक रोगियों के उपचार की प्रक्रिया में भी अभूतपूर्व बदलाव आये। मेस्मर ने भी असामान्यता के संबंध में साहसिक कार्य किये। जगदानन्द पाण्डेय अपनी किताब ‘असामान्य मनोविज्ञान’ में ‘मेस्मर’ के असामान्य मनोविज्ञान के संबंध में किये गये कार्यों के बारे में कहते हैं कि

“उसने ग्रहों का संबंध शरीर से प्रदर्शित करते हुए पशु चुम्बकत्व पर प्रकाश डाला। उसके अनुसार नक्षत्रों के प्रभाव से शारीरिक उपद्रव ही विभिन्न स्नायु-विकृतियों के कारण थे। अतएव उसने ऐसी विकृतियों के उपचार में भी मेस्मरिज्म के ही द्वारा करना प्रारम्भ किया। उसके रोगियों

को सफलता भी काफी मिली; लेकिन फ्रांस तथा अन्य देशों के चिकित्सकों ने उसका अत्यधिक विरोध किया। सरकार की ओर से भी उस पर तरह-तरह के प्रतिबंध लगाये गये। फिर भी वह अपने कार्य में इतना डटा रहा कि उसके प्रभाव से बहुत से लोगों को प्रभावित होना पड़ा। उसके एक शिष्य ने इसी प्रकार एक रोगी में स्वप्नचारिता का व्यापार प्रदर्शित किया। बाद में जेम्स ब्रेड ने सन् 1842 ई. में एक ऑपरेशन भी किया और इसी समाधि को सम्मोहन का नाम दिया। इस प्रकार, असामान्य मनोविज्ञान के अंतर्गत कटु आलोचनाओं और प्रतिबन्धों का शिकार होते हुए भी मेस्मर की देन का स्थान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।” (पाण्डेय 16)

एक बात यहाँ पर कहना उचित रहेगा कि जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैंड इत्यादि जैसे देशों के इन जैसे मनोवेज्ञानियों की हिम्मत की बदौलत ही इस विषय पर कार्य हो पाया है अथवा हो रहा है। साथ ही इन्हें परम्परागत एवं धार्मिक कारणों से इन्हें विभिन्न रूकावटों का सामना भी करना पड़ा।

धीरे-धीरे इस विषय पर कार्य होता हुआ विकासात्मक पद्धति की ओर अग्रसर रहा। इस विकासात्मक पद्धति में फ्रायड की खोजों ने अहम भूमिका निभाई। इस विषय से संबंधित उनकी तीन किताबों ‘स्वप्न की व्याख्याएँ’, ‘दैनिक मनोविकृतियाँ’ तथा ‘लैंगिकता सिद्धांत को तीन देन’ ने असामान्य मनोविज्ञान में अहम योगदान दिया है। असामान्य मनोविज्ञान के लिए किये गये कार्यों के लिए जगदानन्द पाण्डेय प्रसिद्ध मनोविज्ञानी फ्रायड के योगदान को न भूलते हुए अपनी किताब ‘असामान्य मनोविज्ञान’ में कहते हैं कि

“उसने छोटी-छोटी सी घटनाओं का अध्ययन कर यह प्रमाणित कर दिया कि हमारी दैनिक मनोविकृतियाँ हमारे अचेतन मन से ही अभिप्रेरित होती हैं। नियतिवाद का उन्नयन इसी विद्वान ने किया कि हमारे छोटे-से-छोटे व्यवहारों का कारण आज इसी के प्रसाद से खोजा जा रहा है। स्वप्नों की व्याख्या को वैज्ञानिक पुट देना इसी के भगीरथ प्रयास के परिणामस्वरूप है। असामान्य मनोविज्ञान को मनोरचनाओं का विचार

देने वाला फ्रायड ही है और आज उसी के फलस्वरूप इस दिशा में नित्य नये-नये अन्वेषण हो रहे हैं। इस विद्वान ने जितना असामान्य मनोविज्ञान को विकसित किया उतना कोई भी नहीं कर सका है।”

(पाण्डेय 23)

चिकित्सा पद्धति की दृष्टि से भी इस विषय में हुए कार्यों का समाज में विशेष योगदान रहा है। दिनों-दिन समाज में बढ़ रही उलझनों के मद्देनजर व्यक्ति के व्यवहार में सहनशीलता की कमी आ रही है। उसकी दिमागी तंदरुस्ती पर ग्रहण सा लग गया है। जिस कारण किसी भी व्यक्ति विशेष के कारण समाज में कोई भी मानवीय कल्याण से संबंधित कोई भी कार्य नहीं हो रहा है। समकालीन मानव जाति से तो स्वयं के जीवन से जुड़े मुद्दे भी सुलझाए नहीं जा रहे हैं जिस कारण समाज में तनाव, उलझनें, लड़ाई-झगड़े, बेचैनी, भय, चिन्ता, द्रुद्ध इत्यादि दिनों-दिन बढ़ रहे हैं।

आज विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के कारण इन सभी संबंधित समस्याओं हेतु विभिन्न प्रकार की चिकित्सा पद्धतियों से मनोविकार ग्रस्त व्यक्तियों का इलाज संभव हो पाया है। उन्हें अपनी नरक जैसी जिन्दगी से छुटकारा मिल पाया है। बहुत से व्यक्ति तो इस बात से अनभिज्ञ ही रहे कि उन्हें कोई रोग है। किन्तु इस विषय की पद्धतियों ने एक नई राह दिखाई जिस पर चल कर विभिन्न समस्याओं का हल निकला।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने इस संबंध में अपने-अपने विचारों सहित सम्प्रदाय भी प्रस्तुत किए हैं। जो सम्भवतः हमारे व्यावहारिक जीवन में यथा स्थान बनाये रखते हैं। बहुत से मनोवैज्ञानिकों ने मानवीय जीवन के व्यवहार के संबंध में की गई विभिन्न खोजों एवं अध्ययनों के अंतर्गत सामान्य व असामान्य व्यवहार के अस्तित्व को माना है। इस प्रकार की सभी व्यवहारिक क्रियाएँ एवं प्रतिक्रियाएँ जो मनुष्य को उसके सामान्य व्यवहार से भिन्न करती हैं, असामान्य की कोटि में रखी जाती हैं। इस प्रकार के व्यवहार के अध्ययन को असामान्य मनोविज्ञान कहा जाता है। जैसे-जैसे शिक्षा के समाज का क्षेत्र, उसका दायित्व बढ़ता जा रहा, वैसे ही इसके अध्ययन हेतु मनोविज्ञान की भी

अनेक शाखाओं का जन्म होता जा रहा है। प्रत्येक समस्या के अध्ययन तथा उसके निवारण हेतु मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाओं का जन्म हुआ है। असामान्यता से संबंधित मनोविज्ञान की शिक्षा के गहन अध्ययन के आधार पर मनोचिकित्सा-विज्ञान, मनोविकृति-विज्ञान, औपचारिक मनोविज्ञान विभिन्न शाखाओं के रूप में हमारे समक्ष विद्यमान हैं। इन सभी शिक्षाओं के अंतर्गत व्यक्ति के उन व्यावहारिक क्रियाओं का अध्ययन एवं निवारण हेतु प्रयोग किए जाते हैं, जिन्हें समाज साधारणतः स्वीकार नहीं करता। असामान्यता हेतु विभिन्न विद्वानों द्वारा उपर्युक्त प्रदर्शित प्रत्येक कसौटी के आधार पर मापदंड तैयार किए गये। किन्तु कोई भी मापदंड असामान्यता के प्रत्येक पहलू को छू नहीं पाया। अतः प्रत्येक कसौटी पर असामान्यता के विभिन्न मापदंड हैं। हम यहाँ पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन के तहत इसे केवल मनोवैज्ञानिकता की कसौटी पर ही उतारने की कोशिश की है।

असामान्य मनोविज्ञान के स्वरूप एवं क्षेत्र को स्पष्ट करने हेतु कुछ मानवीय व्यवहार से संबंधित ऐसे पहलुओं को उजागर करना अत्यंत आवश्यक है जो सामान्यतः असामान्य व्यवहार का प्रतिनिधित्व करते हैं। वह शारीरिक व मानसिक किसी भी पहलू से संबंधित हो सकते हैं। साधारणतः हम यह कह सकते हैं कि यदि शारीरिक पहलू को समक्ष रखे तो मानवीय शरीर में किसी भी अंग में किसी भी प्रकार की कोई विकृति पायी जाती है तो जन साधारण में उसे असामान्य की संज्ञा से पहचाना जा सकता है। दूसरी ओर यदि मानसिक पहलू को समक्ष रखे तो यह तो शाश्वत ज्ञात है कि गुस्से वाली बात पर मन में गुस्सा आना स्वाभाविक है। यदि उस समय गुस्सा नहीं आता तो असामान्यता का लक्षण है। यदि बिना किसी बात पर भी गुस्सा आता है तो वह भी असामान्यता का लक्षण ही गिना जायेगा। हँसी वाली बात पर हँसना साधारण बात है। बिना किसी बात पर हँसना असाधारण है। रोने वाली बात पर रोना स्वाभाविक है। अकारण रोना असाधारण लक्षण है। यदि कोई भी व्यक्ति कारणवश से हटकर किसी भी प्रकार का व्यवहार करता है तो असामान्य व्यवहार का हकदार रहेगा ही।

मानसिक व्यवहार के अंतर्गत कुछ छिपी भावनाओं के तहत व्यक्ति में विभिन्न मनोविकृतियाँ पाई जाती है। जिनके तहत व्यक्ति देखने में साधारण लगता है किन्तु अपना जीवन यापन करने में असाध्य होता है। असामान्यता में उपर्युक्त विवरणों से यह कदापि अनुमान नहीं लगाना चाहिए कि असामान्य व्यवहार केवल नकारात्मक प्रवृत्ति का ही सूचक है। बहुत बार यह देखा जा चुका है। कि साधारण से विशेष प्रवृत्ति रखने वाले व्यक्ति शारीरिक अथवा मानसिक कोई भी हो सकती है; असामान्य की कोटि में ही गिने जाएंगे। बुद्धि की तीव्रता अथवा विशेष शारीरिक बल जैसे गुण उनको साधारण से असाधारण अथवा असामान्य बनाते हैं। वैसे तो उन्हें प्रतिभाशाली कोटि में शामिल किया जाता है। किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह असामान्य ही हैं। सामाजिक विभिन्नता के कारण यह संशय बरकरार ही रहेगा कि आखिर अपसामान्य अथवा असामान्य में अंतर कितना है।

विभिन्न विकृतियों एवं विशेषताओं के आधार पर असामान्य मनोविज्ञान की भी विभिन्न श्रेणियाँ हैं। मनो-रचनाओं, दैनिक-मनोविकृती, मनो-स्नायुविकृति, मनोविकृति, सम्मोहनावस्था, मनोचिकित्सा, स्वप्न विज्ञान, मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान इत्यादि असामान्य मनोविज्ञान की श्रेणी में ही गिने जाते हैं।

असामान्य मनोविज्ञान की पद्धतियाँ:-

असामान्य व्यवहार के ज्ञातव्य हेतु, मापन हेतु मनोवैज्ञानिकों ने, विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न पद्धतियों का निर्माण किया है जिसके आधार पर व्यक्ति के व्यवहार में आए बदलाव का निरीक्षण किया जा सकता है। इन पद्धतियों की वैसे तो कोई भी सीमा निर्धारित नहीं है। किन्तु फिर भी जैसे-जैसे व्यक्तियों के व्यवहार में बदलाव आते रहेंगे, उसी के आधार पर नई-नई पद्धतियों के निर्माण होते आये हैं तथा भविष्य में भी जारी रहेंगे।

निरीक्षण-पद्धति :-

किसी भी प्रकार के व्यक्ति, वस्तु अथवा व्यवहार की जाँच हेतु यह विधि अत्यंत सराहनीय है। यह विधि दो प्रकार से अपना कार्य करती है। इसे प्रत्यक्ष निरीक्षण अथवा अप्रत्यक्ष निरीक्षण कहा जाता है। किसी भी व्यवहार का निरीक्षण एक अत्यंत कठिन व जोखिम भरा कार्य है। इसके लिए विशेष परीक्षण प्राप्त सहित तर्जुबेकार व्यक्ति की आवश्यकता होती है। यह दो प्रकार से किया जाता है।

(1) प्रत्यक्ष निरीक्षण:-

जब हम व्यवहार की जाँच हेतु किसी भी व्यक्ति के समक्ष होते हैं तथा उसकी प्रत्येक क्रिया-प्रतिक्रिया का अवलोकन करते हैं तो वह प्रत्यक्ष निरीक्षण के क्षेत्र का एक हिस्सा होता है। उसी के आधार पर अमुक व्यक्ति के व्यवहार की स्थिति का पता लगाया जा सकता है।

(2) अप्रत्यक्ष निरीक्षण:-

बिना बताये किसी भी व्यक्ति के व्यवहार का अवलोकन करना अप्रत्यक्ष निरीक्षण कहलाता है। क्योंकि अक्सर देखने में आया है कि व्यवहार की जाँच हेतु जब अमुक व्यक्ति इस बात से ज्ञातव्य हो जाता है कि उसका व्यवहार निरीक्षित हो रहा है तो उसके व्यवहार में बनावटीपन आ जाता है। वह अपने वास्तविक व्यवहार से परे हो जाता है। वह दिखावे की प्रवृत्ति अपनाते हुए अपने कार्यों व व्यवहार में कुछ खास प्रकार के लक्षणों को शामिल कर लेता है। जो उसकी प्रवृत्ति का हिस्सा नहीं होता। इस प्रकार का व्यवहार नकलीपन है, जो किसी भी प्रकार से मान्य नहीं है।

मनोविश्लेषण-पद्धति:-

इस पद्धति में अनेक छोटी-छोटी पद्धतियाँ हैं जो इस पद्धति के अनुसार कार्यपूर्णता में अपना सहयोग देती हैं। इस पद्धति के अनुसार व्यक्ति के व्यवहार में असामान्यता की जाँच हेतु उसे विश्वास में लेकर बातचीत के माध्यम से उन सभी मुद्दों पर बातचीत कर अप्रत्यक्ष रूप से उन मुद्दों के

बारे में उससे उसकी मनोवृत्ति जानने की कोशिश की जाती है। इसके लिए विभिन्न मानक मापदण्डों का सहारा लेकर व्यक्ति द्वारा दिये गए उत्तरों की जाँच कर निष्कर्ष निकाल कर उसके व्यवहार का पता लगाया जाएगा। इस विधि के माध्यम से बाहरी रूप से सामान्य दिखने वाले व्यक्ति जो स्वयं भी इस बात से अनभिज्ञ हो सकता है कि उसमें कोई असामान्यता का लक्षण हो सकता, में से भी असामान्य व्यवहार के लक्षणों का पता लगाया जा सकता है।

व्यक्ति-इतिहास पद्धति: -

इस विधि अथवा पद्धति के माध्यम से किसी भी व्यक्ति के व्यवहार अथवा उसकी असामान्यता के बारे में पता लगाने के लिए वार्तालाप के माध्यम से उस व्यक्ति के दोस्तों-मित्रों, रिश्तेदारों, सहपाठियों, अध्यापकों सहित उसके अकादमिक प्रमाण-पत्रों इत्यादि के माध्यमों से डाटा एकत्रित कर अत्यंत सावधानी से उस डाटा से निष्कर्ष निकाल कर उसके व्यवहार का निरीक्षण किया जा सकता है तथा उसमें से सामान्य व असामान्यता के लक्षणों को विभिन्न किया जा सकता है।

इन सभी के अलावा मनोविज्ञान में असामान्यता के लक्षणों को मापने हेतु विभिन्न परीक्षण, मूल्यांकन, प्रक्षेपण-कौशल्य सहित अन्य प्रयोगों का भी सहारा लिया जा सकता है। वर्तमान संदर्भ में सार्विक-पद्धति भी इस कार्य में सराहनीय कार्य के रूप में अपना दायित्व निभा रही है। जिस प्रकार समाज में मानवीय व्यवहार में किसी भी प्रकार से तबदीली आती रहेगी उसी प्रकार से उसे निरीक्षित करने के उपागमों में भी विकास एवं वृद्धि होती रहेगी।

असामान्यता के लक्षण: -

विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने असामान्य मनाविज्ञान से संबंधित लक्षणों में अपने-अपने मतानुसार विभिन्न लक्षणों अचेतन, मनोरचनाएँ, मनोलैंगिक विकास, लैंगिक विकृतियाँ, दैनिक मनोविकृतियाँ, मनोस्नायु-विकृतियाँ, मनोविकृतियाँ, मानसिक दुर्बलता, आचारोन्माद,

मनोचिकित्सा, सम्मोहन, चिन्ता विकार, आत्महत्या, खान-पान व निद्रा विकार, व्यक्तित्व विकार, ज्ञानात्मक विकार, मानसिक सेहत विकार इत्यादि को प्रस्तुत किया है।

3.1 उपन्यास साहित्य में असामान्य मनोविज्ञान: -

अब्दुल बिरिस्मल्लाह के उपन्यास साहित्य में उपर्युक्त वर्णित असामान्य व्यवहार के इतिहास एवं लक्षणों के आधार पर बहुत से ऐसे बिन्दु विद्यमान हैं जिनका निरूपण यहाँ पर वांछनीय है एवं हमारा शोध उद्देश्य भी है।

उनके कथा साहित्य के अध्ययन से विभिन्न ऐसे मुद्दे एवं समस्याओं से सामाना हुआ जिनमें से असामान्य व्यवहार से संबंधित विभिन्न समस्याओं पर उनके द्वारा उनकी रचनाओं में प्रदर्शन देखने को मिला। सामान्यतः असामान्य व्यवहार अथवा असामान्य मनोविज्ञान में मन के अचेतन भाग की क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ, विभिन्न प्रकार की मनोरचनाएँ, लैंगिक विकृतियाँ, मनोविकृतियाँ, मानसिक दुर्बलता, मनोचिकित्सा, स्वप्न, सम्मोहन, मनोस्नायु-विकृतियाँ, दैनिक मनोविकृतियाँ इत्यादि को शामिल किया जाता है। संबंधित लेखक के कथा साहित्य में से इन विकृतियों से संबंधित विभिन्न पहलुओं का दृष्टव्य हमें ज्ञात होता है जो विभिन्न मनोवैज्ञानिक सम्प्रदायों एवं स्कूलों से संबंध रखते हैं। प्रत्येक विकृति से संबंधित उनके कथा-साहित्य में से विभिन्न पहलुओं पर हम निम्नलिखित रूप में कार्य करने का प्रयास किया है।

हीनता से प्रभावित व्यक्तित्व (मनोस्नायुविकृति) :-

प्रकृति निर्मित इस संसार में से लाखों प्राणियों की जातियों में से केवल एक मानव जाति ही है जो अपनी बुद्धि की विलक्षणता के कारण अपने अस्तित्व को कायम रख पायी है तथा विकासात्मक प्रवृत्ति को अपना पायी है। लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह द्वारा लिखे गये 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास के ताना खण्ड में अनेक ऐसे बिन्दुओं का वर्णन हुआ है जो कदाचित् अपने अस्तित्व को कायम रखने के मद्देनजर साबित होता है।

“अलीमुन उसके सिर में तेल डालकर दबाना चाहती है तो उसे भी हटा देता है। उसे दरअस्ल चैन नहीं है। सोसाइटी बननी चाहिए, जैसा भी हो। गिरस्तों का गढ़ टूटना चाहिए, जैसा भी हो। दिमाग में बस यही एक बात घूम रही है।” (बिरिस्मल्लाह 20)

उपन्यास में लिखित इस विचार से प्रसिद्ध मनोविज्ञानी फ्रायड के सहयोगी ‘एडलर’ के ‘वैयक्तिक सिद्धांत’ का बारखूबी बर्णन मिलता है। एडलर ने ‘फ्रायड’ के लैंगिक-शक्ति का पूर्ण तिरस्कार कर विजयेच्छा को ही मनुष्य के जीवन में प्रधानता प्रदान की। मानवीय अस्तित्व एवं उसके व्यवहार के संबंध में एडलर की विचारधारा फ्रायड की विचारधारा से भिन्न हैं। उनका मानना है कि स्वयं को सफल बनाने व आगे रखने की चाह व्यक्ति को आगे ले जाती है। यह प्रवृत्ति मानव में बचपन से होती है और सारी उम्र रहती है। डॉ. अरुण कुमार सिंह अपनी किताब ‘मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास’ में एडलर के इस सिद्धांत के बारे में कुछ बातें व्यक्त करते हैं कि

“‘सफलता की कोशिश’ अभिप्रेरणा जन्मजात होता है और जन्म के समय ही शिशुओं में मौजूद रहता है। अतः हीनता के भाव से इसका जन्म नहीं होता है बल्कि इस भाव के उत्पन्न होने के पहले ही यह शिशु में मौजूद होता है। हालाँकि ‘सफलता की कोशिश’ अभिप्रेरण जन्मजात होता है तथा जन्म के साथ मौजूद रहता है, इसका विकास बाद में होता है। जन्म के समय यह मात्र एक अन्तः शक्ति के रूप में उपस्थित रहता है। अतः पूरे जिन्दगी के दौरान विकसित होते रहता है।” (अरुण 257)

उपर्युक्त बातों से साफ जाहिर होता है कि व्यक्ति में जीने की इच्छा उस समय और तीव्र हो जाती है। जब उसमें किसी कार्य के प्रति विजय प्राप्त करने की इच्छा होती है। यही इच्छा उसके जीवन का आधार बनती है। जगदानन्द पाण्डेय अपनी किताब ‘असामान्य मनोविज्ञान’ में मानव के समाज में अस्तित्व को बरकरार रखने के माध्यम से एडलर के विचार बताते हैं कि

“जब मनुष्य किसी प्रकार के हीन-भाव से पीड़ित रहता है अथवा जब उसे किसी कारणवश सामाजिक मान्यता प्राप्त नहीं होती है, तब वह

अपने को विभिन्न असामान्य व्यवहारों के द्वारा वातावरण में अभियोजित करने का प्रयास करता है।” (पाण्डेय 25)

लेखक ने भी इस संबंध में अपने उपन्यास में पात्रों की विचारधारा के माध्यम से भरपूर वर्णन किया है कि

“हमारी यह हालात आखिर कब तक रहेगी? क्या हम हमेशा-हमेशा तक गिरस्तों की गुलामी करते रहेंगे? क्या हम अपने पैरों पर कभी नहीं खड़े हो सकेंगे? मोबीन मास्टर एक रोज बता रहे थे कि रूस के बुनकर बहुत सुखी हैं। उनके पास जिन्दगी की सारी सहूलियतें मौजूद हैं और एक हम हैं कि.....” (बिस्मिल्लाह 67)

इस प्रकार के प्रसंग स्वयं ही मानवीय जीवन जीने की इच्छा वाले एडलर के सिद्धांत पर पूरे उतरते हैं। साथ ही इस बात पर भी अपना वक्तव्य रखते हैं कि जब व्यक्ति के जीवन में किसी भी चीज की कमी महसूस होती है तो वह उसे दूर करने हेतु अपने जीवन में संघर्ष करता है। अपने जीवन को संतुष्ट एवं आरामदायक बनाने हेतु प्रयासरत होता है। यही उसके जीवन का आधार बनता है। यदि वह कमी को पूरा नहीं करता है तो वह टूटने लगता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह जी ने अपने उपन्यास ‘झीनी झीनी बीनी चदरिया’ में पात्रों की सोच के माध्यम से कहते हैं कि

“लतीफ जब चला गया तो मतीन देर तक सोचता रहा कि आखिर इसकी वह अकड़ कहाँ चली गयी, जो कुछ साल पहले इसमें मौजूद थी। इसके पास अपना करघा है, अपना रोजगार है, लड़का भी माशा अब्बाह काम से लग गया है, लेकिन इसे कौन सी कमी है कि वह भीतर से टूटता चला जा रहा है? लगता है, औरत के बगैर यह आदमी आधा ख़त्म हो चुका है।” (बिस्मिल्लाह 77)

जीवन जीने के संबंध में फ्रायड एवं एडलर के सिद्धांतों में से एक दूसरे के उल्टे सिद्धांत होते हुए भी दोनों सिद्धांत अपने आप में समयानुसार परीस्थितियों के

अनुरूप लागू हो रहे हैं। इससे संबंधित एक उदाहरण अब्दुल बिरिमल्लाह ने अपने उपन्यास 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' में से प्रस्तुत की है कि

“उस शोर-शराबे में मतीन चुपचाप खड़ा रहा। वह सोचता रहा कि जिंदगी में आदमी की कितनी-कितनी ज़रूरतें हुआ करती हैं कि उन्हें वह आजीवन पूरा नहीं कर पाता, जबकि मर जाने पर वे ज़रूरतें किस कदर सिमट जाती हैं। बस थोड़ा सा कपड़ा, एक शीशी केवड़ा जल, थोड़ी सी मुलतानी मिट्टी, एक पैकेट अगरबत्ती और थोड़ा सा कपूर। कुल मिलाकर एक लाश कि लिए बस इतनी-सी चीजों की ज़रूरत होती है। बस! यह भी न मिले तो क्या? लाश भला क्या शिकायत करेगी बेचारी? यहाँ आदमी की तमाम ज़रूरतों का खात्मा हो जाता है।” (बिरिमल्लाह 146)

जीवन जीने के सिद्धांतों के अनुरूप कोशिशें करने के बाद भी यदि सफलता न मिले, शांति न मिले तो व्यक्ति टूटने की कगार पर पहुँच जाता है। किन्तु उससे पहले अपनी जीवन रक्षा हेतु तमाम कोशिशें करता है।

मनोस्नायुविकृति (चिन्ता उन्माद) अथवा मानसिक भय: -

मानवीय प्रज्ञा की एक ऐसी बीमारी के रूप में विद्यमान 'भय' अथवा 'चिन्ता' वह बीमारी है जिससे व्यक्ति चाह कर भी किसी दूसरे से बताने से परहेज़ करता है। यह मानवीय व्यवहार में एक प्रकार की बाधा उत्पन्न करती है। दिनचर्या के कार्यों को प्रभावित करती है। किसी भी कार्य को करने से पहले हमारे मन में उपजित एक ऐसा अनचाहा डर जिसके सोचने मात्र से ही हम घबरा जाते हैं। कार्य करना छोड़ देते हैं। किसी भी कार्य के संबंध में हमें कोई नहीं डरा रहा होता बल्कि हम स्वयं ही सोच-सोच कर अपने मन व शरीर को कमजोर कर रहे होते हैं कि कोई देखेगा तो क्या कहेगा? लोग मुझे देखकर हँसेंगे; नहीं, मुझे यह कार्य नहीं करना चाहिए; मैं इस कार्य को करने के लायक नहीं। मैं तो बहुत छोटा, गरीब व अनपढ़ व्यक्ति हूँ; वह लोग तो अमीर, पढ़े लिखे और विद्वान व्यक्ति हैं; मैं उनकी बराबरी नहीं कर सकता। मुझे उनके किसी भी लफड़े में नहीं पड़ना चाहिए; मुझे तो कोई भी

नहीं जानता; मैं किसके आगे अपनी फरीयाद रखूँगा? पता नहीं मेरे साथ कोई खड़ा भी रहेगा अथवा नहीं ? मुझसे यह कार्य गलत हो गया; मुझसे इतना नुकसान हो गया; अब क्या होगा? उसे आने में इतना समय हो गया; कहीं उसका ऐक्सीडेंट तो नहीं हो गया? कहीं वह मर तो नहीं गया? वगैरह वगैरह। एक ऐसा भय जिसका कोई आधार नहीं होता जो कदाचित् सामाजिक दायरे के अनुकूल गलत ही होता है; मानसिक डर कहलाता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो चिन्ता उन्माद कहलाता है। इससे हमारा व्यवित्तत्व दूसरों की अपेक्षा शिथिल नज़र आता है। इस विषय में जगदानन्द पाण्डेय अपनी किताब 'असामान्य मनोविज्ञान' में कहते हैं। कि

“मानसिक दुर्बलता का अभिप्राय है, मन की ज्ञानात्मक योग्यता का अभाव या कमी। जिस व्यक्ति में मनोदौर्बल्य होती है उसकी चिंतन, स्मृति, कल्पनात्मक आदि प्रक्रियाएँ अत्यन्त निम्न कोटि की होती हैं। वह किसी परिस्थिति की मोटी-मोटी बातों को ही जानने और समझने में समर्थ होता है, सूक्ष्म बातों को नहीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि मानसिक दुर्बलता, मन की ज्ञानात्मक शक्तियों के अभाव या द्योतक है। (पाण्डेय 207)

लेखक के प्रत्येक उपन्यास में सामाजिक दायरे में रहते हुए ऐसे विभिन्न दृश्य प्रस्तुत होते हैं। जिनमें किसी न किसी कारणवश उनके पात्रों में मानसिक दुर्बलता का भाव जागृत होता है।

लेखक ने 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' नामक अपने उपन्यास में मानसिक डर से संबंधित अनेक ऐसे प्रसंग रखे हैं जिन्हें देख कर हम स्वयं ही अंदाजा लगा सकते हैं कि किस प्रकार व्यक्ति के मन में यह डर पैदा होता है “रऊफ़ चचा का दिल धड़-धड़ धड़-धड़ धड़क रहा है। इ मतिनवा कहाँ ले आया यहाँ? नहाँ बड़े-बड़ों की कोई गिनती नहीं वहाँ भला हमें कौन पूछेगा?” (बिस्मिल्लाह 100) मन में चल रहे इस प्रकार के नकारात्मक विचारों से दो प्रकार के नुकसान की संभावना बनी रहती है। एक ओर तो व्यक्ति स्वयं ही डरा रहता है। कार्य करने से भी परहेज करता है तो दूसरी ओर साथ वाले

व्यक्ति को भी नकारात्मक तरीके से प्रभावित करता है। जगदानन्द पाण्डेय जी अपनी किताब 'असामान्य मनोविज्ञान में इस संबंध में कहते हैं कि

“जब कोई व्यक्ति निराधार और प्रबल भय से पीड़ित रहता है तो उसकी इस अवस्था को हम चिन्ता-उन्माद कहते हैं। जो विषय, पदार्थ या परिस्थिति सामान्य व्यक्ति के भय उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होती है वही उस व्यक्ति के भय का कारण होती है।” (पाण्डेय 165)

बहुत बार ऐसे हालात पैदा हो जाते हैं कि हम किसी अचानक हुए कार्य अथवा घटना को सहन करने व उसका सामना करने में उतने सक्षम नहीं होते जितने हमें होना चाहिए। हल्की सी आहट अथवा संकेत या किसी के बुलाने मात्र से ही हम कई बार इतने भयभीत हो जाते हैं कि हमारे दिल की धड़कनें बढ़ जाती है। मन में विभिन्न प्रकार के विचार घूमने लगते हैं कि पता नहीं क्या बात हो गई। कहीं ऐसा तो नहीं हो गया? कहीं वैसा तो नहीं हो गया इत्यादि। ऐसे विचारों से हम परेशान हो जाते हैं। यह हमारी मन की कल्पना मात्र का ही नतीजा है। अन्यथा ऐसा कुछ भी नहीं होता है। यदि बहुत जरूरी हो तो कदाचित् यह कह सकते हैं कि उसके साथ अचानक पुकारने अथवा बुलाने पर विभिन्न ऐसे वाक्या हुए होंगे, जिन्होंने उसे परेशान अथवा मुश्किल में डाल दिया गया हो। अब उनके मन में इस प्रकार का डर घर कर गया है। जिसके संकेत मात्र से ही व्यक्ति भयभीत हो जाता है।

यहाँ पर दो बातें कहना अनिवार्य हो जाता है। पहली यह कि यदि तो विगत बातों से संबंधित कोई घटना व्यक्ति के समक्ष घटती है तो वह उसके लक्षण मात्र से ही व्यक्ति उसके परिणाम को अपने समक्ष ले आता है। यदि तो सकारात्मक परिणाम रहे होंगे तो खुश हो जाता है तथा यदि परिणाम नकारात्मक रहे होंगे तो उसे अहसास मात्र से ही भयभीत हो जाता है। यहाँ पर यह भी संभव नहीं कि ऐसा ही होता होगा। किन्तु फिर भी कमजोर दिल वाले व्यक्ति अपने मन में नकारात्मक विचारधारा ही रखते हैं। दूसरी बात यह कि यदि किसी भी बात से संबंधित कोई घटना नहीं घटी हो तो हम उसे मात्र संयोग ही मानकर उसे स्वीकार कर लेते हैं और लाभ अथवा हानि को

किस्मत में लिखा मानकर चलते है। दरअसल यह विचारधारा ग्रीक प्रकृतिवाद के पतन के बाद के चिंतकों की विचारधारा के अंतर्गत 'स्टोइक्स' नामक विचारधारा से मेल खाती है। इस संबंध में डॉ. अरूण कुमार सिंह अपनी किताब 'मनोविज्ञान के संप्रदाय एवं इतिहास' में कहते हैं कि

“इनके मनोविज्ञान की मुख्य विशेषता सभी चीजों को संतुष्टि के आवेग या जोश से उन्हें स्वीकार करना था। आधुनिक समय में स्टोइक्स उन्हें समझा जाता है जो दुर्भाग्य को भी चुपचाप बिना किसी तरह के शिकायत के स्वीकार कर लेते हैं। (अरूण 18)

इस विषय में जगदानन्द पाण्डेय अपनी किताब 'असामान्य मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

“चूँकि स्पष्टतः ऐसे व्यवहारों का कोई कारण नहीं मालूम होता, इसलिए हम इन्हें अनवधान या संयोग के मत्थे मड़ देते हैं। लेकिन वस्तुतः ऐसी बात नहीं है जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। यह हमारी दैनिक मनोविकृतियाँ हैं क्योंकि ये सामान्य वर्ग की कार्यवाही की त्रुटियों को ही व्यक्त करती हैं। जिस प्रकार हमारी मनो-स्नायुविकृतियों के विभिन्न लक्षणों के स्पष्ट कारण मालूम नहीं होते; लेकिन मनोविश्लेषण करने पर उनके कारण अचेतन-मन में मिलते हैं; उसी प्रकार इन मनोविकृतियों के स्रोत का मूल भी हमें उसी विधि के द्वारा अचेतन-मन में प्राप्त होता है। जिस प्रकार हमें असामान्य व्यवहारों के समय विभिन्न मनोरचनाओं की कार्यवाही मिलती है उसी प्रकार इन व्यपारों में भी वे मनोरचनाएँ कार्य करती हैं। अतएव हमारे ऐसे व्यपार असामान्य है ही और इनकी प्रेरणा हमारे अचेतन मन से ही मिलती है।” (पाण्डेय 130)

अब्दुल बिरिमल्लाह ने 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में इस प्रकार की अचेतन मन की प्रतिक्रियाओं से संबंधित छोटी छोटी घटनाओं का वर्णन करते हैं

“मतीन इस्तिजा करने के लिए अभी पाखाने की ओर जा ही रहा था कि नीचे से किसी के पुकारने की आवाज़ आयी। वह धड़धड़ाता हुआ नीचे उतर आया। वहाँ हनीफ, लतीफ, अल्ताफ, जमीन, बशीर, शरीफ आदि कई लोग खड़े थे। क्या बात हो गयी आखिर ? और यह हनिफवा कैसे आ गया इधर ? कहीं कोई ख़ास मसला तो नहीं आ गया ? कहीं इकबलवा ने तो कोई गड़बड़-सड़बड़ नहीं कर दी, कि लोग चढ़कर आये हैं बदला लेने के लिए।” (बिस्मिल्लाह 181)

इस सोच अथवा मानसिक डर के पीछे कोई विशेष कारण हो सकता है। लेखक ने इस मानसिक भय का एक अंदरूनी कारण जो कि संभवतः हो सकता है, का जिक्र किया है कि मतीन के दिमाग में इस बात को लेकर यह संशय है कि हालाँकि उसकी पत्नी बीमार रहती है तथा दैनिक कार्य करने में भी असहाय है। किन्तु एक बेटे के बाप होने के नाते कौन अपनी कुँवारी लड़की की शादी उससे करेगा। इस बात को लेकर मतीन चिन्तित रहता है और अपनी बात रऊफ चचा से कहने से डरता है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने उपन्यास ‘मुखड़ा क्या देखें’ में भी इसी प्रकार की सोच व मानसिक भय की परिस्थिति का वर्णन किया है कि

“पं. रामवृक्ष पाण्डे की शिकायत करने के लिए अली अहमद इलाहाबाद गया था- नेहरूजी से मिलने, यह बात बाहर बैठे जब्बार मालवी के कान में नुकीली कील की तरह घुस गई और वे तिलमिला उठे। आज यह पाण्डेजी के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने की तैयारी कर रहा है तो कल उनके ख़िलाफ़ भी आवाज़ उठा सकता है। अगर ऐसा ही होता रहा तब तो इस मुल्क में शरीफों का रहना ही मुश्किल हो जाएगा। उन्होंने सोचा और चिंतित हो उठे। हालाँकि उन्हें विश्वास नहीं था कि नेहरू इलाहाबाद में रह रहे होंगे और इस दो कौड़ी के चुड़िहार से मिले होंगे, पर एक आशंका ने उन्हें बेचैन कर दिया। क्या पता, नेहरूजी को इसने कोई अर्जी ही भिजवाई हो ? न नेहरूजी को तो किसी मंत्री-फंत्री को, या फिर थाने-वाने में! यह तो बहुत बुरी बात है.....जब्बार मोलवी सोच में पड़

गए। रनिया अपने बच्चे के हँसुली बैठवाने क्या आई, वह तो जब्बार साहब की हँसुली उखाड़कर चली गई। रातभर वे ठीक से सो नहीं सके।” (बिस्मिल्लाह 46)

ऊँचा ओहदा, अमीरी, हथियार, रोब इत्यादि ऐसे कारक हैं जोकि किसी भी व्यक्ति को नीचा दिखाने, डराने व काबु करने हेतु पर्याप्त हैं।

दुर्भीति-फोबिया: -

यह एक ऐसी मानसिक विकृति है जिससे व्यक्ति को सामाजिक व्यवहार के किसी भी एक बिन्दु अथवा घटना या परिस्थिति से व्यर्थ का डर महसूस होने लगता है। चाह कर भी व्यक्ति उसका सामना नहीं कर सकता जब तक कि उसका कोई विशेष रूप से उपचार नहीं किया जाता। डॉ. एस अख्तर मानसिक स्वास्थ्य पर रेडियो आधारित प्रसारणमाला में प्रसारित कार्यक्रम के संपादन के रूप में ‘उजाले की ओर’ के माध्यम से कहते हैं कि

“यह एक प्रकार की चिन्ता की बीमारी है, जिसमें व्यक्ति को विशेष वस्तुओं, परिस्थितियों या क्रियाओं से डर लगने लगता है। यानि उसकी उपस्थिति में घबराहट होती है, जबकि वे चीजें उस वक्त खतरनाक नहीं होती है। इस बीमारी से पीड़ित व्यक्ति को हल्का अनमनेपन से डर से लेकर भयावाह दौरा तक पड़ सकते हैं।” (अख्तर 45)

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने उपन्यास ‘रावी लिखता है’ में इस प्रकार की दुर्भीति का वर्णन किया है कि

“सो एक दिन जब उस पनिका को मालूम हुआ कि गाँव के हाकिम आए हुए हैं तो वह घर से भाग गया। मगर भागकर जाता कहाँ? कब तक भागता? वह अपनी ज़िन्दगी की सच्चाई जानता था। इसलिए मारा गया। गाँव के बाहरवाली घाटी में जाकर अपनी धोती का फन्दा बनाकर वह एक पेड़ की डाल से लटक गया। घाटी में बकरियाँ चरा रहे एक लड़के ने यह दृश्य देखा और तत्काल उसकी पत्नी को सूचित किया। पत्नी ने आगा-पीछा कुछ नहीं सोचा, उसने अपने चारों बच्चों को फाँसी

पर लटकाया और खुद भी अपनी साड़ी का फन्दा बनाकर बड़े से लटक गई। इस तरह एक आदमी के जुल्म से डरकर छः लोगों ने अपनी जान दे दी।” (बिरिमल्लाह 49)

इस प्रकार की घटना से पता चलता है कि किसी की सुनी सुनाई घटना वाली बात से अमुक व्यक्ति किस प्रकार चिन्तित हो उठता है और घबराहट व जल्दबाजी में गलत फैसला ले लेता है। गरीब व अनपढ़ लोगों में अमीर व रईस लोगों के प्रति एक प्रकार का डर, भय सदा ही बना रहता है। उसके प्रति हलकी सी आहट पाते ही कोई भी बेतुका निर्णय ले लेते हैं। राबर्ट सी. कारसन अपनी किताब ‘असामान्य मनोविज्ञान’ जो कि पल्लवी भटनागर द्वारा हिन्दी अनुवादित है, में इस संबंध में कहते हैं कि

“मनोतकलीफ वह दर्द है, वेदना है जो हमारे मस्तिष्क को नियंत्रित करता है..... अतिशय लज्जा अथवा अपराध बोध, भय, चिन्ता, अकेलापन, वृद्ध होने का अथवा एक खराब मृत्यु का दर्द.....आंतिरक रूप से महसूस की गई वास्तविकता को अस्वीकृत नहीं कर सकते। जब यह दर्द असह्य हो जाता है तब आत्महत्या होती है जब उस दर्द की चेतना के निरंतर प्रवाह को रोकने के लिए व्यक्ति मृत्यु ढूंढता है।” (कारसन 349)

‘आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान’ नामक अपनी किताब में अरुण कुमार सिंह कहते हैं कि “दुर्भीति में व्यक्ति या रोगी किसी ऐसे वस्तु या परिस्थिति से असंतुलित मात्रा में डरता है जिससे वास्तव में कोई खतरा नहीं होता है। उसका डर इतना अत्यधिक होता है कि उससे उसका सामान्य जीवन का व्यवहार अपअनुकूलित हो जाता है।” (सिंह 207)

‘मुखड़ा क्या देखें’ नामक उपन्यास में भी अब्दुल बिरिमल्लाह इसी प्रकार की दुर्भीति अथवा चिन्तायुक्त परिस्थिति की एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं कि

“भइया तनी सुनिए।’

पंडित रामवृक्ष पाण्डे चौंक गए। सुष्टिनारायण उनके सामने घबराए हुए से खड़े थे।

‘क्या हुआ सृष्टी?’

‘भउजी आपको बुला रही हैं, तनी सुन लीजिए।’

‘तो इसमें इतना घबराने की क्या बात है?’

पंडितजी ने सृष्टी को झिड़का और वहाँ से चल पड़े। वे आश्वस्त थे कि भीतर बुलाए जाने का कोई गंभीर कारण नहीं होगा। बिदाई भी तो आज नहीं हो रही है, ‘बड़हार’ खाकर ही बरात वापस लौटेगी...।”
(बिरिमल्लाह 17)

प्रस्तुत प्रसंग में लेखक ने मानसिक भय का बहुत ही सुन्दर व स्टीक उदाहरण पेश किया है।

भ्रम से रुकती व बिगड़ती कार्यशैली: -

मनुष्य की मानसिक विकृतियों में से ‘भ्रम’ एक ऐसी विकृति है जिसके आधार पर व्यक्ति एक ऐसी मानसिक स्थिति में पहुँच जाता है जो वास्तविकता से स्वर्था ही दूर होती है। किसी भी एक घटना, विचार अथवा कार्य के प्रति व्यक्ति स्वयं की विचारधारा अथवा बात को सही मानने लगता है। वह किसी भी एक बात के विषय में अन्य लोगों की विचारधारा को अपने अनुकूल सही सिद्ध करने की कोशिश करता है कि अमुक व्यक्ति इस बात अथवा कार्य के प्रति इस प्रकार के विचार मन में लिए है। सम्भवतः वह वास्तविकता से दूर ही हो। किन्तु अपनी मानसिक विकृति के कारण वह अपने मन की बात को दूसरों के माध्यम से उनके द्वारा ही सही सिद्ध करने की कोशिश करता है। वास्तव में यह एक प्रकार का पैवलव के ‘चिरप्रतिष्ठित प्रानुकूलन सिद्धांत’ के नियम का एक उदाहरण मात्र है जिसमें से यह तथ्य निकलता है कि किसी भी कार्य अथवा घटना के लगातार घटित होने से मनुष्य के मन में उसके प्रति उसी प्रकार नतीजे की एक धारणा निश्चित हो जाती है जो उस घटना के परिणामस्वरूप पैदा होती है। भविष्य में कभी भी यदि इस प्रकार की घटना

घटित होती है तो व्यक्ति के मन में वही निश्चित परिणाम उसके सम्मुख आ जाता है। यह एक प्रकार की 'प्रायोगिक मनोविज्ञान' की शाखा के अंतर्गत का एक बिन्दु है जो व्यक्ति को कुछ सीखने या सीखाने के माध्यम हेतु इस्तेमाल होता है।

अब्दुल बिरिस्मल्लाह ने अपने उपन्यास 'मुखड़ा क्या देखें' में इसी प्रकार की मानसिक स्थितियों का वर्णन बारूबी किया है। वह कहते हैं कि

“मनुष्य की सबसे बड़ी पराजय तभी होती है जब वह अपनी दृष्टि में पराजित हो जाता है। संसार जिसे जानता है वह उसके एकांत में सिमटकर दुरुह हो जाता है। अली चुड़ीहार का मन भी दुरुहता से भर उठा था और वह अपनी ही नज़रों में शर्मिंदगी महसूस कर रहा था वह गाँव के किसी भी परिचित व्यक्ति का सामना नहीं करना चाहता था। न जाने क्यों उसे बार-बार यही लग रहा था मानो कोई उससे पूछ रहा हो, कहो अल्ली मिल आए जवाहरलाल जी से ?” (बिरिस्मल्लाह 40)

इस प्रकार की सोच व्यक्ति के अर्न्तत्मा की सोच होती है जिसके मन में अपने प्रति प्यार हो, अपने पर मान हो। वह व्यक्ति किसी भी गलती की गुँजाइश को सहन नहीं कर पाता। ऐसा व्यक्ति में भोलेपन के साथ-साथ सच्चाई भी होती है जिसके दम पर वह कोई खास कदम उठाता है। किन्तु उसकी असफलता पर अपने मन में खिन्नता भर लेता है और दूसरों से अँख मिलाने से परहेज करता है। उसे महसूस होता है कि सबके सामने उसकी बहुत बड़ी पराजय हो गई है। किन्तु यह केवल उसके मन का वहम होता है जो वास्तविकता से दूर होता है। इस सोच में भी यही है। दरअसल यह व्यक्तित्व विकारों में से एक प्रकार का परिवर्जित व्यक्तित्व विकार है। पल्लवी भटनागर द्वारा हिन्दी में अनुवादित राबर्ट सी. कारसन अपनी किताब 'असामान्य मनोविज्ञान' में इस संबंध में कहते हैं कि

“परिवर्जित व्यक्तित्व विकार वाले लोग अत्यधिक सामाजिक अवरोध और अंतर्मुखता दिखाते हैं जो सीमित सामाजिक अंतरसंबंधी में अनिच्छा की ओर उन्मुख करता है। अतिसंवेदनशीलता और अपनी आलोचना

तथा अस्वीकृति के डर के कारण वे दूसरे लोगों के पास जाना नहीं चाहते, परन्तु फिर भी दूसरों से प्यार चाहते हैं। और प्रायः अकेले और ऊबे हुए रहते हैं।” (कारसन 484)

अल्ली को भी महसूस होता है कि अब वह हार चुका है और यह बात उसके गाँव में सभी को पता चल चुकी है। जबकि ऐसा कुछ भी नहीं है। किन्तु मन के कमजोर होने से वह यह बात दिल से निकाल ही नहीं पा रहा है। इसी उपन्यास में अब्दुल बिरिस्मल्लाह फिर आगे प्रस्तुत करते हैं कि “दरअसल भीतर से वह इतना टूटा हुआ था कि काम में उसका मन ही नहीं लगता था। अपमान और असफलता ने उसे इतना निकम्मा बना दिया था कि घर में अगर दो दिनों तक खाने के लिए भी कुछ ऐसा होता तो वह बाहर नहीं निकलता था।” (बिरिस्मल्लाह 42)

इस प्रकार की मानसिक कमजोरी से व्यक्ति खुद तो परेशान रहता है। वह अपने आसपास के वातावरण को भी प्रभावित करता है। अल्ली का परिवार उसके इस व्यवहार से पूरी तरह प्रभावित होता है।

दरअसल यह मानव की एक प्रकार की ऐसी मनोविकृति है जो उसके मनोस्नायुविकृति से कहीं ज़्यादा खतरनाक होती है। भ्रम एवं दैविक शक्तियों से प्रभावित होने वाले व्यक्ति स्पष्ट शब्दों में हेबीफ्रेनिक मनोविदलता नामक मनोविकृति से प्रभावित होते हैं जैसा कि लेखक ने अपनी रचनाओं के माध्यम से उनके लक्षणों को दिखाने का प्रयास किया है। जगदानन्द पाण्डेय अपनी किताब ‘असामान्य मनोविज्ञान’ में इस संबंध में बताते हैं कि “ऐसे रोगी में संवेगात्मक छिछलापन, असंगत व्यामोह, विभ्रम, बचपन की जिद्द, अव्यवस्थित भाषा तथा व्यवित्तत्व विच्छिन्नता के चिह्नों की प्रमुखता रहती है।” (पाण्डेय 188) इसी प्रकार की मनोविकृति से संबंधित अपने उपन्यास ‘मुखड़ा क्या देखें’ में अब्दुल बिरिस्मल्लाह ने बड़ी ही सुन्दर उदाहरण अपने पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत की है कि

“लता अब पंद्रह बरस की हो गई है। पाण्डेय हालाँकि पिछले चार साल से वर की तलाश में थे, पर नेहरू-विरोधी और पटेलवादी परिवार उन्हें

अब जाकर मिल सका है। घर के पुरोहित तो नाराज ही रहे अब तक, पाण्डेय की जिद से। मगर क्या करें, खद्दरवालों ने तो पुरोहित की भी ऐसी-तैसी करके रख दी है। वरना रजस्वला होने के बाद भी क्या कोई कन्या इतने दिनों तक कुँवारी रह सकती है? नरक में भी तो जगह नहीं मिलेगी। मगर बुरा हो तो जगह नहीं मिलेगी। मगर बुरा हो इस अंग्रजी शिक्षा का, कि बड़े-बड़े धर्मियों का विश्वास भी स्वर्ग-नरक पर से हट गया है।” (बिस्मिल्लाह 10)

हालाँकि इस प्रकार की सोच से स्वर्ग-नरक का कोई संबंध नहीं है किन्तु फिर भी पुराने व्यक्तियों की एक धारणा अथवा भ्रम बना हुआ है कि लड़की की जब तक शादी नहीं हो जाती, तब तक वह परिवार पर बोझ बनी रहती है। इस बोझ को जिनती जल्दी हो सके, घर से विदा कर देना चाहिए। स्वर्ग-नरक की उपमा से इस धारणा को अधिक बल मिला है। साथ ही स्वर्ग-नरक की धारणा भी इस प्रकार बना रखी है कि जैसे कोई एक व्यक्ति पहले कोई स्वर्ग में से जाकर वापिस पृथ्वी पर अपने संगी साथियों में वापिस आया है और आकर अपने अच्छे कार्यों के बदले में मिले उपहारों के बारे में बता रहा है और किसी बुरे कार्यों के बदले में मिली सजा वाले व्यक्तियों को भी अपनी आँखों से देख कर आया है कि वह किस प्रकार नरक में पशुओं से भी बदतर जिन्दगी जी रहा है। तात्पर्य यह कि परम्परागत रूढ़िवादियों के कारण पुराने विचारों वाले व्यक्ति उसमें कुछ भी बदलाव करने के हक में नहीं हैं। वह उसे अपने पूर्वजों के ज्ञान का सारांश ही मानकर चलते आ रहे हैं।

लेखक ने इस प्रकार वहम, भ्रम एवं मनोरोग से संबंधित अपनी लेखनी चला असामान्य व्यवहार के लक्षणों के पैदा होने के कारणों पर जो अपना दृष्टव्य दिया है वह सराहनीय है। साथ ही साथ स्वप्नों के माध्यम से भी वहम, भ्रम एवं समाज में उनके आधार पर फैल रहे असामान्यता के आधार का भी बड़े सुन्दर तरीके से वर्णन किया है।

लेखक अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने उपन्यास ‘झीनी झीनी बीनी चदरिया’ में प्रस्तुत पात्र ‘मतीन’ जैसे व्यक्ति को नायक बना उसके परिवार के

संग ऐसे वातावरण को प्रस्तुत कर एक भयावह समाज में धकेल कर उनकी जिन्दगी के संग खिलवाड़ का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है।

“उधर अलीमुन और मतीन इस बात पर विचार कर रहे थे कि इस साल कुर्बानी कैसे होगी? मतीन का विचार है कि कुर्बानी न की जाय, क्योंकि कर्जदार पर कुर्बानी जायज़ नहीं है, पर अलीमुन अड़ी हुई थी। एकठे तो लड़का है, यह किसका मुँह जोहेगा? मतीन ने लाख समझाया कि इफरात गोश्त मिलेगा- जगह-जगह से हिस्सा आयेगा, लेकिन अलीमुन कुछ भी सुनने का तैयार नहीं हुई। उसने अपना बक्सा खोला और उसमें से चालीस रुपये निकालकर मतीन के सामने रख दिये। दस रुपयों से मुहल्ले में किसी की भैंस में एक हिस्सा ले लो। एक भैंस में अगर सात लोगों तक के शामिल होने की सुविधा न होती तो गरीबों का मज़हब कैसे जिन्दा रहता?

मतीनदस सवाल का जवाब नहीं जानता। अलीमुन भी नहीं जानती। इकबाल भी नहीं जानता।” (बिरिमल्लाह 90)

इस संदर्भ से यह बात साफ होती है कि कैसे गरीब व अशिक्षित लोगों को धर्म के जाल में फंसा कर उनके जीवन को जटिल बनाया जा रहा है। जो परिवार साधारण तरीके से अपनी जिन्दगी निर्वाह कर सकते हैं। उन्हें इस प्रकार पौराणिक मान्यताओं की ओर धकेला जा रहा है। ऐसे परिवार उनकी पालना हेतु असामाजिक कार्य कर उन्हें पूरा करते हैं। इसका भी लेखक ने सुन्दर वर्णन किया है।

घर में किसी भी प्रकार की परेशानी से व्यक्ति अक्सर असामाजिक कार्य एवं असामान्य व्यवहार करने लगता है। खासकर वह व्यक्ति तो मानसिक रूप से कमजोर होता है। ‘रेहाना’ की शादी लतीफ से हो जाती है किन्तु रेहाना में उपन्यास के संदर्भ के अनुसार कोई ऊपरी शै है और लतीफ जोकि चार बच्चों का बाप है। उससे कुंवारी ‘रेहाना’ की शादी हो जाती है। अब जब रेहाना में जब कोई ऊपरी शै अपना असर दिखाती है तो वह परेशान रहता है और ऐसी हरकतें व व्यवहार करता है जो समाज में मान्य नहीं है।

अपने उपन्यास 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' में अब्दुल बिरिस्मल्लाह में इस वहम पर एक ओर सुन्दर उदाहरण रखते हैं कि

“भूतिन! जिन्नानिन! निकल हिया से अब्बी! निकल!”

तो लतिफवा है यह! रेहाना का मार रहा लगता है! रात में भी लड़ाई हो रही थी। घर सटा होने से साफ सुनायी पड़ता है। रेहनवा तो एक रोज़ अलीमुन से कह रही थी कि रोज़ लड़ाई होती है। अब वह बहुत पीने लगा है। रोज़ रात में वह झूमता हुआ आता है और अण्ड-बण्ड बकने लगता है। रेहनवा को नोचने-खसोटने लगता है। गालियाँ ऊपर से।” (बिरिस्मल्लाह 93)

कहने का भाव यह कि भ्रम अथवा मानसिक डर व्यक्ति की मानसिक स्थिति को एक ऐसी स्थिति में पहुँचा देता जहाँ उसकी बुद्धि उसका विवेक कार्य करना बंद कर देता है और उसके व्यवहार में विभिन्न प्रकार के अजीब से बदलाव आ जाते हैं जो उसके साथ-साथ अन्य के जीवन को भी नकारात्मक प्रकार से प्रभावित करता है।

बीमार मानसिकता: एक सामाजिक बीमारी-

इस संसार में प्रत्येक मनुष्य सामाजिक जीवन से संबंधित प्रत्येक कार्य अपने-अपने तरीके से करता आ रहा है। वह कभी गलत भी हो सकता है, कभी सही भी हो सकता है। पर कई बार देखने सुनने में यह आता है कि यदि व्यक्ति का दिमाग किसी कारणवश खराब है, दुविधा में है तो उसे संबंधित कार्य में अस्पष्टता ही नजर आएगी। उसे सही कार्य भी गलत ही नजर आएगा। यही बात किसी व्यक्ति विशेष के बारे में भी दिखाई देती है यदि किसी व्यक्ति विशेष से हम नाराज़ अथवा दुखी या परेशान हैं तो उसके प्रत्येक कार्य में हमें कमियाँ नजर आती हैं। दूसरी ओर यदि किसी व्यक्ति विशेष से हम प्रसन्न हैं तो उसके गलत कार्य भी हमें सही लगते हैं। दरअसल यह एक प्रकार की मानवीय विकृति है जिसे अवसादित विकार कहते हैं। राबर्ट सी. कारसन अपनी किताब 'असामान्य मनोविज्ञान' में इस प्रकार की विकृति

के बारे में कहते हैं कि “इस विकार वाले लोग अवसादित संज्ञानों और व्यवहारों, जो व्यापक प्रकृति के हैं के प्रतिरूपों को दिखाते हैं। उनकी सामान्य मनोदशा-स्थिति दुःख, उदासी या विषाद् (यद्यपि, उदासी जरूरी नहीं है) की होती है और अपर्याप्त, बेकार, पश्चातापी या दोषी महसूस करते हैं। वे निराशावादी और चिन्ता उन्मुख भी होते हैं।” (कारसन 489)

प्रस्तुत उपन्यास ‘मुखड़ा क्या देखें’ में रामवृक्ष पाण्डे भारतीय आजादी के दौरान ‘नेहरू’ की जगह ‘पटेल’ को देश का प्रधानमंत्री बनाने की चाह लिए हुए थे। किन्तु ‘नेहरू’ को देश का प्रधानमंत्री बना दिया गया तो उनके द्वारा किए गये प्रत्येक कार्य में से रामवृक्ष को गलतियाँ ही नजर आती हैं।

“रामवृक्ष पाण्डे इस मामले में बिल्कुल हीरा आदमी थे। वे अकसर कहा करते थे, कि जिसको खिल्लाओ भर पेट खिल्लाओ और जिसको मारो जान से मारो। अधूरे काम उन्हें पसंद नहीं थे। उनका बस चलता तो एक काम उन्होंने अवश्य किया होता: स्वाधीनता के पश्चात् देश जब बँट रहा था तो सारे मुसलमानों को वे पाकिस्तान भिजवा देते और पूर्वी पाकिस्तान का लपूझन्ना भी न लगने देते। कोई काम हो तो पूरा हो। या इधर, या उधर। मगर क्या करें, देश के नेता तो गाँधी और नेहरू थे। और पंडित रामवृक्ष पाण्डे की पहुँच नहीं थी उन तक।” (बिरिमल्लाह 16)

अब्दुल बिरिमल्लाह अपने उपन्यास ‘मुखड़ा क्या देखें’ में इसी प्रकार से लोगों की छोटी व बीमार मानसिकता का बारूबी वर्णन करते हैं कि

“अली अहमद अपनी भउजी के साथ गँवई जाने लगा। और दो-तीन साल के भीतर ही चूड़ी पहनाने की कला में वह माहिर हो गया। पहले छोटी लड़कियों को बचकानी चूड़ियाँ, फिर धीरे-धीरे ‘चौदा आनी’ और ‘दू इंची’ नापवाले हाथों को भी वह चूड़ियाँ पहनाने लगा। लेकिन जैसे-जैसे अल्ली की उम्र बढ़ी, मर्दों ने एतराज करना शुरू किया। कोई जवान मर्द उनके घर की लड़कियों और बहुओं के हाथ मसले, यह बात उन्हें पसंद नहीं थी।” (बिरिमल्लाह 19)

इस प्रकार की सोच व्यक्ति की बीमार मानसिकता का पूर्ण रूप से सूचक का कार्य कर रही है। क्योंकि समाज में विभिन्न ऐसे कार्य रहे हैं अथवा चल रहे हैं जिनका स्त्री या पुल्लिंग होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। डॉक्टर का पेशा ऐसा ही जिनमें मानव जाति का इलाज कोई भी पुरुष अथवा स्त्री डॉ. कर सकता है। आधुनिक युग में तो विभिन्न प्रकार के ऐसे कार्य है जो सम्भवतः हैरान करने वाले है कि यह कार्य पुरुषों के लिए है अथवा स्त्रियों के लिए। आज तो संसार के विभिन्न देशों में जिसमें कि भारत जैसा देश भी शामिल है, अपनी फौज में लड़कियों की भर्ती कर रहे हैं। अब देखने में अथवा सुनने में यह बड़ा अजीब लगता है। किन्तु यह सत्य है। फौज ही क्या विभिन्न ऐसे कार्य हैं जिसमें लड़कियाँ लड़कों से आगे है। पहले रोटी बनाने को कार्य केवल लड़कियों के ही जिम्मे आता था। किन्तु आजकल तो होटलों में, ढाबों पर लड़के ही रोटियाँ बनाने एवं बर्तन साफ करने का कार्य कर रहे है। लड़कियों को शादी-विवाह अथवा किसी भी दिन-त्योहार हेतु सजाने का कार्य भी लड़के बड़े अच्छे से कर रहे हैं। तो कहने का तात्पर्य यह कि इस बात से कोई भी एतराज नहीं उठना चाहिए कि यह कार्य केवल स्त्रियों और यह कार्य केवल पुरुषों के लिए है। जो जिस कार्य में महारत हासिल किए है उसे वह अवश्य करना चाहिए। यदि कोई भी व्यक्ति इस प्रकार की क्रिया के बदले में अपनी कोई उलट प्रतिक्रिया देता है तो यही मान्यता रहेगी कि उसकी मानसिक स्थिति अच्छी नहीं है।

इतिहास को आधार बना किये गये कार्य अथवा बनाये गये सिद्धांत तो वर्तमान दौर में प्रासंगिक हैं। किन्तु मात्र कल्पना के आधार पर समाज में जीने के जो भी नियम बने, उन्होंने समाज में केवल द्वन्द्वत्मक वातावरण ही पैदा किया है। उपर्युक्त कलात्मक कहानी के आधार पर केवल यह कहा जा सकता है कि मानव जाति को अपने अंदाज में जीने के जो भी नियम बनाये। यदि तो वह समाज में दुविधा पैदा कर रहे थे तो स्वार्थी मानव ने उसमें अपनी कल्पना का समावेश करा ऐसी कहानियाँ बनायी और उन्हें धर्म के साथ इतनी सुंदर तरीके से जोड़ दिया कि जो न माने उसे पापी कहा जाएगा और जो मान जाये तो उसे उनके तरीके से ही जीवन जीना पड़ेगा।

ऐसी जीवन कला से समाज दिन-ब-दिन जटिलता की ओर अग्रसर होता जा रहा है। जो कि सामान्य जीवन शैली के समीप भी नहीं।

इस प्रकार की स्वार्थ से भरपूर रचित की गई जीवन शैली का अनपढ़ लोगों पर लगभग बुरा असर ही पड़ता है। वह लोग अपने सामान्य जीवन भी खुलकर नहीं जी सकते हैं। वह लोग धर्म की जटिल धारणाओं से पूरी तरह अनभिज्ञ रहते हैं। किन्तु ऐसे समाज में प्रचलित भययुक्त परम्पराओं से गरीब व अशिक्षित लोग कभी भी उपर नहीं उठ सके। धर्म के आधार से जुड़ी नाजुक परिस्थितियों में ऐसे लोग ऐसा व्यवहार करने लगते हैं कि ऐसा लगाता है कि उनकी जिन्दगी इस समाज में नर्क के अलावा कुछ भी नहीं है।

आक्रोश से गिरती नैतिकता: -

मानवीय व्यवहार में 'क्रोध' अथवा 'आक्रोश' एक ऐसा मानसिक विकार है जो स्वयं को प्रभावित करने के साथ-साथ अन्य के व्यवहार में भी नकारात्मक बदलाव लाने के लिए सहायी होता है। इससे प्रभावित व्यक्ति विभिन्न प्रकार से अपनी प्रतिक्रिया का प्रदर्शन करता है। वह शाब्दिक आक्रामकता अथवा शारीरिक आक्रामकता का सहारा ले अपनी मानसिक संतुष्टि हेतु लालायित रहता है। विद्वेष और क्रोध दोनों लगभग समान प्रवृत्ति रखते हैं। किन्तु इनमें थोड़ा सा अंतर होता है। इलाचन्द्र जोशी अपनी किताब 'दैनिक जीवन और मनोविज्ञान में क्रोध और विद्वेष के संबंध में अपने विचारों में कहते हैं कि

“विद्वेष और क्रोध की वृत्तियाँ एक-दूसरे से बहुत मिलती जुलती सी हैं। अंतर केवल यह है कि हमारा क्रोध किसी भी व्यक्ति के प्रति किसी भी अवसर पर अमड़ सकता है; पर घृणा या विद्वेष का भाव कुछ विशेष-विशेष व्यक्तियों के विरुद्ध दीर्घकाल तक हमारे मन में घर किये रहता है।” (जोशी 137)

अब्दुल बिरिमल्लाह ने अपने उपन्यास 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' में भी इसी प्रकार की मानसिक विकृति का वर्णन बारबूबी किया है

“हाजी साहब साड़ी खोलकर खूब बारीक निगाह से चेक करते हैं और शुरू हो जाते हैं, “का म्यों, देखो कइसी साड़ी बीने हो? केतना-सा ऐब है। एदम चउपट करके रख दीये हो। पूरी सड़िया चउपट है। कइसे ई बिकिए?”

“का ऐब है गिरस?” मतीन सहमते-सहमते पूछता है तो हाजी साहब और बिफर पड़ते हैं-

“अभइन पूछते हो कि का ऐब है? साड़ी पुजेती तो चेक नाँही करतो? उल्टे हमई ये पूछेतो कि का ऐब है? देखो, एज्जन ताग मइला है, एज्जन दाग है। हदे मती है। दस रुपिया कम होइए!” (बिस्मिल्लाह 17)

मानवीय व्यवहार की इस विकृति पर इलाचन्द्र जोशी अपनी किताब ‘दैनिक जीवन और मनोविज्ञान’ में कहते हैं कि

“शरीर तथा मन कि भीतर जब प्रवेगपूर्ण शक्ति अतिरिक्त मात्रा में एकत्रित हो जाती है, तब वह बाहर निकलने के लिए विकल हो उठती है। इस अतिरिक्त शक्ति को किसी उपाय से युक्त करने की विशेष आवश्यकता रहती है। क्रोध के आवेश में पाकर जब हम किसी विशेष कर्म-चेष्टा द्वारा उस अतिरिक्त शक्ति से छुटकारा पा लेते हैं, तब उससे हमारे शरीर और मन को विशेष लाभ होता है।” (जोशी 136)

हिन्दी साहित्य के काव्यशास्त्र में गुस्से की प्रवृत्ति के संबंध में विभिन्न हिन्दी आचार्यों ने रस के माध्यम से इसकी व्याख्या की है। नाट्यशास्त्र के प्रसिद्ध प्रतिष्ठापक भरत मुनि ने रस के सिद्धांत को प्रस्तुत किया। उसमें इन्होंने इस बात का वर्णन किया कि व्यक्ति के दिमाग में कुछ स्थायी भाव होते हैं तो वातावरण से संयोग कर हमारे व्यवहार में परिवर्तन लाते हैं। डॉ. सत्यदेव चौधरी एवं डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त अपनी किताब ‘भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र का संक्षिप्त विवेचन’ में रस के संबंध में कहते हैं कि

“सहृदय के अंतःकरण में रति आदि स्थायिभाव वासना रूप से सदा उस प्रकार विद्यमान रहते हैं जिस प्रकार मिट्टी में गंध। जिस प्रकार

मिट्टी में पूर्व विद्यमान गन्ध जल का संयोग पाकर प्रकट हो जाता है, उसी प्रकार स्थायिभाव भी विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभाव के संयोग से व्यक्त होने पर 'रस' नाम से पुकारे जाते हैं। अथवा जिस प्रकार किसी खट्टे पदार्थ के संयोग से दूध 'दही' के रूप में परिणत हो जाता है, उसी प्रकार विभावादि के संयोग से स्थायीभाव 'रस' से अभिहित होते हैं।" (सत्यदेव, गुप्त 51)

कहने का तात्पर्य यह कि इस रस सिद्धांत से यह बात पता चलती है कि गुस्सा भी रस सिद्धांत के अनुसार एक प्रकार का स्थायिभाव है जो व्यक्ति के हृदय में जन्मजात ही होता है और अनुकूल वातावरण के संयोग से उससे संबंधित रस की उत्पत्ति होती है। साधारण जन को इस रस की उत्पत्ति से यह आभास होता है कि अमुक व्यक्ति को गुस्सा आ रहा है। इस परिस्थिति में बालेन्दु शेखर तिवारी अपनी किताब 'वस्तुनिष्ठ काव्यशास्त्र' में कहते हैं कि

“जहाँ विरोध, अपमान, अपकार आदि के कारण प्रतिशोध की भावना क्रोध उपजाती है, वहीं रोद्र रस साकार होता है। क्रोध इसका स्थायी भाव है और रुद्र को आचार्यों ने रोद्र रस का देवता माना है। गुस्से में कठोर बोलना, ललकारना, दाँत पीसना, पैर पटकना, आँखे लाल करना, मारना आदि जिस क्रोध के अनुभाव हैं, वहीं क्रोध इस रस का केन्द्रीय विषय होता है।” (तिवारी 40)

अब्दुल बिरिस्मल्लाह अपने उपन्यास झीनी झीनी बीनी चदरिया में इसी प्रकार की रस सिद्धांत के आधार पर आधारित प्रक्रिया का वर्णन बड़े ही सुन्दर तरीके से प्रस्तुत किया है कि “भीतर कमरे में बैठा-बैठा इकबाल न जाने क्या-क्या बना-बिगाड़ रहा है और पूरे घर का गंदा किये दे रहा है। उसकी खटर-पटर से जैसे ही अलीमुन की निगाह उधर घूमती है, वह अपने शरारती बेटे पर चीखने लगती है, “अरे माटी-मिले तैं का बनावेते रे! हट ओज्जन से.....ई हरमिया बड़ा कोपाये रहेते, कउना दिना तोरी नटइये दबा देब हो हरामी....” (बिरिस्मल्लाह 09)

तनाव से बिगड़ती मानसिकता: -

आधुनिक समय में 'तनाव' शब्द का इस्तेमाल अत्यधिक हो रहा है। कारण यह कि आजकल के लोगों ने अपनी दिनचर्या को ही इस प्रकार बना लिया है जिससे यह शब्द उनका अत्यधिक प्रभावित करता है। आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान में अरुण कुमार सिंह मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि के अंतर्गत इस शब्द के अर्थ एवं महत्ता पर अपने विचारों में कहते हैं कि "तनाव परिस्थिति या घटना का मूल्यांकन करने के बाद उसके प्रति की गयी एक विशेष अनुक्रिया होती है जिसमें व्यक्ति अपने मानसिक एवं दैहिक कार्यों को विघटित होने पाता है।" (अरुण 180)

तात्पर्य यह कि तनाव मानवीय जीवन में किसी भी प्रकार की घटित होती घटना एवं उसके बदले में हमारी ओर से की गई प्रतिक्रिया की एक स्थिति होती है जो हमें नकारात्मक एवं साकारात्मक दोनों प्रकार की स्थितियों से अवगत कराती है। कुछ बुरी घटनाओं के संबंध में भी हमारे मन में इस प्रकार की स्थिति पैदा होती है। साथ ही साथ कुछ अच्छी घटनाओं के संबंध में भी यही स्थिति हमारे समक्ष होती है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने उपन्यास 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' नामक उपन्यास में इसी प्रकार की मानसिक परिस्थिति का वर्णन करते हैं जिसमें तनाव बाख़ूबी दिखाई देता है।

"कमरुद्दीन 'मुसा का गुल' अपने दांतों में मलता हुआ उनके पास पहुँचता है और कुछ बात करना चाहता है, पर हाजी साहब कोई तवज्जोह नहीं देते। वे समझ रहे हैं कि मतीन कैसी सोसाइटी बनाना चाह रहा है। अगर यह सोसाइटी बन गई तो?

हाजी साहब चिन्तित हो जाते हैं।

हालाँकि उनके चचा जनाब हमीदुल्ला एमे (एम.ए.) आल इण्डिया हैण्डलूम बोर्ड के चेयरमैन हैं और उनके होनेवाले समधी हाजी बलिउल्ला के बड़े भाई हाजी हमीद यू.पी. हैण्डलूम बोर्ड के चेयरमैन हैं और वे कुछ भी कर

सकने में सक्षम हैं, पर मतिनवा के दिमाग में यह बात आई कैसे? ज़रूर उसे एमले (एम.एल.ए.) भोसड़ीवाले की कारस्तानी है! ठीक है। अगला चुनाव आवे तो बतावें बुरचोदी को! अरे, शहर उत्तरी के आधे अंसारियों के वोट तो हमारे हाथ में हैं!

लेकिन मतिनवा की सोसाइटी अगर बन गयी तो? हमारे करघों का क्या होगा? और हाजी साहब अचानक बेहद उदास हो गये। वे उठे और घर की ओर चल पड़े।” (बिस्मिल्लाह 25)

व्यक्ति के दिमाग में जब किसी भी कार्य को करने की बात ठन जाती है तो एक प्रकार से उसके व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है। वह दिखने में साधारण लगता है। किन्तु उसके दिमाग में हरपल उसी काम को पूरा करने की वही बात चलती रहती है। वह शारीरिक रूप से तो समाज के प्रत्येक कोने में अपना वर्चस्व बरकरार रखता है। किन्तु दिमाग उसका केवल अपने कार्य को किसी न किसी प्रकार अथवा तरीके से पूरा करने की कोशिश में लगा रहता है। उसे अपने आसपास व अपने शरीर या वेशभूषा की कोई फिक्र नहीं रहती। ऐसी स्थिति में उसके व्यवहार में जो बदलाव हम महसूस करते हैं वह असाधारण होता है। कार्य को पूरा करने की चिंता उसे सामान्य नहीं रहने देती। जगदानन्द पाण्डेय अपनी किताब ‘असामान्य मनोविज्ञान’ में कहते हैं कि

“सामान्य चिन्ता में व्यक्ति का संबंध वर्तमान भयावह परिस्थिति से रहता है: लेकिन असामान्य चिन्ता के समान नहीं रहता। उनको अपनी चिन्ता की सूझ नहीं रहती, इसलिए हम यह कह सकते हैं कि उसकी चिन्ता पदार्थ-विहीन होती है। उसे अपनी चिन्ता का ज्ञान नहीं रहता है। इसी में वह आगे कहते हैं कि सामान्य चिन्ता बाहरी भयावह परिस्थिति की प्रतिक्रिया है; लेकिन असामान्य चिन्ता आन्तरिक भयावह परिस्थिति की प्रतिक्रिया है।” (पाण्डेय 155)

सामाजिक दायरे में रहते हुए व्यक्ति प्रतिदिन अपनी दिनचर्या के दौरान विभिन्न ऐसे हालात से गुजरता है जो उसे नकारात्मक एवं सकारात्मक तरीके

से प्रभावित करते हैं। जिससे हमारे व्यवहार में बदलाव आता है। कई बार हम छोटी से बात पर ही खीझ जाते हैं और कई बार बहुत बड़ा नुकसान भी झेल जाते हैं और उफ! भी नहीं करते। दूसरी ओर कई बार ऐसा होता है कि एक छोटी से बात से ही हम नकारात्मक प्रवृत्ति से ऊर्जावान हो जाते हैं।

आज प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी दिनचर्या को इस प्रकार बड़ा लिया है कि उसके पास समय की कमी हो गई है। अब उसकी इच्छा है कि कोई भी कार्य जो भी करना चाहता है। वह उसकी इच्छा के अनुसार समय पर पूरा हो। जोकि संभव नहीं हो पाता। जिस कारण वह तनावग्रस्त हो जाता है। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' नामक उपन्यास में लेखक ने बड़े ही सुन्दर तरीके से इसमें इसमें शामिल मुख्य किरदार 'मतीन' को इस प्रकार की परिस्थिति से ग्रस्त दिखाया है जो कि गरीब होने के साथ-साथ जुझारू तो है। किन्तु उसका अपने जमींदारों पर कोई वश नहीं चलता। वह चाहता है कि उस जैसे गरीब व्यक्ति मिलकर एक सोसाइटी बनाये। जिससे वह सरकार से कर्जा लेकर अपना कार्य शुरू कर सके। किन्तु सामाजिक व राजनैतिक दाव-पेच न समझ पाने के कारण वह परेशान रहता है, तनाव में रहता है। दूसरी ओर वह अपने गरीब भाई बंधुओं की अज्ञानता, उनकी आपसी फूट, उनकी असहनशीलता के कारण तनाव में रहता है। उसके मन में कुछ नया व दूसरों की गुलामी को छोड़कर अपने दम पर कार्य करने की इच्छा है। किन्तु वह जब सफल नहीं हो पाता तो झुणझला जाता है। बीच बीच में मादक सेवन का सहारा भी लेता है। किन्तु उसके 'रउफ चचा' उसे तनावग्रस्त देख कर उसके प्रति सहानुभूति भी रखते हैं और उसे समझाते भी हैं कि जल्दबाजी में कुछ नहीं होगा। सब करना सीखो। समय आने पर सब कार्य सिद्ध होंगे।

लेखक ने अपने इस उपन्यास में सामाजिक दायरे में रहकर यह बताने का प्रयास किया है कि वह व्यक्ति सदैव ही तनावग्रस्त रहता है जिसने अपने दिमाग को किसी भी सामाजिक परिस्थिति में शांत रखने से परहेज किया। दूसरी ओर जिन व्यक्तियों ने अपने अनुभवों से, प्रत्येक सामाजिक परिस्थिति से कुछ न कुछ सीखा है और अपने दिमाग से शांत रहते हुए कार्य किये हैं,

वह सदैव ही कामयाब रहे हैं और ऐसे लोग दूसरों के लिए भी सदैव ही प्रेरणादायक रहे हैं।

एक जगह ओर जब मतीन के बैंक से लोन वाला काम पूर्ण नहीं होता तो वह बुरी तरह से तनावग्रस्त हो जाता है तो भी रऊफ चचा उसे बड़ी ही संजीदगी से समझाते हुए नजर आते हैं। दरअसल वह मन ही मन सोचते भी हैं कि यदि जिन्दगी में कोई कार्य किसी कारणवश पूरा नहीं होता है तो क्या जिन्दगी रुक जाती है? क्या आसमान टूट पड़ता है? नहीं! ऐसा कुछ भी नहीं होता है। यह मानव की केवल मानसिक कमजोरी है। जिसे वह कार्य न होने की सूरत में अपने दिल पर लगा लेता है और डरता भी है कि यदि लोगों को इस बात का पता चलेगा तो उसकी बदनामी होगी। लोग तरह-तरह की बातें बनाएँगे।

जब हम मानसिक रूप से कमजोर होते हैं तो हम अमुक व्यक्ति की बातों को सहन करने की शक्ति को खो देते हैं। हम प्रत्येक बात को ऐसा महसूस करते हैं कि वह मुझे ही माध्यम बना कर कही गयी है। मुझसे ही कही गयी है। हम उन बातों के प्रति अपनी संवेदनाएँ जोड़ देते हैं और ऐसा व्यवहार करने लगते हैं जो उसके व्यक्तित्व के अनुकूल नहीं होता। ऐसा व्यवहार हमारी असामान्यता के लक्षणों का सूचक होता है।

द्वन्द्व, द्विधुवी विकारः -

यह एक ऐसा मानसिक विकार है जो व्यक्ति के मन में बाहरी वातावरण के माध्यम से उसकी इच्छाओं के विरोध में किये गये कार्यों के संबंध में उत्पन्न हुई एक प्रकार की उत्तेजना के रूप में व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती है। यह एक ऐसी परीस्थिति होती है जिसमें व्यक्ति दो एक-दूसरे के विपरीत की स्थितियों में से एक को चुनने के प्रति असहज महसूस करता है। जिससे उसके मन में दुविधा उत्पन्न होती है। यह व्यक्ति के मन की दृढ़ता एवं उसकी इच्छा-शक्ति पर प्रश्न चिह्न लगा देती है। इलाचन्द जोशी इस संबंध में अपनी किताब 'दैनिक जीवन और मनोविज्ञान' में अन्तर्द्वन्द्व के संबंध में कहते हैं कि

“हमारी विविध आकांक्षायें तथा मनोभावनायें बहुधा परस्पर विरोधी रूप धारण कर लेती हैं और उनमें पारस्परिक संघर्ष चलने लगता है। इस अंतर्द्वन्द्व के फलस्वरूप हमें दुःख और अशान्ति का सामना करना पड़ता है। किसी विशेष अवसर पर हमारे भीतर एक विशेष प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित करने की इच्छा जाग पड़ती है, पर साथ ही मन के किसी अज्ञात कोने से एक दूसरी प्रवृत्ति जाग पड़ती है जो बिल्कुल दूसरे ढंग से चलने के लिए हमें उकसाती है। हम असमंजस में पड़ जाते हैं। यही असमंजस हमारे भीतर की दो परस्पर-विरोधी भावनाओं के संघर्ष की सूचना हमें देता है।” (जोशी 166)

अब्दुल बिरिस्मल्लाह ने अपने ‘समर शेष है’ उपन्यास में इस प्रकार के अंतर्द्वन्द्व को बड़े ही सुन्दर तरीके से अपने पात्रों के माध्यम से दिखाया है।

“रात-भर हम एक-दूसरे से लिपटे यह तय करते रहे कि हमें क्या करना चाहिए। यहाँ से जाते हैं तो पढ़ाई नष्ट होती है और रहते हैं तो स्वाभिमान की हत्या होती है। शिक्षा जरूरी है या स्वाभिमान ? यह प्रश्न बार-बार हमारे दिमागों से टकराने लगा।” (बिरिस्मल्लाह, 13)

मानवीय जीवन में इस विकृति से अत्यंत भयंकर परिस्थितियाँ पैदा हो जाती हैं। व्यक्ति किसी भी एक विषय में निर्णय नहीं ले सकता और हाताश हो बैठ जाता है। अरुण कुमार सिंह अपनी किताब ‘आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान’ में इसके कारकों के संबंध में कहते हैं कि

“जब व्यक्ति की कोशिश किसी लक्ष्य पर पहुँचने में बाधित हो जाती है तो इससे व्यक्ति में कुंठा उत्पन्न होती है। इस तरह का कुंठा जब उत्पन्न होता है जब वांछित लक्ष्य की प्राप्ति के मार्ग में बाधा उत्पन्न हो जाता है या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा बाधा खड़ा कर दिया जाता है। ऐसे कई चीजें हैं जिनमें व्यक्ति को अपने दिन-प्रतिदिन की जिंदगी में कुंठा उत्पन्न होती है। इनमें विभेद एवं पूर्वाग्रह, कार्य असंतुष्टि तथा प्रियजनों की मृत्यु आदि प्रमुख बाह्य पर्यावरणी कारक हैं जो व्यक्ति में कुंठा उत्पन्न करते हैं। उसी प्रकार से दैहिक विकलांगता, अकेलापन, दोषभाव,

अपर्याप्त आत्म-नियंत्रण, आवश्यक क्षमताओं की कमी आदि कुछ ऐसे प्रधान आंतरिक कारक हैं जिनसे व्यक्ति में कुंठा उत्पन्न होती है।”
(अरूण 189)

कहने का तात्पर्य यह कि मानवीय जीवन में कुंठा पैदा होने के विभिन्न कारण एवं कारक हैं यदि इनसे छुटकारा न पाया जाए तो यह व्यक्ति के मन में उसकी इच्छाशक्ति को खत्म कर उसे निर्णयहीन बना देते हैं।

द्वेष से प्रभावित व्यक्तित्व: -

हम सभी इस बात से ज्ञातव्य हैं कि प्रत्येक व्यक्ति में जन्मजात ही मूलभूत प्रवृत्तियाँ होती हैं। अनुकूल वातावरण की प्राप्ति हेतु यह समायानुसार जागृत हो उठती हैं। इनका जागृत होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इनके जागृत होने से रोकने या दमन करने से मानव भयंकर मानसिक विकृतियों की गाह में जा सकता है। इसको जागृत करने से मानव स्वयं को सहज महसूस करता है। इलाचन्द्र जोशी अपनी किताब ‘दैनिक जीवन और मनोविज्ञान’ में इन प्रवृत्तियों के संबंध में कहते हैं कि “मूल प्रवृत्तियाँ पशुओं और मनुष्यों में समान रूप से वर्तमान रहती हैं। अन्तर केवल यह है कि पशुओं के जीवन में वह सहज, सरल रूप से व्यक्त होती हैं; पर मनुष्यों के जीवन में उनकी अभिव्यक्ति अत्यन्त जटिल रूप धारण कर लेती है।” (जोशी 126)

मानवीय प्रवृत्ति में विभिन्नता है। किन्तु वातावरण एवं हालात के अनुसार उनमें बदलाव आता रहता है। उसके बाद स्त्री एवं पुरुष लिंग के अनुसार भी उनमें बदलाव आता रहता है। कुछ प्रवृत्तियाँ तो स्त्री जाति में हालात एवं वातावरण बदलने पर भी निकलने से परहेज करती हैं। ‘ईर्ष्या अथवा द्वेष’ के साथ-साथ अन्य ओर भी ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो उनके दिल-दिमाग में घर किये हुए हैं। संबंधित उपन्यास ‘मुखड़ा क्या देखें’ में लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह ने ऐसे विभिन्न बिंदुओं को उठाया है जो ईर्ष्या अथवा द्वेष से संबंधित हैं।

“भउजी ने अपने हिस्से में सारे गाँव निकट के रखे थे और अली अहमद को गौंती, हथिगन जैसे दूर के गाँव दे दिये थे। लेकिन आमदनी के लिहाज से अली अहमद के गाँव अच्छे थे। पहले तो भउजी को यह विश्वास ही नहीं था कि नई-नवेली रनिया इतने दूर के गाँव सँभाल सकेगी, लेकिन वह जब हाथ-भर का घूँघट काढ़कर, सिर पर चूड़ियों का भौंका उठाए हथिगन-गौंती से आए दिन खनखनाते सिक्के और गठरी भर-भर चावल-दाल लाने लगी तो पश्चाताप से भउजी का कलेजा भाड़ की नाई जलने लगा।” (बिस्मिल्लाह 20)

प्रस्तुत प्रक्रिया में दो बातें निकलकर बाहर आती है कि एक तो व्यक्ति दूसरे के हित में बहुत कम सोचता है। उसे सदैव ही यह चाह रहती है कि कोई उससे आगे न निकल जाए। किन्तु जब दूसरा व्यक्ति स्वयं को उस प्रकार के पैदा हुए हालात के अनुसार ढाल लेता है तो भी पहले व्यक्ति को ईर्ष्या भाव पैदा हो जाता है कि वह उस प्रतिकूल वातावरण हालात में खुश क्यों है? तात्पर्य यह कि व्यक्ति दूसरों को खुश देख कर स्वयं दुखी रहता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यास साहित्य में असामान्य मनोविज्ञान से संबंधित विभिन्न ऐसे बिन्दु बिखरे पड़े हैं जिन्हें मनोवैज्ञानिकों ने अपनी विचारधाराओं के अनुसार असामान्य व्यवहार से संबंधित करार दिया है। आधुनिक समाज में इस विचारधारा की माँग भी है कि सामान्य व्यवहार को बरकरार रखने हेतु असामान्य व्यवहार को खत्म करने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रयास जारी रहने चाहिए। चाहे वह किसी भी प्रकार से हों। साहित्य उनमें से एक है।

3.2 कहानी साहित्य में असामान्य मनोविज्ञान:

समयानुसार बदलते माहौल से प्रत्येक व्यक्ति प्रेरित होता है। लेखक भी इससे अछूता नहीं रहा। अपने जीवनकाल के दौरान विभिन्न वातावरण से गुजरते हुए उन्होंने विभिन्न अनुभवों को ग्रहण किया है। अपने समाज, धर्म, जाति, रसमों रिवाजों इत्यादि का पालन करते व पालन होते देखते हुए उन्होंने अपनी लेखनी विभिन्न परिस्थितियों के अनुरूप चलाई है। उनके कहानी

संग्रहों में हिन्दू-मुस्लिम से संबंधित विभिन्न ऐसे सामाजिक वातावरण से संबंधित किस्से मिल जाते हैं जो मनोवैज्ञानिक पद्धति के अनुरूप इसकी विभिन्न श्रेणियों पर खरे उतरते हैं। इस प्रकार की विचारधारा को युंग ने अपने मनोविज्ञान में 'विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान' की संज्ञा दी है। जिसमें उन्होंने चेतना को सर्वस्व मानते हुए उसे ही जीवन का आधार माना।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के कहानी संग्रह में भी असामान्य मनोविज्ञान से संबंधित विभिन्न प्रकार के पहलुओं का वर्णन हमें प्राप्त होता है। लेखक ने विभिन्नता का रूख अपनाते हुए अपनी कहानियों में उन सभी मुद्दों पर अपनी लेखनी चलाई है जो सामाजिक उलझनों से भरपूर व्यक्ति के मन में बीमार मानसिकता का सूर्य उदय करवाती है। दरअसल कहानियों का मूल तत्व तो होता ही ऐसा है कि वह व्यक्ति के प्रत्येक दिन की प्रत्येक घटना एवं उसके एक-एक पल को उसकी व्यावहारिक लक्षणों के आधार पर प्रदर्शित करवाये। जिस प्रकार समाज में आये दिन व्याधियों का बाजार गर्म रहता है। उसी के अनुकूल ही व्यक्ति के व्यवहार में भी बदलाव स्वाभाविक है। समाज में उसकी भूमिका, उसका दायित्व उसी प्रकार बनता बिगड़ता है।

वर्तमान समय में पैसा, रुतबा, समय की कमी, अत्यधिक कार्य इत्यादि जैसे कारणों ने मानव को समाज में स्वार्थी स्वभाव सहित अकेले रहने को विविश कर दिया है। उसमें वह सभ्य गुण कहीं विलुप्त ही हो गये हैं जिस कारण उसके व्यवहार में भय, चिन्ता, डर, नीरसता, अनचाही विवश्ता इत्यादि बिन बुलाये ही विद्यमान हो रही है जिससे संसार में, समाज में एक प्रकार से नीरसता छा रही है। लोगों में गुस्से की लहर अप्रयाप्त रूप से उनके दिल दिमाग में घर कर बैठी है। उनके रोज़ाना जीवन में भाग-दौड़ के अलावा कुछ भी शेष नहीं है। दूर से खड़े होकर देखने से मात्र सुनापन ही नज़र आता है। यही व्यवहार उसका समाज में दृष्टव्य है।

कहानी का अर्थ ही यह है कि किसी घटना प्रधान किस्से को व्यवस्थित रूप में रसात्मक तरीके से प्रस्तुत किया जाये। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपनी कलम के माध्यम से वर्तमान समाज की परिस्थितियों के ध्यान हित विभिन्न

घटनाओं को कारण बनाकर कहानियाँ लिखी। लेखक के सात कहानी संग्रहों में से लगभग सभी कहानियाँ समकालीन समाज एवं उसके सामाजिक व्यवहार से संबंधित हैं। हमारे इस शोध कार्य में इस अध्याय में मात्र उनकी इन सभी कहानियों में से उस व्यवहार को बाहर निकालना है, जिसका समाज में साधारण परिस्थितियों में मान्य अस्वीकार्य है अथवा जो सामान्य व्यवहार से परे है। पिछले अध्यायों में असामान्य व्यवहार से संबंधित जानकारी प्रदान की जा चुकी है। इसमें केवल कहानियों में पात्रों के संवादों के माध्यम से असामान्य व्यवहार के उन सभी पहलुओं को उठाया है जिसका चित्रण लेखक ने किया है।

मानसिक डर से बिगड़ते हालात: -

यह मानसिक ग्रन्थि की एक किसम है। जैसे हमारे मन में बहुत सी ग्रन्थियाँ होती हैं जो समयानुसार और क्रियानुसार मानवीय व्यवहार में उत्पन्न होती रहती हैं। इस संबंध में लालजीराम शुक्ल अपनी किताब 'मानसिक चिकित्सा' में कहते हैं कि

“हमारे जीवन में बहुत सी घटनाएँ ऐसी होती हैं जो हमें अच्छी लगती हैं और बहुत सी ऐसी होती हैं जो हमें अप्रिय लगती हैं। अप्रिय घटनाओं को हम भूल जाना चाहते हैं। अतएव इस प्रकार की घटनाओं की स्मृति का दमन करते हैं और इस प्रकार के दमन से मानसिक ग्रन्थि की उत्पत्ति होती है। यह मानसिक ग्रन्थि ही स्वप्न तथा अनेक प्रकार के मानसिक और शारीरिक रोगों का कारण बनती है। मनुष्य का अचेतन मन इस प्रकार की मानसिक ग्रन्थियों का निवास स्थान बन जाता है।”
(शुक्ल 100)

सभी कहानी संग्रहों में से अत्यधिक कहानियों में छिपे हुए मानसिक डर को लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह ने बड़े ही संजीदगी से प्रस्तुत किया है। दरअसल मानसिक डर, भय अथवा दुर्भीति मानव मन की एक ऐसी विकृति है जिसे व्यक्ति स्वयं समझने एवं उसे काबू करने की स्थिति में कदाचित् नहीं रहता। पल्लवी भटनागर अपने साथियों सहित राबर्ट सी. कारसन एवं उनके

साथियों द्वारा लिखित किताब 'असामान्य मनोविज्ञान' का हिन्दी में अनुवादित करती हुई इस संबंध में कहती हैं कि

“भय अथवा दुर्भीति एक बुनियादी संवेग होता है जिसमें अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र की 'संघर्ष-या पलायन' (*Fight-or-Flight*) अनुक्रिया का क्रियाशील होना सम्मिलित होता है। यह अवश्यभावी खतरे के संकेत, जैसे- खतरनाक हिंसक पशु या किसी के द्वारा भरी हुयी बंदूक तान लेने के प्रति बिलकुल अतिशीघ्र होने वाली प्रतिक्रिया होती है। इसकी समायोजन उपयोगिता यह है कि हमें सन्निकट खतरे से बच निकलने की छूट दे देती है।” (कारसन 231)

इस प्रकार के डर, भय अथवा दुर्भीति बाहरी डरावने वातावरण की उपज होते हैं। किन्तु अनेक बार ऐसे हालात पैदा होते हैं जब बाहरी वातावरण डरावना नहीं होता बल्कि हमारे पूर्वानुमानित घटना से प्रभावित हमारी मन की उपज मात्र से हम चिंतित अथवा भयभीत हो जाते हैं। लेखक ने इसी प्रकार के चिंतित एवं भयभीत व्यवहार को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। अब्दुल बिरिमल्लाह अपने कहानी संग्रहों के संग्रह 'ताकि सनद रहे' नामक किताब में 'दंगाई' कहानी में लेखक ने इस प्रकार की घटना का वर्णन करते हैं कि

“बस की जिस सीट पर मैं बैठता हूँ उस पर पहले सी दो सज्जन विद्यमान हैं। मुझे लगता है कि वे मुझे संदेह की दृष्टि से देख रहे हैं और मेरी योजना के संबंध में भीतर-ही-भीतर कुछ सोच विचार कर रहे हैं। लेकिन अपने हाथों को दोनों ओर फैलाकर मैं कुछ इस ठाठ के साथ बैठ जाता हूँ और शीघ्र ही आत्मसन्तोष से परिपूर्ण होने लगता हूँ। इसके अलावा, बस के चलते ही मैं एक गाना भी प्रारम्भ कर देता हूँ।” (बिरिमल्लाह 30)

इस प्रकार की घटनाओं एवं मानवीय व्यवहारों से यह साफ परिलक्षित हो जाता है कि जब हमारे मन में कोई ऐसी बात हो जो हम समाज से छिपाना चाहते हों अथवा किसी को बताने से परहेज़ करते हों तो हमें हर पल इसी बात का आशंका रहती है कि कहीं किसी को इस बात का पता न चल

जाए। हमारे मन में सदैव उस बात को लेकर एक छिपा हुआ डर बना रहता है। यदि कोई भी दो या तीन व्यक्ति हमारी तरफ देख कर आपस में भी बात कर रहे होंगे तो भी हम इस बात से आशंकित रहेंगे कि कदाचित् वह हमारी ही बात कर रहे होंगे। उनकी इसी कहानी संग्रह 'ताकि सनद रहे' की 'भूत' कहानी में भी भय की घटनाओं का निरूपण है।

“खाँ साहब जैसे ही भीतर घुसे, उन्हें लगा कि बरामदे में कोई भूत खड़ा है। हालाँकि भूत-वूत पर खाँ साहब का बिलकुल विश्वास नहीं है, लेकिन उस रोज़ जाने क्या बात थी कि बरामदे में जो टेढ़ी छाया खड़ी थी उसे उन्होंने भूत ही समझा। भूत के बारे में अपनी नानी से उन्होंने तरह-तरह की कहानियाँ सुन रखी थी। मसलन, भूत के दाँत बड़े-बड़े और बाहर को निकले हुए होते हैं। भूत के सिर पर लम्बे-लम्बे सींग होते हैं। हाथ पैर भद्दे और डरावने होते हैं। जिस्म पर काले-काले भयानक बाल होते हैं और कुल मिलाकर भूत जो है वह आदमी से बिलकुल भिन्न एक ऐसा आकार होता है जिसे देखते ही लोग डर जाते हैं और डर के मारे तक प्राण निकल जाते हैं। भूत के बारे में उन्होंने यह भी सुन रखा था कि वह आदमी को लग जाया करता है और जिसे वह लग जाया करता है और जिसे वह लग जाया करता है, उसे निगल लेता है।” (बिरिमल्लाह पृष्ठ-37)

इस घटना में लेखक ने व्यक्ति के मन में छिपे ऐसे डर को दृष्टव्य किया है जो किसी साक्षात् प्रतिबिम्ब के सहारे न होकर व्यक्ति की मात्र सुनी सुनाई वार्ता के सहारे पर ही अपने दिमाग में एक तस्वीर पैदा करके अथवा बना कर स्वयं ही भय का अनुभव करता है और इस प्रकार भय के अनुभव के साथ ही उसके मन में विभिन्न प्रकार के वहम भी पैदा हो जाते हैं जो उसके मानसिक डर को पक्का करने में अपना भरपूर सहयोग देते हैं। डॉ. एस अख्तर मानसिक स्वास्थ्य पर रेडियो आधारित प्रसारणमाला में प्रसारित कार्यक्रम के संपादन के रूप में 'उजाले की ओर' के माध्यम से कहते हैं कि

“इस डर के कारण व्यक्ति उन चीजों, व्यक्ति परिस्थितियों से भागने का प्रयास करता है जिससे उस भयावह स्थिति का सामना न करना पड़े। धीरे-धीरे यह डर इतना बढ़ जाता है कि व्यक्ति हर समय उसी के समय सोचता रहता है और डरता है कि कहीं उसका सामना न हो जाए। इस कारण उसके काम-काज और सामान्य जीवन में बहुत परेशानी होती है।” (अख्तर 45)

इस प्रकार की व्यावहारिक प्रक्रियाएँ व्यक्ति की मानसिकता में एक बीमारी की तरह लग जाती हैं जो उसके स्वयं के साथ-साथ सामाजिक वातावरण को भी प्रभावित करती हैं।

मानसिक डर, चिन्ता अथवा भय एक प्रकार से व्यक्तिगत वातावरण एवं सामाजिक वातावरण दोनों को प्रभावित करने के साथ-साथ कार्य में बाधा भी उत्पन्न करते हैं। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व में भी नकारात्मक अथवा साकारात्मक सोच एवं विचारधारा को भी प्रभावित करती है। इस प्रकार के डर से संबंधित डॉ. एस अख्तर मानसिक स्वास्थ्य पर रेडियो आधारित प्रसारणमाला में प्रसारित कार्यक्रम के संपादन के रूप में ‘उजाले की ओर’ के माध्यम से कहते हैं कि इस प्रकार के डर के विभिन्न कारण हो सकते हैं। डॉ. साहब कहते हैं कि

“इसके कई कारण हैं जैसे-प्रतिष्ठा या लक्ष्य की क्षति की आशंका, अवांछित इच्छाओं के पता चल जाने का डर, अपराध भावना पहले लगे आघात की पुनः सक्रियता, कई बार यह अनुवांशिक भी होती है। मस्तिष्क और जीवरासायनी यानि बायोकेमिकल असामान्यताएं इसके लिए जिम्मेदार हैं।” (अख्तर 25)

लेखक अब्दुल विरिमल्लाह ने अपने कहानी संग्रहों के संग्रह ‘ताकि सनद रहे’ की ‘कागज़ के कारतूस’ कहानी में इस प्रकार के व्यवहार को साक्षात् प्रदर्शित किया है।

“अब्बा मियाँ तो बगैर नौकरी तलाशे रहेंगे नहीं ! कई बार बीवी ने समझाया कि दुनिया का चक्कर छोड़ो और अपना धंधा करो। उसी में लड़के को भी लगा तो और दामाद को भी। लेकिन वसीउल्ला खाँ बिगड़ गए, “तुमसे किसने कहा कि मुझे नसीहत दो? मैं चलेगा दुकानदारी करने अब? कोई क्या कहेगा?” (बिरिमल्लाह 45)

बहुत बार हम अपने से छोटे व अपरिचित व्यक्तित्व से भी बात करने अथवा मिलने-जुलने से परहेज करते हैं। कारण केवल यही होता है कि लोग क्या कहेंगे। उनकी ‘शादी का जोकर’ कहानी संग्रह में से ‘शादी का जोकर’ कहानी में भी एक जोकर के माध्यम से भी यही स्थिति हमारे समक्ष प्रकट होती है।

“आपने शादी का जोकर अवश्य ही देखा होगा। वही, जो शादी वाले शामियाने में चेहरे पर सफेदा पोते, होंठों को लाला रंग में रेंगे, सर्कसी टोपी लगाए, काले कपड़ों से सुसज्जित, हाथों में सफेद दस्ताने पहने, एक हाथ में घड़ी धुमाता और दूसरा हाथ शेकहैंड के लिए आगे बढ़ाए बच्चों का मनोरंजन करता है और आपको पसोपेश में डालता है, कि क्या करना चाहिए? इससे हाथ मिलाना चाहिए या नहीं? अगर मिलते हैं तो लोग क्या सोचेंगे? अगर नहीं मिलते हैं तो यह क्या सोचेगा? हालाँकि यह अन्तिम प्रश्न आपके दिमाग में शायद ही आता हो! फिर भी।” (बिरिमल्लाह 68)

इन सभी उदाहरणों में यही बात निकलकर सामने आ रही है कि कहानियों के इन सभी पात्रों के मन में किसी न किसी प्रकार का कुछ-न-कुछ ऐसा रहा जो कदाचित् इनके अवांछित इच्छा अथवा अपर्याप्त लक्ष्य के कारणों से उनके व्यवहार में साफ परिलक्षित हो रहा है। अप्रत्यक्ष रूप से इन उदाहरणों में एडलर के जीवन सिद्धांत से संबंधित बातें निकलकर बाहर आ रही हैं जिसमें यह स्पष्ट है कि व्यक्ति में सामाजिक वातावरण एवं उसकी अन्तः क्रिया के फलस्वरूप ही उसके जीवन का लक्ष्य समाहित है। यदि उसकी इच्छाओं एवं लक्ष्यों में बाधा उत्पन्न होती है अथवा पूरी नहीं होती है तो उसके साधारण

जीवन में असामान्यता प्रवेश करती है; एक असामाजिक मानसिक डर प्रवेश करता है।

अब्दुल बिरिस्मल्लाह ने अपने कहानी संग्रह 'शादी का जोकर' नामक किताब की 'फिर क्या हुआ' नामक कहानी में भी इसी प्रकार का डर विख्यात है।

“मुम्बई आ गया?”

प्लेटफॉर्म पर उतरते ही राजू ने पूछा और मैंने कहा, “हाँ”

कह तो दिया, पर डर लगा कि कहीं घर पर पहुँचते ही कोई पूछ न ले, दिल्ली कब पहुँची ट्रेन? या दिल्ली पहुँचने में कितना टाइम लगा?”

(बिरिस्मल्लाह 82)

इस व्यावहारिक वार्तालाप से लेखक ने स्पष्ट रूप से दिखाने की कोशिश की है कि 'लोग क्या कहेंगे' अथवा 'कोई क्या कहेगा' वाक्य मानव जाति के मन में एक ऐसी बीमारी के रूप में विख्यात होता जा रहा है जिससे मानव स्वयं दुविधा में धंसता जा रहा है। वह अपनी भावनाएँ भी खुल कर व्यक्त नहीं कर सकता। साथ ही साथ वह इस बात को लेकर अपने व्यक्तित्व के प्रति एवं सामाजिक वातावरण के प्रति भी चिंतित रहता है कि उसके इस व्यवहार से उसके व्यक्तित्व का सुधार हो रहा है या सामाजिक व्यावहारिक दृष्टि से उसमें गिरावट आ रही है। इस प्रकार के व्यवहार से व्यक्ति के पारिवारिक सदस्य उसके मित्रगण अथवा उसके संपर्क में आने वाले सभी संगी साथी प्रभावित होते हैं। जैसे इस 'कागज़ के कारतूस' कहानी में जो कि अब्दुल बिरिस्मल्लाह की कहानी संग्रहों के संग्रह 'ताकि सनद रहे' नामक किताब में दिखाया गया है कि कैसे घर के मुखिया के इस प्रकार के व्यवहार से उसके घर के सभी सदस्य नकारात्मक तरीके से प्रभावित भी होते हैं एवं घर का माहौल भी नर्क के समान बन जाता है।

लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह ने अपनी कहानी संग्रह ताकि सनद रहे में 'नया कबीरदास' कहानी में भी अमीरी-गरीबी के मध्यस्त, हिन्दू-मुस्लिम जाति

के मध्यस्त एक विशेष एवं अत्यंत सुनिश्चित तरीके से पति-पत्नी के मानसिक डर को प्रदर्शित किया गया है। “सोचते-सोचते उसे नींद आ गई। रमपुरिया पहले ही डरी हुई थी। वह भी लेटकर सो गई। दोनों कई दिनों से भूखे थे, प्यासे थे और जगे थे.....नींद आ गई....।

काफी रात गए अचानक किसी ने दरवाजा खटखटाया! दोनों हड़बड़ाकर उठ गए!

“दरवाजा खोलो।”

आवाज भयंकर थी। कबीरदास डर गया। रमपुरिया तो एक कोने में जाकर दुबक गई। कबीरदास सोचने लगा, क्या किया जाए? आखिर कौन उसका शत्रु है? उसने तो किसी का कोई नुकसान नहीं किया। न हिन्दू है, न मुसलमान। उसके लिए दोनों बराबर हैं।

इस बार आवाज ज़्यादा सरल थी।

उसने यह सोचते हुए दरवाजा खोलना शुरू किया कि आज वह अपने को बदल देगा। अगर अशरफ भाई की तरफ के लोग होंगे तो कहेगा, भैया मुझे मुसलमान बना लो मगर छोड़ दो। अगर दीपक बाबू की तरफ के लोग होंगे तो कहेगा कि भैया मुझे हिन्दू बना लो लेकिन छोड़ दो.....जान प्यारी होती है, कबीरदास ने उसी वक्त महसूस किया था।” (बिस्मिल्लाह 134)

मानसिक डर अथवा भय व्यक्ति के व्यवहार में असामान्यता के लक्षण पैदा करने में कोई कसर नहीं छोड़ता उनकी ‘काई’ कहानी में भी मानसिक डर से व्यक्ति के व्यक्तित्व में आए परिवर्तन अथवा बदलाव का अच्छा चित्रण प्रस्तुत किया है। जिससे व्यक्ति असामान्यता के लक्षणों की ओर अग्रसर होता दिखाई देता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह द्वारा कहानी संग्रहों के संग्रह ‘ताकि सनद रहे’ में ‘काई’ नामक कहानी में बहुत ही सुन्दरता से अपराधबोध के दृष्टिकोण से इस मानसिक डर को अपने पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है

“लेकिन इस बार? इस बार क्या मैं मात्र खामोश रहकर उनकी शिकायत को झेल पाऊंगा? यह प्रश्न मुझे विचलित कर देता है। मेरे आस-पास

प्रश्न ही प्रश्न मँडराने लगते हैं और मैं उनके आक्षेपों से बचने के लिए रास्ता ढूँढने में उन्हीं से टकराने लगता हूँ।” (बिस्मिल्लाह 154)

जिस प्रकार विगत यह जिक्र था कि मानसिक डर केवल बाहरी दिखावे से ही नहीं बल्कि कई बार पुरानी यादे अथवा सुनी सुनाई अनुचित बातों के आधार पर भी हमारे मन में भय, डर, चिन्ता इत्यादि भी पैदा होता है। किन्तु मानवीय व्यवहार में विभिन्न अवसर ऐसे पैदा होते रहें हैं जो मानवीय व्यवहार में अपराध बोध के आधार पर भी मानसिक भय को जन्म देते हैं। लेखक ने ‘काई’ कहानी के इस अपराधिक सोच के माध्यम से यही चेताने की कोशिश की है कि जब कभी हमारे मन में किसी भी बात एवं कार्य को लेकर अपराधिक भाव पैदा होता है तो दूसरा चाहे इस विषय में कोई भी बात न करे। किन्तु हमारे मन में एक भय की स्थिति बरकरार रहती है। यह एक प्रकार से अर्धचेतन मन में छिपी हुई अपराधबोधक प्रवृत्ति से लिप्त ऐसी बात अथवा विचार होता है जो समयानुसार हमें ग्लानियुक्त संवेदना का आभास करवाता रहता है, जिससे हम कदाचित् चाहकर भी इन्कार नहीं कर सकते।

व्यस्कों के साथ-साथ डर, भय अथवा चिन्ता की यही स्थिति बच्चों में अत्यधिक रूप में पाई जाती है। इस प्रकार की स्थिति से यदि वह निजात नहीं पाते हैं तो भविष्य में उन्हें विभिन्न समस्याओं का सामना करने को बाध्य होना पड़ता है। शारीरिक रूप में भी उन्हें समस्याएँ आती हैं। दिल की धड़कनें तेज हो जाती हैं, पेशाब निकल आता है इत्यादि। इस प्रकार की स्थिति के मद्देनजर पुरातन एवं आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने सम्प्रदाय एवं स्कूलों के माध्यम से ‘मन-शरीर संबंध’ के माध्यम से अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। अरुण कुमार सिंह अपनी किताब ‘मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास’ में प्रकार्यवाद के अग्रदूत ‘विलियम जेम्स’ के मन-शरीर संबंध में बताये गए विचारों को बताते हुए कहते हैं कि

“जेम्स को मन तथा शरीर दोनों के अस्तित्व में विश्वास था। इस बिन्दु पर उनकी वुण्ट की स्थिति से मिलती जुलती है। लेकिन जेम्स एक अन्तर्क्रियावादी थे न कि वुण्ट के समान समानान्तरवादी थे। जेम्स ने

यह स्पष्ट: कहा था कि मन तथा शरीर एक दूसरे के साथ अन्तः क्रिया करता है न कि एक दूसरे के समानान्तर कार्य करते हैं।” (सिंह 123)

लेखक अब्दुल बिस्मिल्लाह की ‘कितने-कितने स्वाल’ कहानी इसी प्रकार के व्यावहारिक चित्रण को लेते हुए चलती है। जो मन एवं शरीर के आपसी संबंध की प्रक्रियाओं को प्रगट करती है। लेखक ने बड़ी ही सुन्दरता से दिखाया है कि किस प्रकार मानसिक डर से शारीरिक क्रियाएँ प्रभावित होती हैं।

“तभी सीढ़ियों पर जूतों की आवाज होती है और वह गुड़िया को छोड़कर कोने में सिमट जाती है। उसकी आँखें भय से बीभत्स हो उठती हैं और होंठों पर दीनता की छाया तिर आती है। ऐसा लगता है कि उसका शरीर काँप रहा है।

आवाज खतम होती है तो मीनू की रुकी हुई साँस पुनः चलने लगती है।” (बिस्मिल्लाह 168)

इस प्रकार ज्ञातव्य है कि मानसिक डर का व्यस्क अथवा बच्चों से संबंध में कोई विशेष अंतर नहीं आता। यह तो एक प्रकार की भावनाओं की सुचेतता का प्रश्न है। जिस किसी भी व्यक्ति में अपनी भावनाओं को लेकर सुचेतता अधिक है उसके मन में डर, भय, खुशी, उत्साह इत्यादि दुसरे व्यक्तियों की तुलना में अधिक जोर से प्रकट होती हैं। भय भी अधिक मात्रा एवं अधिक तेजी से पैदा होगा, खुशी भी अत्यधिक एवं अधिक मात्रा में प्रदर्शित होती है। हमारे मन की सुचेतता ही हमारी भावनाओं को प्रकट करने में विशेष भूमिका निभाती है। दूसरी बात यह कि मन शरीर संबंध में जैसे तो विभिन्न दार्शनिकों एवं मनोवैज्ञानिकों ने अपने सिद्धांतों के अंतर्गत इसमें अपने द्वैतवाद एवं अद्वैतवाद का समर्थन किया है। कुछ विद्वान एवं मनोवैज्ञानिक मन एवं शरीर का आपसी संबंध मानते हैं किन्तु कुछ इसका विरोध करते हैं।

मन के शरीर के साथ संबंध में विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये हैं। रेने देकार्त जो कि 16वीं सदी के मनोवैज्ञानिक थे, ने मन और शरीर के आपसी संबंधों के बारे में एकजुटता का प्रदर्शन प्रस्तुत

किया था। अरुण कुमार सिंह अपनी किताब 'मनोविज्ञान के संप्रदाय एवं इतिहास' में इस संबंध में रेने देकार्त के माध्यम से कहते हैं कि "व्यक्ति में एक मन या आत्मा होती है जो उसके चिंतन को प्रभावित करती है। मन को शरीर की यांत्रिक क्रियाओं को निर्देशित करने तथा परिवर्तित करने का अधिकार होता है।" (सिंह 24) कहने का तात्पर्य यह कि हमारे मन की भावनाओं का शरीर की क्रियाओं के साथ गहन संबंध होता है। यदि शरीर ने कोई प्रतिक्रिया की है तो साफ है कि वह मन की भावनात्मक क्रियाओं से प्रभावित है।

लेखक ने 'शादी का जोकर' कहानी संग्रह में भी अपनी कहानियों में भी इस प्रकार की भावनाओं के विभिन्न रूप प्रस्तुत किए हैं। इस संग्रह में उनकी 'त्राहिमाम' कहानी पूर्णतः मानसिक डर पर आधारित है। लेखक ने बड़ी ही खूबसूरती से इस व्यावहारिक घटना का चित्रण किया है कि एक बड़बोले एवं चालू किसिम के व्यक्ति से बचने के लिए किस प्रकार एक साधारण एवं शरीफ व्यक्ति अपनी दिनचर्या व्यतीत करता है। विगत भी इस बात का निष्कर्ष किया गया था कि मानसिक डर किसी बाहरी वातावरण, किसी अपराधिक भाव अथवा किसी विशेष वस्तु अथवा व्यक्ति के खो जाने पर पैदा होता है। किन्तु इस कहानी में लेखक ने दर्शाया है कि किसी बुरी बात अथवा किसी बुरे व्यक्ति या नापसंद व्यक्ति से बचने हेतु भी हमारे व्यवहार में एक प्रकार का बदलाव आता है। हम उससे बचने के लिए परहेज करते हैं। किन्तु जब हम उससे मिलने को बाध्य होते हैं तो यह सोच भी हमारे मन में एक प्रकार का डर पैदा करती है।

“ जाइएगा? ”

पत्नी ने पूछा तो मैंने कह दिया कि सवाल ही नहीं उठता।

अगले दिन, यानि उद्घाटन वाले दिन, जब मैं दफ्तर से घर आया तो पत्नी ने बताया कि राजा जी के दो फोन आ चुके हैं।

“तुमने क्या कहा?”

“कह दिया कि घर पर नहीं हैं।”

“ठीक है। अब कोई फोन आए तो कह देना, दफ्तर से उनका फोन आया था, कह रहे थे कि दफ्तर के काम से उन्हें कहीं जाना है, रात में लौटेंगे।”

पत्नी को यह निर्देश देने के बाद मैं लेट गया और बिटिया को सुलाने की कोशिश करने लगा। असल में हुआ यह कि टेलीफोन करने और रिसीव करने का मेरा शौक तो जाता रहा था, मगर यह शौक अब बिटिया में पैदा हो गया था। जैसे ही घंटी बजती, वह टेलीफोन की तरफ लपकती। उसे फोन पर ‘हैलो’, आप कौन बोल रहे हैं? जी, पापा जी हैं। अभी बुलाती हूँ।’ वगैरह बोलने में बड़ा मज़ा आता था। चूँकि राजा जी से वह हिली हुई थी इसलिए डर था कि कहीं फोन उठाकर कह न दे कि पापा जी हैं। मगर मेरी तमाम कोशिशों के बावजूद उसे नींद नहीं आ रही थी। तभी अचानक फोन की घण्टी बजी। बिटिया ने उठकर फोन की तरफ लपकना चाहा। मैंने उसे दबोच लिया। वह रोने लगी। मैंने उसे इशारे से चुप रहने के लिए कहा। कुछ बोला इसलिए नहीं कि तब तक पत्नी ने फोन उठा लिया था। सोचा, कहीं रिसीवर में मेरी आवाज़ घुस गई तो ग़जब हो जाएगा। और जैसे ही पत्नी के मुँह से निकला, “जी हैं। अभी बुलाती हूँ।” मेरे हृदय की धड़कन तेज हो गई।

“किसी और का फोन है। कोई रमेश जी हैं।”

पत्नी का यह वाक्य सुन लेने के बाद मैं सामान्य हो सका।

लेकिन वह पूरा दिन बड़ी मुश्किल में बीता। ऐसा लग रहा था मानो हम किसी दंगाग्रस्त इलाके में फँस गए हों और दंगाई अब हमला बोलने ही वाले हैं। जैसे ही फोन की घंटी बजती, ऐसा महसूस होता मानो कहीं गोली चली हो।” (बिरिमल्लाह 38)

इस प्रकार का व्यवहार उस मानसिक डर को प्रदर्शित करता है जिससे हम लोग स्वयं को बचाना चाहते हैं। दरअसल यह एक प्रकार से हमारी वह

सामाजिक एवं नैतिक कमजोरी है जिसमें हम समस्याओं का सामना करने में स्वयं को असफल पाते हैं; हममें बातचीत करने की कला की कमी है जिससे हम स्वयं का असहाय महसूस करते हैं और मुश्किलों से दूर भागते हैं। इसी कहानी में लेखक आगे इसी प्रकार के व्यवहार से संबंधित वर्णन करते हैं कि कई बार हम इस प्रकार की क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ करने लगते हैं, जो देखने-सुनने में अजीबो-गरीब तो लगती ही हैं, साथ ही व्यक्तित्व के सामान्य लक्षणों पर भी प्रश्न चिह्न लगता है। लेखक की यह कहानी पूर्णतः एक विशेष प्रकार के डर से ओत-प्रोत है जिसमें एक व्यक्ति के मूर्खतापूर्ण एवं ढीठता से भरपूर व्यवहार से एक साधारण व्यक्ति किस प्रकार स्वयं को बचाना चाहता है। किस प्रकार उस व्यक्ति के मन में एक प्रकार का डर मन में घर कर जाता है। वह फोन की घण्टी अथवा दरवाजे की घण्टी इत्यादि को सुनकर किस प्रकार चौंक जाता है, अन्दर से डर जाता है। किसी दूसरे व्यक्ति का सामना करने से डरता है। जो कि साधारण हालातों के प्रतिकूल है। पूरी कहानी लिखने का अंदाज भी मानसिक डर को महसूस करते हुए लिखी जान पड़ती है। प्रसिद्ध मनोविज्ञानी इवान पैवलव का अनुबंधित सिद्धांत इस प्रसंग पर स्टीक बैठता है जिसमें घण्टी बजने से ही कुत्ते के मुँह से लार टपकने लगती थी। हालाँकि घण्टी बजने से लार का कोई संबंध नहीं है। किन्तु कुत्ते की मानसिक स्थिति इस प्रकार बन चुकी थी कि वह ऐसा व्यवहार करता था। बिलकुल ऐसे ही लेखक ने इस कहानी में मुख्य पात्र की मानसिक स्थिति का वर्णन किया है। जो कि फोन की घण्टी के बजने पर ऐसा सोचने को मजबूर है कि जैसे घण्टी नहीं बल्कि गोली चली हो।

बहुत से किस्सों में यह भी देखा गया है कि व्यक्ति की दरिद्रता, उसकी मजबूरी भी एक प्रकार का ऐसा मानसिक डर पैदा कर देती है जो उसके खुद के कार्य को भी प्रभावित करती है। इस संबंध में राबर्ट सी. कारसन अपनी हिन्दी अनुवादित पुस्तक 'असामान्य मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

“हम अपने जीवन की शुरुआत बहुत कम बनी बनाई रचनाओं और अनुभव से सीखने की वृहत योग्यता के साथ करते हैं। हम अपने

अनुभवों से जो सीखते हैं वह हमें कुशलतापूर्वक चुनौतियों का सामना करने में मदद करता है तथा आगामी तनावों में समुत्थानशीलता उत्पन्न कर सकता है।” (कारसन 112)

कहने का भाव यह कि यह सब एक प्रकार की मनोसामाजिक कारक होते हैं जो हमारे व्यवहार में विभिन्न प्रकार के बदलाव लाते हैं। कभी वह हमें बेतहाशा निराश कर देते हैं तो कभी बहुत ज्यादा खुश। अब्दुल बिरिस्मल्लाह द्वारा रचित कहानी संग्रह ‘अतिथि देवो भव’ में ‘खाल खींचने वाले’ कहानी में इसी प्रकार की परिस्थिति का वर्णन लेखक ने बाखूबी किया है।

“कितने में खरीदा है सच-सच बोलो।” बड़े मियाँ पिच्च से एक ओर थूकते हैं और भूनेसर को संबोधित करते हैं।

भूनेसर हाथ जोड़कर उकड़ूँ बैठ जाता है, “खरीदा नहीं है मालिक, खुद खलियाया है?”

“ओह! तो तुम खाल खींचते हो?”

टोपीधारी सज्जन ने भूनेसर की एक शरीफाना खिंचाई की और अपने मुहावरे के सूक्ष्म प्रयोग पर स्वयं ही खिलखिलाकर हँस पड़े। बड़े मियाँ के कथई दाँत भी झलक उठे।

भूनेसर के मन में आया कि कहे, “हाँ मालिक; हम लोग तो मुर्दा जानवरों की खाल उतारते हैं, लेकिन इस दुनिया में कुछ ऐसे भी लोग हैं जो जिन्दा आदमियों की खाल खींचते हैं और उन्हें दर्द तो दूर, धिन भी नहीं लगती।” लेकिन ऐसा वह कह नहीं सकता था, क्योंकि उसके पास इतनी हिम्मत नहीं थी। और क्योंकि वह ऐसी जगह बैठा था जहाँ जैसे ही लोगों की जमात थी.....” (बिरिस्मल्लाह 62)

लेखक ने बड़ी ही सुन्दरता से गरीब व्यक्ति के मानसिक डर को दर्शाने की कोशिश की है जिसके कारण वह अपने मन में चल रही सही बात कहने से भी परहेज़ करता है।

द्वेष से गिरता व्यक्तित्वः -

मानवीय प्रवृत्ति में विभिन्नताएँ अत्यंत हैं। पल पल बदलते इसके व्यवहार की चेष्टाएँ भी समाज में अनंत हैं। जैसे-जैसे समाज की प्रवृत्तियाँ एवं परिस्थितियों में बदलाव आता जाता है वैसे ही मानवीय व्यवहार में भी बदलाव आता जाता है। किसी भी दूसरे व्यक्ति को आगे बढ़ते अथवा तरक्की करते देख मन में ईर्ष्या रखना अथवा जलन होना आज एक साधारण सी बात हो गई है। कोई भी व्यक्ति अपने साथ के व्यक्तियों को सामाजिक अथवा आर्थिक रूप से मजबूत होते देख नहीं सकता। उसके मन में संबंधित व्यक्ति के प्रति जलन होने लगती है। वह चाहता है कि स्वयं वह ही सबसे उपर रहे कोई दूसरा उससे आगे न निकल जाए। समाज में दूसरे व्यक्तियों के प्रति ऐसी भावना व्यक्ति के मन में आए तो कदाचित् मान्य भी हो सकती है। किन्तु आधुनिक सामाजिक हालात तो ऐसे हो गये हैं कि आज एक ही घर के दो लोगों की प्रवृत्ति भी ऐसी ही बन गई है। एक आगे बढ़ता है तो दूसरे व्यक्ति से यह सहन नहीं होता। वह उसे नीचे गिराने की फिराक में रहता है। एक दूसरे की मदद करने का भाव तो कदाचित् कहीं गायब ही हो गया है। इसके विपरीत यदि कोई समाज में अपना रुतबा साधारण से थोड़ा ऊँचा पा लेता है अथवा पैसे के बल पर अमीर हो जाता है तो वह दूसरे व्यक्तियों को नीचा समझने लगता है अथवा उन्हें नीचा दिखाने के लिए अपना प्रत्येक संभव प्रयास करता है। उसको नीचा दिखाने में उसे एक विशेष प्रकार की खुशी का अनुभव होता है। उसे आनन्द मिलता है। सामान्य अर्थों में संभवत् यह मानव जाति हेतु यह कोई आनन्द प्रदान करने अथवा आनन्दित होने की स्थिति नहीं है किन्तु फिर भी उसे आनन्द मिलता है। यह एक प्रकार की मानसिक विकृति है जो आधुनिक समाज में भौतिकवाद के कारण अत्यधिक विस्तारित हो रही है। लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह ने अपने 'अतिथि देवो भव' कहानी संग्रह में से 'अभिनेता' कहानी में यही दिखाने की कोशिश की है। 'रहमान' नामक व्यक्ति पैसे के बल पर अपने असामान्य व्यवहार के कारण समाज में तो चर्चा का विषय है ही। अपनी दूसरी व तीसरी शादी के कारण अपनी पुरानी बीवी को भी नीचा दिखाने में कोई कसर नहीं छोड़ता। साथ

ही वह अपने दोस्तों को भी यह दिखाने की कोशिश करना चाहता है कि उसके मन में अपनी बीवी को नीचा दिखाने में, उसे जलील करने को वह किस प्रकार आतुर है। सामान्यतः इस प्रकार का व्यवहार समाज में कभी भी मान्य नहीं होता है। यह एक प्रकार का अभद्र व्यवहार कहलाता है और पती-पत्नी के रिश्ते की नाजुकता के ध्यानहित यह सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों पर भी करारी चोट करता है।

“सड़क पर भीड़ भाड़ नहीं थी और स्कूटर तेजी से भागा जा रहा था।

“तुम्हें शायद मालूम नहीं कि मेरी सबसे पहली शादी यहीं हुई थी। उन दिनों मैं घर से भागा हुआ था और यहीं एक आदमी के घर में रह रहा था। अचानक उसकी लड़की से मुझे मुहब्बत हो गई और मैंने शादी कर ली। लेकिन वह लगी तुर्र दिखाने। बस, मैंने उसे छोड़ दिया और घर भाग गया।”

मैं खामोश रहा।

“लेकिन तुर्र दिखाने का नतीजा भी खुदा के फजल से उसे खूब मिला। उसके बाप ने बाद में ऐसे आदमी से उसकी शादी कर दी जो जुआड़ी निकला और तीन बच्चों की माँ बनाकर उसने उसे छोड़ दिया। अब वह यहीं एक जगह अलग होकर रहती है और सुना है कि कोई दुकान करती है। आज मैं उसी के पास चल रहा हूँ।”

“क्यों?”

“मैं उसे दिखाना चाहता हूँ कि तुर्र दिखाने का नतीजा क्या होता है? आज वो किस हालत पर पहुँच गई है और मैं कहाँ? जो लड़की कभी घर से बाहर नहीं निकलती थी, आज वह सड़क की किनारे बैठकर दुकान कर रही है और जो आदमी कभी उसके बाप के एहसान पर पल रहा था, आज वह स्कूटर पर चल रहा है। बोलो, ये बात है कि नहीं? मैं उसे यही सब दिखाना चाहता हूँ कि बानो, देख लो मुझे? मैं वही

रहमान हूँ, दूसरा नहीं । आज दिन मेरे साथ होतीं तुम तो....खुदा के फजल से क्या नहीं है आज अपने पास, है कि नहीं ?”(बिस्मिल्लाह 43)

इस वार्तालाप से पता चलता है कि इस प्रकार के व्यवहार अमुक व्यक्ति की छोटी सोच व निर्दयता का सूचक होते हैं। इस प्रकार के व्यवहार समाज में कभी भी मान्य नहीं होते और खास तौर पर पुरुष जाति के बनिस्पत स्त्री जाति से इस प्रकार का अभद्र व्यवहार करना और वह भी उस समय जब वह सामाजिक व आर्थिक रूप से कमजोर हो।

ईर्ष्या के कारण ही व्यक्ति-व्यक्ति से इस प्रकार का व्यवहार करने लगता है जो निश्चित ही उसे विरोधाभास का आभास करवाता है। ‘ईर्ष्या’ एक प्रकार की ऐसी मानसिक विकृति है, एक ऐसी संवेदना है जिस पर व्यक्ति कभी-कभी नियंत्रण नहीं कर पाता, जिस कारण ऐसा व्यवहार उस द्वारा उत्पन्न किया जाता है जो रिश्तों में दरार पैदा करता है तथा समाज को नुकसान पहुँचाता है। लेखक अब्दुल बिस्मिल्लाह के ‘रफ रफ मेल’ कहानी संग्रह में ‘जीना तो पड़ेगा’ कहानी में इसी प्रकार की प्रवृत्ति का वर्णन किया है कि आकिल साहब जिनकी पत्नी उन्हें छोड़ चुकी है, रहते तो गुड्डन मियाँ के घर पर हैं। किन्तु जब गुड्डन मियाँ की शादी हो रही होती है तो वह उनकी शादी से चिढ़े बैठे हैं और औरत के बारे में अपने खास ब्यान रखते हैं।

“गुड्डन मियाँ तीस पास कर चुके थे। फरजाना तीस को पहुँच रही थी। सो हुआ यह कि बच्चों के साथ हो रहे उम्र के इस जुल्म को देखते हुए अपना पुराना झगड़ा बिसरा कर हकीमुद्दीन साहब और करीमुद्दीन साहब-यानि दोनों भाई गुड्डन मियाँ और फरजाना के ब्याह के लिए अचानक रजामंद हो गए और शादी की तारीख भी तय हो गई।

“औरत बड़ी बेवफा होती है। वह सिर्फ माशुक ही हो सकती है, आशिक नहीं।”

गुड्डन मियाँ के ब्याह ही खबर सुनकर आकिल साहब ने अत्यंत गंभीरता के साथ यह कहा, जिसे गुड्डन मियाँ ने सुनने से पूरी तरह परहेज किया।” (बिरिमल्लाह 15)

उपर्युक्त वाक्य खुद ही बयान करता है कि व्यक्ति किस प्रकार अपनी कमजोरियों की वजह दूसरों में ढूँढता है, उन्हें लांछित करता है। ऐसा व्यवहार सदैव ही सामाजिक व नैतिकता की दृष्टि से असामान्य ही रहेगा।

असामान्य व्यवहार के कारण पैदा होने में पैसा, भूख, जलन, ईर्ष्या, शोहरत पाने की इच्छा, किसी से बदला लेने की होड़, मजबूरी, दरिद्रता इत्यादि कारण सम्भवत् हो सकते हैं किन्तु स्पष्ट रूप से यह कारण नहीं बल्कि इनसे संबंधित इसके विपरीत प्रतिस्पर्धा की भावना से ऐसा व्यवहार प्रगट होता है

लालजी शुक्ल अपनी किताब ‘आधुनिक मनोविज्ञान’ में इसी प्रकार की मानसिक स्थिति पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं कि

“कभी कभी गरीबी की वेदना का अनुभव करने वाला व्यक्ति अपनी वेदना को भुलाने के लिए धनी लोगों की निन्दा में, उन से द्वेष करने में ही अपना समय व्यतीत करने लगता है। गरीबी का अनुभव करने वाले व्यक्ति संसार में बहुत हैं; अतयव उसे अपने विचारों के अनुयायी भी बहुत से लोग मिल जाते हैं। जो लोग जन्म से ही गरीब रहते हैं। उनमें गरीबी के कारण मानसिक असाधारणता प्रायः नहीं पायी जाती। मानसिक असाधारणता उन्हीं गरीब लोगों में पायी जाती है; जो या तो पहले धनवान थे, अथवा जिनके मनसूबे बड़े बड़े होते हैं। धन को उपेक्षा की दृष्टि से देखने वाले और धनिकों के विनाश की योजना बनाने वाले लोग ऐसे ही व्यक्तियों में से पाये जाते हैं। विक्षिप्त, कठोर, तपस्वी और अपराधी अथवा क्रान्तिकारी—सभी लोग मानसिक असाधारणता को अपने आचरण में प्रदर्शित करते हैं।” (शुक्ल 35)

भूख, प्यास ऐसे जैविक कारक हैं जो एक सभ्य व्यक्ति को भी असामान्य व्यवहार करने पर मजबूर कर देते हैं। अब्दुल बिरिमल्लाह अपने कहानी संग्रह की कहानी 'पुण्यभोज' में ऐसी ही परिस्थिति का वर्णन करते हैं।

“मीलाद खत्म होते ही लोग इस प्रकार खाने पर दूट पड़े, जैसे कई दिनों से भूखों मर रहे थे। जो जहाँ जगह पा रहा है, वहीं घुसकर बैठ रहा है। बड़े-छोटे का कोई लिहाज नहीं रह गया है और सारी चेतना पुलाव पर केंद्रित होकर रह गई है।” (बिरिमल्लाह 47)

अरुण कुमार सिंह अपनी किताब 'आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान' में इस प्रकार के जैविक कारणों के माध्यम से असामान्य व्यवहार की व्याख्या के संबंध में कहते हैं कि “आधुनिक शोधों से यह स्पष्ट हो गया है मस्तिष्क, सुषुम्ना और परिधीय तंत्रिका के उत्तक के कार्य व्यक्ति द्वारा लिए गये पौष्टिक आहार पर निर्भर रहते हैं तथा अपनी कार्यक्षमता बनाये रखते हैं।” (अरुण 108) कहने का तात्पर्य यह कि शोधों से यह पता चलता है कि भूख, प्यास जैसे जैविक कारकों से मानवीय व्यवहार सामान्य व असामान्य के संदर्भ में प्रभावित होता है। भूख एक ऐसा कारक है, जिसके पूर्ति हेतु व्यक्ति निरंतर संलग्न रहता है और भूख व्यक्ति को दुविधाजनक तरीके से हैरान एवं परेशान करने के साथ-साथ उसकी हैसियत, उसके नैतिक मूल्य, उसके व्यवहार में बदलाव पैदा कर देती है जो असामान्यता के ओर निरंतर अग्रसर रहती है।

सामाजिक व्यवहार के दायरे में बहुत बार ऐसा देखा गया है कि व्यक्ति को कभी किसी प्रकार से सामाजिक वातावरण के कारण किसी ऐसी घटना का सामना करना पड़े। जिससे उसे भयंकर आघात पहुँचा हो, तो भी उसके व्यवहार में बदलाव आ जाता है, असामान्यता आ जाती है। अरुण कुमार सिंह इस संबंध में अपनी किताब आधुनिक 'असामान्य मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

“जब बच्चों के व्यक्तित्व विकास के आरंभिक निर्माणावस्था में किसी तरह की अपर्याप्तता या वंचन किसी कारण से हो जाता है या कुछ आघातक अनुभूतियाँ होती हैं, तो इससे उनका व्यक्तित्व विकास सही ढंग से नहीं

होता है तथा कई तरह के असामान्य व्यवहार उत्पन्न हो जाते हैं।”
(अरूण 113)

इस प्रकार की परिस्थिति मानवीय जीवन के किसी भी पहलू जवानी अथवा बुढ़ापे में घटित हो सकती है। तो उसी समय अमुक मानव के व्यवहार में असामान्यता के लक्षण पैदा हो जाते हैं।

लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह ने अपने कहानी संग्रह ‘रफ रफ मेल’ की कहानी ‘जीना तो पड़ेगा’ में इस प्रकार की परिस्थिति का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है कि एक शारीरिक रूप से तंदरुस्त दिखने वाला व्यक्ति भी किस प्रकार सामाजिक समस्या के कारण अपना मानसिक संतुलन खो देता है और ऐसे कार्य को अंजाम देता है जो उसे कदाचित् नहीं करना चाहिए।

“अकिकल मामू उर्फ आकिल साहब की गुजरी हुई कहानी यह है कि वे (अभी तक उन्हें “वह” कहा गया है, मगर आगे वे “वे” के संबोधन से ही जाने जाएँगे।) जिला इलाहाबाद, तहसील मेजा, मौजा सिरसा के साकिन थे। रोजी-रोटी के तलाश में वे भिलाई जा पहुँचे थे। वहाँ वे पड़ गए यूनियन बाजी के चक्कर में और अपने काम पर से हटा दिए गए। सो, “लोट के बुद्धू घर को आए” नामक मुहावरे को अक्षरशः चरितार्थ करते हुए आकिल साहब जब अपनी सुकूनत में वापस लौटे तो उन्हें मालूम हुआ कि वे इस पूरी अवधि में वाकई बुद्धू बन चुके हैं। उनकी जौजा श्रीमति रजिया बेगम अपने दोनों बच्चों को दादा-दादी के निम्मे छोड़कर किसी ओर के घर जा बैठी थीं और श्रीमान आकिल साहब की याद को अपने दिल से इस प्रकार मिटा डाला था जैसे स्कूली बच्चे उबउ से अपनी कॉपी पर लिखी गलत इबारतें मिटा डालते हैं।

आकिल साहब को यह सदमा बर्दाश्त नहीं हुआ और उन्होंने अपना घर-बार हमेशा के लिए छोड़ दिया।” (बिरिस्मल्लाह 11)

लेखक ने इस प्रकार की अन्य घटना का वर्णन भी आगे किया है कि मानसिक रूप से कमजोर व्यक्ति किसी भी सामाजिक एवं मानसिक समस्या

का सामना नहीं कर सकते हैं वह हल्की सी चोट से ही टूट जाते हैं एवं सारी समस्या की जिम्मेवारी सदैव अपने उपर ही लेकर चलेंगे। साथ ही लेखक ने बड़े ही सुन्दर ढंग से उस समस्या से चोट खाए व्यक्ति के व्यवहार का भी वर्णन किया है जो इस प्रकार के व्यवहार की प्रस्तुति को आमामदा हो जाता है, जिसे समाज कभी भी मान्य नहीं देता।

“कहाँ से आ रहे हो?”

पानी देने वाले व्यक्ति ने प्रश्न किया तो वह उसका मुँह ताकने लगा।

“आप इस पर दस्तखत करेंगे?”

उसने कापी दिखाते हुए अपना प्रश्न किया और आहिस्ता-आहिस्ता कापी के पन्ने पलटने लगा।

“यह क्या है?”

पानी देने वाला व्यक्ति अब आश्चर्य के साथ उसे घूर रहा है।

“इसमें मैं उन सब लोगों से दस्तखत कर रहा हूँ जो मुझे ईमानदार आदमी मानते हैं। मैं बेकसूर हूँ। मुझे बिना किसी वजह के काम पर से हटाया गया है। जब मेरे फेवर में बहुत सारे दस्तखत हो जाएँगे तब मैं इस कापी को प्रधानमंत्री जी के पास भेजूँगा। फिर मुझे उम्मीद है कि प्रधानमंत्री जी मेरे हाकिमों को एक कड़ी चिट्ठी लिखेंगे और मुझे दुबारा मेरे काम पर बहाल कर दिया जाएगा।.....”

पानी देने वाला व्यक्ति मुस्काया।” (बिरिमल्लाह 10)

अरुण कुमार सिंह इस प्रकार के व्यवहार के कारणों को मनोसामाजिक कारण कहते हैं। वह अपनी किताब ‘आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान’ में इस संबंध में बताते हैं कि

“मनोसामाजिक कारण से तात्पर्य वैसे विकासत्मक प्रभावों से होता है जो व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक रूप से इतना परेशान कर देता है कि व्यक्ति अपने सामाजिक वातावरण के साथ ठीक ढंग से अपने आप को

समायोजित नहीं कर पाता है और इस तरह से धीरे-धीरे उसमें असामान्य व्यवहार उत्पन्न हो जाता है।” (अरुण 112)

व्यक्तित्व विकार

अधिकांश ऐसा भी देखने में आता रहा है कि किसी भी व्यक्ति की कोई भी साधारण रूप से अथवा अचनचेत कही गई बात हमारे मन में इस प्रकार घर कर जाती है कि दिल-दिमाग से निकल ही नहीं पाती हैं। यह हमारी चेतनता को भी प्रभावित करती हैं एवं हमारे व्यवहार में भी असामान्यता के लक्षण पैदा करती हैं। लेखक अब्दुल बिसमिल्लाह की ‘अतिथि देवो भव’ कहानी संग्रह में से ‘अलिया धोबी और पाव भर गोश्त’ कहानी में यह प्रसंग इसी परिस्थिति पर आधारित है।

“का अलिया, का बात है? बाप से झगड़ा भय है का?” मन्नान ने स्वाल किया तो अलिया खामोश रहा।

“आखिर कुछ तो बोल।”

अब की कासिम आहूर ने एक साथ उसे डाँटा तो उसने अपना बदन तोड़ा और फट पड़ा-

“उस दिन नहीं सुना? मसावात? इहाँ मसावात है मियाँ?”

“ओहो, तो ई बात है? ऊ नसिमवा चक्कर लगा रहा है मगज में। अरे अलिया, छोड़ इ सब, आपन काम कर। बाप के पाँव कबर में हैं। आगक देख।”

“तू लोग अछूत बन के जियो, हम तो नहीं जिँगे।”

“हमें खाँ साहब नहीं बनना है, हम तो सिरिफ अपनी इज्जत चाहते हैं।”

“इज्जत ऐसे नहीं मिलती बेटा!”

“मिलती काहे नहीं, बस एका होना चाहिए। हमारे में नहीं है।”

इतना कहकर अलिया उठ गया और घर की ओर चल पड़ा। आज रात में भी गर्म-गर्म हवा बह रही थी।” (बिरिमल्लाह 15)

इस प्रकार की वार्तालाप से साफ पता चलता है कि बातों से अथवा विचारधाराओं से किस प्रकार व्यक्ति का दिमाग किसी एक तरफ चलने लगता है। उसमें समाज से लड़ने की ताकत भी आ जाती है। परिवार से लड़ने की ताकत भी आ जाती है। सही बात कहने अथवा गलत बात को न सहने करने की भी हिम्मत व्यक्ति जुटा लेता है। वह सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ भी खड़ा होने को आतुर हो जाता है। और वो भी वह व्यक्ति जो कभी ऐसा कार्य करने की हिम्मत न रखता हो, शांत चित का धारक हो, ऐसा कार्य जिसने पहले कभी न किया हो। कहने का तात्पर्य यह कि दिमाग में घर की गई कोई ऐसी बात जो समाज से विभिन्नता बनाए होते हुए भी संबंधित व्यक्ति को सही लगती हो, वह अमुक व्यक्ति को उत्तेजित कर सामान्यता से हटकर उस प्रकार का व्यवहार करने को मजबूर कर देती है, जिन्हें साधारण लोग उसे असामान्य व्यवहार की कोटि में रखते हैं।

‘राबर्ट सी. कारसन की हिन्दी अनुवादित पुस्तक ‘असामान्य मनोविज्ञान’ में इस प्रकार से संबंधित व्यवहार के बारे में परिवर्जित व्यक्तित्व विकार नाम दिया गया है वह कहते हैं कि

“परिवर्जित व्यक्तित्व विकार वाले लोग अत्यधिक सामाजिक अवरोध और अंतर्ममुखता दिखाते हैं, जो सीमित सामाजिक अंतरसंबंधी में अनिच्छा की ओर उन्मुख करता है। अतिसंवेदनशीलता और अपनी आलोचना तथा अस्वीकृति के डर के कारण वे दूसरे लोगों के पास जाना नहीं चाहते, परंतु फिर भी दूसरों से प्यार चाहते हैं और प्रायः अकेले और ऊबे हुए रहते हैं।” (कारसन 484)

इस प्रकार का व्यवहार उस समय एकदम से समझ से परे हो जाता है। जब कोई इस प्रकार की घटना को अंजाम देता है जिसका कोई औचित्य ही नहीं होता अथवा कोई सोच भी नहीं सकता कि ऐसा भी हो सकता है। लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह ने अपने कहानी संग्रह ‘अतिथि देवो भव’ में इस कहानी

‘अलिया धोबी और पाव भर गोश्त’ में इस प्रकार के वातावरण, स्थिति एवं व्यवहार का वर्णन भरपूर मात्रा में बड़े ही अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है।

“सुबह लईक आलम साहब के छोटे भाई खलिक दौड़े आए। बोले-

“अमाँ, अपनी अम्माँ से कह दो हमारे यहाँ लइका पैदा हुआ है, जाकर जच्चा के कपड़े उठा लावें।”

अलिया उस वक्त दातौन कर रहा था। दातौन की कूँची को उसने चबूतरे पर दो-तीन बार पटका और बोला-

“खौँ साहब, अम्माँ अब सौरी के कपड़े नहीं धोएँगी।”

“क्या मतलब?”

“मतलब क्या है, कुछ नहीं।”

“हूँ, तो भाई साहब ठीक कह रहे थे। तुम लोग का दिमाग खराब हुई गया। ठीक है, जैसी मर्जी। पर समझ लो, अंजाम बुरा होगा।”

और वे झनझनाते-फटफटाते चले गये।” (बिस्मिल्लाह 15)

समायोजन विकृति: -

जैसा कि इस अध्याय के आरम्भ में ही इस बात का जिक्र किया गया था कि सामान्य व असामान्य व्यवहार में पता करने की कोई एक निश्चित कसौटी अभी तक निर्धारित नहीं की गई गई है। किन्तु फिर भी भारतीय समाज में नैतिक एवं धार्मिक प्रवृत्ति के दृष्टिकोण से विपरीत किये गये व्यवहार को असामान्य की दृष्टि से देखा जाता है। हालातों के संग समायोजन करना बुद्धिमत्ता का सूचक माना जाता है। यदि अमुक व्यक्ति हालातों के संग असमायोजित रहता है तो उसे विवेकहीन की संज्ञा दी जाती है।

हमारे दैनिक जीवन में निरंतर ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं जो हमें प्रभावित करने के साथ-साथ समाज में भी अपना सकारात्मक एवं नकारात्मक दृष्टिकोण फैलाती हैं। घटनाओं के साथ-साथ सामाजिक रुतबा भी हमारे

व्यवहार को प्रभावित करता है। फिर उस व्यक्ति की समाज के प्रति प्रतिक्रिया भी उसके व्यवहार में समायोजित करने में दिक्कत पेश करती है। राबर्ट सी कारसन अपनी हिन्दी अनुवादित पुस्तक 'असामान्य मनोविज्ञान' में इसी संबंध में कहते हैं कि

“यदि किसी सामान्य आसेधक, जैसे-शादी, तलाक, बच्चे का जन्म, नौकरी छूटने, आदि के घटित होने के तीन महीने में व्यक्ति की प्रतिक्रिया कुसमायोजित होती है तब इसे समायोजन विकृति की संज्ञा दी जाती है। व्यक्ति की प्रतिक्रिया को कुसमायोजित तब समझा जा सकता है जब वह सामान्य रूप से कार्य न कर सके अथवा किसी आसेधक के प्रति उसकी प्रतिक्रिया अतिरंजित है, जब या तो आसेधक शांत हो जाता है, एवं व्यक्ति उस आसेधक की प्रति अनुकूल न करना सीख लेता है।”
(कारसन 199)

इस प्रकार की तंग विचारधारा व्यक्ति की असामान्य व्यवहार की कसौटी की ओर जाती है तथा व्यक्ति की मनोविकारिता का प्रदर्शन करती है। इसी प्रकार की एक उदाहरण लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह ने 'रफ रफ मेल' नामक अपने कहानी संग्रह में 'लग्गी' नामक कहानी में प्रस्तुत की है। जिसमें दिखाया गया है कि किस प्रकार एक पुलिस का सिपाही (अपने को बहुत ऊँचे पद पर समझना) सड़क पर बैठे गरीब ठेले वाले को रिश्तत माँगने के चक्कर में किस प्रकार प्रताड़ित करता है। इस समय इस प्रकार का व्यवहार केवल असाधारण प्रवृत्ति का दृश्यमान होता है।

“क्यों बे, यहाँ किसकी इजाजत से बैठा है ?”

रज्जू ने अमरुदों के टोकरे में अपना डंडा घुसेड़ते हुए पूछा तो अमरुद बेचने वाला हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया।

“राम राम सा'ब, आप की दया बनी रहे.....”

फिर नीचे झुककर उसने चार-पाँच अच्छे-अच्छे अमरुद उठाए और रज्जू की ओर बढ़ा दिए।

“नहीं, मैं इस तरह की रिश्तत नहीं लेता। कल से तुम यहाँ दिखाई मत पड़ना, समझे।”

इतना कहकर रज्जू चलने लगा तो अमरूद बेचने वाला अपना टोकरा उठाकर उसके सामने खड़ा हो गया।

“नहीं सा'ब, ऐसा जुलुम मत करो। हमसे जो खिदमत हो सकेगी, करेंगे सा'ब। अपनी दया बनाए रखिए सा'ब।”

“क्या ? क्या कहा? खिदमत ?” रज्जू दहाड़ा, “अच्छा चल? चल मेरे साथ....”

और रज्जू अपने कमरे की तरफ लौट पड़ा पीछे-पीछे अमरूद बेचने वाला-किसी अदृश्य डोर से बँधा हुआ-सा।

“लगता है किसी असली पुलिस वाले से तुम्हारा साबका नहीं पड़ा है अब तक क्यों?”

कमरे का ताला खोलते हुए रज्जू ने कहा तो अमरूद बेचने वाले ने झट से अपनी टोकरा कमरे में रख दिया और हाथ जोड़कर बोला:

“समझ गए सा'ब। गलती हो गई सा'ब। आपके बाल बच्चे भी तो होंगे सा'ब। ई पूरा रख लीजिए सा'ब।”

“हूँ तो रिश्तत देना चाहते हो ?”

“ नहीं सा'ब ई तो हमारा फरज है।” (बिस्मिल्लाह 37)

लेखक ने इस वार्तालाप से यह दिखाने का प्रयास किया है कि व्यक्ति दिखने में चाहे कितना भी अच्छा लगता हो, किसी भी ऊँचे ओहदे पर कार्य करता हो। किन्तु उसका संपूर्ण व्यक्तित्व उसके व्यवहार में से ही निकल कर बाहर आता है। लालच, संकीर्णता से भरी सोच, व्यक्ति को उसके व्यक्तित्व से परे व्यवहार करने को अमादा करवाती है और वह समाज में एक तरह से असंतुलित हो जाता है।

विचारधारा ही व्यक्ति को आगे और पीछे ले जाती है। यही उसमें उत्साह एवं निराशा उत्पन्न करती है। सामाजिक वातावरण एवं परिस्थितियाँ ही व्यक्ति की विचारधारा को मजबूत एवं शिथिल अथवा कमजोर करते हैं। भावी आशाएँ भी व्यक्ति की विचारधारा का पक्ष निर्धारित करती हैं और यही हमारी सोच बन जाती है। राबर्ट सी कारसन अपनी हिन्दी अनुवादित पुस्तक 'असामान्य मनोविज्ञान' में इसी संबंध में कहते हैं कि "अचानक और आकस्मिक रूप से आए पर्यावरणीय संकट का परिणाम गंभीर मनोवैज्ञानिक और शारीरिक लक्षण हो सकते हैं।" (कारसन 201) कहने का तात्पर्य यह है कि अचानक मिली खुशी अथवा गम हमारे व्यवहार को प्रभावित करते हैं। कई बार वह हमें अविस्मरणीय अहसास दे जाते हैं। लेखक ने अपनी 'अतिथि देवो भव' नामक कहानी संग्रह में 'खाल खींचने वाले' कहानी के माध्यम से यही बात को सामने रखा है।

"और उसने, घर जाकर कुछ खा लेने का विचार त्याग दिया। खाल को चौपरत कर सिर पर उठाया और चल पड़ा। हालाँकि भूख और थकान से उसकी आँखें निकली जा रही थीं, लेकिन उस घड़ी की कल्पना करके-जिसमें उसकी हथेली पर हरे-हरे नोट होंगे, वह अतिरिक्त उत्साह से भर उठा।

पच्चीस से तो कम तो नहीं मिलना चाहिए, उसने मन ही मन सोचा और अपने हिसाब में व्यस्त हो गया।" (बिरिस्मल्लाह 60)

इस हिस्से के अध्ययन से ज्ञात होता है कि शारीरिक रूप से अस्त-व्यस्त होने के बावजूद भी व्यक्ति उसके सुखद परिणाम की आशा से, विचार से ही उत्साहित हो जाता है। सुखद परिणाम की आशा से ही उसकी विचारधारा में बदलाव आ जाता है जो उसके शारीरिक रूप से साथ न देने की स्थिति में भी मन में उत्साह भरता है। जबकि मन में निराशा आते ही काम भी प्रभावित होता है। निराशा से जोश में आई गिरावट के संबंध में अब्दुल बिरिस्मल्लाह अपने कहानी संग्रह 'अतिथि देवो भव' में 'खाल खींचने वाले' कहानी में बहुत ही सुन्दर वर्णन करते हैं कि

“गणेशी चला गया। भूनेसर फिर उठा। एक बार कोशिश की, लेकिन लाश टस से मस नहीं हुई। वह दुखी हो गया। गनेसी से मदद न लेने के लिए अफसोस भी हुआ। अरे बहुत होता एक रुपया ही लेता, और क्या? मन में आया कि दौड़कर लड़के को बुला लाए, पर आसपास बेटे गिद्धों की फौज को देखकर उसकी हिम्मत नहीं पड़ी। फिर लड़के का कौन भरोसा, घर में मिलें न मिले!” (बिरिमल्लाह 59)

कहानी के इस भाग के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मन में नकारात्मक विचार आते ही काम करने की शक्ति एवं उत्साह भी ठण्डा पड़ जाता है। जिससे साफ होता है कि हमारी विचारधारा से हमारा उत्साह एवं हमारे कार्य कैसे प्रभावित होते हैं। पंडित जगदानन्द पाण्डेय अपनी किताब ‘असामान्य मनोविज्ञान’ में इस व्यवहार के इस पक्ष को उत्साह-विषाद-मनोविकृति कहते हैं और इस विकृति का वह स्त्रियों एवं पुरुषों के बीच तुलनात्मक अध्ययन भी करते हुए कहते हैं कि

“पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ और ग्रामीणों की अपेक्षा नागरिक अधिक इस रोग के शिकार होते हैं। यों तो उत्साह विषाद पद का निर्माण उन्नीसवीं सदी की देन हैं; लेकिन इस रोग की व्यापकता का उल्लेख बाइबिल तथा प्राचीन यूनानी ग्रंथों में भी मिलता है। प्लेटो ने इस मनोरोग की चर्चा की है। कुछ विद्वानों ने तो इसकी प्रचीनता को प्रमाणित करते हुए यहाँ तक कह डाला है कि जब मनुष्यों कन्दराओं और जंगलों का जीवन व्यतीत करता था तो उस समय भी इस व्याधि की अधिकता थी।

इस रोग के स्वरूप पर विचार करने से मालूम होगा कि इस मनोविकृति में रोगी के संवेगात्मक पहलू में अत्यधिक गड़बड़ी हो जाती है, यों अन्य पहलू भी इसके प्रभाव से वंचित नहीं रहते हैं। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, कभी रोगी अत्यधिक प्रसन्न और क्रियाशील होता है तो कभी अत्यधिक दुखी और निष्क्रिय होता है।” (पाण्डेय 198)

समाज में रहते बहुत बार ऐसा देखने में भी आता है कि यदि किसी भी व्यक्ति की दिमागी हालात ठीक न हो तो भी वह ऐसा व्यवहार करता है जो समाज को मान्य नहीं होता। किन्तु इस परिस्थिति में लगभग कोई भी उस व्यवहार को बुरा नहीं मानता। उन्हें बुरा तो लगता है किन्तु उसे सजा देने के हक में नहीं होते। क्योंकि उस समय उन्हें जानकारी होती है कि अमुक व्यक्ति अपनी चेतनता खो चुका है। वह किसी भी सामाजिक क्रिया के प्रति कोई विशेष व उचित प्रतिक्रिया करने में असमर्थ होता है। मुख्य रूप से ऐसे व्यक्ति मानसिक रूप से दुर्बल होते हैं। जगदानन्द पाण्डेय अपनी किताब 'असामान्य मनोविज्ञान' में ऐसे व्यक्तियों का वर्गीकरण कर उन्हें 'जड़' वर्गीकरण में रखते हैं। उनकी विशेषता के संबंध में वह कहते हैं। कि

“जिस व्यक्ति में अत्यधिक दुर्बलता रहती है उसे जड़ कहते हैं। जिसमें यह दोष रहता है उसका ज्ञान उसके आरंभिक शैशव काल में ही हो जाता है; क्योंकि इसके चिन्ह विशेष जन्म से मौजूद रहते हैं। इनकी बुद्धि उपलब्धि 20 से अधिक नहीं होती और सामाजिक तथा मानसिक आयु तीन वर्ष के भीतर रहती है। ऐसे व्यक्ति में इस प्रकार बुद्धि का अभाव रहता है कि वह अपनी रक्षा किसी भयावह परिस्थिति से करने में पूर्णतः असमर्थ होता है।” (पाण्डेय 213)

लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह ने अपनी 'रफ रफ मेल' नामक कहानी संग्रह में 'लंठ' नामक कहानी को इसी का माध्यम बनाया गया है। सारी कहानी दिमागी असंतुलन के कारण पैदा हो रहे अथवा किये जा रहे असामान्य व्यवहार के मध्यस्थ रची गई है। कहानी में अनेक ऐसे किस्से भरे पड़े हैं, जो दिमागी असंतुलन का सबूत देते हैं।

“गाँव के बाहर दूर-दूर तक रेह का फैलाव था। बस कहीं-कहीं इक्के-दूकके बबूल के झाड़ भर खड़े थे। गर्मियों के दिन थे। आरिफ साइकिल चलाता हुआ, कुछ गुनगुनाता हुआ बढ़ा जा रहा था। आगे दो पगडंडियाँ एक दूसरे का बीच में से काटती थीं, जहाँ ठीक बीचों-बीच एक बड़ा सा पत्थर रखा था। आरिफ साइकिल से उतर गया। उसने साइकिल एक तरफ

खड़ी की और खुद पत्थर के पास खड़ा हो गया। पत्थर पर एक समुचा नारियल, चुनरी का टुकड़ा, पाँच लड्डू और एक चवन्नी के साथ दो अठन्नियाँ रखी हुई थी। खुशी के मारे उसका दिल बल्लियाँ उछलने लगा। सबसे पहले तो उसने लड्डूओं को चट किया, फिर नारियल और पैसे को कब्जे में लिया। उसके बाद साइकिल उठायी और वापिस लौट लिया।

“अरे बहुत जल्दी लौट आए ? ले आये पन्नी कागज़ ?”

नूरे फकीर ने आश्चर्य के साथ पूछा तो आरिफ मियाँ ने नारियल उसके सामने रख दिया और पूरी कहानी कह सुनाई! पन्नी कागज़ की तो उसने बात ही नहीं की।

“क्या!” नूरे चौंका तुमने चौगुंडे पर रखे लड्डू खाये? अब क्या होगा जानते हो ?”

“क्या होगा ?”

“अरे पागल, किसी ने ‘निकारा’ किया होगा, समझे! और तुमने ‘निकारे’ की चीजों को न सिर्फ छुआ, बल्कि खा भी लिया। तुम्हारी अवल पर एकदम पत्थर पड़ गया है क्या? न जाने कहाँ के भूत-प्रेत होंगे। अब देखते जाओ, क्या-क्या होता है अपनी मौत बुला रहे हो और कुछ नहीं। ठीक है बाबात्र मरो जाकर! पन्नी कागज़ के पैसे इधर लाओ, मैं किसी और को भेजूँगा शहर!” (बिस्मिल्लाह 115)

इस कहानी में मानसिक व शारीरिक पहलुओं का आपसी तालमेल न दिखाकर विरोधाभास का वर्णन किया गया है। दोनों में असंतुलन को दिखाया गया है। दोनों के असंतुलन के संबंध में अरुण कुमार सिंह कहते हैं कि

“असामान्य व्यवहार कभी भी व्यक्ति में अचानक नहीं पैदा होता है। इसका एक निश्चित तौर पर इतिहास होता है। असामान्य व्यवहार की सैद्धांतिक व्याख्या करने के लिए तीन तरह के दृष्टिकोण या विचारधाराएँ

हैं- जैविक विचारधारा, मनोसामाजिक विचारधारा तथा सामाजिक-सांस्कृतिक विचारधारा।” (अरुण 103)

इस कहानी में जिस प्रकार का विचित्र व्यवहार दिखाया गया है। उसमें केवल जैविक विचारधारा को ही जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। इस प्रकार के कारक से व्यक्ति का या तो शारीरिक विकास रुक जाता है और दिमाग तंदरुस्त रहता है, या फिर शारीरिक विकास होता है और दिमागी विकास रुक जाता है। ऐसे व्यक्ति या तो सारी बातें दूसरे लोगों की मानते हैं या फिर स्वयं में जिद्दी होते हैं, जो उनके दिमाग में आता है वह केवल वही करते हैं। लेखक की यह ‘लंठ’ कहानी पूर्णतः इसी विचारधारा पर आधारित है।

लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह के कहानी संग्रह ‘रफ रफ मेल’ की ‘माटा मिरला की कहानी’ नामक कहानी भी इस विचारधारा से संबंधित कहानी है, जिसमें दो भाई शारीरिक रूप से तो तंदरुस्त दिखाए गए हैं। किन्तु मानसिक रूप से कमजोर जान पड़ते हैं। इनकी यहाँ मानसिक कमजोरी का असर असामान्य व्यवहार के सिद्धांतों के अनुसार सामाजिक-सांस्कृतिक विचारधारा को ठहराया जा सकता है। क्योंकि पूरी कहानी में ऐसा कोई भी पक्ष दिखाई नहीं पड़ता जो उनके असामान्य व्यवहार को जैविक कारकों के साथ जोड़ सके। हाँ उनके व्यवहार, दिनचर्या के कार्यों से सामाजिक-सांस्कृतिक विचारधारा का असर जरूर नजर आता है।

“उस राज्य में उन दिनों हस्तकारी की बड़ी उन्नति हो गई थी। इसलिए किसी नगर में कोई ताला बनाते-बनाते बड़ा आदमी हो जाता था तो कोई कपड़ा बुन-बुन कर रईस हो जाता था, मगर माटा मिरला को कोई काम आता ही नहीं था। ये बेचारे पढ़े-लिखे भी नहीं थे। एकदम निरक्षर भट्टाचार्य। इसलिए इनके दिन बड़ी मुश्किल से कट रहे थे।

माटा और मिरला दोनों भाई सुबह-सवेरे बासी-कुसी खा-पीकर काम की तलाश में निकल जाते। लेकिन इनकी मूर्खता और अयोग्यता का ऐसा डंका बजा हुआ था कि पूरे राज्य में कहीं इन्हें कोई काम मिलता ही नहीं था

और शाम को यह मुँह लटकाए वापस आ जाते थे। अफवाह थी कि पेट भरने के लिए दूसरों से कुछ माँग जाँच लिया करते थे।” (बिरिस्मल्लाह 125)

अपनी मूर्खता एवं भोलेपन के कारण जल्दी ही किसी की बातों में भी आ जाया करते थे। रोने भी जल्दी ही लग जाया करते थे। खुश भी जल्दी ही हो जाते थे। विवाह तक की उम्र में इस प्रकार का व्यवहार सामाजिक दृष्टि से असामान्य की रहेगा और लेखक ने यही दिखाने की कोशिश की है।

दबाव एवं तनाव से खण्डित होती मनोवृत्ति: -

वैसे तो साधारणतः दबाव को असामान्य व्यवहार की श्रेणी में गिना जाता है। किन्तु जब हम इसे गहन अध्ययन की दृष्टि की नजर से देखते हैं तो नकारात्मक व सकारात्मक दोनों दृष्टियों से हम पर अपना प्रभाव डालता है। कोई भी ऐसी एक बात, हरकत, घटना अथवा हमारी विचारधारा जब हमें ऐसा व्यवहार अथवा क्रिया करने को मजबूर कर देती है जो एक तरफ न तो समाज को मान्य होती है तथा दूसरी तरफ न ही हमारे व्यवहार को सामान्य रहने देती है और साथ ही हमारे दिल दिमाग की क्रियाशीलता पर भी अपना नकारात्मक अथवा सकारात्मक प्रभाव डालती है ‘दबाव’ कहलाती है। उदाहरण हेतु जब किसी भी बात से हमारा मूड असामान्य होता है तो हम कार्य करना छोड़ देते हैं। दूसरी ओर अत्यधिक तनाव से हमारी कोशिकाओं में बल उत्पन्न होता है, दिमाग तेजी से सभी दिशाओं में कार्य करने लगता है। जिससे कार्य की गुणवत्ता में तेजी आती है।

इसी दबाव की वजह से ही हम चिंतित नजर आते हैं। चिंता भी हमारे कार्य व गुणवत्ता में अनुकूल व प्रतिकूल दोनों प्रकार से प्रभाव डालती है। यद्यपि यह एक प्रकार से असामान्य व्यवहार का एक गुण है। किन्तु फिर भी यह हमारे व्यवहार में अपनी गुणवत्ता के अनुसार सकारात्मक व नकारात्मक परिस्थितियाँ पैदा कर देती है। मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि चिंता होना अथवा चिंतित होना हमारे व्यवहार हेतु एक अच्छा लक्षण है, एक अनिवार्य लक्षण है जो हमारे व्यवहार को सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप बनाता है।

साकारत्मक और नकारात्मक पहलू मानवीय जीवन का एक अहम हिस्सा है। चाहकर भी हम इससे स्वयं का बचा नहीं सकते। जीवन के प्रत्येक क्षण में इसका कोई न कोई पक्ष हमारे समक्ष उपस्थित रहेगा ही। जनसाधारण की भाषा में 'तनाव' शब्द स्वयं में ही नकारात्मक पक्ष को प्रस्तुत करता है। किन्तु यह एक ऐसा संवेग है जो सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पक्ष में ही मानवीय व्यवहार में अपनी विशेष भूमिका अदा करता है। यदि कोई भी शुभ कार्य हमारे समक्ष उपस्थित होने की फिराक में हो तो तनाव का सकारात्मक पक्ष हमारे समक्ष अपनी उपस्थिति दर्ज करवाता है। यदि हमारे समक्ष किसी अशुभ कार्य की खबर आने को हो तो नकारात्मक पक्ष हमारे समाने आता है। राबर्ट सी कारसन अपनी हिन्दी अनुवादित पुस्तक 'असामान्य मनोविज्ञान' में तनाव के संबंध में कहते हैं कि

“तनाव को मुख्यतः जीव पर समायोजन की मांग, तथा उन मांगों के प्रति आंतरिक जैविक एवं मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया दोनों ही रूपों में देखा गया है। उलझन से बचने के लिए, हम इन समायोजन की मांगों को आसंघक कहेंगे, यह जीव में जो प्रभाव उत्पन्न करते हैं उन्हें तनाव कहेंगे तथा तनावों से निपटने के प्रयासों को 'निवारण युक्तियाँ' कहेंगे। तनाव खराब एवं अनुपयुक्त परिस्थितियों से निपटने के तरीकों का उपफल है।

सभी सकारात्मक एवं नकारात्मक परिस्थितियाँ जिनमें समायोजन की आवश्यकता होती है तनावपूर्ण हो सकती हैं।” (कारसन 184)

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि तनाव परिस्थितियों से समायोजन में कमी अथवा अभाव का परिणाम है। लेखक अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपनी कहानी संग्रह 'अतिथि देवो भव' में इन्हीं प्रकार की परिस्थितियों का वर्णन बहुत ही सुन्दरता सहित प्रस्तुत किया है

“अलिया को रात भर नींद नहीं आई। उसकी आँखों में नसीम की शकल नाचती रही और कानों में उसके शब्द बजते रहे। अंत में उसने तय किया कि सुबह उठते ही वह नसीम साहब से जरूर भेंट करेगा।

लेकिन नसीम साहब भोर में ही शहर के लिए ही रवाना हो गये थे। अनिया उन से नहीं मिल सका। वह बुरी तरह परेशान हो उठा।” (बिस्मिल्लाह 14)

कहानी की इस परिस्थिति से स्पष्ट है कि लेखक ने कहानी के मुख्य पात्र के मन की स्थिति को इस प्रकार तनावग्रस्त दिखाया है जिससे यह पूर्णतः स्पष्ट है कि वह अपने सामाजिक जीवन के वातावरण से स्वयं का समायोजित करने में असमर्थ है।

लेखक अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने इसी कहानी संग्रह में से इसी परिस्थिति से संबंधित एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

“गुलामू चचा छड़ी टेकते आगे बढ़ गए।

आज क्यों ऐसा हुआ उनके साथ? आखिर इन लड़कों के मन में मजाक की बात क्यों आई? कल तक तो ऐसी कोई बात नहीं थी। इनमें से एकाध ने दवाएँ भी ली है उनके यहाँ से। यह जरूर है कि नया-नया काम शुरू करने पर थोड़ा अटपटा-सा लगता है लोगों को और कुछ लोगों ने उनके इस काम को मजाक की चीज समझा भी है। पर यह तो खिदमत-खल्क है। ठीक है भाई, जहाँ बड़े-बड़े डॉक्टर भरे हुए हैं वहाँ गुलाम हुसैन जैसे रंगरूट की क्या हस्ती है? फिर भी मुहल्ले के गरीबों के लिए तो वे फायदेमंद हो ही सकते हैं। बड़ी बीमारी न सही, छोटे-छोटे रोगों का इलाज तो वे कर ही सकते हैं। कितना भी अनाड़ी सही, पर यह तो नहीं है कि बेलाडोना की जगह वे नवमिका दे देते हों? लेकिन इन लड़कों ने ऐसा कुछ क्या पाया कि मजाक के मूड में आ गए?...”

(बिस्मिल्लाह 110)

मन में चल रही इस प्रकार की बात को छोटे व कमजोर दिल वाला व्यक्ति अपने दिमाग में से नहीं निकाल सकता। उसे हर समय इस बात का अहसास होता रहेगा कि किसी अमुक व्यक्ति ने यही बात उससे क्यों कही? वह इस प्रकार की परिस्थितियों का सामना करने की न तो हिम्मत जुटा सकता है

तथा न ही सहन कर सकता है। इस प्रकार की बातें उसके दिल दिमाग में घर कर जाती हैं तथा उसके व्यवित्तव को भी प्रभावित करती हैं। स्पष्ट है कि ऐसे लोग सामाजिक एवं मानसिक वातावरण से स्वयं का समायोजित नहीं कर सकते तथा कष्ट भोगते हैं।

लेखक ने कहानी के इस खण्ड में तनाव पैदा करने व उसे कम करने के तरीके के माध्यम से कहानी में बड़ा ही सुन्दर मोड़ पैदा किया है। एक बुजुर्ग को जवान लड़कों द्वारा फलियाँ कसने पर उसे अत्यधिक गुस्सा व दिमाग में बात को बैठा लेने के साथ-साथ उससे संबंधित तनाव को कम करने का एक सुन्दर भाग भी जोड़ दिया है।

“लेकिन तुरंत बाद ही गुलामू चचा को लगा कि गलती उनकी भी है। अरे क्या जरूरत थी बुरा मनाने की। डॉक्टर ही तो कह रहे थे वे लोग, गाली तो नहीं न दे रहे थे। अरे उन्होंने पूछा था कि कहाँ जा रहे हो, कह दिया होता कि टहलने जा रहे हैं। या मार्केट जा रहे हैं। इतने में कुछ बिगड़ तो नहीं जाता। बिला वजह इतनी बात तो न बढ़ती।”
(बिरिमल्लाह 110)

अब कहानी के इस भाग से साफ झलक रहा है कि लेखक ने तनाव कम करने के तरीके को अपनाते हुए कहानी में एक सुन्दर मोड़ पैदा कर दिया है। किसी भी बात को दिमाग में निकालने का बहुत ही सुन्दर उदाहरण लेखक ने प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार की एक ओर उदाहरण लेखक ने इसी कहानी के माध्यम से प्रस्तुत की है।

“गुलामू चचा की नाक पर एक ठंडी-सी बूंद पड़ी तो वे चौंक उठे। नहीं! उस घटना से उन्हें इतना क्षुब्ध नहीं होना चाहिए। ऐसा तो होता ही रहता है। मुहल्ले के लड़के हैं। आज मान लीजिए कि एक बात हो गई तो इसका मतलब यह तो नहीं होता कि कोई खतरनाक बात हो गई हो। कल फिर वही रिश्ते होंगे और फिर वही आना-जाना होगा। लड़के हैं, नासमझी हो ही जाती है।” (बिरिमल्लाह 111)

मन में इस प्रकार के विचारों का आगमन व्यक्ति को बेकार के तनाव से मुक्ति दिलाने में भरपूर सहयोग देता है। राबर्ट सी कारसन अपनी हिन्दी अुवादित किताब 'असामान्य मनोविज्ञान' में कहते हैं कि "कभी-कभी आंतरिक कारक, जैसे—व्यक्ति की मनोदशा का संदर्भ, अभिप्रेरक, सामर्थ्य, अथवा तनाव सहनशीलता व्यक्ति के तनाव से निपटने की तकनीकों का निर्धारण करने में प्रबल भूमिका निभाते हैं।" (कारसन 191) अपनी इसी किताब में वह आगे कहते हैं कि

“यदि व्यक्ति की पर्याप्तता की भावनाएँ आसेधक द्वारा गम्भीर रूप से खतरा अनुभव करती हैं, ऐसी परिस्थिति में रक्षोन्मुख निवारण प्रक्रिया सर्वाधिक प्रबल होती है अर्थात् व्यक्ति परिस्थिति का हल ढूँढने की अपेक्षा मुख्य रूप से स्वयं को किसी चोट अथवा विघटन से बचाने की ओर उन्मुख होता है। विशिष्ट रूप से जो व्यक्ति रक्षोन्मुख प्रतिक्रिया का उपयोग करते हैं, वे अपने आत्मन की समुच्चयता को बनाये रखने के प्रति अधिक चिंतित होने के कारण अधिक लाभकारी कार्यामुख क्रिया को छोड़ देते हैं, भले ही प्रयास अविवेचित तथा आत्म पराजित साबित हो।” (कारसन 192)

अब्दुल बिरि-मल्लाह की इस प्रकार की लेखनी हिन्दी साहित्य के लिए एक वरदान साबित हो रही है, जो समाज में अपनी विकासात्मक प्रवृत्ति के साथ साथ मानव कल्याण हेतु भी अपना भरपूर योगदान दे रही है जिसमें सामाजिक कुर्रतियों के प्रदर्शन के साथ-साथ ही उनके समाधान पर भी अपना ध्यान केन्द्रित किए हुए है।

यह तो पूर्णतः ज्ञातव्य है कि दिन-ब-दिन समाज उलझनों से भरपूर होता जा रहा है। अपनी दिनचर्या में मानव में इतने कार्य बढ़ा लिए हैं कि उनसे छुटकारा पाना अब उनके लिए आसान नहीं है। वैसे उन्हें पूरा किये बिना भी जीवन में ठहराव आना भी स्वाभाविक ही है। किन्तु उनके बढ़ने से मानसिक परेशानियाँ भी व्यक्ति के मन में अपना स्थान ग्रहण कर लेती हैं। जिससे छुटकारा पाने हेतु व्यक्ति ऐसे कार्यों को अंजाम देता है, जो संभवत् समाज में

अमान्य होते हैं। साथ ही ऐसी कार्यों को अंजाम तक पहुँचाने हेतु भी कुछ दिमागी रूप से तेज व्यक्ति ऐसे सामाजिक कार्य करते हैं और ऐसी अपने व्यवहार में नकलीपन लाते हैं तो पुरी तरह से सामान्य व्यवहार एवं सामाजिकता के दायरे से बाहर होते हैं। लेखक की 'पूँजी, मान और मुनाफा' कहानी पूरी तरह से इसी परिस्थिति पर आधारित है। इसमें अपनी परेशानियों एवं मुसीबतों के कारण मानसिक रूप से परेशान व्यक्तियों का एक दिमागी रूप से तेज व्यक्ति के द्वारा जगह-जगह पर शोषण दिखाया गया है जो साधारणतः असामान्य व्यवहार की श्रेणी में गिना जाता है। 'बाबू जी' नामक का शर्क्स किसी को मुकदमा जिताने के नाम पर, किसी को नकल से पास कराने के नाम पर, किसी की बढ़ती उम्र में कुँवारी लड़की से शादी करवाने के चक्कर में, किसी तलाकशुदा लड़की से उसके ससुराल पक्ष से दहेज का सामान वापस लाने के चक्कर में लोगों को झूठा आश्वासन देकर पैसा ऐंठना का असामाजिक कार्य कर अपनी बुद्धिमानी समझता है, जबकि घर में उसकी पत्नी उसके इस प्रकार के कार्य से कमाये हुए धन को हाथ भी नहीं लगाती। कहने का तात्पर्य यह कि बहुत से लोग चलाकी से किये गये कार्यों को अपनी तीव्र बुद्धि का प्रमाण मानते हैं जबकि साधारण लोग इसे असामान्य व्यवहार मानते हैं।

अधिक पैसा अथवा शानो-शोकत भी व्यक्ति के व्यवहार में असामान्यता का लक्षण पैदा करने में विशेष भूमिका निभाते हैं। 'अभिनेता' कहानी में लेखक ने इन्हीं लक्षणों को दर्शाने का प्रयास किया है। 'रहमान' नामक व्यक्ति इसी प्रवृत्ति का मालिक दिखाया गया है। पैसे के बल पर वह अपने जीवन को ऐशोप्रस्त बनाने हेतु उस प्रत्येक भौतिक वस्तु को खरीदता है। उसका उपयोग करता है, जो उसे चाहिए होती है। साथ ही साथ वह उनका बखान भी बराबर बढ़चढ़ कर करता रहता है। अब अगर सामने वाला व्यक्ति इस प्रकार की बातों पर यदि कोई प्रतिक्रिया नहीं कर रहा है तो उस व्यक्ति को लगता है कि मैं ही सब कुछ हूँ और वह इस प्रकार का व्यवहार करने लगता है, जो सामने वाले हेतु असहनीय होता है। वह उसे असभ्य समझता है। उससे परहेज़ भी करने लगता है और आशा रखता है कि उससे दुबारा

कभी न मिले। अचानक मुलाकात हो भी जाए तो वह हैरान व परेशान हो जाता है। लेखक ने बड़ी ही कुशलता से इस प्रकार की परिस्थिति का वर्णन अपने कहानी लेखन में किया है। इस प्रकार की परिस्थितियाँ व्यक्ति के असामान्य व्यवहार की व्यथा स्वयं बयान करती हैं।

इसी प्रकार की तनाव भरी परिस्थितियों से मानवीय मन कभी कभी दबाव में भी स्वयं को महसूस करने लगता है। जैसे तो साधारणतः दबाव को असामान्य व्यवहार की श्रेणी में गिना जाता है। किन्तु जब हम इसे गहन अध्ययन की दृष्टि से देखते हैं तो नकारात्मक व सकारात्मक दोनों दृष्टियों से हम पर अपना प्रभाव डालता है। कोई भी ऐसी एक बात, हरकत, घटना अथवा हमारी विचारधारा जब हमें ऐसा व्यवहार अथवा क्रिया करने को मजबूर कर देती है जो एक तरफ न तो समाज को मान्य होती है तथा दूसरी तरफ न ही हमारे व्यवहार को सामान्य रहने देती है और साथ ही हमारे दिल दिमाग की क्रियाशीलता पर भी अपना नकारात्मक अथवा सकारात्मक प्रभाव डालती है 'दबाव' कहलाती है। उदाहरण हेतु जब किसी भी बात से हमारा मूड असामान्य होता है तो हम कार्य करना छोड़ देते हैं। दूसरी ओर अत्यधिक तनाव से हमारी कोशिकाओं में बल उत्पन्न होता है, दिमाग तेजी से सभी दिशाओं में कार्य करने लगता है। जिससे कार्य की गुणवत्ता में तेजी आती है।

इसी दबाव की वजह से ही हम चिंतित नजर आते हैं। चिंता भी हमारे कार्य व गुणवत्ता में अनुकूल व प्रतिकूल दोनों प्रकार से प्रभाव डालती है। यद्यपि यह एक प्रकार से असामान्य व्यवहार का एक गुण है। किन्तु फिर भी यह हमारे व्यवहार में अपनी गुणवत्ता के अनुसार सकारात्मक व नकारात्मक परिस्थितियाँ पैदा कर देती है। मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि चिंता होना अथवा चिंतित होना हमारे व्यवहार हेतु एक अच्छा लक्षण है, एक अनिवार्य लक्षण है जो हमारे व्यवहार को सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप बनाता है।

निष्कर्ष: -

जैसा कि विगत इस असामान्य मनोविज्ञान की परिभाषा के संबंध में यह स्पष्ट था कि व्यक्ति के व्यवहार में असामान्यता के लक्षणों के संबंध में कोई विशेष कसौटी नहीं है, जिसके आधार पर यह कहा सकता हो कि अमुक व्यक्ति का व्यवहार असामान्य है। किन्तु फिर भी बहुत से मनोवैज्ञानिकों ने अपनी रचनाओं में असामान्यता के जो विभिन्न लक्षणों पर प्रकाश डाला है उनके आधार पर यदि मूल्यांकन किया जाए तो निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह के कथा-साहित्य में से ऐसे बहुत से बिन्दु हैं जो इन लक्षणों पर खरा उतरते हैं। दूसरी बात यह कि साहित्य का यह एक खास बिन्दु अथवा उत्तरदायित्व है कि वह मानव कल्याण हेतु समाज के क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं अथवा उसके यथार्थ कि चित्रण के साथ ही उसमें अपनी आदर्शवाद का कल्पना मिश्रित समावेश करवाये, जिससे कि भावी पीढ़ियाँ इससे लाभान्वित हो सकें। इस आधार पर हमें हर्षित होना चाहिए कि लेखक ने सामाजिक यथार्थ का साक्षात् चित्रण (असामान्य व्यवहार के संबंध में) किया है। मनोवैज्ञानिकों के दृष्टिकोण के अनुसार असामान्य व्यवहार में जितने भी लक्षण पाये जाते हैं; लेखक ने बड़ी ही सुन्दरता एवं संजीदगी से उनका विवरण किया है। साथ ही साथ उन्होंने पात्रों के ही माध्यम से उनके तनाव, चिंता, भय इत्यादि लक्षणों को भी सकारात्मक दृष्टिकोण के अनुसार दूर करने के उपायों का भी वर्णन कर अपनी आदर्शवादिता का सबूत पेश किया है।

मानवीय एवं सामाजिक कल्याण के दृष्टिकोण के अनुसार यह होना भी ऐसा ही चाहिए। यदि कोई पाठक अथवा श्रोतागण इसका अनुसरण करे तो जहाँ एक तरफ समाज में फैल रही असामान्य व्यवहार की मुसीबतों के संदर्भ में जानकारी प्राप्त होगी वहीं दूसरी तरफ कथा-साहित्य के अध्ययन से उसमें प्रस्तुत उपायों एवं समाधान से इस प्रकार के व्यवहार से मुक्ति पाने की कोशिश करने का कदाचित् प्रयत्न तो करेंगे ही। यदि वह ऐसा करते हैं तो लेखक की यह एक बहुत ही बड़ी सामाजिक उपादेयता होगी जो कि मानव

कल्याण हेतु एक लेखक के लिए अनिवार्य भी है। साथ ही साथ यह एक प्रकार से अन्य भावी लेखकों के लिए भी एक नया रास्ता; एक नई दिशा देने की ओर भी एक नया कदम होगा जो कि आने वाले समय के लिए मील का पत्थर भी साबित हो सकता है।

साहित्य के क्षेत्र में भी यह एक नया कदम साबित हो सकता है, क्योंकि इससे साहित्य समाज की चाल के साथ चाल मिलाकर चल सकता है। वैसे तो साहित्य का समाज के साथ संबंध के विषय में किसी भी प्रकार से इन्कार नहीं किया जा सकता है। किन्तु फिर भी इसे हम एक नये प्रयोग के साथ ही देखेंगे, क्योंकि इससे साहित्य मनोरंजन के साथ-साथ एक अप्रत्यक्ष चिकित्सक का कार्य करता भी नज़र आएगा।

अध्याय चार

4. अब्दुल बिरिस्मल्लाह के कथा साहित्य का समाज

मनोवैज्ञानिक अध्ययन

4.1 उपन्यास साहित्य में समाज मनोविज्ञान:

पाषाण युग से आधुनिकता तक के सफर में संसार साक्षी है मानवीय बुद्धिमत्ता का, उसकी सहनशीलता का, उसके सब्र का, उसके सहयोग का, उसकी प्रवीणता का, उसके आगामी होने का। किन्तु ऐसा कार्य एक अकेले व्यक्ति के सामर्थ्य से बाहर की बात है, समुदाय के बिना, सहयोग के बिना, सामाजिक क्रियाशीलता के बिना कदाचित् यह कार्य मनुष्य जाति के लिए संभव ही नहीं है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज के बिना अकेला नहीं रह सकता। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई भी कार्य वह सामाजिक ताने-बाने के अंतर्गत ही कर पाता है। समाज जो कि लोगों का एक ऐसा समूह या समुदाय होता है और एक प्रकार का ऐसा दायरा होता है जिसमें रहकर मनुष्य अपनी हर प्रकार की जरूरतें पूरी करता है। एक दूसरे से संपर्क साधता है। प्यार, स्नेह, सौहार्द, सहयोग इत्यादि का लेन-देन होता है।

जैसा कि ज्ञातव्य है कि समाज प्रत्येक व्यक्ति के परस्पर सहयोग एवं जरूरतों की पूर्ति हेतु एक प्लेटफार्म है जिससे हम यदि किंचित मात्र भी परे होते हैं तो असहाय एवं अकेले हैं। चाहे हम कितने ही बड़े या छोटे हों, ताकतवर या असहाय हों। इतिहास इस बात का सदैव गवाह रहा है। किशोर मकवाना अपनी सम्पादित किताब 'सामाजिक समरसता' में समाज में व्यक्तियों के परस्पर सहयोग के संबंध में कहते हैं कि

“महाभारत की विजय में यदि कोई शक्ति-सतंभ थे तो वह भगवान् श्री कृष्ण ही थे। बचपन में अपने मुख में माता यशोदा को समस्त ब्रह्मांड के दर्शन कराने वाले श्रीकृष्ण की विशेषता यह थी कि जब उन्हें गोवर्धन पर्वत को उठाना पड़ा, तब उन्होंने सभी ग्वाल बालों की लकड़ी की टेक

ली थी। कृष्ण जैसे पूर्णावतार को भी ग्वालों पर आश्रित रहना पड़ा था। इतिहास में चाहे वह छत्रपति शिवा जी हों या महाराणा प्रताप हों, गुरु गोबिन्द सिंह जी हों- प्रत्येक महापुरुष की जीवन की सफलता के साथ समाज के उस छोटे-से-छोटे आदमी का नाता अवश्य देखने को मिलता है। सत्य को समझने के लिए इतिहास से बड़ा कोई दृष्टांत नहीं है।”
(मकवाना 24)

वहीं दूसरी ओर घृणा, शत्रुता, नफरत, लड़ाई-झगड़े, मारपीट, इत्यादि भी साथ-साथ चलते रहते हैं। लोगों के आपसी संबंधों से रिश्ते पनपते हैं। फिर धीरे-धीरे इनका जाल फैलता जाता है। इन सब के समन्वय को ही सामाजिक संगठन कहते हैं। यह बात केवल मनुष्य जाति पर ही लागू नहीं होती वरन् पशु-पक्षियों, पेड़-पौधे इत्यादि में भी संभव है।

समस्त संसार में भाषाओं एवं क्षेत्रीय प्रभाव की विभिन्नता के कारण लोगों के रहन-सहन में विभिन्नता मौजूद है। इन्हीं विभिन्नताओं तथा मानवीय पदार्थवादी सोच के कारण ही पुरातन काल से विभिन्न सभ्यताओं का विकास एवं पतन होता आया है। नवीन सभ्यताएँ पुरातन सभ्यताओं के कुछ न कुछ सीखती आ रही हैं, हालाँकि बदलाव की गुंजाइश में बढ़ोतरी रही है फिर भी समाज, संस्कृति तथा सभ्यताओं के आपसी रिश्तों में घनिष्ठता रही है।

भाषा और समाज: -

समाज के दायरे में भाषा का महत्त्वपूर्ण कार्य है। क्योंकि भाषा से ही मनुष्य पशुता से मानवता की ओर अग्रसर हुआ है। भाषा के माध्यम से ही उसके ज्ञान, विज्ञान, विवेक, सहनशीलता, बातचीत करने के ढंग, समझने समझाने के ढंग इत्यादि में इज़ाफ़ा हुआ है। भाषा से ही साहित्यलेखन संभव हो पाया। संभव है यदि भाषा न होती तो कदाचित् मनुष्य आज भी पशु ही होता। भाषा ने ही मानव को मानवता का पाठ पढ़ाया। साहित्यलेखन ने मानवीय बुद्धि को तर्क संगत व वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान किया है। मानवीय मनोभावों का उल्लेखनीय वर्णन साहित्य की ही देन है। साहित्यकारों ने इस

कार्य को अपनी-अपनी बुद्धि विवेक के अनुसार, सामाजिक हालातों के अनुसार मानवीय भावों को समझा तथा उन पर उनकी लेखनी चलाई। इस संबंध में डॉ. हरमोहन लाल सूद अपनी किताब 'हिन्दी भाषा प्रयोजनमूलकता एवं आयाम' में कहते हैं कि

“भाषा हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। भाषा कि बिना कुछ भी संभव नहीं। भाषा मनुष्य को शेष प्राणिजगत से अलग कर देती है। मनुष्य की प्रवृत्ति आत्माभिव्यक्ति की है और भाषा विचारों, भावों की अभिव्यक्ति का सबसे सार्थक, सुगम एवं श्रेष्ठ साधन हैं।” (सूद 11)

जब से हिन्दी भाषा का अविर्भाव हुआ है। तब से आजतक साहित्यकारों ने मानवीय भावों को सामाजिक संदर्भ में उनका उल्लेखनीय वर्णन किया है। कहानियाँ, उपन्यास, नाटक, एकांकी, रिपोर्ताज इत्यादि साहित्य विधाओं का सामाजिक संदर्भ में समय-समय पर बदलाव आता रहा है और कदाचित् यह बदलाव इसी प्रकार चलता रहेगा। दिनकर जी कहते हैं कि “भारत कोई नया देश नहीं है। जिस भाषा में उसकी संस्कृति का विकास हुआ है, वह संसार की प्रचीनतम भाषा है।” (दिनकर 745)

समाज-मनोविज्ञान की अवधारणा:

आधुनिक समाज का जो रूप हमारे समक्ष उपस्थित है। यह कदाचित् ऐसा नहीं था। इसके इस रूप में पहुँचने में अत्यन्त लम्बा समय व्यतीत हुआ है। बहुत से विद्वानों, साहित्यकारों, भाषा वैज्ञानिकों, समाज शास्त्रियों एवं समय के थपेड़ों ने इसे इस मुकाम तक पहुँचाया। संसार में बहुत से विद्वान, ऋषि-मुनि, संत-महात्मा एवं दार्शनिक इत्यादि हुए जिन्होंने अपनी विचारधाराओं के माध्यम से सांसारिक प्रवृत्ति को समझा और मनुष्य जाति को समझाने की चेष्टा की। महात्मा बुद्ध जी ने कहा था कि ‘संसार दुखों का घर है और हमारी इच्छाएँ ही दुखों का कारण हैं’। अनेक संत महात्माओं ने संसार को नाशवान बताया है तथा आत्मा को अमर बताया है।

दार्शनिक विचारधारा के अनुसार प्लेटो, अरस्तू, लॉक, कॉमटे इत्यादि ने भी सांसारिक समाज के बारे में अपनी-अपनी विचारधारा रखी तथा सामाजिक व्यवहार के अध्ययन में विशेष दिलचस्पी दिखाई। लोगों को इनकी विचारधारा काफी पसंद आई, उसे सराहा भी गया। 'कॉमटे' को तो समाजशास्त्र का जनक भी कहा जाता है। किन्तु ज्ञातव्य रहे कि प्रकृति सदैव परिवर्तनशील है। इसमें बदलाव होते रहते हैं तो स्वाभाविक है कि समाज में भी बदलाव वांछनीय है। जिस आधार पर कहा जा सकता है कि समाज की परिभाषा भी बदलती रहती है। कहना गलत न होगा कि हाल के दार्शनिकों जेरेमी बेन्थम, जॉन स्टुअर्ट मिल, हरबर्ट स्पेन्सर इत्यादि की भी विचारधारा समाज के संबंध में बदली। ऑलपोर्ट ने तो सामाज मनोविज्ञान की पुरानी विचारधाराओं के अध्ययन उपरांत उसका अवलोकन कर नये सिद्धांत 'सुखवाद', 'अहंवाद', 'सहानुभूति' इत्यादि पेश किये। इन सिद्धांतों ने समाज में अपना पूरा अस्तित्व बनाये रखा। किन्तु जैसा कि ज्ञातव्य है कि परिवर्तनशीलता के कारण संसार में कुछ भी स्थिर नहीं है। आजकल के सामाजिक व्यवहार के संदर्भ में यह सिद्धांत लगभग अपना पूर्ण अस्तित्व खो चुके हैं। किन्तु उनके सिद्धांतों के आधार पर दो बातें सिद्ध होती हैं कि यह केवल कल्पना नहीं ठोस यथार्थ है तथा मात्र अनुमान नहीं, इससे भविष्यवाणी भी की जा सकती है। अपनी इसी विचारधारा के कारण धीरे-धीरे यह दार्शनिक विचारधारा से निकल कर मनोविज्ञान की एक शाखा के रूप में परिवर्तित होता चला गया और 19वीं शताब्दी के अंत तक समाज मनोविज्ञान के एक विषय के रूप में परिवर्तित हो गया। इस बात की पुष्टि विलियम मेकडुगल ने 'Introduction to social Psychology' नामक पुस्तक लिखकर की। तब से लेकर वर्तमान तक इसमें प्रतिदिन गहन अध्ययन के आधारगत विश्लेषण किया जा रहा है तथा इसमें नये-नये आयाम जुड़ते जा रहे हैं। उस आधार पर यह कहा जा सकता है कि समाज मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार तथा अनुभूतियों का सामाजिक परिस्थितियों में अध्ययन करने का एक विज्ञान है।

समाज मनोविज्ञानी निरंतर इस खोज में लगे रहते हैं कि व्यक्ति समाज में क्यों व्यवहार करता है, कैसे व्यवहार करता है, उसके व्यवहार में परिवर्तन

क्यों आता है। इन परिवर्तनों के पीछे कौन-कौन से वो कारण हैं जो इसे प्रभावित करते हैं। समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा समय समय पर किये गये प्रयोगों एवं अनुसंधानों के आधार पर इस के कुछ सिद्धांतों का निर्माण हुआ है। समाज मनोविज्ञान को समझने हेतु इनका समझना अनिवार्य है। दरअसल समाज में व्यक्तियों के माध्यम से जो भी व्यवहार हो रहा है। वह व्यवहार क्यों हो रहा है? इस क्यों की पुष्टि हेतु सिद्धांतों का निर्माण हुआ है जितने भी समाज मनोवैज्ञानिक हुए, उन सभी ने अपने अपने मतानुसार सिद्धांत प्रस्तुत किये हैं। कुछ सिद्धांत सभी के मिलने से सामान्य हो गये।

पुरातन दार्शनिकों एवं समाजशास्त्रियों ने मानवीय व्यवहार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर कुछ सिद्धांतों का निर्माण किया था।

- **सुखवादः** - यह सिद्धांत बताता है कि संसार में प्रत्येक व्यक्ति दुखों से अपना छुटकारा चाहता हुआ सुख की अभिलाषा रखता है। इस संबंध में डॉ. मुहम्मद सुलेमान अपनी किताब 'उच्चतर समाज मनोविज्ञान' में प्रसिद्ध समाज मनोवैज्ञानिक 'जेरेमी बेन्थम' की विचारधारा को रखते हुए कहते हैं कि "मानव के प्रत्येक व्यवहार के पीछे सुख हासिल करने तथा दुख से बचने की इच्छा सक्रिय रहती है।" (सुलेमान 02)
- **अहंवादः** - इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का सामाजिक व्यवहार उसके आन्तरिक मन में छुपी हुई सत्ता प्राप्ति की ओर अग्रसर करवाता है।
- **सहानुभूतिः** - इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार का कारण उसका अपने दायरे में आते प्रत्येक व्यक्ति के प्रति प्यार, स्नेह, अनुराग, लगाव इत्यादि के कारण होता है।

किन्तु जैसे-जैसे इस विषय में मानवीय व्यवहार का समाज के संदर्भ में गहन अध्ययन किया गया, नये प्रयोग किये गये, बहुत सी नयी बातें, नयी विचारधारायें इत्यादि ने जन्म लिया। उसी तरह से नए सिद्धांत भी बने। गहन अध्ययनशीलता, नये प्रयोग, बदलते सामाजिक समीकरणों के आधार पर यह कहना गलत न होगा कि अन्य सिद्धांत भी जन्म ले सकते हैं और कदाचित् भविष्य में भी जारी रहेंगे।

वर्तमान के कुछेक सिद्धांतों का वर्णन निम्नलिखित है।

1. जननिक सिद्धांतः -

इस सिद्धांत के अनुसार मनुष्य एवं जानवरों में कुछ मूलभूत प्रवृत्तियाँ होती हैं जिनके आधार पर वह क्रिया की अपेक्षा प्रतिक्रिया करता है। समाज में जो भी व्यवहार हो रहा है। वह सब इन प्रवृत्तियों के कारण स्वरूप ही है। इस संबंध में डॉ. मुहम्मद सुलेमान अपनी किताब 'उच्चतर समाज मनोविज्ञान' में प्रसिद्ध समाज मनोवैज्ञानिक 'विलियम मैकडूगल' की बात को रखते हैं कि "सामाजिक व्यवहार की उत्पत्ति मूल प्रवृत्तियों से होती है।" (सुलेमान 03) किन्तु उनकी उस व्याख्या को लगभग सभी समाज मनोवैज्ञानिकों ने खारिज कर दिया था।

2. अभिप्रेरणात्मक सिद्धांतः -

इस सिद्धांत के अनुसार संसार में हो रहे प्रत्येक प्रकार के व्यवहार के लिए हमारी आवश्यकताएँ एवं हमारी अभिप्रेरणाएँ जिम्मेदार हैं। कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार का व्यवहार अपनी जरूरत अथवा आवश्यकता हेतु करता है। जरूरत नहीं रहने पर अधिकांश वह सक्रिय नहीं रहता। यही हाल अभिप्रेरक के संदर्भ में भी है। अभिप्रेरक अंदरूनी व बाहरी किसी भी प्रकार के हो सकते हैं। यही अभिप्रेरक व्यक्ति के प्रत्येक व्यवहार के लिए अपना अहम रोल अदा करते हैं। कई बार स्वयं व्यक्ति भी इस प्रकार के अभिप्रेरक के अनभिज्ञ रहता है। डॉ. रामजी श्रीवास्तव अपनी किताब 'आधुनिक समाज मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

"उडवर्थ (Woodworth) ने 'अन्तर्नोद' (Drives) को मानव व्यवहार का कारण माना है। Hebb (1949), Hull (1943) आदि भी इससे सहमत हैं। इस दिशा में टोलमैन (Tollmen) तथा यंग (Young) आदि ने भी सराहनीय कार्य किये यंग 1936 ने सर्वप्रथम 'अभिप्रेरणा' शब्द का अनुप्रयोग किया। उसने यह प्रमाणित किया कि सभी अन्तर्नोदों की उत्पत्ति शारीरिक आवश्यकताओं के द्वारा नहीं होती। अभिप्रेरणा का उदय

एक मनोवैज्ञानिक प्रत्यय के रूप में हुआ है। अभिप्रेरणों की मुख्य विशेषताएँ लक्ष्योन्मुखता एवं निरंतरता है।” (श्रीवास्तव 61)

3. संज्ञानात्मक असंवादिता सिद्धांतः -

इस सिद्धांत में व्यक्ति के चिंतन प्रक्रिया पर ज़्यादा ध्यान केन्द्रित किया जाता है कि व्यक्ति व्यक्ति किस प्रकार से वातावरण को समझता है और उसकी व्याख्या करता है। इस संबंध में डॉ. मुहम्मद सुलेमान अपनी किताब ‘उच्चतर समाज मनोविज्ञान’ में कहते हैं कि “फेस्टिंगर ने मनोवृत्ति संगठन तथा परिवर्तन की व्याख्या के लिए संज्ञानात्मक असंवादिता सिद्धांत का प्रतिपादन किया, जो अभी भी सक्रियता तथा सजीव है।” (सुलेमान 04) दरअसल यह वातावरण की जानकारी को व्याख्या करने, विश्लेषण करने, याद रखने एवं प्रयोग करने का हमारा केवल एक तरीका है।

4. अधिगम सिद्धांतः -

इस सिद्धांत के अनुसार यह कहा जा सकता है कि संसार का प्रत्येक व्यक्ति या तो एक दूसरे के अनुकरण से व्यवहार करना सीखता है या फिर किसी के तैयार किये गये व्यवहार को अर्जित करता है। प्रसिद्ध मनोविज्ञानी ‘स्कनर’ ने इस संबंध में जानवरों पर अनेक प्रयोग कर इस सिद्धांत को बल दिया था। उनका यह भी मानना था कि व्यवहार को दण्ड या पुरस्कार के माध्यम से कंट्रोल में किया अथवा बदला भी जा सकता है।

5. गुणारोपण सिद्धांतः -

व्यक्तियों का सामाजिक व्यवहार दूसरों लोगों की विशेषताओं, इसमें उसके गुण व अवगुण दोनों की शामिल हो सकते हैं के आधार पर निर्भर करता है। यदि हमें कोई अच्छे व्यक्तित्व वाला व्यक्ति मिलता है तो हम उससे एक विशेष प्रकार से व्यवहार करते हैं, यदि कोई साधारण व्यक्तित्व वाला व्यक्ति मिलता है तो हम उससे एक दूसरे प्रकार से व्यवहार करते हैं। तात्पर्य यह कि व्यक्तियों की विशेषता के आधार पर हमारे व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है। दूसरों के अच्छे व बुरे व्यवहार के उत्तर में भी हमारे व्यवहार में

परिवर्तन आ जाता है। यदि कोई हमें प्यार से बोलता है अथवा कोई डाँटता है तो हम उसी के अंदाज में अपना व्यवहार, चिन्तर, भाव, विचारधारा इत्यादि निर्धारित करते हैं। इस सिद्धांत के संबंध में 'Kelley' एवं 'Heider' का भरपूर योगदान है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा समाज मनोविज्ञान के संदर्भ में किये गये अध्ययन एवं प्रयोगों के आधार पर ओर भी बहुत से सिद्धांतों का निर्माण किया गया है, जो हमें हमारे अथवा अन्य के प्रति सामाजिक व्यवहार को करने अथवा परखने में हमारी मदद करते हैं।

अब्दुल बिरिस्मल्लाह आधुनिक युग के प्रगतीशील लेखक है। जो केवल लकीर के फकीर न बन कर नये प्रयोग करने में विश्वास रखते हैं। उनका कथा-साहित्य समकालीन समाज के एक आईने के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित है। इस अध्याय में हमारा शोध उद्देश्य उनके कथा साहित्य को केवल समाज मनोवैज्ञानिक अध्ययन करना है। जैसा कि ज्ञातव्य है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके प्रत्येक कार्य का समाज पर तथा समाज की प्रत्येक घटना का मनुष्य पर असर पड़ता है तो ज़ाहिर है कि साहित्य भी सामाजिक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का प्रतिबिम्ब ही हुआ और जो भी साहित्यलेखन होता है उसका असर पाठकों पर तथा समाज पर पड़ता है। अब्दुल बिरिस्मल्लाह जी ने अपने विशाल अनुभव, गहन अध्ययनशीलता, अध्यापन एवं कल्पना के माध्यम से सामाजिक संदर्भ समकालीन समाज की जो तस्वीर प्रस्तुत की है उनमें उपन्यास एवं कहानी संग्रह के माध्यम से साहित्यिक सेवा के साथ-साथ भावी लेखकों के लिए प्रेरणा एवं मार्गदर्शन का भी कार्य किया है। सामाजिक चित्रण हेतु उन्होंने ने ग्रामीण, शहरी, विदेशी, जात-पात इत्यादि से संबंधित का विभिन्न दृष्टिकोणों से उल्लेखनीय वर्णन किया है।

1. रावी लिखता है: -

'रावी लिखता है' उपन्यास में लेखक ने एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक के सफर के अन्तराल में आए बदलाव तथा क्षेत्रीय प्रभाव के कारण एक

संस्कृति का दूसरी संस्कृति के टकराव से उत्पन्न हुए विवादों को बाखूबी प्रदर्शित किया गया है। सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के बदलाव द्वारा उत्पन्न हुई पारिवारिक समस्याओं का भी स्टीक विवरण यहाँ प्रस्तुत किया गया है। पुराने एवं नये विचारों की उलझनों तथा कड़वाहटों का विचित्र वर्णन दृष्टव्य है। भारतीय तथा विदेशी सभ्यताओं में पले-बढ़े मनुष्यों के आपसी विवादों का जिन्दादिली से वर्णन के साथ-साथ व्यस्कावस्था तथा वृद्धावस्था की मानसिकता के टकराव का भी उल्लेखनीय वर्णन विख्यात है। बदलते समाज की परिस्थितियों को, उनके टकराव को, उनमें सुधार की सम्भावनाओं को अत्यन्त सूक्ष्मता से प्रदर्शित किया है। इस प्रकार के व्यावहारिक संबंध के विषय में वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा अपनी किताब 'भारतीय समाज मुद्दे और समस्याएँ' में कहते हैं कि

“पूर्व पीढ़ी अपने बालकों के साथ वैसा ही व्यवहार करने लगती है जैसा वह बचपन में उसकी देखरेख के समय करती थी। दूसरी ओर नव्य पीढ़ी जो अब बड़ी हो चुकी है अपना भविष्य बनाने के प्रति चिंतित है। उसे जब माँ बाप से अनवरत उपदेश सुनने को मिलते रहते हैं कि ऐसा करो, ऐसा न करो तो दोनों पीढ़ियों में संघर्ष होने लगता है। समरसता समाप्त हो जाती है।” (शर्मा 141)

लेखक ने इस उपन्यास में पात्रों के माध्यम से अपनी जिन्दगी में नयापन अपनाते हुए अपने संस्कार, अपने देश की संस्कृति को बचाने हेतु सम्भावनाओं की कोशिश की है तथा बदलाव से उत्पन्न द्वन्द्वों का भी विश्लेषण किया है।

भारतीय सामाजिक परिस्थितियों के बदलाव के कारणों में से भारतीय भूगोलिक परिस्थितियों का भी अहम योगदान है। इस संबंध में डॉ. संजीव महाजन अपनी किताब 'भारतीय समाज' में कहते हैं कि “भारत के भूगोल, इसके प्राकृतिक संकुल, इसके पर्वतों एवं नदियों ने किसी अन्य देश की अपेक्षा भारत के इतिहास को कहीं अधिक मात्रा में प्रभावित किया है।” (महाजन 02) अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने इस उपन्यास में भारतीय ग्रामीण एवं नागरीय

जीवन सहित विदेशी सामाजिक परिस्थितियों के साथ-साथ भूगोलिक परिस्थितियों के संदर्भ में भी बारंबारी वर्णन किया है।

“मॉस्को का जीवन ऐसा ही है। गर्मियों भर रात में सूरज चमकता रहता है। साढ़े दस-ग्यारह के बाद ही अँधेरा होगा। खिड़कियों पर पर्दे डालकर लोग घर के भीतर अँधेरा कर लेते हैं। अजीब फिलॉसफी है। हमारे यहाँ कहा जाता है, भीतर रोशनी करो। डैडी के शब्दों में -तमसो मा ज्योतिर्गमय। यहाँ उलटा है। डैडी पता नहीं क्या कहते इसे! शायद-ज्योतिर्मा तमसो गमय। डैडी जब संस्कृत का कोई कथन बोलते तो हम हँसते थे। अम्मी कहती, “उर्दू का लफ़ज़ नहीं बोल सकते?” मगर हमें तो उर्दू से भी चिढ़ थी। हम चाहते थे, वे हमेशा अंग्रेज़ी बोला करें।” (बिस्मिल्लाह 09)

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने यहाँ भूगोलिक परिस्थितियों के संदर्भ में भारतीय व पाश्चात्य समाज, सभ्यता एवं भाषा का बहुत ही सुन्दर कलात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन किया है। उन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य सभ्यता एवं भाषा के एक दूसरे पर प्रभाव का सुन्दर वर्णन किया है। एक भारतीय परिवार विदेश में जाकर रहने लगा है। उनके बच्चों का वहाँ का जन्म है। वह उसी सभ्यता का एक हिस्सा हैं जबकि माता-पिता भारतीय सभ्यता से ओत-प्रोत हैं वह चाहते हैं कि उनके बच्चे भी भारतीय सभ्यता को अपनाये क्योंकि वही सनातन है, शाश्वत है। इसी उपन्यास में लेखक उपन्यास के एक पात्र के माध्यम से अपना विचार आगे रखते हैं कि

“मेरा अंग्रेज़ी बोलना और लड़कों की तरह कपड़े पहनना उन्हें पसंद था। हाँ, ब्रेड-बटर का नाश्ता करना उन्हें अच्छा नहीं लगता था। कहते, “अंग्रेज़ी बोलो, अंग्रेज़ी ढंग के कपड़े पहनो, छुरी-कांटे से खाओ, मगर बिलकुल अंग्रेज़ न बनो।” (बिस्मिल्लाह 11) इस प्रकार के हालात के मद्देनज़र रामधारी सिंह दिनकर जी अपनी किताब ‘संस्कृत के चार अध्याय’ में कहते हैं कि “प्रत्येक सभ्यता, प्रत्येक संस्कृति अपने आप में पूर्ण होती है। उसके सभी अंश, उसके सभी पहलू एक दूसरे पर अवलंबित और सबके सब किसी एक

केन्द्र से संलग्न होते हैं।” (दिनकर, 749) किन्तु उनके बच्चों के लिए यह बातें कोई भी मायने नहीं रखती। बल्कि वह सोचते हैं कि हमारे अभिभावक क्यों जबरदस्ती हम पर अपनी सभ्यता और संस्कृति को थोपते हैं। भाषा पर भी बच्चों द्वारा आलोचनात्मक व्यंग्य कसा गया है। इसी उपन्यास में लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह आगे कहते हैं कि

“डैडी जब संस्कृत का कोई कथन बोलते तो हम हँसते थे। संस्कृत क्या, हिन्दी का ही कोई मुश्किल-सा शब्द सुनकर हँसी आ जाती थी। -----हम चाहते थे, वे हमेशा अंग्रेजी बोला करें। यह अलग बात है कि हमें उनकी अंग्रेजी भी पसन्द नहीं थी। “ही वाज माई फादर।” यह भी कोई अंग्रेजी है। हम उन्हें सिखाते, “वाज नहीं डैडी, वाज बोला कीजिए। और फादर नहीं फादअ। ‘आर’ साइलेंट होता है।” (बिरिमल्लाह 09)

इन्हीं उदाहरणों के माध्यम से सिद्ध होता है कि प्रत्येक राज्य, देश, भाषा, सभ्यता एवं संस्कृति इत्यादि का अपना-अपना एक दायरा होता है। एक का दूसरे से संबंध होते ही टकराव अनिवार्य है चाहे वह किसी भी या किन्हीं भी स्थितियों में हो। आधुनिकता के कारण सभ्यताएँ तो फिर भी एक दूसरे से मिलन की सम्भावनाएँ बनाये रखती हैं। किन्तु संस्कृति नहीं। इस संबंध में जे.पी. सिंह अपनी किताब ‘समाजशास्त्र: अवधारणाएँ एवं सिद्धांत’ में कहते हैं कि

“सभ्यता की चीजें समाज के एक हिस्से से दूसरे हिस्से या एक देश से दूसरे देश में बिना किसी परिवर्तन के पहुँचायी जा सकती हैं। आज अमरीका का बना हुआ हवाई जहाज या कम्प्यूटर बिना किसी परिवर्तन के एक देश से दूसरे देश भेजा जा रहा है। उसी तरह से जापानी रेडियो, टी.वी., कलम, घड़ी आसानी से हर जगह पहुँच रही है। लेकिन अमरीकी या जापानी संस्कृति उसी रूप में दूसरे देशों में नहीं पहुँच रही है। जब संस्कृति एक जगह से दूसरी जगह पहुँचती है तो उसमें थोड़ा परिवर्तन आ जाता है।” (सिंह 340)

अपनी जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण लोग सदैव बेहतर करने अथवा पाने की कोशिश में लगे रहते हैं जिस कारण सभ्यताएँ विकसित होती रहती है। एक दूसरे से प्रभावित भी होती हैं। किन्तु किसी भी देश के, किसी भी समाज के लोगों के सामाजिक निर्वाह हेतु कुछ शाश्वत नियम अथवा नैतिक मूल्य होते हैं जो कभी भी नहीं बदलते। यही उनकी संस्कृति है।

यह तो ज्ञातव्य है कि 'नीम हकीम खतरा-ए-जान'। भाव यह कि अल्प जानकारी मनुष्य के लिए सदैव ही खतरनाक रही है। महाभारत में अभिमन्यु के चक्रव्यूह में फंसने से लेकर हमारे देश में गाँव के अनपढ़ लोगों के अल्प जानकारी के कारण वहम-भ्रम में फंसकर अपने जीवन को नरक बना लेने तक की बात में यह कहावत सिद्ध होती है। प्रत्यक्ष विहीन बातों को पूर्णतः विश्वास के साथ ग्रहण करना तथा उसे बढ़ावा देना भारतीय लोगों की पुरातन रीति रही है। समाज मनोविज्ञान में यह रूढ़ियुक्तियों के नाम से विख्यात हैं। इस संबंध में अरुण कुमार सिंह अपनी किताब 'समाज मनोविज्ञान की रूप-रेखा' में प्रसिद्ध समाज मनोविज्ञानी लिपमैन के माध्यम से कहते हैं कि

“रूढ़ियुक्ति से तात्पर्य विचारों एवं मनोवृत्तियों के उस संयुक्त रूप से होता है जिसके आधार पर हम किसी वस्तु, व्यक्ति, राष्ट्र आदि के बारे में एक ऐसा दृढ़ एवं स्थायी प्रतिमा बना लेते हैं जो गलत तथ्यों तथा अतार्किक चिन्तन पर आधारित होता है।” (अरुण, 201)

आधुनिकता की बहुलता के कारण इनमें कुछ कमी पाई गई है अन्यथा वृद्ध लोग तो इनमें आज भी लिप्त हैं। लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह ने इस उपन्यास के माध्यम से समाज की पुरातनता के कुछ पहलुओं को समय के साथ स्वयं में बदलाव न लाने वाले लोगों के माध्यम से बड़ी ही सटीकता से प्रस्तुत किया है।

“बच्चा जुमेरात के दिन पैदा हुआ था।

लोगों का मानना था कि, जो बच्चा जुमेरात के दिन पैदा होता है, वह ज़्यादा दिनों तक ज़िन्दा नहीं रहता।

बच्चा अरबी महीने की अठारह तारीख़ को पैदा हुआ था।

उत्तर भारत के मुसलमान अरबी महीनों के तीन, तेरह, तेईस और आठ, अठारह, अट्ठाईस तारीख़ों को नहुश यानी अशुभ मानते थे।” (बिरिम्मल्लाह 26)

तात्पर्य यह कि इस प्रकार की विभिन्न उदाहरणों समाज के विकास को विचलित कर रही थी जो समयानुसार बदलाव की ओर अग्रसर है और इस प्रकार की रचनाएँ पुरातनता को आधुनिकता की ओर मोड़ने में कुछ हद तक तो प्रासंगिक हैं ही तथा भविष्य में भी रहेंगी।

आधुनिकता ने बहुधा पुराने व बेकार आइम्बरों को तोड़ा तो है किन्तु उसके बहाव में भारतीय संस्कृति के कुछ ऐसे अनमोल सांस्कृतिक चेतना के गुण जैसे- खुले दिल से गले मिलना, जी भर कर रोना, खुल कर चिल्लाना इत्यादि थे जो अब लगभग समाप्त हो चुके हैं। यदि अनायास ही कहीं नज़र आते हैं तो आज सभ्य समाज को बोझ लगते हैं। जबकि वह बहुधा आत्मिक संतुष्टि के प्रफुल्लित साधन थे। लेखक ने ऐसे विभिन्न सांस्कृतिक गुणों को वृद्ध पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इसी उपन्यास में लेखक अब्दुल बिरिम्मल्लाह कहते हैं।

“सोचते-सोचते बहन की याद आ गई। बहन को याद करते हुए अम्मी कुछ ज़्यादा ही याद आई। जब वे नानी के यहाँ पहुँचती थीं तो किस तरह उनकी बहनों उनसे लिपटकर मिलती थी। वापसी में किस तरह वे सब रोती थीं। अम्मी भी रोती थीं। अगर यहाँ के लोग रोएँ तो? अच्छा-खासा तमाशा हो जाएगा।” (बिरिम्मल्लाह 29)

प्रत्येक सामाजिक प्राणी के लिए समाज में अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए अपना एक सामाजिक रोल, एक उत्तरदायित्व जिसे उसको बाख़ूबी निभाना होता है, मिलता है। माता-पिता, भाई-बहन, दोस्त-दुश्मन इत्यादि विभिन्न प्रकार के सामाजिक पात्र होते हैं जो स्वयं की विचारधारा के अनुरूप स्वयं

तथा अन्य हेतु व्यवहार व रोल अदा करते हैं। लेखक ने पिता, बेटी, माँ, प्रेमिका इत्यादि द्वारा निभाये गये विभिन्न प्रकार के सामाजिक रोल का बाखूबी वर्णन किया है।

विवाह भी एक सामाजिक रोल है। विवाह के संबंध में प्रसिद्ध समाज मनोविज्ञानी जे.पी. सिंह अपनी किताब 'समाजशास्त्र: अवधारणाएँ एवं सिद्धांत' में कहते हैं कि

“विभिन्न प्रकार के समाजों की तरह सरल समाजों में भी सदस्यों के बीच सहवास को विवाह द्वारा ही सामाजिक मान्यता प्राप्त होती है। सरल समाजों में एकल विवाह-प्रथा सबसे अधिक प्रचलित विवाह-प्रथा है। कुछ जन जातियों में बहु-विवाह प्रथा का भी प्रचलन है जिसके दो रूप होते हैं। पहला बहुपत्नी विवाह जिसमें एक समय में एक व्यक्ति की एक से अधिक पत्नियाँ होती हैं। दूसरा बहुपति प्रथा जिसमें एक नारी एक ही समय में कई पुरुषों की पत्नी होती हैं, जो बहुत कम पाया जाता है। उत्तरप्रदेश की खासा जाति और तामिलनाडु की टोडा जाति में बहुपति प्रथा का प्रचलन है।” (सिंह 84)

जातियों के साथ-साथ धर्मों में भी बहु विवाह की प्रथा बरकरार रही है। अब्दुल बिस्मिल्लाह के मुस्लिम होने के नाते अपने कथा साहित्य में भी इस प्रकार की प्रवृत्ति का पूर्णतः इस्तेमाल किया है। इस उपन्यास में भी वली मुहम्मद नामक पात्र का चार बार शादी का वर्णन आता है। हालाँकि चौथी शादी में बाल सफ़ेद होने तक का भी वर्णन है। किन्तु इस बात को भी नजर अन्दाज किया जाता है। पहली शादी के संबंध में “लच्छी देवी और वल्ली की बड़ी बहन ने मिलकर फते (फतेह मुहम्मद) और वली की शादी तय कर दी थी।” (बिस्मिल्लाह 53) इसी उपन्यास से दूसरी शादी के संबंध में “फतेह मुहम्मद की बीवी अब वल्ली की बीवी थी।” (बिस्मिल्लाह 57) इसी उपन्यास से तीसरी शादी के संबंध में “वल्ली उनकी बड़बड़ाहट को सुनते रहे, फिर बोले, “घबराओ नहीं, मैं उससे हरदी पानी नहीं, बाकायदा निकाह करूँगा।” (बिस्मिल्लाह 108) और अंत में इसी उपन्यास से चौथी शादी के संबंध में लेखक अब्दुल

बिस्मिल्लाह ने अपने 'रावी लिखता है' नामक उपन्यास में किया है कि "करिमिया नाम की वह गँवई बालिका जब वल्ली के साथ ब्याह कर विदा हुई तो गाँव भर की चिड़ियाँ खूब रोई।" (बिस्मिल्लाह 124) यह बात कुछ जुदा है कि इस उपन्यास में वल्ली की बीवी या तो भगवान को प्यारी हो गयी या फिर उसने तलाक दे दिया। किन्तु फिर भी यह सत्य है कि मुस्लिम धर्म में बहुपत्नी का रिवाज है।

प्रस्तुत उपन्यास 'रावी लिखता है' में लेखक ने उन सभी प्रकार की सामाजिक प्रवृत्तियों का वर्णन बहुत ही बारीकी से किया है जो एक समाज का अहम हिस्सा होती हैं। विभिन्न समाज मनोवैज्ञानिकों ने अपने मतानुसार एवं सामाजिक अनुभवों के आधार पर सामाजिक व्यवहार अथवा उसके मनोविज्ञान का जो भी अवलोकन कर अपना लेखन कार्य किया। लेखक ने अपने उपन्यास में उन सभी का वर्णन आधुनिक संदर्भ में किया जो कि हिन्दी साहित्य के उपन्यास साहित्य हेतु एक विकासत्मक प्रवृत्ति की ओर उन्मुख होता नजर आ रहा है।

2 दंतकथा: -

अब्दुल बिस्मिल्लाह का यह उपन्यास एक विशेष प्रकार की अलग पहचान का उपन्यास है। इसमें लेखक ने पक्षी जाति में से मुर्गे के माध्यम से मानव तथा पक्षियों के समाज, उनके रहन सहन, कार्य करने के तौर-तरीके, प्रकृति के प्रति उनका लगाव, उन्हें निबह करने की प्रक्रिया, उनकी भावनाओं इत्यादि का तुलनात्मक अध्ययन किया है। यद्यपि मनोविज्ञान में तो मानवीय एवं जानवरों के व्यावहार को परखने एवं आंकलने का चलन है। किन्तु सामाजिक मनोविज्ञान में यह मानवीय समाज व पशु-पक्षियों के समाज में अपनी श्रेणीबद्धता दिखाता है। किन्तु फिर भी लेखक ने बड़ी ही सुन्दरता से पक्षियों के माध्यम से मानवीय सामाजिक प्रक्रियाओं का सुन्दर वर्णन किया है। इन्होंने मानवीय समाज का एक पक्षी की भावनाओं के माध्यम से आंकलन किया है। जैसे तो गाँव और नगर मानवीय निवास का एक स्थान रहा है। किन्तु गाँव से नगर और नगर से महानगर मानवीय विकास गाथा

की एक लड़ी रही है। अरुण कुमार सिंह इस संबंध में अपनी किताब 'समान मनोविज्ञान की रूपरेखा' में कहते हैं कि

“आजकल देहात में शहरों की ओर तथा छोटे शहर से बड़े शहरों में जीवन व्यतीत करने की प्रवृत्ति काफी तीव्र हो गयी है। इसे समाजशास्त्रियों ने नगरीकरण कहा है। नगरीकरण एक ऐसी सीमाबद्ध प्रक्रिया है जो एक बिन्दु पर प्रारम्भ होकर दूसरे बिन्दु पर आकर समाप्त हो जाती है। विकसित देशों में नगरीकरण की प्रक्रिया समाप्त होने पर है परंतु विकासशील देशों में यह प्रक्रिया अभी भी जारी है। भारत जैसे देशों में अभी नगरीकरण की प्रक्रिया जारी है।” (अरुण 708)

लेखक ने आधुनिकता की तर्ज पर अपने उपन्यास के मुख्य पात्र एक पक्षी की नजर से भी गाँव और नगर में बड़ा अन्तर उनके रहने सहने तथा भावनाओं के संदर्भ में दिखाया गया है। पक्षी के दृष्टिकोण से लेखक ने शहरों एवं गाँवों के अंतर हेतु विभिन्न कसौटियों को अपने इस उपन्यास में स्थान दिया है जो विभिन्न स्तर पर इनमें अन्तर दर्शाते हुए नजर आते हैं।

“शहर और गाँव का यह फर्क है बहुत अजीब। पर है। यह फर्क मनुष्यों से लेकर कुत्तों, बिल्लियों, बकरियों और चूहों तक में देखने को मिल जाता है। अब बकरियों को ही लीजिए; गाँव की बकरियाँ दिन-भर खुली रहती हैं, बाग-सिवान में घूमती रहती हैं और शाम का अपने घर लौट आती हैं, जबकि शहर की बकरियाँ सिकड़ियों में बँधी-बँधी पागुर किया करती हैं और छूट जाने पर दूसरों के घर चली जाती हैं। गाँव की बकरियाँ महुए के पत्तों से ही तृप्त हो जाती हैं, जबकि शहर की जो हैं, वो ब्रेड-बटर खाकर भी अतृप्त रहती हैं। इस तरह फर्क तो बहुत बड़ा है। शहर के लोग आपस में तो खूब लड़ते हैं, पर शत्रु के आगे भीगी बिल्ली बन जाते हैं, जबकि गाँव-देहात के लोग ऐसे मोकों पर सारा वैर-भाव भुलाकर संगठित हो जाते हैं। वे अपने शत्रु को पहचान लेते हैं और फिर उससे जमकर लड़ते हैं।” (बिस्मिल्लाह 11)

गाँवों और शहरों के सामाजिक जीवन में इस प्रकार की अनेक विविधताएँ एक आम बात हैं। इसके अनेक कारण हैं जो उसे प्रभावित करते हैं। मसलन: अनपढ़ता, प्रतिस्पर्धा से दूरी अथवा कमी, लालच, समसामयिक मामलों से अनभिज्ञता इत्यादि। किन्तु रूढ़ियुक्तियाँ सभ्यता एवं संस्कृति में से उपजी एक ऐसी ऋणात्मक प्रवृत्ति हैं जो गाँवों एवं शहरों में समान रूप से पायी जाती है। अनपढ़ता के कारण गाँवों में इसकी तादात कुछ ज़्यादा है। इसी उपन्यास में लेखक एक अन्य उदाहरण के माध्यम से कहते हैं कि

“आँगन में एक ओर जहाँ पत्थर की पटिया बिछी थी, मुर्गे को बाकायदा लिटाया जाता। बुड्ढा अपने एक पाँव से उसके दोनों डैनों को दबाता और दूसरे पाँव से उसकी टाँगों को। फिर अपने बाएँ हाथ से उसकी चोंच को कसकर पकड़ता और किसी बच्चे को सामने बैठाकर कहता, “लो इसकी गर्दन पर झूलते इस गोश्त को पकड़ो-इस तरह तानकर।” और जब इतना हो जाता तो वह मन-ही-मन कुछ बुदबुदाता-शायद कोई मंत्र या आयत पढ़ता, ताकि यह साबित कर सके कि इस परिन्दे को मैंने भगवान की लिए, खुदा के लिए मारा है, अपने लिए नहीं - और गर्दन पर छुरी चला देता।” (बिस्मिल्लाह 18)

कहने का तात्पर्य यह कि समाज में कुछ ऐसे परम्परागत बिन्दु अथवा विचारधाराएँ रही हैं जो कहने को तो हमारे समाज की सभ्यता एवं संस्कृति का एक अहम हिस्सा रहे हैं। किन्तु विभिन्न समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये सामाजिक शोधकार्यों एवं समयानुसार बदलते वातावरण के अनुसार बदलते सामाजिक परिपेक्ष में उन्होंने कुछ ऐसी ही सामाजिक प्रवृत्तियों को पाखण्ड एवं रूढ़ियुक्तियों के नाम से विख्यात किया और समाज को इसके प्रति सुचेत रहने के साथ-साथ इससे बचने हेतु प्रयास को सर्वप्रथम रखा। उनके विचारानुसार ऐसी धारणाएँ सामाजिक पतन के साथ-साथ भावी पीढ़ियों के लिए भी खतरा हैं। रूढ़ियुक्तियों के संबंध में प्रसिद्ध समाज मनोविज्ञानी ‘लिपमैन’ के कथन को अरूण कुमार सिंह अपनी किताब ‘समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा’ में कहते हैं कि “रूढ़ियुक्ति से तात्पर्य विचारों एवं मनोवृत्तियों के उस संयुक्त रूप

से होता है जिसके आधार पर हम किसी वस्तु, व्यक्ति, राष्ट्र आदि के बारे में एक ऐसा दृढ़ एवं स्थायी प्रतिमा बना लेते हैं जो गलत तथ्यों तथा अताकिक चिन्तन पर आधारित होता है।” (सिंह 201)

अब्दुल बिस्मिल्लाह के इस उपन्यास में समाज मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों पर कई बार कारवाई होती दिखाई देती है। इस सिद्धांत के अनुसार हमारा सामाजिक व्यवहार दूसरों का हमारे प्रति किये गये अच्छे या बुरे व्यवहार पर आधारित होता है। यदि हमारे प्रति किसी का व्यवहार बुरा होता है तो उस व्यक्ति के प्रति हमारी विचारधारा ही बदल जाती है। यह विचारधारा पुरातन सम्प्रदाय ‘प्रकार्यवाद’ के अंतर्गत निहित है। इसके अग्रदूत ‘विलियम जेम्स’ ने इस संबंध में अपने विचार रखे। उनके मतानुसार प्रत्येक मानव में आत्मन् (व्यक्तित्व) होता है। उसके सामाजिक प्रक्रिया के दौरान उसमें बदलाव होते रहते हैं। अरुण कुमार सिंह आगे कहते हैं कि

“सांसारिक आत्मन् में व्यक्ति का शरीर तथा उसके व्यक्तिगत धरोहर जैसे—धन-धौलत, रुपया, घर, कपड़ा, फर्निचर आदि को रखा जाता है। सामाजिक आत्मन् से तात्पर्य वैसे आत्मन् से होता है जिसका निर्माण दूसरों द्वारा व्यक्ति की स्थापित पहचान पर आधारित होता है। एक व्यक्ति का आत्मन् माँ, पिता, बहन, भाई, पत्नी आदि के लिए अलग-अलग होता है। इसका मतलब यह हुआ कि जिस सीमा तक व्यक्ति दूसरों के साथ अन्तःक्रिया करता है, वह विभिन्न सामाजिक आत्मन् विकसित कर लेता है। इसका स्पष्ट मतलब यह हुआ कि सामाजिक आत्मन् द्वारा व्यक्ति के विभिन्न पहलुओं की अभिव्यक्ति होती है।” (अरुण 123)

तात्पर्य यह कि प्रति व्यक्ति की आत्मन् अथवा उसका व्यक्तित्व दूसरे व्यक्ति के व्यवहार की क्रिया के साथ प्रतिक्रियात्मक दृष्टिकोण रखता है। अच्छे एवं बुरे व्यवहार के साथ व्यवहार करने की उसकी क्रिया में बदलाव आता है। इसी सिद्धांत के साथ मेल करती एक और उदाहरण अब्दुल बिस्मिल्लाह अपने ‘दंतकथा’ उपन्यास में प्रस्तुत करते हैं कि

“मनुष्यों का यह समाज, जो अपने को सभ्य, बुद्धिमान, विकासशील और न जाने क्या-क्या कहता है, मेरे देखने में आया कि असल में यह शुद्ध रूप से उपयोगितावादी, लाभवादी, और स्वार्थी है। यह अपने आगे संसार के सभी जीवों को तुच्छ समझता है और मानकर चलता है कि वे समस्त प्राणी इसकी सेवा और इसकी भूख शांत करता है। गधों पर बोझ लादता है, बैलों को खेत में जोतता है और बकरियों, हिरनों, खरगोशों तथा मुर्गे-मुर्गियों को मारकर खा जाता है। मैंने किसी ऐसे मनुष्य को नहीं देखा जो शेर, बाघ या चीते की पीठ पर बोझ लादता हो अथवा उसे मारकर खा जाता हो।” (बिरिमल्लाह 20)

इस किस्से में एक मुर्गे की जुबानी मनुष्य के दोनों पक्षों के व्यवहार का वर्णन किया है। जिस चीज पर उसका जोर चलता है उसके प्रति उसका व्यवहार भिन्न है, जिस पर उसका जोर नहीं चलता उसके प्रति उसके व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है।

समाज में मनुष्य ‘सुखवाद’ के सिद्धांत के अनुसार अपने मन को शांत रखना चाहता है। वह अपने आप को दुखों से दूर रखना चाहता है। यह विचारधारा दार्शनिक विचारधारा थी जो ज्यादा लम्बा समय नहीं चल पाई थी। किन्तु बाद में मनोवैज्ञानिक विचारधारा ने मन को शांत करने अनेक ऐसी युक्तियों का निर्माण अथवा खोज हुई है। जिनके इस्तेमाल से व्यक्ति अपने आप को शांत रख सकता है। इन्हें रक्षात्मक प्रतिक्रियाएँ कहते हैं। इन्में विभिन्न प्रकार की छोटी छोटी विधियाँ होती हैं जिनके इस्तेमाल से मनुष्य स्वयं को शांत रखने की कोशिश करता है। इनमें से एक है प्रक्षेपण (Projection)। इस रक्षात्मक प्रतिक्रिया में व्यक्ति अपनी गलतियाँ, कमजोरियाँ, डर, चिन्ता इत्यादि को छिपाने हेतु दूसरों में गलतियाँ या दूसरों के नुकसान के विषय के बारे में बातें करने लग जाता है। असल में वह अपने डर, चिन्ता, नुकसान को भुलाना चाहता है। लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह ने इसी उपन्यास में रक्षात्मक प्रवृत्ति का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है कि

“जिस तरह मेरी माँ को जिबह किया गया, अगर उसी तरह लोग किसी शेर को पटककर, उसकी टाँगों को अपने पाँवों से दबाकर और उसकी गर्दन के मांस को अपने बच्चों से पकड़वाकर उसकी खास रग पर छुरी चलाता तो मुझे बेहद अच्छा लगता। तब शायद मैं माँ की मृत्यु को एक सहज मृत्यु के रूप में महसूस करता और उस घटना को भूल जाता।”
(बिस्मिल्लाह 20)

इस उपन्यास में लेखक ने सामाजिक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं एवं उसके मनोविज्ञान को बड़ी ही सुन्दरता से एक पक्षी की जुबानी आत्मकथात्मक विधि से प्रस्तुत किया है। लेखक ने अप्रत्यक्ष रूप से मानव जाति द्वारा पशु जाति पर सदियों से किये जा रहे अत्याचारों को बड़े ही सुन्दरता से प्रस्तुत किया है। लेखक ने इसके यथार्थ चित्रण से मानव जाति पर अप्रत्यक्ष रूप से बड़ी ही करारी चोट की है कि वह अपनी बेकार पड़ी परम्परागत विचारधाराओं को त्यागकर सर्व कल्याण में अपना ध्यान लगाये। इसके साथ ही लेखक ने पशुओं के प्रति बर्बता के माध्यम से मनुष्य के अर्धचेतन एवं अचेतन मन में छिपे पशुता जैसे व्यवहार को भी बाहर निकालने की कोशिश की है। यहाँ पर एक अन्य बात अप्रत्यक्ष रूप से निकलकर बाहर आ रही है कि जैसा भी सामाजिक वातावरण होगा व्यक्ति के विचार एवं उसका व्यवहार वैसा ही रहेगा। यदि किसी भी व्यक्ति एवं प्राणी का व्यवहार अथवा विचार बदलने हैं तो उसका वातावरण बदलें। विचार एवं व्यवहार तो स्वयं ही बदल जाएंगे।

3. झीनी-झीनी बीनी चदरिया: -

इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने विभिन्न ऐसे सामाजिक मुद्दे उठाये हैं जो लेखक ने स्वयं अपने उपर सहन किए हैं। साथ ही साथ समाज में चल रहे अथवा पल बड़ रहे धर्म के मुद्दे को भी बड़ी सुन्दरता एवं स्टीकता से उठाया है। हिन्दू-मुस्लिम की झगड़ों एवं उन से संबंधित लोगों के मन में पड़ी हुई कड़वाहट को बड़ी निष्पक्षता से प्रस्तुत किया है। लेखक के कथा साहित्य में समाज के उन सभी पक्षों का विवरण हमें प्राप्त होता है जो कि एक जन साधारण के समक्ष घटित होता आया है। इस उपन्यास में

अमीरी-गरीबी, नौकर-साहूकार, पैसा-दरिद्रता, धर्म-अधर्म जैसे विभिन्न बिन्दुओं पर लेखक ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर बड़ी ही सुन्दरता एवं स्टीकता से वर्णन किया है। धर्म-जाति एवं सत्ता के आधार पर जितने भी प्रकार से समाजिक घटनाएँ घटित हो सकती हैं लेखक ने उन सभी पर अपनी कलम चलाई है।

धर्म के आधार पर लेखक ने अपने प्रत्यक्ष अनुभवों को इस उपन्यास में उतारा है। वह जिस प्रकार के समाज में रहे। उन्होंने जैसा महसूस किया। उसके प्रति उनके मन में जिस भी प्रकार की प्रतिक्रियाएँ पैदा हुई। स्वयं का उसके अनुसार एवं उस वातावरण का अपने अनुसार ढालने हेतु जो भी उन्होंने कार्य प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से किये, वह सभी इस उपन्यास की घटनाओं से परिलक्षित है।

समाज में फैली विभिन्न प्रकार की कुरीतियों को उन्होंने निष्पक्ष तरीके से अपनी लेखनी के माध्यम से उकेरा। अमीरी गरीबी व धनवान मजदूरी के संबंध में वह कहते हैं कि

“एक समाज दुनिया का है। एक समाज भारत का है। एक समाज हिन्दुओं का है। एक समाज मुसलमानों का है। और एक समाज बनारस के जुलाहों का है। यह समाज कई अर्थों में दुनिया के हर समाज से अलग है। इस समाज में कई खण्ड हैं। पाँचों हैं, चौदहों हैं, बाइसी और बावनो हैं। अब एक नयी बाइसी भी बन गयी है। हर खण्ड का अपना सरदार है, अपना महतो है। लेकिन पाँचों का सरदार सबसे बड़ा माना जाता है। चौदहों, बाइसी या बावनो का जब सरदार चुना जाता है तो उसके सिर पर पगड़ी पाँचों का सरदार ही रखता है। लेकिन पाँचों का सरदार प्रायः वंशगत होता है। और वह खुद अपने सिर पर पगड़ी रखता है। यही स्थिति महतो की भी है। फिर यहाँ कुछ लोग बनरसिया हैं, कुछ लोग मऊवाले हैं। मऊवाले वे हैं जो आजमगढ़ जिले के मऊनाथभंजन से आकर बस गये हैं। पढ़े-लिखे लड़के उन्हें ‘एम गुप’ कहते हैं। जवाब में इधर के पढ़े-लिखे लड़के इन्हें ‘बी गुप’ कहते हैं।

‘एम गुप’ और ‘बी गुप’ में नॉक-झोंक चलती रहती है।” (बिरिमल्लाह 10)

लेखक ने उपन्यास के इस प्रसंग में बहुत ही सुन्दर तरीके से समाज के छोटे से हिस्से में बसे हुए लोगों के आपसी सहूलियत के अनुसार बनाए छोटे-छोटे प्रधान व उनकी रस्में रिवाजों एवं नियमों इत्यादि का बहुत ही सुन्दर तरीके से वर्णन किया है।

रोज़ाना की बदलती दिनचर्या, तकनीकि एवं मानवीय विचारधारा से समाज भी अछूता नहीं रहा है। पल-पल बदलते हालात, लोगों की सोच से समाज में विभिन्नताओं का बाज़ार गर्म है। अपने इस उपन्यास में वह इस बदलते हालातों के संबंध में कहते हैं कि

“मतीन दौड़कर डाक्टर अंसारी के यहाँ पहुँचता है और दवाई ले आता है।

बिरादरी में अब डाक्टर-वकील सब हो गये हैं। कॉलेज अलग, अस्पताल अलग। बैंक अलग, अखबार अलग। पुराने ज़माने में कोई कबीर नाम का कवि हुआ था इस बिरादरी में तो इस ज़माने में नज़ीर बनारसी नाम के शायर भी हैं, जो अब हज भी कर आये हैं। बुनकर मार्केट अलग है और बुनकर कालोनी अलग। बुनकरों के लिए एक स्पेशल सिनेमा हाल भी है, यमुना टाकीज़। बी.ए., एम.ए., तो न जाने कितने हो गये बिरादरी में।” (बिरिमल्लाह 12)

लेखक ने यहाँ पर यह दिखाने की कोशिश की है कि जैसे ही लोग काम में तल्लीन होते हैं, तरक्की करते हैं तो अपनी सुविधा के अनुसार सारे साधन जुटा लेते हैं। बुनकरों ने अपनी मेहनत से अपनी सामाजिक सुख सुविधाओं के अनुसार अपना सारा प्रबंध कर लिया।

सामाजिक बदलाव के साथ ही लेखक ने उसके असर को मानवीय व्यवहार पर भी दिखाने की चेष्टा की है। लेखक ने ‘मतीन’ नामक पात्र के माध्यम से समाज में रहने, खतरा मोल लेने व अपना अस्तित्व कायम रखने

हेतु अप्रत्यक्ष रूप से बताने का बहुत ही सुन्दर प्रयास किया है। इसी उपन्यास में लेखक प्रगतिशील एवं विकासशील प्रवृत्ति के आधार पर आगे कहते हैं कि

“मतीन खास पढ़ा-लिखा नहीं है तो क्या हुआ, समझदार है। युवा है। तरक्की करने का ज़न्वा है उसमें। इसीलिए वह निडर है। एक दिन वह शहर उत्तरी के एम.एल.ए. अल्ताफ़ुर्हमान अंसारी साहब के यहाँ गया था। वहाँ उसे मालूम हुआ कि सरकार ने तो बुनकरों के लिए काफी सहूलियतें दे रखी हैं। उनके लिए शेयर कैपिटल, आर.बी.आई. है। लोन लेकर वे अपना काम ज्यादा बढ़िया ढंग से कर सकते हैं। कई लोग मिलकर एक कोऑपरेटिव सोसाइटी बना सकते हैं जिनके ज़रिये लोन भी ले सकते हैं और अपना माल सरकार को तथा बाहर के मुल्कों को अच्छे दामों में बेच सकते हैं। तब से वह इसी फिराक में है कि किसी दिन रथयात्रा जाकर बैंक में पता लगावे कि किस तरह उसे लोन का रुपया मिल सकता है। मगर फुर्सत ही नहीं मिलती।” (बिरिमल्लाह 13)

इस बात से लेखक ने यह बताने की कोशिश की है कि यदि व्यक्ति थोड़ी सी इच्छाशक्ति से हिम्मत, रिस्क इत्यादि लेने की थोड़ी सी कोशिश भी करता है तो उसे समाज में एक विशेष स्थान प्राप्त होता है। वह समाज से बहुत कुछ प्राप्त कर लेता है और समाज का भी अप्रत्यक्ष रूप से भला होने के साथ-साथ समाज विकास की ओर अग्रसर होता है। लेखक ने अहंवाद सिद्धांत को बड़ी ही संजीदगी से यहां पर प्रस्तुत किया।

इस प्रकार की इच्छा लिए हुए कार्य करने वाले व्यक्ति एक प्रकार से सामाजिक अभिप्रेरक के कारण ही कार्य करने में संलग्न रहते हैं। ऐसे बहुत से कारक होते हैं जिनसे व्यक्ति सामाजिक कार्य करने को आतुर रहता है। अरुण कुमार सिंह अपनी किताब ‘समाज मनोविज्ञान की रूप रेखा के संबंध में कहते हैं कि

“ऐसे अनेक कारकों में प्रेरणा एक महत्त्वपूर्ण कारक है। प्रेरक से तात्पर्य एक विशेष आन्तरिक कारक से होता है जो व्यक्ति को कार्य प्रारम्भ करने तथा उसे लक्ष्य पर पहुँचाने तक क्रियाशील बनाये रखने के लिए निर्देशित

करता है। सचमुच में प्रेरणा प्राणी का एक मनः शारीरिक अवस्था होती है जिसकी उत्पत्ति किसी तरह का अभाव या प्राणी के भीतर होने वाले रासायनिक एवं भौतिक परिवर्तनों के फलस्वरूप होती है। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप प्राणी शारीरिक एवं मानसिक असंतुलन का अनुभव करता है और इसकी क्रियाएं लक्ष्य की ओर निर्देशित हो जाती है।” (अरुण 82)

यही बात लेखक ने अपने उपन्यास में ‘मतीन’ नामक पात्र के माध्यम से बताने की कोशिश की है कि उसके आन्तरिक मन में अपने बुनकर भाईयों हेतु कुछ करने की एक लालसा है और यही लालसा उसके लिए एक प्रेरक का कार्य करती है जो उसे कुछ नया करने हेतु रिस्क लेने को आतुर बनाये हुए है।

वैसे तो समाज में रह रहे सभी प्राणियों की यह एक परम्परा ही बनी हुई है कि वह प्रतिक्षण एक दुसरे के संपर्क में रहकर, एक दूसरे के सहयोग से वह सभी कार्य करते रहते हैं जो उन्हें समाज में उनका अस्तित्व बनाये रखने के लिए अनिवार्य है। सारे सामाजिक व्यक्ति एक-दूसरे के किये कार्यों से सीखते हैं। इस प्रकार की सारी प्रक्रिया को सामाजीकरण कहते हैं। विभिन्न विद्वानों ने इस संबंध में अपने-अपने विचार रखे हैं। अरुण कुमार सिंह अपनी किताब ‘समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा’ में कहते हैं कि

“जन्म के बाद तुरंत बाद मानव शिशु न सामाजिक होता है और न ही असामाजिक। उस समय वह केवल कुछ जैविक गुणों वाला एक जीवित प्राणी होता है। धीरे-धीरे वह समाज की विशेष संस्कृति में पलते हुए सामाजिक प्राणी बन जाता है। वह अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने में समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ अन्तर्क्रिया करता है, जिससे उसमें नये नये अनुभवों की प्राप्ति होती है इन अनुभवों के फलस्वरूप बच्चा सामाजिक, परम्पराओं, नियमों एवं रूढ़ियों के अनुसार व्यवहार करना सीख लेता है। समाज के नियमों को सीखने तथा उसके अनुसार व्यवहार करने की इस प्रक्रिया को सामाजीकरण कहा जाता है।” (अरुण

कहने का तात्पर्य यह कि समाजीकरण तो समाज में रहने की एक कला है यदि आप समाज में अपना एक अस्तित्व बनाये रखना चाहते हैं तो आप के लिए इस प्रक्रिया का अंग होना अनिवार्य है। इसमें बहुत से ऐसे नियम हैं जो हमारे व समाज की आपसी प्रक्रिया में संतुलन बनाए रखने में मदद करते हैं। 'अनुपालन का नियम', 'पुनर्बलन का नियम', 'संचरण का नियम', 'आत्म-मूल्यांकन का नियम', 'मौखिक निर्देशन का नियम' इत्यादि। इनमें से जैसे-जैसे नियमों का पालन होता रहता है। उसी प्रकार समाज की प्रक्रिया में सुधार आता जाता है। इस उपन्यास में लेखक ने पुनर्बलन के नियम की बहुत ही सुन्दर उदाहरण पेश की है।

“जाड़े के दिन हैं न, इसलिए बरात दिनै-दिन की है। बारिश-बुन्नी भी है। पता नहीं कब मौसम खराब हो जाय? वैसे भी बिरादरी के बियाह में कोई लफड़ा नहीं है। न बाजा न गाजा। बारतियों को खाना खिलाना भी जरूरी नहीं है। जाड़ा है तो चाय, और गर्मी है तो शरबत से ही काम चल सकता है। पाँच बर्तनों से ज़्यादा दहेज नहीं। न ले सकते हैं, न दे सकते हैं। वरना सरदार-महतो बिरादरी से बाहर कर देंगे। साढ़े बत्तीस रुपये से ज़्यादा महर नहीं बाँध सकते। एकदम शरई उसूल!”
(बिरि-मल्लाह 86)

इस प्रकार के नियम में सामाजिक भलाई हित दो प्रकार से कार्य किये जाते हैं। एक तो इनाम का प्रलोभन देकर और दूसरा दण्ड का प्रावधान रख कर। लोग या तो इनाम के लालच में आकर अच्छा कार्य करते हैं या फिर दण्ड के डर से गलत कार्य करना छोड़ देते हैं। उपर्युक्त उपन्यास के इस हिस्से से यह स्पष्ट है कि सरदार-महतो के डर के कारण व बिरादरी से बाहर होने के डर से लोग शादी-ब्याह में किसी भी प्रकार के लफड़े से बचने हेतु अपनी तयसीमा में रहते हैं। जिससे उन जैसे लोगों के समाज में यह एक बहुत ही अच्छी परम्परा के रूप में चलने वाला साक्ष्य बन कर उभरेगा। जिससे बुनकर समाज जैसे गरीब लोगों के लिए यह एक वरदान ही साबित होगा ताकि वह लोग भी शादी-विवाह जैसे सामाजिक कार्यक्रम अन्य लोगों की भाँति कर सकें जिसमें

किसी भी प्रकार की कोई टिप्पणी न हो। यदि समाज में ऐसे नियम न हो तो अमीर लोग अपनी मन मर्जी करते रहें जिससे गरीब लोगों को अपने कार्य करने में दिक्कत हो। किन्तु समाज में विभिन्न अकांक्षाओं एवं बुद्धि वाले लोग हैं। यदि कोई केवल अपने लिए ही समाज में जीने को जिन्दगी कहता है तो बहुत से ऐसे लोग भी हैं जो केवल दूसरों की भलाई के लिए कार्य करने को ही अपने जीवन का दायित्व समझते हैं और किसी भी सामाजिक टिप्पणी को दरकिनार करते हुए अपने कार्यों में संलग्न रहते हैं।

हमारे वतन में भी ऐसी विभिन्न घटनाएँ चाहे वह कश्मीर में हो रही घुसपैठ अथवा गोलीबारी हो, चाहे वह मुम्बई का सीरीयल बम्ब बलास्ट हो, चाहे वह बद्दीनाथ में भूस्खलन हो, चाहे वह बिहार में सूखा पीड़ित हो, चाहे वह नदियों में आई बाढ़ हो, चाहे वह सड़क अथवा रेल पर बने नवनिर्मित पुल का गिरना हो, चाहे वह गुजरात में आए तीव्र गति के भूकंप की घटना हो, चाहे वह पंजाब में आए नशे की बाढ़ हो, चाहे वह किसी की छोटी सी लापरवाही से हुई भयंकर रेल दुर्घटना हो, चाहे वह भ्रष्टाचार की आड़ में लुटी हुई गरीबों की कमाई हो, चाहे वह देश में बढ़ रही बेरोजगारी हो, चाहे वह किसानों की आत्महत्याएँ हो, चाहे वह राष्ट्रीय स्तर के करोड़ों के घपले हों, चाहे वह शिक्षा का गिरता हुआ स्तर हो, चाहे वह प्रदूषण का बढ़ता हुआ स्तर हो, चाहे वह सूरत में फेली भयंकर प्लेग जैसी व अन्य बीमारियाँ हों, चाहे वह चुनावों की आड़ में गरीबों के पैसे से सत्ता पर काबिज मुख्तार नेताओं का शासन हो, चाहे वह लोगों द्वारा अपनी ही सरकार से अपने हक की लड़ाई के लिए सड़कों पर रोज धरने प्रदर्शन हों, चाहे वह देश में लड़कियाँ अथवा स्त्री जाति असुरक्षित हों, चाहे वह पूरे देश में लगभग एक चौथाई जनता गरीबी रेखा के नीचे की घटना हो, चाहे हमारी सोच से भी परे बढ़ता हुआ धर्म के नाम का पाखंड हो, किन्तु जो समाज की गतिशीलता का चक्र है। वह सदा ही चलता रहेगा। अब यदि चाहे किसी भी व्यक्ति के दिमाग में यह बात आए कि यदि मैं न रहा तो अमुक कार्य रुक जाएगा तो यह केवल उसका भ्रम है। यही बात लेखक ने अपने इस उपन्यास के इस भाग के माध्यम से समझाने व कहने की कोशिश की है।

भारतीय समाज के धर्म एक ऐसा पहलू है जिसके बिना भारतीय मानस समाज की कल्पना से भी डरता है। भारतीय संस्कृति की बात करें तो कुछ हद तक हमें इसे सही भी मान सकते हैं। क्योंकि हमारे पूर्वजों ने ही इसकी नींव हमारे दिल-दिमाग में रखी है; एक प्रकार से ऐसा कहें कि हमारे खून में ही रची हुई है और परम्परागत तरीके से सदियों से चली आ रही है। इस बात को यदि सुव्यवस्थित विधि से रखें तो इस बारे में समाज मनोविज्ञानी भण्डारी चंद्रराज अपनी किताब 'समाज विज्ञान' में कहते हैं कि

“समाज में ऐसे धर्म का अविष्कार हो जो अधिक से अधिक प्रमाणिक हो। जिसका आधार किसी अप्रत्यक्ष और अगोचर कल्पना पर नहीं प्रत्युत सत्य पर हो। यह धर्म श्रेय और प्रेय गुणों से युक्त तथा शुद्ध श्रद्धा और शुद्ध बुद्धि से ओतप्रोत हो। अच्छा हो यदि इसका प्रधान लक्ष्य सदाचार और इसका मुख्य देवता मानव माना जाय। इससे अधिक सौभाग्य की बात मनुष्य जाति के लिए दूसरी हो ही नहीं सकती कि वह स्वाभाविक रूप से सदाचार की उपासक हो जाय और मनुष्य का मनुष्य के प्रति कर्तव्य है उसे भली भाँति समझ ले। धर्म का इससे दूसरा सुन्दर आदर्श नहीं हो सकता।” (चंद्रराज 299)

धर्म की इस प्रकार की परिभाषा यह सिद्ध करती है कि यह समाज का एक वह मजबूत आधार है जो अपने अंदर केवल और केवल मानव व समाज कल्याण ही लिए हुए है। किन्तु मानव जाति की किसी भी प्रकार व माध्यम से एक दूसरे से आगे निकलने की बीमार मानसिकता की दौड़ ने इसमें कट्टरता ला दी है और वह सदैव ही मानव जाति व समाज के लिए हानिकारक रही है। इससे धर्म में पाखण्डवाद का जन्म हुआ और पाखण्डवाद से मानव जाति का सर्वनाश।

लेखक ने इसी प्रकार की कट्टरता से प्रभावित वातावरण का अपने इस उपन्यास में बहुत ही सुन्दरता से वर्णन किया है। हिन्दू-मुस्लिम लोगों की अपने-अपने धर्म की आड़ में सामाजिक वातावरण का सर्वनाश करने के प्रसंग को लेखक ने कुछ इस प्रकार दर्शाया है।

“दुर्गापूजा!

आगे-आगे दुर्गा की प्रतिमा और पीछे-पीछे शोर मचाती भीड़। एक ऐसा शोर जिसका अध्यात्म से कोई मतलब नहीं। ठीक इसी तरह का शोर उस वक्त भी होता है जब ताज़िए का जूलूस निकलता है। धर्म दोनों ही अवसरों पर सड़कछाप हो जाता है। वह सरेआम सिर के बल खड़ा हो जाता है। लेकिन फिर भी लोग कहते हैं यह सत्य है और सिर्फ यही सत्य है। इस सत्य के लिए लोग कट मरते हैं!

दुर्गा की प्रतिमा जैसे ही अवांछित गली में प्रवेश करती है, एक छत से ईंट का एक नन्हा-सा इस तरफ फेंका जाता है कि वह ठीक दुर्गा के सिर पर गिरता है और शोर मचाती भीड़ का ध्यान भंग हो जाता है। सबसे आगे चल रहा खद्दरधारी, ‘दादा’ नाम से मशहूर-तड़ित बनर्जी भीड़ को एक संकेत करता है और भीड़ रुक जाती है। भीड़ में से दो मुच्छड़धारी लोग बाहर निकलते हैं और भद्दी-भद्दी गालियों से पूरी गली गूँज उठती है।

अचानक छत से बारिश होने लगती है। पत्थरों, ईंट के टुकड़ों और खाली बोतलों की बारिश! फिर पिसा हुआ मिर्च और तेज़ाब! भगदड़ मच जाती है।

थोड़ी ही देर में जवाबी कारवाई शुरू हो जाती है। छुरे निकल आते हैं। बन्दूकें निकल आती हैं। कई घरों में, कई दुकानों में आग लगा दी जाती है। सड़क पर जो भी दिखाई देता है, मारा डाला जाता है। खून-ही-खून! आग-ही-आग! मनुष्य के भीतर छिपा हुआ असुर बाहर आ जाता है।

काफी देर बाद पुलिस आती है, जैसा कि उसका सिद्धांत है। मौके पर पहुँचकर थोड़ी देर तक पुलिस खामोश खड़ी रहती है। फिर हथेली पर खैनी ठोंकती हुई कहती है, ‘ठीक है, और मारो सालों को!’ और खुद भी उस नेक काम में लग जाती है।

पूरा शहर फनफना उठता है। इतना कह देना ही पर्याप्त है कि हिन्दुओं और मुसलमानों में झगड़ा हो गया है। इस मुल्क में अब हिन्दुओं और मुसलमानों के झगड़े का सीधा अर्थ है-दंगा!” (बिरिमल्लाह 162)

दूसरे शब्दों में धर्म के नाम पर हो रहे पाखंड एवं दंगों की एक छोटी सी घटना के माध्यम से भी लेखक यही कहने की कोशिश कर रहे हैं कि इससे समाज एवं मानवीय सर्वनाश निश्चित है।

इस उपन्यास में लेखक ने समाज के उन सभी प्रकार की प्रवृत्तियों को अपने पात्रों के माध्यम से उजागर करने की कोशिश की है जो समाज में अपनी एक विशेष भूमिका अदा करती हैं। यह प्रवृत्तियाँ यह दिखाने के लिए काफी हैं कि आधुनिक युग में हमारा समाज किस ओर जा रहा है। समाज की यह दशा बनाने वाली मानवीय प्रवृत्तियों की स्वार्थ भरी आकांक्षाएँ भी यह पोल खोलने के लिए काफी है कि मानव के इस अवगुण ने समाज को किस ओर धकेल दिया है जिसे वापिस लाने में पता नहीं कितनी पीढ़ियों को कुर्बानी देनी पड़ेगी?

4. अपवित्र आख्यानः -

मुख्य रूप से इस उपन्यास में लेखक ने केवल अपने समुदाय मुस्लिम समाज के आपसी चल रहे भीतरी व बाहरी अंतर्विरोधों की घटनाओं को चित्रण करने की कोशिश की है। इसकी प्रस्तुति में लेखक ने विभिन्न सामाजिक पहलुओं का बड़ी सी सुन्दरता व स्टीकता से वर्णन किया है।

समाज में रहते लोगों के बीच कुछ ऐसे असामाजिक तत्व भी पाये जाते हैं जो समाज यह समझते हैं कि समाज के चलते कार्यों में विघन डालना ही उनका कार्य है क्योंकि उनकी मानसिकता ही इस प्रकार ही हो चुकी है कि उन्हें केवल अपना स्वार्थ ही सिद्ध करने में अच्छाई महसूस होती है। उनके दिमाग में अपने लोगों व अपने धर्म के प्रति जो कट्टरता है वह उससे छूट नहीं पाते है। उन्हें अन्य लोग व धर्म असामाजिकता का सूचक लगते हैं। जिससे समाज में अराजकता फैलने की बीज सदैव ही बोया जाता रहा है।

“छोटा पाकिस्तान! शहर के लोग उस इलाके को इसी नाम से सम्बोधित करते थे। हिन्दू रिक्शेवाले रात के वक्त उस तरफ जाने से डरते थे-कहीं काटकर लोग अपनी दुकान में न टाँग ले! लगभग सौ कदम आगे चलकर बाईं ओर मुड़ने पर हिन्दुओं का मुहल्ला था उसके बाद फिर एक कब्रिस्तान- ख़ूब बड़ा सा। जमील को यह जगह बहुत अच्छी लगती थी, इसलिए वहाँ धीरे-धीरे चला करता था-कब्रिस्तान की शान्ति का लुत्फ उठाते हुए। कब्रिस्तान के बाद फिर उसी तरह की दुकानें नजर आती थी। मशीनों पर बड़ी बड़ी कैंचियाँ रखे दर्जी, उस्तरे घुमाते हज्जाम, छतों से गोश्त के टुकड़े लटकाए कसाई-यह सब देखकर कोई भी डर सकता था। जमील भी डरा। अच्छा ही हुआ कि वह यासमीन के साथ रिक्शे पर बैठकर नहीं आया, वरना.....वरना क्या ये लोग उसे मार डालते ? हिन्दू समझकर ? फिर ये क्या करते ? आराम से सब्जी तरकारी खरीदते हुए घर चले जाते ?” (बिरिमल्लाह 14)

इस प्रसंग में इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि लोगों के मन में हिन्दुस्तान व पाकिस्तान के नाम को जो बीज तकरीबन आज से 70 साल पहले बोया जा चुका था। वह आज पुरा एक बड़ा वृक्ष बन चुका है। उसे काटना आज बहुत मुश्किल हो चुका है। वह दिन-प्रतिदिन अपनी शाखाएँ फैलाता जा रहा है। इकट्ठे रहते हुए भी लोग आज इन दो प्रकार के ‘हिन्दू व मुस्लिम’ नामक समाज में विभाजित हो चुका है।

रामधारी सिंह दिनकर जी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ‘संस्कृति के चार अध्याय’ में इस संबंध में बहुत ही स्पष्टता से हिन्दू-मुस्लिम धर्म के बारे में लिखते हैं। उन्होंने विभिन्न विद्वानों की विभिन्न मुद्दों पर विभिन्न विचारधाराओं को इसमें विशेष स्थान दिया है। हिन्दू मुस्लिम के आपसी धार्मिक झगड़े के संबंध में उन्होंने ‘स्वर्गीय मानवेन्द्रनाथ राय’ जी की विचारधारा को उठाते हुए कहा कि “संसार की कोई भी सभ्य जाति इस्लाम के इतिहास से उतनी अपरिचित नहीं है जितने हिन्दू हैं और संसार की कोई भी जाति इस्लाम को उतनी घृणा से नहीं देखती, जितनी घृणा से हिन्दू देखते

हैं।” (दिनकर 261) तात्पर्य यह कि हिन्दू और मुस्लिम एक दूसरे की नब्ज को अच्छी तरह से जानते हैं और नफरत की आग इन्हें उस नब्ज को अच्छी तरह से दबाने की ओर धकेलती है।

लेखक से भेंट के दौरान इस प्रकार के वातावरण से संबंधित वार्तालाप में उन्होंने स्वयं इस बात को कबूल किया है कि भारतीय समाज में आज से तीस साल पहले भी इसी प्रकार के हालात थे और आज तो उससे भी बद्ध हो चुके हैं। अपने जीवन में कठोर परिश्रम करने के पश्चात् समाज में उन्हें भाषा और धर्म के नाम पर से जो एक मानसिक हानि का बोझ उठाना पड़ा। उससे वह बेहद दुखी हुए। अपने शब्दों में वह कहते हैं कि

“मैंने कभी भी नहीं सोचा था कि शिक्षा प्राप्ति का माध्यम मेरे लिए इस प्रकार एक दीवार बन कर खड़ा हो जाएगा। आज से 50 साल पहले तो शिक्षा प्राप्ति अपने आप में ही एक तपस्या थी। लोग इसके बारे में सोचना भी पाप समझते थे। कारण यह कि गरीबी रेखा से वह लोग ऊपर ही नहीं उठे थे। रोजी-रोटी ही उनके लिए जिन्दगी का सबसे महत्वपूर्ण कार्य था। बिल्कुल इसी प्रकार के हालातों में मैंने अपनी जिन्दगी की शुरुआत की थी। प्राइमरी से हाई स्तर तक की शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् मेरे जीवन का कालकूट जैसे समय की शुरुआत हुई। मुझे यकीन ही नहीं हुआ जब मैंने यह सुना अथवा जब मुझसे यह कहा गया कि आप इसके आगे की पढ़ाई में ‘हिन्दी’ विषय नहीं ले सकते क्योंकि आप एक मुसलमान हैं। आपको तो ‘ऊर्दू’ विषय की पढ़ाई करनी चाहिए।

लेखक इसमें आगे बताते हैं कि हालात तो उस समय ओर भी बिगड़ गये जब मैं हिन्दी की कक्षा में दाखिला लेकर बैठा किन्तु अध्यापकों द्वारा रजिस्टर में मेरी उपस्थिति की दर्ज करने को राजी नहीं हुए कि तुम्हें हिन्दी नहीं पढ़ा सकते क्योंकि यह हिन्दुओं की कक्षा है यहाँ केवल हिन्दू विधार्थी ही हिन्दी पढ़ सकते हैं मुस्लिम विधार्थी नहीं। तुम मुस्लिम धर्म से संबंध रखते हो तुम ‘ऊर्दू’ विषय पढ़ा करो। किन्तु मैंने

हिम्मत नहीं हारी। मैंने प्रधानाचार्य से शिकायत की। इसी प्रकार कई दिनों की जद्दोजहद के बाद मुझे 'हिन्दी' विषय पढ़ने की अनुमति मिली। उसके बाद भी मेरी मुसीबतों का अंत नहीं हुआ। नौकरी प्राप्ति में भी मुझे असहनीय बातों एवं विचारधाराओं से गुजरना पड़ा। किसी भी हिन्दू विश्वविद्यालय में मुझे अध्यापक पद के लिए आवेदन पत्र तक के लिए भी मनाही थी। क्योंकि मैं मुसलमान होकर हिन्दी नहीं पढ़ सकता। अतः मुझे मुस्लिम विश्वविद्यालय में नौकरी के लिए बाध्य होना पड़ा। बहुत बार मुझे इस प्रश्न का सामना करना पड़ा कि आप मुस्लिम होकर हिन्दी का अध्ययन क्यों कर रहे हो।” (लेखक के साथ हुई वार्तालाप के अंश जून 2018)

लेखक के स्वयं के साथ हुए इस प्रकार के असामाजिक व्यवहार से यह स्पष्ट है कि समाज में कुछ लोग इस प्रकार की विचारधारा के धारणी हैं कि हम हिन्दू हैं। यह हमारी भाषा है। यह हमारा रहने का क्षेत्र है। यह हमारे देवता है। दूसरी ओर हम मुस्लिम हैं। यह हमारी भाषा है। हमारा पाकिस्तान है। यह हमारे रीति रिवाज हैं। यदि किसी ने इसमें दखल दिया तो हम उसे नहीं छोड़ेंगे। उसी के माध्यम से लेखक ने अपने उपन्यास में अपने साथ हुई घटनाओं को अन्य माध्यमों से प्रस्तुत किया है। जो कि सराहनीय है।

कहने का तात्पर्य यह कि लोगों की बीमार मानसिकता ने समाज को भाषा और धर्म से सामंजस्य कर इसकी विचारधारा ही बदल दी। इससे लोगों में इतनी दुविधा व असमंजस की स्थिति उत्पन्न होती जा रही है कि किस धर्म की कौन सी भाषा है अथवा किस भाषा को कौन सा धर्म है। धर्म के संबंध में गोपाल दामोदर अपनी किताब 'अफलातूल की सामाजिक व्यवस्था' में प्रसिद्ध दार्शनिक एवं समाज मनोविज्ञानी अफलातूल के धर्म के प्रति विचारों को इस किताब में प्रगट करते हुए कहते हैं कि “अफलातूल के अनुसार न्याय और धर्म वह है जिसमें हम अपने गुणों के अनुसार कोई एक कार्य कर ले और उसे कौशल पूर्वक करें। इसमें समाज-धर्म है और इसमें व्यक्ति-धर्म है। एक ही प्रकार के कार्य से दोनों प्रकार के धर्म सम्पन्न होते हैं।” (दामोदर 56)

भाषा और धर्म के साथ-साथ ही छूआ-छूत भी एक प्रकार का सामाजिक कलंक है जो मानवीय प्रवृत्ति को संकुचित किए जा रहा है। लोग यह भी मानते हैं कि प्रमात्मा एक है। किन्तु फिर भी अपने-अपने प्रमात्मा एवं खुदा की तस्वीर बनाए बैठे हैं। सभी धार्मिक किताबों में मानवीय कल्याण की बातें हैं। किन्तु फिर भी अपने-अपने ग्रन्थ को सर्वश्रेष्ठ माने बैठे हैं। यदि इस बात को भी मान लिया जाए तो भी कोई आपत्ति नहीं। समस्या तो उस समय आती है जब इस बात पर दंगा होता है कि हमारी धार्मिक किताब अच्छी है। किन्तु आपकी नहीं। इस प्रकार की बीमार विचारधाराओं से समाज दूषित होता आया है और यदि इस पर लगाम नहीं लगी तो भविष्य में भी यह बरकरारता जारी रहेगी।

धर्म और भाषा एवं धार्मिक किताबों के संबंध में बनी विकृतियों के संबंध में अब्दुल विस्मिल्लाह कहते अपने इस उपन्यास 'अपवित्र आख्यान' में कहते हैं कि "पंडित जी जल्दी ही आ गए। वे कुटिया के द्वार पर खड़े होकर थोड़ी देर तक बालक का रामायण-पाठ देखते रहे, फिर भीतर आकर पास में बैठ गए। धीरे-से उसकी पीठ थपथपाई। जमील चौंका। वह हटने लगा तो पंडित जी ने संकेत किया कि नहीं, पढ़ते जाओ। जमील पढ़ता रहा। लेकिन क्षेपक तक पहुँचते अलग हट गया। बाजों का शोर तेज़ हो गया।

"पाठ अच्छा कर लेते हो!" पंडित जी ने प्रशंसा की निगाह से जमील के चेहरे को देखते हुए कहा और पूछा, "क्या नाम है बेटे?"

"जमील अहमद!"

बस, फिर क्या था! पंडित जी चुप हो गए। पाठ बन्द हो गया। पंडित जी का चेहरा भट्ठी की तरह दहकने लगा। आँखें लाल रंग की गेंदों की तरह बाहर निकल आईं। होंठ अधकटे मुर्गे की तरह फड़फड़ाने लगे.....फिर तड़ाक्। जमील की कनपटी पर ऐसा भरपूर झापड़ पड़ा कि उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। नेकर पेशाब से भीग गया।

मंडप के बाजे बन्द हो गए। सर्वत्र एक भयंकर चुप। ईश्वर ने सृष्टि का संचालन स्थगित कर दिया। आगे क्या हुआ, पंडित जी ने क्या-क्या कहा, वह किस तरह वहाँ से चलकर घर तक पहुँचा-जमील को कुछ भी याद नहीं। बस, इतना याद था कि बालिद साहब उसकी पीठ पर जूते बरसा रहे थे और चीख रहे थे: 'गया था काफिरों की किताब पढ़ने.....!'

जमील ने बहुत सोचा, बहुत सोचा, मगर उसकी समझ में यह नहीं आया कि वह संस्कृत क्यों न पढ़े? वह रामचरितमानस को छू क्यों नहीं सकता? गाँव में छूत-छात के व्यवहार उसने बहुत देखे थे। ऊँची जात के लोग छोटी जातियों का छूआ नहीं खाते थे। पानी भी नहीं पीते थे। अछूत और मुसलमान उनकी दृष्टि में एक जैसे थे। मगर भाषा? पुस्तक? इन सबका छुआछूत से क्या रिश्ता है?" (बिरि-मल्लाह 21)

जमील एक छोटा लड़का है उसे तो यह भी नहीं पता कि किस धर्म की कौन सी किताब है उसे पढ़ने चाहिए या नहीं, छूना भी चाहिए या नहीं। किन्तु इस प्रसंग से यह सारी बातें लेखक ने स्पष्ट कर दी हैं कि समाज में मानसिक विकृत से पीड़ित लोगों ने यह परम्परा ही बना डाली है कि हिन्दू कुरान को हाथ नहीं लगा सकता और मुस्लिम रामचरित मानस को नहीं पढ़ सकता। जैसा कि जमील के साथ हुआ।

समाज में इस प्रकार की घटनाएँ नहीं होनी चाहिए। यह उन नादान बच्चों पर बहुत बुरा असर डालती हैं जो अभी इस बात से अछूते हैं कि कौन हिन्दू, कौन मुसलमान, क्या गीता, क्या कुरान। छोटे बच्चों में इस प्रकार की घटनाएँ का असर लम्बे समय तक रहता है। जो कभी न कभी लावा बनकर बाहर निकलता है। यह एक प्रकार से समाज में फैल रही कुरीतियों के संबंध में एक वह फटकार है तो लेखक ने बड़ी ही सुन्दरता से अपने पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत कर अपनी विकासात्मक एवं प्रगतिशील बुद्धि का सबूत देते हुए कहने की कोशिश की है और कदाचित् यह आज के संदर्भ में प्रासंगिक भी है।

“क्षण-भर तक इकबाल भी चुप रहा; फिर बोलना शुरू किया, “में जब पढ़ रहा था.....अकेला मुसलमान था पूरे स्कूल में। वहीं प्रार्थना होती थी संस्कृत में: या कुन्देन्तु तुशारहार धवला.....में बोल नहीं पाता था। समझता भी नहीं था। लेकिन क्या किसी ने कभी पूछा मुझसे, कि इस प्रार्थना का क्या मतलब तुम समझते हो या नहीं? एक सेक्युलर मुल्क के स्कूलों में ऐसी प्रार्थनाएँ क्यों होती हैं? एक सेक्युलर मुल्क के प्राइम मिनिस्टर और प्रेसीडेंट किसी भी मौके पर धूप-दीप क्यों जलाते हैं? हिन्दी की साली कोई भी ऐसी फिल्म नहीं है जिसमें शंकर भगवान या किशन भगवान की आरती न उतारी जाती हो। हमें बहलाने के लिए साले ‘गरीब नवाज’ बना देते हैं। कभी-कभी।” (बिस्मिल्लाह 39)

इकबाल के मुख से इस प्रकार की बातों का कहना स्वयं में यह सिद्ध कर देता है कि समाज में कुछ भी गलत हो तो वह सभी को गलत लगता है। किन्तु उसके बारे में कोई कुछ कहता नहीं है। कभी-कभी कोई दबी कुचली बात जो अचेतन में जाकर बस गई थी, बाहर निकलने के लिए बेताब रहती है और मौका पाते ही चेतनावस्था में आ जाती है। किन्तु है तो गलत ही। किन्तु कुछ लोग इसके सकारात्मक पक्ष में बोलने की बजाए इसके नकारात्मक पक्ष को ही बढावा देते आ रहे थे और अब भी जारी हैं। उन्हें सही गलत अथवा अच्छा या बुरे की तो पहचान ही नहीं है। उन्हें तो बस अपने धर्म से ही मतलब है और कदाचित् उसके बारे में भी वह ज्यादा नहीं जानता। बस मन में केवल एक बात लेकर कि हम हिन्दू है अथवा हम मुस्लिम। हम हिन्दुओं से किसी काम में पीछे नहीं, हम मुस्लिम लोगों से किसी काम में पीछे नहीं। बिना वजह से अथवा नासमझी के कारण दशकों से चले आ रहे कड़वाहटों भरे माहौल को यह लोग निर्विघ्न एवं निरंतर हवा देते आ रहे है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने बहुत से संजीदगी से हिन्दु-मुस्लिम एवं भाषा के संबंध में समाज में लोगों के मन में जो कड़वाहट भरी हुई है। उसका चित्रण बड़े अच्छे से किया है। इसके साथ ही उन्होंने दंगा-फसाद, भ्रष्टाचार जैसी सामाजिक कुरीतियों के संबंध में भी अपने अनुभवों के आधार

पर अपने इस उपन्यास में जगह देकर अपने पाठकों के समक्ष सामाजिक व्यवहार का असली चेहरा सामने लाये। अपनी कल्पना मिश्रित यथार्थ चित्रण पर लेखनी चलाने के कारण उनकी निष्पक्षता एवं निडरता का साक्षात् सबूत मिलता है जो कदाचित् आजकल सामाजिक भय के कारण कहीं खो से गया लगता है।

5. समर शेष है: -

लेखक का यह उपन्यास समाज की एक ऐसी सामाजिक परिस्थिति का छोटा सा रूप है जिसमें अत्यंत गरीबी, लोगों की बीमार मानसिकता, जीवन जीने की सुविधाओं की नामात्रता का भरपूर चित्रण है। बावजूद इसके लोग कैसे अपनी जिन्दगी की गाड़ी खींचते हैं, जीने के साथ-साथ ही कैसे अपनी मंजिल तक पहुँचने के लिए जीवन का हर त्याग, बलिदान इत्यादि करने के पश्चात् किस प्रकार का संघर्ष करते हुए नाली के कीड़ों की तरह रेंगते हुए खत्म होने की कगार तक का यथार्थ चित्रण लेखक ने किया है। लेखक ने इस प्रकार के उपन्यास को लिखकर एक प्रकार से आँचलिक उपन्यास लिखने की लड़ी को जिन्दा रखने एवं उसे विकासात्मक के रास्ते पर चलाने के लिए एक बहुत ही साहसी एवं जिम्मेदार प्रवृत्ति का सबूत दिया है।

आधुनिक समाज में हम देखते ही हैं कि जो व्यक्ति अमीर है वह ज़्यादा अमीर होता जा रहा है और जो गरीब है वह और भी ज़्यादा गरीब होता जा रहा है। समाज की यह विभिन्नता एक सभ्य समाज में प्रतिकूल असर डालती है। हमें उन सभी लेखकों को धन्यवाद देना चाहिए जिन्होंने समाज के इस पक्ष को उठाकर सदैव हमें इस बात का अहसास करवाया है कि गरीबी से लिप्त यह भाग भी समाज का ही एक हिस्सा है जहाँ सरकार द्वारा दी जा रही सुविधायें यहाँ तक पहुँचती ही नहीं हैं और यदि पहुँचती भी हैं तो वह भी न मात्र ही हैं।

वैसे तो यह भारतीय समाज की विडम्बना ही है कि यहाँ के लोगों की मेहनतकश प्रवृत्ति होने के बावजूद भी अपनी जिन्दगी को नर्क के समान जीने

पर मजबूर हैं। सारी उम्र वह सुख-सुविधायों से वंचित रहते हैं। सारा दिन जानवरों की तरह ही अपनी जिन्दगी का बोझ ढोते रहते हैं।

यह तो सत्य है कि भारतवर्ष में धर्म, भाषा, रीति-रिवाज, खान-पान इत्यादि जैसी अनेक ऐसी विभिन्नताएँ हैं जो भारत को 'खण्डता में अखण्डता' की संज्ञा से संबोधित करता है। अमीरी गरीबी व धर्म के आधार पर भारत में न चाहते हुए भी आंतरिक रूप से विभिन्न प्रकार के समाज का निर्माण हो गया है। वह सभी आपस में मिलकर रह रहे हैं। किन्तु बीच-बीच में कभी-कभी आपसी कलह भी पीछा नहीं छोड़ता। दूसरे समाज से तो कटुता का संबंध बना ही रहता है। जिसका कारण अमीरी-गरीबी व छुआ-छूत तो रहता ही है। समाज का निर्माण हर घर और उन घरों में रह रहे लोगों के आपसी व्यवहार के कारण ही बनता बिगड़ता है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने अपने इलाहाबाद व उसके आस-पास के गाँवों के घरों व उसमें रह रहे लोगों के आपसी व्यवहार का सजीव चित्रण किया है। इसमें एक बहुत ही नयी चीज़ निकल कर बाहर आयी है। कि लगभग प्रत्येक घर में रह रहे लोगों में से पुरे घर का कंट्रोल घर की स्त्री के पास है। चाहे वह गलत है चाहे वह सही है। घर के मर्द को उसी की बात माननी पड़ रही है। इस प्रकार के वातावरण से समाज में एक अलग ही प्रकार के वातावरण का निर्माण हो रहा है। जिसमें मेल-मिलाप की कमी, पुरुषों का दबू व्यवहार जिससे उनमें कोई भी फैसला लेने की प्रवृत्ति की कमी, टूटते परिवार, मन में कपट, मदद के नाम पर अहसान जताने की प्रवृत्ति जैसे विभिन्न नकारात्मक वातावरण का निर्माण हो रहा है।

यह उपन्यास एक प्रकार से लेखक का आत्मकथानक वर्णन है। इनमें उन्होंने लगभग अपने इस संघर्ष भरपूर जीवन से इसी प्रकार के समाज का चित्रण किया है जो उन्होंने साक्षात् अपने पर हंडाया है।

लेखक ने एक पारिवारिक दशा का वर्णन स्वयं को उसमें समाहित करके प्रस्तुत करते हुए किया है जिससे उनके परिवार को संभालने वाली स्त्री का

दबदबा तथा स्वयं के अस्तित्व को बचाने की जद्दो-जहद का वर्णन स्वयं ही बयाँ हो रहा है।

“शाम को, जब मैं उन्हें टहलने के लिए सहसों की ओर ला रहा था, खेत की मेड़ पर चलते हुए मैंने ही कहा था, “अब्बा जी, मैं आपको नहीं छोड़ना चाहता।”

इस पर उनकी आँखें भर आई थीं। रुंधे गले से उन्होंने उत्तर दिया था, “बेटे, मैं भी तुम्हें नहीं छोड़ सकता।”

और अगले दिन हम दोनों ही वहाँ से बलापुर के लिए रवाना हो गए थे।

लेकिन बलापुर की परिस्थितियाँ पूर्ववत् थीं। भाभी नहीं चाहती थी कि हम लोग इस घर में स्थायी रूप से रहें और भैया के भीतर उनका विरोध करने की क्षमता नहीं थी। अतः उन्होंने सलाह दी थी कि हम लोग पुनः लालगंज चले जाएँ।

यह सलाह चिचित्र थी और अब्बा के स्वाभिमान को इससे चोट भी पहुँचती थी, पर मेरी शिक्षा के लिए वे कुछ भी कर सकते थे। अगले दिन ही वे लालगंज चलने को तैयार हो गए थे।” (बिस्मिल्लाह 12)

लेखक स्वयं कहते हैं कि हमारी इस प्रकार की हालात को देखकर कोई भी स्वयं ही अंदाजा लगा सकता है कि हमारी इन परिस्थितियों के लिए उस घर की औरत कितनी जिम्मेदार है। उसने घर का वातावरण किस तरह से अपने अनुकूल ढाल लिया है। एक और अन्य उदाहरण में लेखक ने इसी प्रकार की परिस्थितियों का बड़ा ही सजीव वर्णन किया है जो अप्रत्यक्ष रूप से कहीं न कहीं समाज को दूषित करने में अपनी कोई कसर बाकी नहीं छोड़ता।

“लेकिन एक रोज़ मुझसे एक भयंकर अपराध हो गया। दरअसल वह शबे-बारात नामक त्यौहार की सुबह थी और भाभी कहीं गई हुई थीं। भैया भी कहीं गये हुए थे। उनके लड़के हलुवा निकाल-निकालकर खा रहे थे। मेरे भीतर न जाने कौन-सा पाप जागा कि हलुवे में मेरी नीयत

लग गई और अब्बा के सामने जाकर मैंने अपनी इच्छा प्रकट कर दी। अब्बा ने भाभी की बिटिया को बुलाया और कहा कि इसे थोड़ा-सा हलुवा दे दो। मैंने कहा, “मैं चने का हलुवा खाऊँगा।” और अब्बा ने कहा, “इसे चने का ही हलुवा दे दो।” हालाँकि वह बेचारी बहुत हिचकचाई, पर अब्बा ने सांत्वना दी कि उसकी माँ को यह बात नहीं मालूम होगी और हलुवा उसने मुझे दे दिया।

लेकिन चने का हलुवा शायद कम बना था और मुझे खाते देखकर भाभी के अन्य बच्चों ने भी अपनी बहिन को तंग कर वही हलुवा लिया। इससे वह बहुत कम हो गया और भाभी को यह बात मालूम हो गई।

किसी दुर्घटना के लिए इतना कारण तो काफी था। पहले तो उन्होंने अपनी लड़की की जम कर पिटाई की, फिर भैया से उलझ गई।

“ऐसे खबू लोगों को हम यहाँ नहीं रखेंगे।”

यह उनके भाषण का सारांश था और भैया जानते थे कि उनका कोई वाक्य मात्र एक वाक्य नहीं होता, बल्कि वह ठोस निर्णय होता है।” (बिरिमल्लाह 17)

कहने का तात्पर्य यह कि समाज में ऐसे कितने ही घर-परिवार हैं जिनमें घरों में मर्द तो दबू व्यवहार के हैं और औरतें निर्णय लेती हैं जिनसे घरों में तनाव पैदा होता है। और घर-परिवार टूटते हैं। एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के प्रति नफरत पैदा होती है। जो समाज के लिए कतई अच्छा नहीं है। इस संबंध में अरुण कुमार सिंह अपनी किताब ‘समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा’ में कहते हैं कि

“समाजीकरण के अनेक साधनों में परिवार का महत्व अद्वितीय है। बच्चा एक परिवार में जन्म लेकर वह उस परिवार का सदस्य बन जाता है। चूँकि परिवार एक प्राथमिक समूह है, अतः इसके सदस्यों जैसे माता-पिता, भाई-बहन, चाचा-चाची आदि में एक घनिष्ठ संबंध होता है। इनके बीच दूनार-प्यार सहयोग आदि की भावना अधिक होती है। इन

सबका प्रभाव बच्चों के सामाजीकरण पर अधिक पड़ता है। अनेक समाजशास्त्रियों एवं समाज मनोवेज्ञानिकों का सामान्य मत यही है कि परिवार ही वही पहली संस्था होती है। जो बच्चों को शिष्टाचार एवं नैतिक विकास की शिक्षा देकर उसे एक योग्य व्यक्ति बनाता है।” (अरुण 77)

उपन्यास के उस हिस्से व अरुण कुमार के इस मत को यदि ध्यान से देखें तो मुख्य रूप से यह बात सामने आती है कि एक सभ्य समाज सभ्य व्यक्तियों के आपसी संबंध एवं उनके आपसी व्यवहार का नतीजा होता है। यदि घर-परिवार से ही बच्चों को कोई अच्छे संस्कार एवं नैतिकता से संबंधित विचारों की खुराक नहीं मिलती तो वह सभ्य व्यवहार से वंचित रह जाते हैं। एक सभ्य समाज का निर्माण में घर-परिवार का अहम रोल अथवा एक विशेष भूमिका होती है। इसके बिना सभ्य समाज की कल्पना की ही नहीं जा सकती।

4.2 कहानी साहित्य में समाज मनोविज्ञान:

विगत इस बात का वर्णन किया जा चुका है कि ‘परिवार’ समाज का एक अभिन्न अंग होता है। दरअसल परिवारों के आपसी मेलजोल से ही समाज का निर्माण होता है। परिवारों की एक ऐसी शृंखला जो आपसी सहयोग से एक दूसरे के कार्य में अपनी विशेष भूमिका निभाती हैं; एक दूसरे की सामाजिक जरूरतों को पूरा करती है, समाज कहलाती है। लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह ने अपनी कहानी संग्रहों में भी समाज के विभिन्न परिवारों की घटनाओं को माध्यम बना अनेक कहानियों की रचना की और उन सभी में सामाजिक हालातों के विभिन्न पहलुओं का निष्पक्षता एवं स्टीकता से वर्णन किया।

पिछले अध्यायों में भी इस बात का वर्णन किया जा चुका है कि लेखक के जीवन की शुरुआत गरीबी रेखा से शुरू होती है। उन्होंने अब तक के जीवन में समाज के विभिन्न कुटिल एवं संघर्षमयी पहलुओं को अपने उपर सहन करते हुए बिताया है। धार्मिक विषमताओं का भी उनके जीवन पर नकारात्मक प्रभाव ही रहा। दूसरे शब्दों में कहें तो समाज में फैली धार्मिक

राजनीति का उन पर बहुत बुरा प्रभाव रहा इससे उनका आर्थिक शोषण के साथ साथ शैक्षणिक शोषण भी हुआ। जिससे वह स्वयं को बहुत ही जद्दोजहद के पश्चात् निजात दिला पाये। कदाचित् निजात नहीं 'समझौता' शब्द कहना ही उचित रहेगा। इतना कुछ होने के पश्चात् निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि लेखक की लेखनी में इनका असर होना स्वाभाविक ही है। और हुआ भी ऐसा ही है। इस अध्याय में हम लेखक के कहानी संग्रह पर समाज मनोविज्ञान का अध्ययन कर रहे हैं। अध्ययन के दौरान उनकी कहानियों में समाज मनोविज्ञान के बहुत से पहलुओं का असर हमें स्वयं ही नजर आ जाता है। लेखक ने जिस प्रकार के संघर्षमयी जीवन से निर्वाह किया है उसका साक्षात् विवरण उन्होंने अपनी लेखनी में किया है।

धार्मिक कट्टरता से दुश्वार होती सामाजिक मानसिकता: -

आज से तकरीबन 20 वर्ष पहले जब मैं शिक्षा में स्नातक की पढ़ाई कर रहा था तो उसमें अध्यापन की विधियों के तहत सूक्ष्म एवं स्थूल अध्यापन के बारे में कार्य चल रहा था तो हमें इस बात की जानकारी दी गई जिसका सारांश यह था कि यदि कोई कार्य आपको कठिन लग रहा है अथवा कोई कार्य साधारण से अधिक लम्बा है तो उसके टुकड़े कर लिए जाते हैं ताकि कार्य अच्छे से समझ आ सके। और समझने के पश्चात् उन टुकड़ों में पूरा किये कार्य को बाद में जोड़ दिया जाता है। टुकड़ों में किये गये कार्यों को सूक्ष्म एवं पूरे किये गए कार्य को स्थूल कहते हैं। यही बात अथवा सिद्धांत समाज के सभी पहलुओं पर लागू होता है। यही बात धर्म पर भी लागू होती है। धर्म एक प्रकार से समाज में रहते लोगों को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटकर सामाजिक व्यवस्था को ठीक ढंग से चलाने का एक मात्र जरिया था जिसका मुख्य कारण लोगों के मन में उस सर्वशक्तिमान शक्ति को मानना और मानवीय कल्याण की भावना पैदा करना था। जो कि इसका स्थूल रूप था। आप किसी भी धर्म का अध्ययन करें उसमें केवल एक ही सारांश है कि प्रमात्मा एक है और केवल वही सर्वशक्तिमान है। मानवीय कल्याण हेतु उसमें किसी भी प्राणी का बुरा न करने के साथ-साथ बुरे कार्यों से बचना भी शामिल है। किन्तु लोगों

की अनपढ़ता एवं बीमार मानसिकता ने इसका किसी ओर ही तरफ रूख कर दिया। वह अपने-अपने धर्म के प्रति ही सजग रहे; उसे ही सर्वस्व मानने लगे और दूसरों के प्रति निरादर एवं घृणा की दृष्टि से देखने लगे। उसे नीचा दिखाने में कोई भी कारण छोड़ना उन्हें गँवारा न रहा। जिस कारण समाज में दिनो दिन अराजकता फैलती रही। और आज यह साम्प्रदायिक दंगों का रूप धारण कर चुकी है। कुछेक असामाजिक तत्वों अथवा बीमार मानसिकता वाले लोगों ने बहुत ही जबरन विधि से धर्म को लोगों के दिमाग में इस कदर अपनी चालाकी एवं बुद्धि से बैठा दिया है कि अज्ञानता से भरपूर लोगों की प्रक्रियाओं से देखकर यह अहसास होता है जैसे अप्रत्यक्ष रूप से यह लोग सम्मोहित हो चुके हों; कदाचित् इन्होंने अपनी चेतनता खो दी हो। ऐसे लोग धर्म एवं प्रमात्मा को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने लगे हैं। इस संबंध माधव प्रसाद मिश्र अपनी किताब 'सामाजिक कुरीतियाँ' में कहते हैं। कि

“लोग इस समय नाना प्रकार के दुःख इसलिए भोग रहे हैं कि अधिकांश जन-समाज धर्म-हीन जीवन व्यतीत कर रहा है। यहाँ धर्म शब्द से तात्पर्य उस धर्म से नहीं है जिसकी परिसमाप्ति कुछ धार्मिक सिद्धांतों को मान बैठने, और कुछेक मनोरंजक धार्मिक विधि-नियमों का पालन कर लेने में ही हो जाती है, जिनसे अपने आपको धैर्य और संतोष मिल जाता है और कुछ आत्मोत्साह भी बढ़ जाता है। यहाँ तात्पर्य ऐसे धर्म से है जो मनुष्य का संबंध ईश्वर के साथ स्थापित और दृढ़ करता है और मनुष्य के लिए सारे कर्मों का एक उच्चादर्श के ऊपर सुचारु-रूप से संचालन करता है, और जिसके बिना मनुष्य-जाति बिल्कुल पशुवत् वरन उससे भी हीन बनी रहती है।” (मिश्र 174)

कहने का तात्पर्य यह कि धर्म केवल एक विशेष नियमावली को ही मानना नहीं है जो कदाचित् प्रत्येक वर्ग अपनी-अपनी और अपनी सुविधा के अनुसार बनाकर बैठा हो। यदि उसमें मानवीय कल्याण की बजाए एक दूसरे के प्रति नफरत के बीज बोने का ही कार्यकलाप प्रचलित है तो उसको मानना पशु-प्रवृत्ति के अलावा कुछ भी नहीं है।

लेखक ने इस प्रकार के वातावरण को अपने जीवन में व्यापक रूप से अपने उपर सहन किया है। धार्मिक कट्टरता के संबंध में उनका सामना हिन्दु एवं मुस्लिम धर्म के संबंध में रहा। लेखक से हुई वार्तालाप के संबंध में उन्होंने माना के भारत के कुछ इलाकों में हिन्दी व मुस्लिम के झगड़े बिलकुल ही निम्न स्तर तक पहुँच चुके हैं। वह मानते हैं कि भारत में एक साथ रहते हुए भी यह दोनों धर्म एक दूसरे से नफरत करते हैं। सबूत के रूप में अपने जीवन के कुछ पहलुओं को उन्होंने उधेड़ा। कहने का भाव यह कि मुस्लिम होने के नाते उनके मन में हिन्दुओं के प्रति एक टीस है जो कदाचित् वह ताउम्र न भूल पायें। हिन्दु धर्म के लोगों के प्रति उनके विचार शायद नकारात्मक ही रहेंगे। किसी भी व्यक्ति की किसी विशेष परिस्थिति में नकारात्मक एवं सकारात्मक प्रवृत्ति पैदा होने के संबंध में गोपाल दामोदर अपनी किताब 'अफलातून की सामाजिक व्यवस्था' में प्रसिद्ध दार्शनिक एवं समाज मनोविज्ञानी अफलातून के सामाजिक हालातों के प्रति अमुक व्यक्ति की विचारधारा के प्रति विचारों को इस किताब में प्रगट करते हुए कहते हैं कि

“बात यह है कि प्रत्येक पुरुष अपनी परिस्थिति के अनुसार ही सोच विचार सकता है। उसी में उसका पालन-पोषण होता है, इस कारण उसके काल की परिस्थिति के विचार और आचारों का प्रभाव उस पर पड़े बिना नहीं रहता। यदि वह किसी आदर्श की कल्पना भी करे, तो वह कल्पना उसी परिस्थिति से पैदा होती या रंगी रहती है। इस कारण किसी तत्वज्ञ के विचारों को यदि हमें ठीक ठीक समझना हो तो उसके काल की समस्त परिस्थिति का थोड़ा परिचय प्राप्त कर लेना नितांत आवश्यक है।” (दामोदर 21)

बिलकुल यही हालात लेखक के साथ पैदा हुए। उनके कथा साहित्य में समाज के प्रति जो हालात का विवरण हमें दृष्टिपात हो रहे हैं वह उनकी उस समय की परिस्थितियों के बदले में उनकी प्रतिक्रिया है। उनके मन में कहानी साहित्य के माध्यम से हिन्दु-मुस्लिम के संबंध में जो कड़वाहट नजर आ रही

है। वह धर्म के प्रति कट्टरता रखने वाले लोगों का उनके प्रति प्रतिकूल व्यवहार का ही नतीजा है।

लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह अपनी किताब 'रफ रफ मेल' में धर्म के प्रति लोगों की राय को लेकर 'गोटी' नामक कहानी में सुन्दरता से वर्णन किया है। वह कहते हैं कि

“उन दिनों देश भर में एक पूजा स्थान को लेकर विवाद चल रहा था। कुछ लोग उसे मस्जिद साबित करने में लगे हुए थे और कुछ लोग मंदिर। हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी आदि सभी भाषाओं के अखबार इस चर्चा से रँगे होते थे। पत्रिकाओं में खोजपूर्ण लेख छापे जा रहे थे। सेमिनार हो रहे थे। इस तरह यह चर्चा इलाके में भी गर्म थी और घर-घर की दीवारों पर उत्तेजक नारे लिखे हुए थे।” (बिरिस्मल्लाह 44)

इस प्रकार की घटनाएँ एवं उनका विवरण यह सिद्ध कर रहा है कि यह लेखक के समय की घटित घटनाएँ हैं जिनसे कदाचित् लेखक भी प्रभावित हुए हों जिसका असर उनकी रचनाओं में मिलता है। धर्म के सही मायने में अर्थ को जानने एवं कुरीतियों से दूर रहने के संबंध में माधव प्रसाद मिश्र अपनी किताब 'सामाजिक कुरीतियाँ' में कहते हैं कि

“जो लोग जान-बूझ कर अथवा अनजान में धर्म की ओट में अधूरे मिथ्या-धर्म का प्रचार करते हैं, वे इस बात को समझ ले कि धार्मिक सिद्धांत, (नियम) प्रतिज्ञाएं तथा विधि-नियम जिनका वे समर्थन करते हैं और जिनकी शिक्षा देते हैं, अत्यधिक हानिकारक हैं, क्योंकि वे मनुष्य से उस धार्मिक सत्य को छिपाए रहते हैं जिसका तात्पर्य है ईश्वर की आज्ञा का पालन करना—मनुष्य की सेवा करना—दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करना जैसा कि कोई मनुष्य चाहता है दूसरे मनुष्य उसके साथ करें। यही वास्तविक धर्म का मूल मंत्र है।” (मिश्र 189)

कहने का तात्पर्य यह कि बहुधा लोग धर्म के नाम पर केवल आडम्बर रचते हैं। एक दूसरे के धर्म जो कि असल में धर्म है ही नहीं, का निरादर कर स्वयं

के धर्म को बेहतर समझने एवं समझाने का नाटक करते हैं। असल में ऐसे लोग उसको अपना धर्म मान बैठे हैं जिसे कुछेक धार्मिक सिद्धांतों एवं धार्मिक विधि नियमों ने मान्यता दी है। उसे पाकर ही वह आत्मसंतोष होना चाहते हैं किन्तु आज तक ऐसा नहीं हुआ है। संसार में इतने धर्म प्रचलन में हैं किन्तु फिर भी मानसिक शान्ति कहीं भी नहीं है। इसका स्पष्ट रूप से सारांश यह है कि यह सब कुछ धर्म के नाम पर पाखण्ड है। हम देखते ही हैं और निर्विवाधित मान भी रहे हैं कि सभी धर्मों में केवल एक ही बात सामान्य है कि परमात्मा एक है। किन्तु फिर भी केवल इसी बात अथवा विचार का ही सर्वप्रथम विरोध होता आ रहा है। सभी अपने अपने धर्म के अनुसार अपने अपने परमात्मा का निर्माण कर बैठे हैं और प्रत्येक अन्य के परमात्मा को नीचा दिखाने में लगा हुआ है।

धर्म एवं जाति के आधार पर समाज में फैले हुए इन विकृति के रूपों से विभिन्न प्रकार से समाज का नाश होता आया है और हो रहा है। चन्द्रराज भण्डारी अपनी किताब 'समाज-विज्ञान' में इस संबंध में कहते हैं कि

“भारतवर्ष में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, खंडेलवाल, ओसवाल, माहेश्वरी, अग्रवाल इत्यादि सामाजिक जातियां तो हैं ही, पर इसके साथ ही यह जातियाँ भी सनातन धर्मी, जैनी, आर्य-समाजी, रामसनेही, वल्लभपंथी, रामानुजपंथी आदि भिन्न भिन्न प्रकार के धार्मिक सम्प्रदायों में फसी हुई हैं। समाज के लोगों में जितना रागद्वेष इन सामाजिक जातियों की वजह से नहीं होता। उससे अधिक इन धार्मिक मत-भेदों की वजह से होता रहता है। इन धार्मिक मत-भेदों की वजह से इनमें नित्य प्रति मुकदमें बाजी होती रहती है, जिसमें करोड़ों रुपयों का नाश हो जाता है। इससे भी जब इनका जी नहीं भरता तब परस्पर में गालियों की बौछार और सिर फुटोवल होती है। यह बात नहीं कि इनमें से एक-एक धर्मवाले तो आपस में संगठन के साथ रहते हों, इन एक-एक धर्म वालों में भी सैंकड़ों फिरके बंटे हुए रहते हैं और वे भी आपस में

लड़ते हैं। ऐसी भीषण स्थिति में किसी प्रकार के संगठन की कल्पना कैसे हो सकती है?

यदि यह राग, द्वेष, यह लड़ाई झगड़ा किसी तत्व पर होता हो, यदि बुद्धि का आश्रय लेकर-सिद्धांत का आश्रय लेकर ये लोग परस्पर में लड़ते हो तब तो झगड़ा मिट भी सकता है, और संगठन में भी कोई बाधा नहीं पड़ सकती। मगर यह धार्मिक मत-भेद से शुरू से अंत तक हठवाद की जड़ पर, जिहालत की नींव पर ठहरा हुआ रहता है। इससे इसका अंत कभी नहीं हो सकता।” (भण्डारी 494)

तात्पर्य यह कि नकारात्मक जिद्दीपन सदैव ही मानवीय कल्याण में सबसे बड़ी रुकावट है। यदि किसी भी तरह से साहित्यकार अथवा कोई भी विद्वान अपनी रचनाओं एवं प्रवचनों के माध्यमों से मानवीय बुद्धि अथवा विवेक को इस कदर सकारात्मक पक्ष की ओर मोड़ दे तो कदाचित् इसमें सुधार की संभावना बढ़ सकती है। इस बात को लेकर हम लेखक अब्दुल बिरिस्मिल्लाह के अति धन्यवादी रहेंगे कि समय-समय पर उन्होंने अपनी रचनाओं में अपनी आदर्शवादिता का सबूत देते हुए कुछ कहानियाँ ऐसी लिखी हैं जो बीमार अथवा जड़ प्रवृत्ति को तोड़ने अथवा उखाड़ने को अमादा हैं। उनकी कहानी संग्रह ‘ताकि सनद रहे’ नामक किताब में ‘नया कबीरदास’ कहानी में बिल्कुल ऐसी ही कोशिश की गई है जो मानवीय समाज में ऐसी धार्मिक कट्टरता को मिटा देने की कोशिश भर अवश्य है। इस कहानी में लेखक कहते हैं कि

“वह जब से यहाँ आया तभी से चर्चा का विषय बना हुआ है। यह कैसा आदमी है जो अपने को किसी धर्म का नहीं मानता। न हिन्दू न मुसलमान। कैसा विचित्र जीव है यह! नाम पूछो तो कह देता है, बस कबीरदास समझ लो। बाप का नाम पता नहीं। माँ का नाम पता नहीं। बीवी का नाम रमपुरिया। यह कोई नाम है! अरे रामपुर नामक जगह की रहने वाली होगी, इसलिए रमपुरिया कही जाती होगी। ज़्यादा तर्क-वितर्क करो तो फिलासफी सुन लो-अरे भाई जाति-धर्म मे क्या रखा है? ये सब मूर्खता की बातें हैं। असली धर्म है इनसानियत। एक

इनसान होने के नाते दूसरे इनसान को अपना समझो, ईमानदारी के साथ ज़िन्दगी गुजारो, जिसने पैदा किया उसको न भूना-बस यही धर्म है.वाकई भई, है यह कबीरदास।

पढ़ा-लिखा तो खास नहीं है, लेकिन उसकी बातें सुन लो। इतिहास, पुराण, वेद, कुरान, रामायण, विज्ञान-सबकी बातें कुछ-न-कुछ करेगा। हिन्दुओं से मिलकर उनके ग्रंथों की बातें करेगा और मुसलमानों से मिलकर उनके आचार-विचार पर विमर्श करेगा। एकदम विचित्र आदमी!”
(बिरिमल्लाह 132)

लेखक द्वारा लिखी ऐसी कहानियाँ उनकी सुधारात्मक प्रवृत्ति की ओर इशारा करती हैं। एक लेखक को होना भी ऐसा ही चाहिए कि जो केवल यथार्थ चित्रण का ही व्याख्यान न करे वरन् उसमें सुधार की संभावनाओं को भी तलाश करे और सम्भावित कारकों को अपनी कल्पना की स्याही में डुबोकर अपनी लेखनी चलाए।

सामाजीकरण: -

बहुत पहले से सुनते आ रहे हैं और किताबों में पढ़ते आ रहे हैं कि मानव एक सामाजिक प्राणी है। बिना समाज के इसका कोई अस्तित्व नहीं है। तात्पर्य यह कि मानव अकेला नहीं रह सकता। अपना जीवन यापन करने के लिए उसे किसी न किसी सहारे की जरूरत पड़ती है। जो व्यक्ति इस प्रकार की मानसिकता रखता है वह जल्दी ही समाज में अपनी पकड़ मजबूत बना लेता है और जो व्यक्ति इससे परहेज़ करता है उसे समाज में रहने के लिए बहुत नद्दो-जहद करनी पड़ती है। मानव का मानव से एवं उसका समाज से तथा इसके साथ ही समाज का समाज से आपसी मेल-मिलाप एवं उसको समझने की प्रक्रिया वाला व्यवहार ही सामाजीकरण कहलाता है। कहने का तात्पर्य यह कि जब अमुक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति एवं अन्य सामाजिक क्रियाओं के बारे में आपसी तालमेल कर उसे सामूहिक रूप में क्रियान्वित करता है तो यह क्रिया सामाजीकरण कहलाती है।

लेखक अब्दुल बिरिस्मिल्लाह ने अपनी जिन्दगी में विभिन्न स्थानों एवं उससे संबंधित सामाजिक परिस्थितियों को बहुत ही करीब से देखा है। वह उनसे विभिन्न नकारात्मक एवं सकारात्मक तरीकों से प्रभावित भी हुए जिसका असर उनकी लेखनी में बाकायदा मिलता है। अपनी कहानियों में विभिन्न लोगों एवं परिस्थितियों का वर्णन कर उन्होंने एक बेहतरीन समाजीकरण की उदाहरण प्रस्तुत की है। वह अपनी 'रफ रफ मेल' नामक कहानी संग्रह में अपने पात्रों के माध्यम से कहते हैं कि

“किसको किसको बुलाओगे ?”

लौकी काटती हुई पत्नी ने उनकी ओर कनखी से देखते हुए पूछा तो वे तन कर बैठ गए।

“सबको बुलाएँगे हम। हमारे जितने भी साथी हैं, मिलने जुलने वाले हैं, हमारे बच्चों के साथी हैं.....।”

“और अपने साहब को न बुलाओगे ?”

“क्यों नहीं उन्हें भी बुलाएँगे।”

“आएँगे वे ?”

“क्यों नहीं आएँगे ? और कोई आए चाहे नहीं, पर हमारे साहब तो जरूर आएँगे।” (बिरिस्मिल्लाह 66)

पती पत्नी की यह वार्तालाप समाजीकरण के शुरुआती बिन्दू को उजागर करती है। कहने का भाव यह कि इसमें पति घर के किसी प्रोग्राम में अपनी साथी, मित्रों इत्यादि को बुलाना चाहता है जिससे कि मेलजोल बढ़ सके। समाज में वह अपना अस्तित्व कायम कर सके। यही मेल-जोल भविष्य में अमुक व्यक्ति के लिए विभिन्न प्रकार के रास्ते खोलने में सहायक होती है। यही प्रक्रिया आगे चलकर समाजीकरण कहलाती है। यही बात रवीन्द्र नाथ मुकुर्जी अपनी किताब 'सामाजिक मनोविज्ञान की रूपरेखा' में कहते हैं कि

“बच्चा जब जन्म लेता है तो वह केवल रक्त, मांस हड्डी आदि का एक जीवित पुतला मात्र होता है। उस समय न तो उसमें कोई सामाजिक गुण होता है, और न ही कोई समाज-विरोधी गुण। उस समय वह थोड़े से प्राणीशास्त्रीय गुणों वाला एक जीवित प्राणी होता है। फिर समाज और संस्कृति के बीच चलते हुए वही धीरे-धीरे एक सामाजिक प्राणी में बदल जाता है, अर्थात् उस प्राणीशास्त्रीय प्राणी में सामाजिक गुण या लक्षण स्पष्ट होने लगते हैं; वह अपनी सामाजिक परम्पराओं और रूढ़ियों के अनुसार व्यवहार करना सीख जाता है; और इसके द्वारा अपने को पशु जगत से अलग कर लेता है। इस प्रकार जिस प्रक्रिया के द्वारा कोई भी प्राणी शास्त्रीय प्राणी सामाजिक प्राणी में बदल जाता है, उसे ‘समाजीकरण’ कहते हैं। समाजीकरण से ही व्यक्ति मनुष्य बनता है, अपनी सामाजिक सांस्कृतिक विरासत का सक्रिय हिस्सेदार बनता है, और अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। संक्षेप में समाजीकरण व्यक्ति की सामाजिक जीवन के ढंग को सिखाने की एक प्रक्रिया है।” (मुकर्जी 202)

समाजीकरण के संबंध में बिल्कुल यही बात लेखक अब्दुल बिरिम्मल्लाह ने अपनी कहानियों में अपने पात्रों की जुबानी हमारे समक्ष प्रस्तुत की है। जो यह सिद्ध करता है कि मानव एक सामाजिक प्राणी है। उसे जीने के लिए एक दूसरे प्राणी चाहे वह मानव या पशु ही हो, सदैव जरूरत पड़ती रहती है। बिना इसका मानव अपना अस्तित्व कायम नहीं रख पाता। लेखक अब्दुल बिरिम्मल्लाह अपने कहानी संग्रह ‘शादी का जोकर’ में ‘त्राहिमाम’ नामक कहानी में समाजीकरण के इसी पहलू के अंतर्गत वर्णन करते हुए अपने पात्रों के माध्यम से कहते हैं कि

“मैं जानता हूँ कि आपको अजीब लग रहा होगा,” राजा जी ने फिर बोलना शुरू किया, “लगेगा ही। पहली बार मिल रहे हैं न! परिचय न हो तो अटपटा-सा लगता ही है। मगर सवाल यह है कि परिचय क्यों न हो! अरे भाई, जब एक ही जगह रह रहे हों तो आपस में मेलजोल रखना जरूरी है कि नहीं। मैं यहीं, आपके बिल्कुल पास रहता हूँ। जब

से आप इस इलाके में आए हैं, कई लोगों से कई बार आपके बारे में सुन चुका हूँ। और मजे की बात यह है कि ऐसा एक भी आदमी नहीं मिला, जिसने आपकी तारीफ न की हो।” (बिस्मिल्लाह 31)

प्रस्तुत वार्तालाप में लेखक ने यह दिखा देने की कोशिश की है कि समाज में सभ्य तरीके से रहने के लिए एक दूसरे से समन्वय अत्याधिक जरूरी है। इससे व्यक्ति एक दूसरे से कुछ न कुछ सीखता रहता है और जो कुछ उसके पास है उससे दूसरों को सीखने का अवसर प्राप्त होता है। सारी उम्र यह प्रक्रिया चलती रहती है। वैसे तो यह भी सर्वमान्य ही है कि व्यक्ति अपने माता-पिता एवं पूर्वजों से बहुत से गुण अवगुण अपनी विरासत में ही प्राप्त कर लेता है। किन्तु उन से सारे कार्य संभव नहीं। अंतिम क्षण तक अपनी जिन्दगी बिताने के लिए उसे समाज में बहुत कुछ और भी ग्रहण करना पड़ता है। इसी कहानी में वह आगे कहते हैं कि

“अगर-मगर कुछ नहीं, आपको आना ही है। देखिए साहब, इसी तरह लोगों से मेल-जोल बढ़ता है। आप तो नए-नए आए हैं यहाँ, अभी आपको क्या पता कि इस इलाके में कैसे-कैसे प्रतिष्ठित लोग रहते हैं। मैं चाहता हूँ कि आप उनसे मिलें। वे भी आपके बारे में जानें। कोई कह रहा था कि आप यदा-कदा अखबारों में सामयिक विषयों पर लेख वगैरह लिखते हैं। कुछ इस इलाके के बारे में भी लिखें।” (बिस्मिल्लाह 32)

कहानियों में लिखे गए इस प्रकार के संवाद स्वयं ही लेखक की सामाजिक चित्रण पर अपनी छाप छोड़ देते हैं तथा समाजीकरण के अर्थ को स्पष्ट करते हैं।

पूर्वाग्रह, विभेद तथा साम्प्रदायिकता समाज पर कलंक समानः -

सम्पूर्ण संसार में समाज एक ऐसी मूल ईकाई है जिसके आधार पर पूरी सृष्टि को वर्णित करना आसान हो जाता है। जैसे समाज को प्रभाषित करने के लिए ‘परिवार’ एक अहम भूमिका अदा करता है, उसी प्रकार संसार के विभिन्न देशों में से समाज मुख्य भूमिका के रूप में रहता है। इसलिए समाज

स्वयं में एक ऐसी जटिल प्रक्रिया बन जाता है जिसमें विभिन्न ऐसी घटनाएँ प्रतिदिन, प्रतिपल घटित होती रहती है जिनका आधार हमारी मानसिकता, हमारे विचार एवं चेतनता के प्रति हमारी बुद्धि की प्रतिक्रिया शामिल होती है। आधुनिक समाज में तो यह प्रक्रिया बहुत ही तेजी से बढ़ती आ रही है। किसी भी व्यक्ति, धर्म, समाज अथवा घटना के संबंध में हमारे विचार हमारी बुद्धि की प्रतिक्रिया के अनुसार ही बदलते रहते है और हमारी बुद्धि सुनी सुनाई ऐतिहासिक घटना एवं चेतन प्रत्यक्षीकरण के आधार पर प्रभावित होती है। विभिन्न समाज मनोविज्ञानी इस प्रकार की प्रतिक्रिया को पूर्वाग्रह कहते हैं। इसमें हम किसी भी व्यक्ति अथवा घटना को हम सत्यता से परे करते हुए इस प्रकार से देखते हैं जो हमें हमारी बुद्धि हमारे विचारों के आधार पर उसे मानने को बाध्य करती है। सम्भवतः वह विचार हमारी मौलिकता की अपेक्षा किसी ओर से भी प्रभावित हो सकते हैं। अरुण कुमार सिंह अपनी किताब 'समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा' के अंतर्गत इस संबंध में विभिन्न समाज मनोवैज्ञानिकों के विचारों को इकट्ठा कर कहते हैं कि

“समाज मनोवैज्ञानिकों ने पूर्वाग्रह को एक तरह की मनोवृत्ति माना है। परन्तु कुछ लोगों ने इसे स्वीकारात्मक मनोवृत्ति माना है तथा कुछ लोगों ने इसे नकारात्मक मनोवृत्ति माना है। जैसे—बेरान तथा बर्न और मेयर्स ने इसे सिर्फ नकारात्मक मनोवृत्ति माना है जबकि सेकर्ड तथा बेकमैन और फेल्डमैन ने इसे नकारात्मक मनोवृत्ति के अलावा स्वीकारात्मक भी मनोवृत्ति भी माना है। नकारात्मक मनोवृत्ति के रूप में पूर्वाग्रह होने पर व्यक्ति दूसरे समूह के सदस्यों के प्रति घृणा दिखनाता है एवं विवेकहीन विचारों को व्यक्त करता है। स्वीकारात्मक मनोवृत्ति के रूप में पूर्वाग्रह होने पर व्यक्ति दूसरे समूह के सदस्यों के प्रति अत्यधिक स्नेह एवं प्यार दिखनाता है तथा परिस्थिति विपरीत होने पर भी विवेकपूर्ण विचारों को ही व्यक्त करता है।” (सिंह 179)

कहने का तात्पर्य यह कि पूर्वाग्रह किसी भी व्यक्ति, धर्म, समाज, घटना इत्यादि के प्रति हमारी मानसिकता का वह प्रदर्शन होता है जो उसके प्रति

हमारी बुद्धि हमें मानने को बाध्य करती है। लेखक अब्दुल बिरिस्मिल्लाह ने भी अपनी कहानी संग्रह 'शादी का जोकर' नामक किताब में इसी प्रकार की मनोवृत्ति का वर्णन कर समाज के समायिक हालातों का स्टीक वर्णन किया है। वह कहते हैं कि

“मगर भाई, ई तो हद है। इत्ता-सा बच्चा भला बम क्या जाने? अउर कहा जा रहा है कि इसकी कमर में कूबड़ नहीं, ऊ तो बम रहा।” एक ने कहा तो दूसरे ने जड़ा-

“पन्द्रा-सोला साल का बच्चा अब बच्चा नहीं होता। तुम अपने ज़माने की बात छोड़ो।”

“मगर ऊ लोग तो कह रहे हैं कि ई कई बरस से उनके गिरोह में काम कर रहा था।”

“तो क्या हुआ? देखते नहीं क्या, कि पूरा का पूरा बाज़ार असलहों के खिलौनों से भरा पड़ा है और माँ-बाप अपने छोटे-छोटे बच्चों को ऐसे खिलौने लाकर दे रहे हैं।”

“मगर वो तो खिलौने हैं।”

“अरे भाई, बच्चे इसी तरह बिगड़ते हैं। वो खिलौने से शुरू करके असली असलहों तक पहुँच जाते हैं।” (बिरिस्मिल्लाह 72)

कहने का भाव यह कि लेखक ने यह जताने का प्रयास किया है कि जब हमारी मनोवृत्ति ही किसी के भी प्रति नकारात्मक रूप में बदल जाती है तो फिर उसके प्रति दिये गये तर्क हमें उससे बाहर नहीं निकाल सकते।

साम्प्रदायिकता के संबंध में भी समाज में यही बात एक कलंक के रूप में लोगों के मन में विद्यमान है। यह शब्द स्वयं में ही इतना भयावह एवं सामाजिक कल्याण हेतु दर्दनाक है कि सामाजिक विकास इसकी चुंगल से नहीं छूट सकता। दरअसल मनोवृत्ति की विकृति समाज के विकास की अटल रुकावट है। इस बात से सभी ज्ञातव्य हैं कि समाज में विभिन्न प्रकार के धर्म,

जाति, नियम, कायदे-कानून हैं जो समाज को सही दिशा में ले जाने हेतु पर्याप्त हैं किन्तु लोगों ने सभी को सर्वस्व मानने के अपेक्षा अपने-अपने धर्म, जाति, समुदाय इत्यादि को ही सर्वस्व मानना शुरू कर दिया और उसी के प्रति अपने नियम एवं कायदे-कानून बना उसी की राह पर चलने लगे। उन्होंने अपना ही एक खास समुदाय बना लिया। उसके प्रति किसी भी प्रकार की नाकारात्मक मनोवृत्ति से वह परहेज करने लगे। अरुण कुमार सिंह अपनी किताब 'समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा' में साम्प्रदायिकता के संबंध में कहते हैं कि

“साम्प्रदायिकता अपने ही धार्मिक तथा जातीय समूह के प्रति एक तीव्र निष्ठा की भावना है। साम्प्रदायिकता के कारण व्यक्ति अपने सम्प्रदाय या जातीय एवं धार्मिक समूह को अधिक महत्त्व देता है और अन्य समाजों एवं राष्ट्रों के हितों की अवहेलना करता है। जब एक समुदाय के सदस्य दूसरे समुदाय के सदस्यों एवं धर्म के विरुद्ध विरोध करता है, तो उन्हें साम्प्रदायिक कहा जा सकता है।” (सिंह 197)

लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह अपनी किताब 'शादी का जोकर' में 'नदी किनारे शाम' नामक कहानी में साम्प्रदायिकता से संबंधित घटना का वर्णन करते हैं कि

“सब्जी के दाम बहुत बढ़ गए हैं। अम्माँ कहती है कि हफ्ते में अब सिर्फ तीन रोज़ सब्जी बनेगी।”

“क्यों? क्या खेतों में सब्जी अब कम पैदा होने लगी है?”

“नहीं बाबा, सब्जी तो खेतों में खूब पैदा होती है, मगर वह शहर की दुकानों में चली जाती है।”

“फिर दुकानदार उसे मँगा क्यों बेचते हैं?”

“कहते हैं पंजाब में आतंकवाद चल रहा है।”

“क्या मतलब?”

बूढ़ा चौंक गया। उसने पंजाब का नाम तो सुना था मगर इस रूप में नहीं कि वहाँ कोई आतंकवाद भी चलता है। और वह ससुरा इतना खतरनाक है कि उसके चलने से सब्जी तक महँगी हो जाती है।” (बिस्मिल्लाह 125)

पात्रों के माध्यम से इस प्रकार का संवाद सामाजिक वातावरण पर प्रश्न चिह्न है जो यह दर्शाता है कि समाज के हालात सही नहीं हैं। किसी एक राज्य अथवा प्रांत का नाम लेकर उसके नकारात्मक पक्ष को लेकर लेखनी चलाना अत्यंत जोखिम का कार्य है। किन्तु यह एक विडम्बना ही है कि एक जन साधारण की बीमार मानसिकता अथवा मनोवृत्ति पूरे समाज के अस्तित्व को खतरे में डाल रही है। लेखक ने फिर भी इसका चित्रण कर अपनी निर्भयता के साथ साथ अपनी साकारात्मक दृष्टिकोण का सबूत दिया है कि समाज को सुन्दर व स्वस्थ रखना प्रत्येक नागरिक ही जिम्मेदारी है। इस प्रकार के चित्रण से प्रत्येक नागरिक एक तरफ तो समसामयिक वातावरण से परिचित होने के साथ-साथ कम से कम सुधारात्मक प्रवृत्ति तो अपना ही सकता है। क्योंकि इस प्रकार की कहानी प्रकाशित होने के पश्चात् सामाजिक धरोहर के रूप में गिनी जाती है। हालाँकि है तो लेखक की मानसिकता का प्रदर्शन ही। किन्तु समाज की दुर्दशा का साफ-साफ आइना दिखाता हुआ। अब इस प्रकार की रचनाओं को आधार बना ही समाज कल्याण संभव है।

समूह व्यवहार का समाज पर असर: -

‘समाज’ शब्द की परिभाषा के अनुसार व्यक्तियों के आपसी संबंधों एवं कार्यों की लड़ी को हम ‘समाज’ कहते हैं। इसमें हम देखते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का किसी भी घटना अथवा अन्य व्यक्ति के प्रति अपना एक व्यवहार होता है। जिसमें समयानुसार एवं परिस्थिति अनुसार बदलाव होता रहता है। आपसी सामाजिक जरूरतों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों के साथ समन्वय बनाना पड़ता है। जिस कारण उसे कभी कभी अपने व्यवहार में नकली रूप से बदलाव कर उनका सहयोग देना पड़ता है। जैसे अक्सर घरों में माता-पिता को अपने बच्चों की जरूरतों एवं जिद्द के आगे अपने व्यवहार में परिवर्तन कर उनके साथ चलना पड़ता है। बहुत बार स्वयं की मनोवृत्ति एवं

व्यवहार को त्याग कर रिश्तेदारों के संग मिलकर उनके व्यवहार के अनुसार कार्य करने पड़ते हैं। इस प्रकार के व्यवहार को समूह व्यवहार कहते हैं। रवीन्द्र नाथ मुकर्जी अपनी किताब 'सामाजिक मनोविज्ञान की रूपरेखा' में इस प्रकार के व्यवहार के संबंध में कहते हैं कि

“व्यक्ति के जीवन के दो प्रमुख पक्ष हैं— एक तो व्यक्तिगत जीवन और दूसरा सामूहिक जीवन। व्यक्तिगत जीवन से संबंधित जिन व्यवहारों को व्यक्ति निष्पक्ष करता है, उन्हें आमतौर पर वैयक्तिक व्यवहार की संज्ञा दी जाती है, जबकि अन्य लोगों के साथ मिलकर किये जाने वाले कार्यों, अर्थात् सामूहिक जीवन से संबंधित व्यवहारों को सामूहिक व्यवहार कहते हैं। इस प्रकार सामूहिक व्यवहार किसी न किसी समूह की सदस्यता की ओर संकेत करता है। यह देखा गया है कि जब व्यक्ति स्वयं स्वतंत्रता पूर्वक व्यवहार करता है तो उसका व्यवहार जिस प्रकार का होता है, उस प्रकार का व्यवहार वह उस समय नहीं करता है जबकि वह समूह के अंदर होता है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति का सामूहिक व्यवहार उसके वैयक्तिक व्यवहार से अलग तरह का होता है।” (मुकर्जी 286)

कहने का तात्पर्य यह कि समाज में रहते हुए व्यक्ति की यह एक प्रकार से समस्या भी है और जरूरत भी। क्योंकि इस प्रकार के व्यवहार के बिना व्यक्ति का समाज में अस्तित्व कायम रखना मुश्किल हो सकता है। किसी न किसी कारणवश व्यक्ति को यह व्यवहार करना ही पड़ता है। सामूहिक व्यवहार में अक्सर व्यक्ति के स्वयं के निर्णय पर एक प्रकार से रोक लग जाती है। पूरा समूह जिस तरफ जाने का इच्छुक होता है। उस व्यक्ति को भी उधर ही जाना पड़ता है। चाहे उसकी इच्छा हो अथवा न हो।

सामाजिक अथवा सामूहिक संघर्ष: -

बहुत पुरानी कहावत अक्सर सुनने में आती रहती है कि बूंद बूंद से सागर भरता है। किन्तु बूंद का अपना एक महत्त्व होता है और समुद्र का अपना। बिल्कुल उसी प्रकार मनुष्यों से मिलकर समाज बनता है किन्तु मनुष्य का अपना एक कार्य होता है और समाज का अपना एक अलग कार्य होता

है। किन्तु जब किसी भी एक पूरे वर्ग का एक लक्ष्य हो तो उसे सामूहिक कार्य कहते हैं। एक प्रकार से यह सामूहिक व्यवहार का ही दूसरा रूप है। सामूहिक व्यवहार का अर्थ ही यह है कि किसी भी एक मुद्दे पर मनुष्यों के किसी एक वर्ग की सहमति। इस संबंध में रवीन्द्र नाथ मुकर्जी अपनी किताब 'समाजिक मनोविज्ञान की रूपरेखा' में कहते हैं कि

“मोटे तौर पर जब दो या दो से अधिक व्यक्ति एक दूसरे को प्रभावित करते हुए क्रिया करते हैं तो उसे सामूहिक क्रिया या व्यवहार कहते हैं। और भी स्पष्ट शब्दों में सामूहिक परिस्थिति में व्यक्तियों के 'एकसाथ' सम्मिलित आचरण या क्रिया को सामूहिक व्यवहार कहते हैं। 'एकसाथ' का यह अर्थ नहीं कि सभी व्यक्ति शारीरिक रूप से एकसाथ, एक स्थान पर उपस्थित हों। मनोवैज्ञानिक तौर पर यदि एकाधिक सदस्य, चाहे वह एक दूसरे से दूर ही क्यों न हों, एक दूसरे को प्रभावित करते हुए क्रिया करते हैं तो उसे सामूहिक व्यवहार की संज्ञा ही दी जाएगी।” (मुकर्जी 286)

यही सामूहिक व्यवहार जब स्वयं को एक दूसरे से मुकाबले की भावना में सराबोर कर लेता है तो इसके व्यवहार में बदलाव आ जाता है। संसार में प्रत्येक मनुष्य एक से बढ़कर एक कार्य करना चाहता है। प्रतिस्पर्धा की भावना से आगे निकलना चाहता है। किन्तु जब एक पूरा वर्ग किसी खास कार्य हेतु समाज में संलग्न हो तो दूसरे वर्ग से उसकी होड़ लगी रहती है तब वहाँ इसी सामूहिक व्यवहार में एक प्रकार की स्पर्धा उत्पन्न होती है; एक टकराव पैदा होता है। जिसे सामूहिक संघर्ष कहा जाता है।

दूरदृष्टि से यदि देखा जाए तो यह समाज में एक प्रकार से विकासात्मक प्रवृत्ति की ओर उन्मुख होता हुआ नजर आता है। एक दूसरे से आगे बढ़ने की फिराक में अप्रत्यक्ष रूप से कुछ न कुछ नया होता रहता है। किन्तु बहुत बार इससे विरोधाभास के कारण समाज को नुकसान भी उठाना पड़ सकता है। अकसर इस प्रकार का कार्य सरकार बनाने अथवा चुनावों के दौरान देखने को

मिलता है। जो कि अकसर सत्ता प्राप्ति की ओर इंगित होता है। इस संबंध में अरुण कुमार सिंह अपनी किताब 'समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा' में कहते हैं

“किसी तरह के सामाजिक संघर्ष में सामाजिक सत्ता सम्मिलित होता है। इस प्रकार की सत्ता का प्रयोग करके प्रत्येक समूह अपना-अपना लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है। परिणाम यह होता है कि जिसकी सत्ता अधिक शक्तिशाली होती है, वह जीत जाता है अर्थात् लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है तथा जिसकी सत्ता कमजोर होती है, वह लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल रह जाता है।” (सिंह 505)

सामाजिक परिवर्तन: -

मानव जाति के आपसी संबंधों एवं समन्वय की प्रक्रिया को 'समाज' की संज्ञा दी जाती है। मानवीय व्यवहार एवं सामाजिक व्यवहार एक दूसरे के पूरक माने जाते हैं। जब कभी भी मानवीय व्यवहार में परिवर्तन आता है तो उससे समाज प्रभावित होता है। और जब कभी सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन आता है तो उससे मानव प्रभावित हो जाता है। कहने का भाव यह कि इन दोनों की क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ सम्पूर्ण सामाजिक ढाँचे पर असर पड़ता है। वैसे तो समाज में यह प्रक्रिया बहुत धीरे-धीरे चलती है। किन्तु फिर भी सामाजिक ताना-बाना प्रभावित होता है। धीरे-धीरे चलती इस प्रक्रिया से समाज में परिवर्तन आता रहता है। पुरानी चीजे खत्म होती हैं और नई आती हैं।

वैसे तो इसे भारतीय समाज की विडम्बना ही कहेंगे कि भारतीय लोग अपने ही समाज में बदलाव की भावना रखे हुए हैं और वह भी बिना किसी ठोस सबूत के, यह मानव जाति की केवल बीमार मानसिकता का ही परिणाम है। केवल अपनी जिन्दगी को आनन्दमयी बनाने हेतु और वह भी नहीं मालूम कि हम सही जा रहे हैं या गलत, अपनी ही जड़ों को काट रहे हैं।

वैसे तो समाज में नित नये प्रयोगों एवं तकनीकी के माध्यम से बदलाव वांछनीय है किन्तु वह उस हद तक ही संभव है जिस हद तक हम उसे सहन कर पायें। यदि हम अपने जीवन के आधार को ही खत्म कर देंगे तो कहने

सुनने में बदलाव तो जरूर मिलेगा किन्तु हमारा अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। इसे हम बुद्धिमानी नहीं मूर्खता कहेंगे। अरुण कुमार सिंह अपनी किताब 'समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा' में इस सामाजिक बदलाव अथवा सामाजिक परिवर्तन के संबंध में चिंतित होते हुए उसके कारणों पर चर्चा करते हुए कहते हैं कि

“सामाजिक परिवर्तन पर सांस्कृतिक कारकों का भी प्रभाव पड़ा है। अध्ययनों से पता चला है कि भौतिक तथा अभौतिक दोनों तरह के सांस्कृतिक तत्वों का प्रभाव सामाजिक परिवर्तन पर पड़ते हैं संस्कृति में परिवर्तन का असर सामाजिक मूल्यों तथा सामाजिक संबंधों पर सीधा पड़ता है। भारतीय संस्कृति में परिवर्तन हो जाने से अब समाज में बड़े-बूढ़ों की कोई इज्जत नहीं करता है जबकि एक समय ऐसा भी था जहाँ इन लोगों की आज्ञा का पालन परिवार का प्रत्येक सदस्य सहर्ष करता था। इतना ही नहीं, आधुनिक भारतीय लड़कियों के पोशाक एवं फैशन आदि में इतनी आकर्षकता बढ़ गयी है कि लैंगिकता जैसे व्यवहारों में पहले की तुलना में काफी उत्तेजनशीलता आ गयी है। मानवशास्त्रियों के अध्ययनों से यह पता चला है कि सांस्कृतिक विभिन्नता एवं परिवर्तन से सामाजिक रीति-रिवाजों, मानकों, विश्वासों में काफी अंतर हो जाते हैं। जिनसे सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया तेजी से होती है।” (सिंह 599)

सामाजिक परिवर्तन की यही बात एक दूसरे संदर्भ में गाँवों और शहरों के मध्य भी निकलकर बाहर आती है। एक जगह से दूसरी जगह अथवा परिस्थितियों के बदलाव से व्यक्ति में भी एक प्रकार से मनोवैज्ञानिक बदलाव आ जाता है जो सामाजिक परिवर्तन एवं बदलाव का कारण बनता है। अरुण कुमार सिंह अपनी किताब 'समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा' में व्यक्ति के इस प्रकार के मनोवैज्ञानिक कारकों के संबंध में कहते हैं कि

“समाज मनोवैज्ञानिकों का मत है कि समाज में लोगों में व्याप्त कुंठा, प्रतियोगिता, सहकारिता, उत्सुकता, नवीनता आदि की प्रवृत्तियों से सामाजिक परिवर्तन तेजी से आता है। इन मनोवैज्ञानिक कारकों के

कारण सामाजिक संबंधों एवं उनकी संरचनाएँ काफी परिवर्तित हो गये हैं। नवीनता एवं उत्सुकता की तीव्र प्रवृत्ति के कारण आधुनिक समाज के सामाजिक मूल्यों में भी काफी परिवर्तन आ गये हैं। शायद यही कारण है कि आधुनिक रहन-सहन वाले एक परिवार के प्रति समाज के व्यक्तियों की मनोवृत्ति पारस्परिक रहन-सहन वाले एक परिवार के प्रति मनोवृत्ति से भिन्न होती है।” (सिंह 600)

लेखक ने अपनी रचनाओं में भिन्न-भिन्न स्थानों पर इस प्रकार की परिस्थितियों का वर्णन किया है जिनसे अमुक व्यक्तियों की मनोवैज्ञानिक कारणों से संबंधित एवं प्रभावित सामाजिक परिवर्तन का ज्ञात होता है। लेखक अब्दुल बिस्मिल्लाह अपनी किताब ‘रफ रफ मेल’ में ‘गृह प्रवेश’ नामक कहानी में अपने पात्रों के माध्यम से इस प्रकार का वर्णन कर कहते हैं कि

“जैसे-जैसे दिन बीते, उनकी यह लालसा जाती रही कि वे रिटायर होने के बाद अपने गाँव चले जाएँगे। अब उन्होंने महसूस किया कि गाँव में कुछ धरा नहीं है। न शिक्षा न रोज़गार। न यातायात के साधन न दवा-दारू। शहर आरि़वर शहर है। अब शेष जीवन भी यहीं रहकर काट लिया जाय और बच्चों को आदमी बनाया जाय। आने वाला समय तो बच्चों का ही होगा। अपना क्या है! और त्रिपाठी जी ने एक फ़्लैट के लिए आवेदन भर दिया। किस्मत की बात, कि फ़्लैट का नंबर आ गया और वे प्रसन्न हो उठे।” (बिस्मिल्लाह 65)

प्रकृति के दो शाश्वत् नियम हैं। पहला यह कि प्रकृति में परिवर्तन अटल है और दूसरा यह कि परिवर्तन होने की प्रक्रिया अपरिवर्तन है। कितनी सुन्दर विडम्बना है कि प्रकृति के दो नियम; दोनों ही एक दूसरे से विरोधाभास रखते हुए शाश्वत् हैं। सृष्टि के यह दोनों ही नियम समाज में भी प्रासंगिक हैं जिसके आधार पर समाज में भी परिवर्तन अथवा बदलाव की प्रक्रिया निर्विध्न जारी है। मानव जन्म लेता है; नवान होते हुए बुढ़ापे तक पहुँचकर मृत्यु का ग्रास बनता है। फिर कोई नया बच्चा पैदा होता है। समयानुसार पुरानी चीज़ें खत्म होती जाती हैं और नयी पैदा होती जाती हैं। यह नियम सजीव निर्जीव

दोनों प्रकार की वस्तुओं पर लागू होता है। समाज के नियम, कायदे-कानून, रीति-रिवाज भी इसी का ही हिस्सा हैं। विभिन्न प्रकार के सामाजिक पहलू इनके बदलाव की प्रक्रिया में अपना अहम योगदान डालते हैं। लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह अपनी कहानी संग्रह 'शादी का जोकर' में इसी सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न पहलुओं का बहुत सी स्टीकता से वर्णन करते हुए कहते हैं कि

“लेकिन जमाना बदला और खूब तेजी के साथ बदला और उस बदलाव ने अपने कई-कई रंग बदले और उन रंगों से नाच गायब हुए और नौटंकियाँ गायब हुई और तमाम रीति-रिवाज गायब हो गए। यहाँ तक कि भँडैती भी गायब हो गई। भँडैती तो इसलिए गायब हुई कि बनारस के पुद्दी भाँड़ और 'करैला' और 'बताशा' जैसी नामी-गिरामी भाँड़ों की जगह अब नए-नए भँडैत पैदा हो गए। पढ़े-लिखे। सूट-टाईवाले। फिल्मों में करिश्मा दिखानेवाले। टी.वी. चैनल्स पर छा जानेवाले। प्रतिष्ठत। सेलेब्रेटी कलाकार।” (बिरिमल्लाह 68)

समाज में हो रहा इस प्रकार का बदलाव सामाजिक विकासात्मक प्रवृत्ति हेतु वांछनीय है। यदि हमारी कोई भी गतिविधि, मनोवृत्ति अथवा कार्य इसमें बाधक बनता है या इससे समन्वय नहीं बना पाता तो समाज में समस्या खड़ी हो जाती है। समाज में इस प्रकार की प्रक्रियाएँ, मनोवृत्तियाँ एवं परिस्थितियाँ समाज के लोगों के कल्याण हित एक बहुत बड़ी समस्या के रूप में विद्यमान रहती हैं। इस प्रकार की सामाजिक समस्याएँ अराजकता के साथ साथ सामाजिक पत्न का कारण बनती हैं। सामाजिक समस्याओं के संबंध में डॉ. राम आहूजा अपनी किताब 'सामाजिक समस्याएँ और सामाजिक परिवर्तन' में कहते हैं कि

“प्रत्येक समाज का ढाँचा उस समाज में रहने वालों की आकांक्षों की पूर्ती का साधन होता है। परन्तु समय के परिवर्तन के साथ साथ जब परम्परागत ढाँचा नहीं बदलता तो समाज में रहने वालों की आकांक्षाओं की पूर्ती में वह बजाए साधक होने के बाधक होने का कार्य करने लगता

है। इसलिए आवश्यक है कि बदले हुए समाज में एक बदला हुआ ढाँचा अपनाकर आवश्यक समायोजन लाया जाए। परन्तु जब परम्परा-प्राप्त मान्यताएँ समाप्त नहीं होती, पर जमी रहती हैं तो नयी आवश्यकताओं और पुराने विचारों के ढाँचे में एक दरार पड़ जाती है जो एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करती है जिसका समाज के सभी सदस्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसी परिस्थितियाँ ही सामाजिक समस्या की जन्मदाता हैं।” (आहूजा 01)

सामाजिक हिंसा, दंगे, लड़ाई: -

सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलू हैं जो नकारात्मक एवं सकारात्मक पक्ष का लेकर साथ चलते हैं। विभिन्न प्रकार के धर्म, जाति, समुदाय, नस्ल, सम्प्रदाय, नियम, कानून इत्यादि के कारण समाज में विभिन्न प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती रहती हैं। सरकारों की तरफ से चुनावों के दौरान जनता की भलाई के लिए करने वाले कार्यों के संबंध में किए गये वादे सरकार बनने के बाद जब पूरे नहीं हो पाते हैं तो जनता धरना प्रदर्शन करती है। उन्हें हटाने के लिए पुलिस कानून के तहत अपना कार्य बल पूर्वक करती है जिससे समाज के विभिन्न विकासात्मक कार्यों में रुकावट पैदा होती है। किसी भी प्रकार के धार्मिक अथवा जातीय रोष के कारण भी नकारात्मक रूप से सामाजिक कार्य प्रभावित होते हैं। यह तो सर्वविदित है कि आज हम जिस किसी भी प्रकार की आज़ादी अथवा खुशी का प्रगटावा करते हैं या आनांदित होते हैं तो उसके पीछे किसी न किसी के बलिदान, आंदोलन अथवा संघर्ष की गाथा होती है। इतिहास गवाह है इस बात का कि कोई भी अधिकार, हक अथवा खुशी किसी को भी सुलभ ही प्राप्त नहीं हुई उसके पीछे एक लम्बा संघर्ष रहा है। हमारे देश की आज़ादी के पीछे के आंदोलन एवं बलिदान के पीछे की कहानी से सभी परिचित हैं।

लेखक अब्दुल बिस्मिल्लाह जैसा कि विगत भी इस बात का वर्णन किया जा चुका है कि वह मुस्लिम धर्म से संबंधित हैं और हिन्दुस्तान में रहते हुए 'हिन्दी' भाषा के प्राध्यापक के रूप में अध्ययन और अध्यापन के कार्य में

संलग्न हैं। हिन्दु-मुस्लिम धर्म से संबंधित लोगों के अतिसंवेदनशील क्षेत्र में रहने के कारण स्वभाविक रूप से इस प्रकार की सामाजिक गतिविधियों से उनका नजदीकी का संबंध रहा है। ऐसे हालातों में लगभग उनका सारा जीवन व्यतीत हुआ है। इसका असर उनकी लेखनी पर भी पड़ा और उनकी अनेक कहानियाँ इसी सामाजिक प्रवृत्ति पर आधारित रही हैं। अपनी कहानी संग्रह 'ताकि सनद रहे' नामक किताब में उन्होंने समाज की इस नकारात्मक प्रवृत्ति का बहुत ही सुन्दरता से वर्णन किया है। इसी किताब में संग्रहित अपनी 'दंगाई' कहानी लगभग इसी पर आधारित है। इसमें वह सामाजिक आक्रोश की एक झलक पेश करते हुए कहते हैं कि "शहर में कई दिन से कर्फ्यू है। रोज़ कहीं-न-कहीं कोई-न-कोई घटना घट जाती है और दंगा पुनः भड़क उठता है। भय और आतंक के मिश्रण से एक ऐसी दूषित हवा चारों ओर बह रही है जिसके प्रभाव से पूरा वातावरण विषाक्त हो रहा है।" (बिस्मिल्लाह 30) लेखक ने जिस भी क्षेत्रिय विशेष का वर्णन किया है। इस प्रकार के चित्रण से लगता है कि एक तो उस क्षेत्र के सामाजिक हालात ठीक नहीं है और दूसरा यह कि लेखक ने ऐसे हालातों को खुद पर सहन कर इसका चित्रण कर अपनी प्रस्तुति दी है और बताने का प्रयास किया है कि इस प्रकार की घटनाएँ सामाजिक शान्ति में सबसे बड़ी रुकावट हैं।

वैसे तो प्रत्येक राज्य, प्रांत अथवा देश का अपना-अपना एक कानून, नियम, कायदे-कानून होते हैं। जो वहाँ की सामाजिक स्थिति का बनाए रखने हेतु अपनी विशेष भूमिका अदा करते हैं। किन्तु समाज में विभिन्न ऐसे असामाजिक तत्व होते हैं जो वहाँ के कानून अथवा नियमों इत्यादि को तोड़ने में अपनी विशेष भूमिका निभाते हैं। लेखक अपनी इसी कहानी संग्रह में से 'दूसरे मोर्चे पर' नामक कहानी में इसी प्रवृत्ति से संबंधित घटना एवं पात्रों का वर्णन कर कहते हैं कि

"एक्सप्रेस यहाँ रुकेगी, उसी से चले चलिए! बस पन्द्रह मिनट में आ जाएगी!" मैं आश्चर्य से उसका मुँह ताकने लगा।

"मगर उसका स्टापेज तो है नहीं यहाँ!"

“मगर हमने तो बनवा दिया न स्टापेज! इन सालों से ऐसे ही पेश आना चाहिए!”

“लेकिन कोई कानून तो है नहीं ऐसा!”

“कानून आखिर किस चिड़िया का नाम है? कानून तो वही है जो रोज बनाया जाए और रोज तोड़ा जाए। फिर यह जनकपुर का धनुष तो नहीं कि सिर्फ भगवान राम के तोड़े ही टूटेगा!”

मुझे हँसी आ गई। लेकिन खुलकर मैं हँसा नहीं। इन आधुनिक किस्म के युवकों का क्या भरोसा? अभी ठीक-ठाक बतिया रहे हैं; अभी पता चला उलझ गए।” (बिरिमल्लाह 20)

प्रस्तुत वार्तालाप सिद्ध कर रही है कि समाज में ऐसे असामाजिक तत्व सदैव ही सामाजिक माहौल को बिगाड़ने का कार्य करते हैं और दूसरी जरूरी बात कि ऐसे असामाजिक तत्वों से जन साधारण उलझने से प्रहेज ही करते हैं जो कि अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक वातावरण को नुकसान ही पहुँचाते हैं। ऐसे लोग कानून की नज़र में अपराधी बन जाते हैं और पकड़े जाने पर सजा के हकदार होते हैं। इस संबंध में डॉ. राम आहूजा अपनी किताब ‘सामाजिक समस्याएँ और सामाजिक परिवर्तन’ में कहते हैं कि

“अपराध को हम व्यावहारिक नियमों के उल्लंघन के दृष्टिकोण से और अपराधी को इन नियमों के उल्लंघन के कारण उसके व्यवित्तत्व के विकास, परिवार और समाज के ऊपर प्रभाव के दृष्टिकोण से अध्ययन करते हैं। यद्यपि अधिकांश सामाजिक नियमों के उल्लंघन के लिए कानून बना होता है। परन्तु ऐसे भी नियम हैं जिनके उल्लंघन के लिए कोई विधि विधान नहीं होता। इस कारण एक व्यवहार सामाजिक दृष्टिकोण से अपराध (अथवा नियमों का उल्लंघन) तो हो सकता है अपितु कानूनी दृष्टिकोण से नहीं। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से वह व्यवहार जो आदर्शात्मक समूहों के व्यावहारिक नियमों के अनुरूप है वह ‘सामान्य’ ‘normal’ व्यवहार है और जो नियमों का उल्लंघन करता है वह

‘समाज-विरोधी’ (anti-social) व्यवहार है और यह ही अपराध भी कहलाता है।” (आहूजा 20)

लेखक अब्दुल बिसमिल्लाह ने समाज में फैले पसरे इस प्रकार के लड़ाई दंगों को एक अलग ही दृष्टिकोण से ताकने की कोशिश की है। अपनी ‘दंगाई’ कहानी में वह कहते हैं कि

“मेरा विचार है कि अनेक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक कारणों के कारणों के फलस्वरूप एक ऐसा वर्ग इस देश में आविर्भूत हुआ है जिसकी जड़ें अन्ततः साम्प्रदायिकता के गड्ढे तक पहुँच गई है और उसके फल-फूल से पल्लवित होने वाली सन्तानें अवसर आने पर अपना चमत्कार दिखाने लगती हैं!”

“अर्थात्.....?”

“अर्थात् दंगा कोई घटना नहीं, यह एक मानसिकता है। सड़कों पर यह बात में होता है, मस्तिष्कों में सदैव रहता है। अवसर मिलते ही बाहर आ जाता है।”

“लेकिन मैं तो समझता हूँ कि हमारे देश के एक वर्ग में राष्ट्रीयता की भावना ही नहीं है। इससे भी कभी-कभी परिस्थितियाँ गड़बड़ होती है।”
(बिसमिल्लाह 31)

लेखक ने बहुत ही सुन्दर तरीके से दंगों के संबंध में अपनी सकारात्मक मनोवृत्ति का वर्णन प्रस्तुत किया है कि सही अर्थों में दंगे बाजारों में नहीं मानवीय दिमागों में होते हैं। यदि दिमाग शांत हैं तो दंगों का तो सवाल ही पैदा नहीं होता।

असल में समाज में इस प्रकार की आक्रामकता एवं हिंसा का मुख्य कारण किसी को नुकसान पहुँचाना है। उसके लिए वह शाब्दिक एवं शारीरिक किसी भी प्रकार का व्यवहार अपना सकता है और सबसे इसके लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार वह वातावरण एवं माहौल होता है जो इसके लिए तैयार किया

जाता है। यह वातावरण भी केवल किसी भी एक घटना का परिचायक नहीं होता; इसके पीछे पूरी घटनाओं की एक लड़ी जिम्मेदार होती है।

लेखक अब्दुल बिरि-मल्लाह ने अपनी 'अतिथि देवो भव' नामक कहानी संग्रह किताब में 'टिन्नु का टेलीफोन' नामक कहानी में भी इसी प्रकार की साम्प्रदायिकता का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। वह कहते हैं कि "अरे! बाहर तो वाकई बड़ी भीड़ है! आसमान में धुआँ ही धुआँ है, काला और बदबूदार! इतना काला कि चिड़िया भी काली हो गई है! बदबू इतनी कि जैसे पास ही में कहीं मुर्दा जल रहा हो।

"ये कैसा धुआँ है भाई?" भीड़ में लोग एक-दूसरे से प्रश्न कर रहे हैं।

"शहर में फसाद हो गया है।" लोग एक-दूसरे को जानकारी दे रहे हैं।

"कैसा फसाद है ये?"

"पता नहीं।"

"हिन्दू-मुस्लिम?"

"पता नहीं।"

"हिन्दू-सिख?"

"पता नहीं।"

"क्या मतलब? अबे मूरख, इतना तुझे पता है कि फसाद हो गया है, मगर यही नहीं जानता कि कैसा फसाद है.?"

"पहले तू अपनी जबान सँभाल, फिर बात कर मेरे से, समझा? फसाद तो फसाद होता है, कैसा हिन्दू-मुस्लिम और कैसा हिन्दू-सिख?"

"वैसे यार, अब हिन्दू-ईसाई भी हो ही जाना चाहिए!"

"ताकि 'हिन्दू मुस्लिम सिख ईसाई, आपस में हैं भाई भाई' की जम के ऐसी-तैसी हो जाए, क्यों?"

"वैसे यार, ये फसाद हो क्यों रहा है आखिर?"

“जा-जा, पूछ आ दौड़ के उन्हीं से, जा बेटा जा....” (बिस्मिल्लाह 132)

प्रस्तुत वार्तालाप से यह सिद्ध हो रहा है कि समाज में कुछ ऐसे असामाजिक तत्व होते हैं जो पूरे सामाजिक वातावरण को ही दूषित करते हैं। लोग भी ऐसे तत्वों से परेशान ही रहते हैं। दरअसल उन्हें तो पता ही नहीं होता है कि दंगा फसाद होता क्या है। असामाजिक तत्व भीड़ को अपना निशाना बना समाज का विनाश और अपनी सत्ता को कायम रखने हेतु ऐसे प्रयास करते रहते हैं और बहुत हद तक कामयाब भी रहते हैं।

वर्तमान सामाजिक समस्याएं:—

समाज मनुष्यों की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं की निरंतर चलने वाली प्रक्रिया का नाम है तो यह भी कहना वांछनीय है कि उनसे संबंधित समस्याएं भी निरंतर अपने स्वरूप को बदलती हुई निर्विघ्न चलती हैं। तात्पर्य यह कि जैसे-जैसे समाज की प्रवृत्ति बदलती रहती है उसी प्रकार उससे संबंधित समस्याएं भी बदलती रहती हैं। लेखक अब्दुल बिस्मिल्लाह की लेखनी तकरीबन 30 साल से निरंतर चलन में है। उनके अध्ययन से विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्याओं का विवरण उनकी कहानियों में मिलता है क्योंकि यह तो स्पष्ट रूप से सर्वविदित ही है कि साहित्य समाज का आईना होता है। तात्पर्य यह कि जो कुछ भी समाज में घटित होता है। साहित्यकार उन्हीं घटनाओं में से कुछेक का अपनी कल्पना का समावेश करा यथार्थ चित्रण करता है जिससे यह ज्ञात होता है कि किसी भी समय की कहानी सम्भवत् उस समय की किसी एक सामाजिक घटना अथवा समस्या का चित्रण होता है। संसार में जितने भी तरह के समाज रहे हैं अथवा हैं। उन सभी में समस्याएँ रही हैं और निर्विघ्न जारी हैं।

लेखक अब्दुल बिस्मिल्लाह के विभिन्न कहानी संग्रहों में विभिन्न सामाजिक घटनाओं के वर्णन हैं जो समयानुसार अपनी छवि बदलती रही हैं। आधुनिक सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में लेखक ने अपनी रचनाओं में धर्म, बेरोजगारी, अनपढ़ता, एकल परिवार, देश-विदेश का तुलनात्मक अध्ययन, राजनीति, घरों में बुर्जुगों की अपमानजनक स्थिति, गरीबी, साम्प्रदायिकता,

जनसंख्या में वृद्धि, भ्रष्टाचार इत्यादि समस्याओं के विभिन्न पहलुओं को उठाया है। अपनी कहानी संग्रह 'ताकि सनद रहे' नामक किताब में 'लफंगा' नामक कहानी में आज़ादी से पहले से लेकर आज तक बरकरार रही धर्म की समस्या के बारे में वर्णन करते हैं कि

“अभी आप लोगों ने देखा है कि किस तरह नूरे भाई की जमीन इन लोगों ने हड़पी है, फिर भी आप लोग सबक नहीं ले सके! किस-किस तरीके से तो आप लोगों ने थोड़ी-बहुत जमीन हासिल की है, और ये चाहते हैं कि वह भी इनके कब्जे में आ जाए। ताकि पुरानी जमींदारी फिर बरकरार हो जाए। आप लोग अपनी ही जमीन में इनके नौकर बनकर हल चलाएँ। मेरी समझ में नहीं आता कि इतनी सीधी-सी बात आप लोगों की समझ में क्यों नहीं आती? जहाँ मजहब की लुआठी दिखाई गई, उसकी आँच में लागे आप कबाब बनने! मैं कहता हूँ यह सब साजिश है। आप लोग अगर इसी तरह खामोश रहे तो एक रोज सबके सब इनकी गुलामी करेंगे और उस वक्त फिर कोई चारा नहीं रहेगा।” (बिरिमल्लाह 71)

इस वार्तालाप से स्पष्ट रूप से यह परिलक्षित है कि धर्म की आड़ में पनपता इस प्रकार का झगड़ा समाज में चलता तो बहुत पहले से ही आ रहा है किन्तु आज भी राजनीति एवं वोट बैंक के सेक से बुझने का नाम ही नहीं ले रहा है। भारत एक बहुत बड़ा लोकतान्त्रिक देश है इसमें प्रत्येक चुनावों में धर्म, जाति एक बहुत बड़ा मुद्दा बन कर राजनीतिक पार्टियाँ अपने वोट बैंक को लुभाने हेतु एक बहुत बड़ा मुद्दा बनाकर चलती हैं जिससे यह मुद्दा खत्म होने की अपेक्षा लोगों के मन में कड़वाहट भरता हुआ फैलता ही जा रहा है।

बदलते सामाजिक दायरे एवं हालातों ने मानवीय मानसिकता को भी विकास की आड़ के बहाने नकारात्मक प्रवृत्ति की ओर धकेल दिया है। आज की पीढ़ी अपने बड़े-बुर्जुओं का मान-सम्मान एवं देखभाल करने की प्रवृत्ति से पूर्णतः ही निपटने को अमादा है। अत्यंत एवं विभिन्न प्रकार की भयावह तथा भयंकर स्थितियों से अपनी औलाद को पालने वाले बुढ़े माता-पिता सदैव इस

बात आशा रखते हैं कि बुढ़ापे में यही हमारा सहारा बनेगे। किन्तु औलाद उन्हें देखना भी गंवारा नहीं समझती। यह समस्या आज के युग की बहुत ही दर्दनाक एवं निचने स्तर की समस्या है जो एक प्रकार से सामाजिक समस्या होने के साथ-साथ नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों पर भी प्रश्न खड़ा करती है। लेखक की इस प्रकार की लेखनी समाज में धीरे-धीरे पल बढ़ रही इस सामाजिक समस्या का बहुत ही जिन्दा एवं बेहतरीन उदाहरण के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित है जो बदलती मानसिकता को उधेड़ कर रख रही है।

शहरों एवं गाँवों के आपसी संबंधों में भी जो एक बहुत बड़ा अंतर देखने में आ रहा है। यह भी आधुनिक युग की एक बहुत बड़ी समस्या है। जो गाँव शहर से बहुत दूर जाकर बसे हुए हैं। वहाँ की उनकी सामाजिक दशा अन्य शहरों से बहुत ज्यादा निचले स्तर की है। ऐसे गाँव वासियों को तो अपने जीने के उद्देश्य से भी वंचित हैं। हालाँकि आजादी के बाद से तो प्रत्येक क्षेत्र में बहुत बड़ी तबदीली आई है। किन्तु फिर भी जो आधारभूत अंतर है वह तो उसी प्रकार बरकरार है। कहने का अर्थ यह कि जैसे यह सुनने में आता है कि आज अमीर और अमीर होता जा रहा है तथा गरीब और गरीब होता जा रहा है। उसी प्रकार जो गाँव शहरों के करीब हैं वह तो विकसित हो रहे हैं। किन्तु दूर के गाँव जीवन की प्रत्येक सहूलियत से वंचित हैं।

समाज में इस प्रकार का अंतर देश के विकास में सबसे बड़ा रोड़ा है जिससे कभी भी पार नहीं किया जा सकता अथवा हटाया नहीं जा सकता। लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह ने अपनी किताब 'अतिथि देवो भव' में 'ग्राम-सुधार' नामक कहानी में इसी प्रकार के अंतर को दिखाया गया है कि कैसे इसमें भोले भाले लोगों को आपस में धर्म, जाति एवं सुविधायों के नाम पर आपस में लड़ा कर उनका फायदा उठाया जा रहा है। कैसे यह लोग आधुनिक सहूलियतों से वंचित है।

“इस गाँव के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती था और ये सारे लोग मूलतः किसान थे। ये खुद हल जोतते और फसल काटकर अपने घरों में लाते इनमें से किसी के पास कोई हलवाहा या नौकर नहीं था। इनकी

स्त्रियाँ भी खेतों में जमकर काम करती थीं और अपने पशुओं के लिए चारे आदि का प्रबंध किया करती थीं।

चूँकि गाँव बहुत छोटा था और काफी इंदीरियर में बसा था, इसलिए देश-दुनिया के उत्थान और विकास का प्रभाव यहाँ बिल्कुल नहीं पड़ा था। इस गाँव से शहर बहुत दूर था। हाँ वहाँ तक पहुँचने के लिए इनके पास कोई साधन नहीं था। हाँ, कुछ कम दूरी पर एक बाजार अवश्य था जहाँ इस गाँव के लोग वर्ष-भर में एकाध बार किसी तरह पहुँचा करते थे और अपनी जरूरत की चीजे ले आते थे। इनके बाजार करने का विशेष महत्त्व गर्मियों में होता था, जब ये चौमासे के लिए इकट्ठा नमक और मिट्टी का तेल खरीदकर बाजार से लाया करते थे। जिस रोज इन्हें बाजार जाना होता, उससे एक रोज पहले से ही यह उसकी तैयारी में जुट जाते थे। नहाना-धोना, बदन में तेल लगाना.....और फिर सुबह-सवेरे सज-धजकर कंधों पर काँवर लेकर और उनमें शीशियाँ, डिब्बे, झोले तथा अपने चमरौधे लटकाकर बाजार के लिए चल पड़ते थे।” (बिरिमल्लाह 118)

प्रस्तुत विवरण में स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा है कि आधुनिक समय एवं समाज में इस प्रकार के गाँव का होना स्वयं में ही एक सामाजिक समस्या है। यदि हमारे समाज में आज भी ऐसी परिस्थितियाँ हैं तो कदाचित् हम कभी भी आगे तरक्की नहीं कर पायेंगे। क्योंकि ऐसी परिस्थितियों में पल-बढ़ रहे लोगों की मानसिकता भी ऐसी ही रहेगी जिसे हम पछड़ी श्रेणी की कहेंगे तो फिर ऐसी सोच के साथ हम कैसे आधुनिक हो पायेंगे? कैसे हम बढ़ते समाज के साथ चल पाएँगे?

हड़तालें भी आधुनिक युग की एक ऐसी समस्या है जिससे समाज एवं लोगों का नुकसान ही होता है। दूसरी ओर हड़तालें यह भी सिद्ध करती हैं कि हमारा प्रबंधकीय ढाँचा भी फेल है। प्रबंधकीय ढाँचे में हमारा प्रशासन, सरकार इत्यादि शामिल होते हैं तो उन पर भी प्रश्न चिह्न खड़ा होता है। कहने का तात्पर्य यह कि एक सामाजिक समस्या से सारा समाज प्रभावित होता है।

लेखक अपनी कहानी संग्रह 'अतिथि देवो भव' नामक किताब में संकलित कहानी 'यह कोई अंत नहीं' में हड़ताल से संबंधित स्थिति को अपने पात्रों के माध्यम से सामने रखते हुए कहते हैं कि

“और एक दिन सारे-के-सारे कारखानेदार शहर पहुँच गए।

खबर!

बीड़ी बनानेवाले ग्रामीण मजदूरों ने हड़ताल कर दी है।

उनकी माँग है कि मजदूरी की दर बढ़ाई जाए। तीन रुपया से पाँच रुपया फी हजार की जाए। अनावश्यक कटौती बंद की जाए। क्षति-पूर्ति के लिए पत्ता अथवा तंबाकू की बाजार दर लगाई जाए।

कैसे हुआ यह?

आज तक तो कभी नहीं हुआ ऐसा?

हानी अब्दुल गफूर साहब सकते में आ गए। बीड़ी का कारोबार शुरू किए पचीसों साल हो गए उन्हें, पर ऐसी अनहोनी बात कभी नहीं सुनाई पड़ी अचानक यह विद्रोह आखिर क्यों हुआ? यह दिमाग आखिर कहाँ से आया?”
(बिस्मिल्लाह 97)

लेखक की इस कहानी में हड़ताल के इस भाग से पूरा गाँव प्रभावित होता है। लोग भूखों मरने की स्थिति में पहुँच जाते हैं। कहने का भाव यह कि ऐसी समस्याओं के कारण समाज में हालात पकड़ से बाहर हो जाते हैं। अरुण कुमार सिंह अपनी किताब 'समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा' में कहते हैं कि “सामाजिक समस्या एक ऐसी स्थिति होती है जिसे समाज का एक खंड या एक बड़ा भाग प्रभावित होता है तथा जिनके हानिकारक परिणाम होते हैं एवं जिनका मात्र सामूहिक रूप से ही समस्या का समाधान संभव है।” (सिंह 666) वैसे तो इस प्रकार की सामाजिक समस्याओं के विभिन्न ऐसे कारक अथवा कारक हैं जो ऐसी समस्याओं के लिए पूर्णतः जिम्मेदार हैं। अनपढ़ता, गरीबी, अज्ञानता, पैसा, बीमार मानसिकता, कट्टरता, पागलपन इत्यादि ऐसे कारक है

जो समाज में सदैव ही नकारात्मक प्रवृत्ति पैदा कर सामाजिक वातावरण को लोगों के प्रतिकूल बनाने में अमादा रहते हैं। किन्तु यह भी सर्वविदित है कि जहाँ भी कोई समस्या होती है उसका समाधान भी उसके आसपास ही होता है। उपर्युक्त कारकों को यदि धीरे धीरे कम करते हुए उन पर चाहे किसी भी सामाजिक दायरे की ओर से उस पर पकड़ बना ली जाए तो ऐसी विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर काबू पाया जा सकता है।

सारांश: -

‘समाज मनोविज्ञान’ जैसा कि नाम से ही ज्ञात हो रहा है कि व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में करना। अब देखने सुनने में तो यह एक वाक्य है। किन्तु इसका कार्य क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। यह तो ज्ञातव्य है कि मानवीय मन सदैव जिज्ञासु प्रवृत्ति का रहा है। जिसकी शान्ति हेतु हुए कार्यों ने एक विकास की कड़ी का कार्य किया। जैसे-जैसे कार्यों में वृद्धि होती जा रही है वैसे ही उससे आगे की अशांत भूख अपना असर दिखाती हुई बढ़ती जा रही है। जिसके फलस्वरूप कार्य और आगे बढ़ते एवं उलझनों से भरपूर होते जा रहे हैं। फिर उसे पूरा करने की भूख रहती है। तात्पर्य यह कि कार्य और जिज्ञासा एक दूसरे के साथ पूरक का कोण बनाती हुई चली जा रही है और कदाचित्त यह शांत भी न हो। क्यों? क्योंकि जिज्ञासा एक प्राकृतिक गुण है जिस पर काबू पाना मानवीय प्रवृत्ति के वश में नहीं। इसलिए यह कार्य दिन-ब-दिन आगे बढ़ते रहेंगे और जिज्ञासा शांत होने को लालायित रहेगी।

मानवीय व्यवहार का सामाजिक कार्यों के अंतर्गत अध्ययन करना प्रतिदिन की समस्या है क्योंकि विगत भी इस बात का वर्णन किया जा चुका है कि मानवीय जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण सामाजिक ताना-बाना उलझता ही जा रहा है जिससे मानवीय व्यवहार में भी परिवर्तन आता जा रहा है। यह सिलसिला निरंतर है। साहित्य ने इस कार्य को एक तस्वीर के रूप में समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है। जिससे जन साधारण को यह बात स्पष्ट हुई है कि समाज में हमारा यथार्थ चित्रण क्या है। विकासोन्मुखी प्रवृत्ति वाले लेखकों ने

अपनी कलम अथवा लेखनी से ऐसे वातावरण को उसी के हाल पर न छोड़ते हुए उसमें सुधार की गुंजाइश को स्थान दिया है। लेखक अब्दुल विस्मिल्लाह ने अपनी लेखनी में धर्म, रूढ़ियुक्तियों, दास्य जीवन, भ्रष्टाचार, सांस्कृतिक कुरीतियों, पति-पत्नी के झगड़े, वेश्यावृत्ति, दंगे, साम्प्रदायिकता इत्यादि जैसे विभिन्न मुद्दों पर वर्णन करते हुए सुझावों को भी जो स्थान दिया है। वह स्वयं में ही एक सराहनीय कार्य है। यह भावी पीढ़ियों के लेखकों एवं शोधकर्ताओं के लिए अन्धेरे में एक ज्योति का कार्य है।

अध्याय पांच

5. अब्दुल बिरिमल्लाह के कथा-साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन

5.1 उपन्यास साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन:

मानव की जिज्ञासु प्रवृत्ति ने मानवीय जाति के साथ-साथ अन्य क्षेत्रों में भी अपनी तृप्ति हेतु अनेक ऐसे सराहनीय कार्य किये हैं जिनके कारण आज मानवजाति विभिन्न क्षेत्रों में अद्भुत तरक्की की राह पर चलने को अग्रसर है और इस जिज्ञासु प्रवृत्ति ने आशा की किरण आगे भी बाँध रखी है। मानव ने स्वयं को एवं सामाजिक को समझने परखने हेतु विभिन्न विषयों का निर्माण किया है और उसमें निरंतर खोजें जारी भी हैं। 'मनोविज्ञान' एक ऐसे विषय के रूप में प्रस्तुत हुआ है, जिसका सारांश ही 'मानवीय व्यवहार को समझना' है। अपने इस व्यावहारिक सिद्धांत के कर्मानुसार ही वह दिन-ब-दिन तरक्की की राह पर है। इस विषय ने अपने कार्यक्षेत्र को आगे परवान चढ़ाते हुए अपनी शाखाएँ विभिन्न क्षेत्रों तक भी पहुँचा दी हैं। आज समाज के प्रत्येक क्षेत्र में इस विषय ने अपनी अहमियत को दर्ज करवा दिया है। समाज का प्रत्येक क्षेत्र अपने हिस्से की समस्याओं के हल अथवा समाधान प्रति इस विषय की ओर आस की दृष्टि लगाए हुए है और खुशी की बात देखिए कि यह विषय उनकी समस्याओं के समाधान की कसौटी पर पूरा उतर रहा है।

साक्षात् अथवा प्रत्यक्ष रूप से नजर आ रहे व्यवहार का आंकलन साथ ही साथ अप्रत्यक्ष रूप से निरीक्षित किए गये व्यवहार के आंकलन के लिए मनोविज्ञान विषय का सहारा लिया गया। किन्तु कुछ मनोवेज्ञानिकों ने अपनी जिज्ञासा प्रवृत्ति की तृप्ति को शांत करते हुए इससे भी आगे कार्य करने की सोची। उस पर दिन रात प्रयोगात्मक विधि से मेहनत कर मानवीय व्यवहार में उन छिपे हुए पहलुओं को भी खोज निकाला जो कदाचित् किसी समय असंभव नजर आते थे। मनोवेज्ञानिकों ने व्यक्ति के व्यवहार के साथ ही उसके मन में चल रहे उन रहस्यों, उन व्यवहारों, उन विचारों को ढूँढने का प्रयत्न किया जो

मानव स्वयं प्रकट करने में संकोच महसूस करता है। कहने का तात्पर्य यह कि मनोवैज्ञानिकों ने उन बिन्दुओं को खोज निकाला जो व्यक्ति को स्वयं भी नहीं मालूम थे कि वह बिन्दु उसके मन के भीतर चल रहे हैं; कार्य कर रहे हैं, कार्यों को प्रभावित कर रहे हैं। मनोवैज्ञानिकों ने मानव के मन के विभिन्न हिस्सों पर कार्य किया और सबूतों के साथ यह सिद्ध करने में कामयाब हो गये कि व्यक्ति का मन उस समय भी काम में संलग्न रहता है जब व्यक्ति सो रहा होता है अथवा जब उसका ध्यान किसी खास कार्य की ओर नहीं होता। तब भी मन के अर्धचेतन एवं अचेतन भाग में कुछ-न-कुछ चल रहा होता है। वह किसी न किसी कार्य के प्रति सुचेतता से कार्य कर रहा होता है।

मनोविश्लेषण: -

‘मनोविश्लेषण’ प्रसिद्ध मनोविज्ञानी सिगमंड फ्रायड का मानवीय व्यवहार और उस व्यवहार के अंतर्गत किये गये कार्यों के प्रति शक्तियों के स्वरूप के योगदान के अध्ययन एवं विधियों का सारांश है कि व्यक्ति समाज में रहता हुआ किस प्रकार का व्यवहार एवं कार्य कर रहा है। उस व्यवहार एवं कार्य के पीछे उसकी किस शक्ति की क्या भूमिका है। व्यक्ति यदि समाज में रहता हुआ असामाजिक कार्य करता है तो उसके पीछे क्या कारण है। वह क्यों इस प्रकार का व्यवहार कर रहा है। यदि वह ऐसा कर रहा है जो समाज में मान्य नहीं है तो फिर इसका इलाज क्या है, कैसा है? कहने का तात्पर्य यह कि मनोविश्लेषण मानवीय व्यवहार में से उन सभी हरकतों अथवा कार्यों का मूल्यांकन करने की एक विधि मात्र है जो व्यक्ति की चेतना से परे हो रहे हैं जिनके बारे में स्वयं उस व्यक्ति को भी आभास नहीं कि यह कार्य कैसे और क्यों हो रहे हैं।

इस प्रकार के व्यवहार के अंतर्गत किन विधियों के माध्यम से इनका इलाज संभव है। फ्रायड ने इस पर काफी अध्ययन किया। बहुत सी विधियों का आंकलन भी किया। स्वयं भी विभिन्न विधियों का प्रारूप तैयार किया जो इस प्रकार के असामाजिक व्यवहार अथवा वह व्यवहार जिसे करते हुए मानव

स्वयं भी न जानता हो कि वह क्या कर रहा है, को ठीक करने में मदद कर सकें। उनकी इस प्रकार की विधियों को ही 'मनोविश्लेषणवाद' कहा गया।

इस चिकित्सा विधि एवं सम्प्रदाय के संबंध में देवेन्द्रनाथ शर्मा अपनी सम्पादित की किताब 'मनोविश्लेषण और साहित्यलोचन' में बताते हैं कि

“मनोविश्लेषण का उद्भव मनश्चिकित्सा के प्रसंग में हुआ। फ्रायड, एडलर और युंग (उच्चारण यंङ्), जिन्हें मनोविश्लेषण की वृहत्रयी कह सकते हैं, मूलतः चिकित्सक थे। मानसिक चिकित्सा के क्रम में उनके सामने बहुत सारे ऐसे तथ्य आये जिनके विश्लेषण से मनोविश्लेषण के नाम का एक नया विज्ञान निर्मित हुआ। इन चिकित्सकों के, विशेषतः फ्रायड के, निष्कर्ष इतने अपारम्परिक तथा प्रचलित धारणाओं के विपरीत थे कि वह सहसा ग्राह्य नहीं हुए और उन पर प्रबुद्ध वर्ग की प्रतिक्रियाएँ बड़ी ही प्रतिकूल एवं उग्र हुईं। धीरे-धीरे, जैसा प्रत्येक नये मतवाद के साथ होता है, विरोध का स्वर मंद पड़ा और कुछ लोग इस अभिनव विज्ञान को जानने-समझने को उन्मुख हुए; कईयों ने समर्थन का झण्डा उठाया; कुछ की तटस्थता सहानुभूति में परिणत हुई। तात्पर्य यह कि मनोविश्लेषण की सीमा विस्तृत होने लगी।” (देवेन्द्रनाथ भूमिका के अंश में से)

दरअसल यह एक ऐसा सम्प्रदाय था जो मनोविज्ञान में इससे पहले बने सम्प्रदायों से भिन्न था। अन्य जितने भी सम्प्रदाय थे वह कहीं न कहीं दार्शनिकता की ओट से सटे हुए थे यह ही एक ऐसा सम्प्रदाय था जो कुछ हद तक चिकित्सक प्रणाली के आस पास था। दरअसल सिगमंड फ्रायड एक चिकित्सक थे किन्तु अपने इस कार्य से वह कदाचित् खुश नहीं थे। यही कारण मनोविश्लेषण के लिए सहायी हुआ। कुछ समय पश्चात् जब उनका ध्यान मनोविज्ञान की तरफ हुआ तो उन्होंने अपने मित्र के साथ मिलकर 'हिस्ट्रीया' पर एक शोधपत्र लिखा जो इनके मनोविश्लेषणवाद का कारण बना और उन्होंने मानसिक रोगियों की पहचान हेतु इसे एक सहायता के रूप में लिया। जिससे सदियों से चले आ रहे मानसिक रोगियों के इलाज के लिए एक

संतुष्टिजनक रास्ता खुल गया था। और आगे चलकर यह मानसिक रोगियों के उपचार की एक महत्वपूर्ण विधि बनी।

मनोविश्लेषण के संबंध में डॉ. पद्मा अग्रवाल अपनी किताब 'मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ' में कहती हैं कि

“ 'मनोविश्लेषण' शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है: -

1. निर्देशन, पुनः शिक्षण और सम्मोहन आदि की तरह मनोविश्लेषण भी मानसिक चिकित्सा की एक विधि है। इसकी सहायता से मानसिक रोगों का उपचार सरलता से किया जा सकता है। इसका प्रभाव स्थायी होता है, और अनेक रोगों पर इसका सफल प्रयोग रहा।

2. मनोविश्लेषण अज्ञात मन के अंतर्द्वंद्वों तथा भावना गंधियों का ज्ञान प्राप्त करने की एक विशेष विधि है।” (अग्रवाल 13)

मन के इस प्रकार के कार्य करने की विधि की प्रक्रिया का आंकलन करना, उसकी बार-बार इसी प्रकार की क्रिया करने के आधार पर सबूतों सहित मूल्यांकन करने की विधि को मनोविश्लेषण विधि का नाम दिया गया। यह मनोविज्ञान विषय का एक हिस्सा है जो व्यक्ति के मन में छिपी हुई क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का आंकलन करती है। खास रूप से इस विधि के अंतर्गत मन की तीन अवस्थाओं का जिक्र है। चेतन मन, अचेतन मन एवं अर्ध चेतन मन। साथ ही साथ मन इन तीनों अवस्थाओं में किस प्रकार कार्य करता है। इस पर गहन अध्ययन किया जाता है।

मनोविश्लेषण विधि एक प्रकार की उपचार की एक विधि है, इसके जन्मदाता आस्ट्रिया के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक 'सिगमंड फ्रायड' थे। जिन्होंने अपने संघर्षमयी जीवनभर इस पर कार्य किया और ऐसे नतीजे निकाले जो संभवतः उस समय के कुछ हिस्से के दौरान तो बहुत विरोधों का सामना करते हुए अंत में सराहनीय कार्य सिद्ध हुए।

स्नायुरोगियों पर निरंतर प्रयोग करते रहने के बाद उन्होंने विध्युत्-चिकित्सा और सम्मोहन या हिप्नोटिज्म को अपनाया। अपने प्रेक्षणों के

आधार पर मनोविश्लेषण-संबंधी खोजे प्रारम्भ हुई और कई सिद्धांतों को प्रतिपादित किया जो आगे चल कर मनोविश्लेषण-संबंधी-सिद्धांत के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मनोविश्लेषणात्मक विधि: -

आधुनिक तर्ज पर तैयार की गई यह विधि एक प्रकार की उपचारक विधि है। इस विधि को जानने के लिए यह जरूरी है कि हम सबसे पहले इस पद्धति की धारणा को स्पष्ट करें।

सिगमंड फायड ने सम्मोहन के माध्यम से तमाम लोगों का हिस्टीरिया का सफल इलाज किया तजुबों के आधार पर कुछ मनश्चिकित्सा से संबंधित सिद्धांत पेश किये जो आजकल मनोविश्लेषण-सम्बन्धी सिद्धांत के नाम से प्रसिद्ध है। सिगमंड का मानना था कि व्यक्ति के मस्तिष्क में तीन भाग होते हैं चेतन, अर्ध-चेतन तथा अचेतन। इन भागों में से अचेतन का सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि मनुष्य को अपने मस्तिष्क के एक हिस्से का खुद ही पता नहीं होता। उसकी अभिव्यक्ति उसके सपनों, बोलते-बोलते जुबान फिसल जाने तथा अन्य शारीरिक बीमारियों के रूप में होती है। सिगमंड ने हिस्टीरिया की व्याख्या एक ऐसे दिमागी सदमें के रूप में की जिसे रोगी दबाता है। सिगमंड को विश्वास था कि मनुष्य अपनी इच्छाओं, यौन कामनाओं, और आवश्यकताओं की पूर्ती में नाकाम रहने पर होने वाली तकलीफ के एहसास को दबाता है। इस प्रक्रिया में उसके भीतर अपूर्ण कामनाओं के प्रति अपराध बोध पैदा हो जाता है जिससे कुंठा, आत्मलोचना, और एक सीमा के बाद आत्महीनता और आत्म-घृणा की अनुभूतियाँ जन्म ले लेती है। यह तमाम कार्य-व्यापार अवचेतन के भीतर चलता है। यह अवचेतन हमेशा दबा हुआ नहीं रहता और सपनों के रूप में या घटनाओं के प्रति अनायास या तर्कसंगत न लगने वाली अनुक्रियाओं के रूप में सामने आता है।

मनोविश्लेषण सिगमंड द्वारा विकसित कुछ मनोवैज्ञानिक विचारों या उपायों का समुच्चय है जो मानव के मानसिक क्रियाओं एवं व्यवहारों के अध्ययन से सम्बन्धित है

मुख्य रूप से इसके तीन उपयोग है: -

- 1: - यह मस्तिष्क की परीक्षा की विधि प्रदान करता है
- 2: - यह मानव व्यवहार से सम्बन्धित सिद्धांतों का क्रमबद्ध समूह प्रदान करता है तथा
- 3: - यह मनोवैज्ञानिक सा भावनात्मक रोगों की चिकित्सा के लिए उपाय सुझाता है।

मनोविश्लेषण की मुख्य विधि यह है कि इसमें व्यक्ति की अवचेतन मन में चल रही उन सभी दबी हुई बातों को बाहर निकाला जाता है जो व्यक्ति के रोजाना जीवन में चल बातों में, कार्य-व्यापहारों में विघन पैदा करती है जैसे: - डर, चिन्ता, दुविधा, परेशानी आदि। उन बातों का हल किसी दूसरे तरीके से निकाल कर व्यक्ति को मानसिक रूप से परेशानी मुक्त व तन्दरुस्त किया जाता है।

इस विधि से व्यक्ति को अपने अन्दर की समझ आ जाती है। वह अपने भूतकाल व वर्तमान से सीखता है। मनोविश्लेषण अपने आप में एक निदानात्मक विधि भी है और व्यक्तित्व का सिद्धांत भी है।

‘मनोविश्लेषण’ जैसा के नाम से ही ज्ञात है कि मन में चल रही क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं के विश्लेषण एवं विधियों का नाम ही मनोविश्लेषण है। इसमें उन सभी क्रियाओं का आंकलन किया जाता है जो संभवतः स्वयं व्यक्ति को भी मालुम न हो। वह उसके मन के किसी छिपे हुए भाग में चल रही हों। सिगमंड फ्रायड अपनी किताब ‘मनोविश्लेषण’ जिसका देवेन्द्र कुमार ने हिन्दी में अनुवाद किया, में कहते हैं कि “मनोविश्लेषण स्नायु-रोगियों की चिकित्सा करने की एक विधि है।” (फ्रायड, 11) इस विधि के तहत रोगियों को बातचीत के माध्यम से ही उनका इलाज किया जाता है। बातचीत के माध्यम से ही उनके मन में छिपी हुई गहरी बातों को अप्रत्यक्ष रूप से बाहर निकाला जाता है। जब व्यक्ति उन भय युक्त बातों को अपनी जुबां से बोलकर बताता है तो मन का कुछ भाग स्वयं ही शांत हो जाता है। क्योंकि विभिन्न प्रकार

की ऐसी बातें होती हैं जो व्यक्ति किसी के समक्ष प्रस्तुत नहीं करता। स्वयं ही घुटन महसूस करता रहता है जिससे दिमाग पर जोर पड़ता है। और व्यक्ति तनाव में आ जाता है।

इस विधि के माध्यम से व्यक्ति अपने दिमाग में छुपाई हुई बातों के उजागर से तनाव मुक्त महसूस करता है। मन में रखी ऐसी बातें जिन्हें मानव अपने किसी डर, द्वन्द्व, परान्य इत्यादि के कारण बताने से परहेज करता है, वह व्यक्ति के जीवन में सदैव ही बाधक बनती हैं। मन के संबंध में देवेन्द्र कुमार द्वारा हिन्दी अनुवादित फ्रायड की अपनी किताब 'मनोविश्लेषण' में कहते हैं कि "मनोविश्लेषण के अनुसार मन की परिभाषा यह है कि इसमें अनुभूति, विचार और इच्छा के प्रक्रम होते हैं और मनोविश्लेषण यह कहता है कि अचेतन विचार और अचेतन इच्छाएं भी होती हैं।" (देवेन्द्र, 17) इन्हीं तरह के विभिन्न विचारों एवं इच्छाओं के आधार पर व्यक्ति अपना कार्य-व्यवहार करता है। यदि इनमें से कुछ दमित रह जाती हैं अथवा कर दी जाती हैं तो व्यक्ति के व्यवहार में बदलाव एवं विकृति आ जाती हैं। जिसका उस संबंधित व्यक्ति को कदाचित् ज्ञान नहीं रहता अथवा होता। समाज इस प्रकार के व्यवहार को असामान्य व्यवहार कहता है। अरुण कुमार अपनी किताब 'आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान' में फ्रायड के मानसिक रोगों की पहचान के योगदान के संबंध में कहते हैं कि

"फ्रायड पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने यह बतलाया कि असामान्य व्यवहार या मानसिक रोग का मनोवैज्ञानिक आधार भी होता है। दूसरे शब्दों में मानसिक रोग पूर्णतः मनोवैज्ञानिक कारकों से भी उत्पन्न होता है। 19वीं शताब्दी के अन्त-अन्त तक ऐसा समझा जाता था कि मानसिक रोग सिर्फ दैहिक कारकों से ही होता है। फ्रायड ने इस विचारधारा का खण्डन किया और बतलाया कि मानसिक रोग का आधार पूर्णतः मनोवैज्ञानिक होता है और इसका उपचार भी मनोवैज्ञानिक विधियों से ही ठीक ढंग से हो सकता है।" (अरुण 124)

फ्रायड ने अपने इस सिद्धांत को प्रतिपादित करने हेतु अथवा इसमें प्रतिपादित अपनी विचारधारा को इस प्रकार प्रस्तुत किया कि व्यक्ति के किसी भी प्रकार के असामान्य व्यवहार एवं उसके उपचार हेतु उसके दैहिक कारक नहीं बल्कि मनोवैज्ञानिक कारक एक विशेष भूमिका निभाते हैं। मनोवैज्ञानिक कारकों में से भी मानसिक पहलू, दैनिक जीवन की मनोवृत्तियाँ, मानसिक संघर्ष एवं मनोरचनाएँ तथा मनोवैज्ञानिक विकास का सिद्धांत एक विशेष स्थान रखते हैं। इन सभी कारकों में से मानसिक पहलू का अहम रोल होता है। फ्रायड मानते हैं अथवा उनकी विचारधारा है कि मानसिक पहलू में मन का ही पूरा दायित्व होता है। दरअसल विगत समय में मनोविज्ञान में केवल मन के प्रत्यक्ष रूप अथवा चेतनता के संबंध में ही कार्य होता आ रहा था। मनोविश्लेषण ने ही मन के अचेतन भाग को ढूँढ निकाला और उससे संबंधित संघर्ष एवं रहस्य का मानवीय जीवन में महत्व को सभी के समक्ष किया।

फ्रायड के अनुसार मन के तीन पहलू अथवा भाग होते हैं। चेतन, अचेतन और अचेतन। किसी न किसी प्रकार से यह व्यक्ति को, उसके व्यवहार को प्रभावित करते ही रहते हैं।

चेतन: -

वर्तमान में घटित हो रही वह सभी घटनाएँ अथवा वे सभी कार्य जिनमें व्यक्ति को पूर्णतः उस घटना एवं कार्य के अनुभवों एवं संवेदनाओं का पूर्ण ज्ञान होता है, मन का चेतन भाग कहलाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो वर्तमान में चल रहे किसी भी कार्य, विचार, इच्छा अथवा संवेदना एवं अनुभवों की जानकारी यदि मन में है तो वही चेतना है। मन के इस भाग में घटित हो रही घटनाओं, विचारों, अनुभवों का सीधा संबंध होता है। एक प्रकार से यह व्यक्ति की जागृत अवस्था का सूचक है। अरुण कुमार अपनी किताब 'आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान' में चेतना के संबंध में कहते हैं कि "चेतन मन व्यक्तिगत, नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदर्शों का भण्डार के समान होता है।" (अरुण 125) जिन्दगी में बहुत बार ऐसी घटनाएँ घटित हो जाती हैं जो हमारी चेतना को प्रभावित करती हैं। वैसे तो चेतना का अर्थ ही

यह है 'हमारे मन की क्रियाशीलता' जो हमारे शरीर को किसी भी घटना के प्रति सुचेत करती है। किसी भी क्रिया के बदले में प्रतिक्रिया करने में तेजी अथवा सही होना ही चेतनता है। किन्तु कई बार हमारे समक्ष ऐसी घटनाएँ इतनी तेजी से घटित होती हैं जो हमारी चेतना को भी सुन्न कर देती हैं। कहने का तात्पर्य यह कि किसी भी व्यक्ति की चेतना का स्तर घटनाओं एवं क्रियाओं को तेजी के साथ ग्रहण करते हुए प्रतिक्रिया करने के अंदाज पर निर्भर करता है। लेखक अब्दुल बिरिस्मिल्लाह ने अपने उपन्यास 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में ऐसी विभिन्न घटनाओं एवं हालातों का वर्णन किया है जो यह बताने हेतु पर्याप्त है कि किस प्रकार की घटनाओं से चेतना पर असर पड़ता है।

“आखिर भोवा का रहा चच्चा ?”

मतीन ने फिर उन्हें छोड़ा तो इस बार वे बुरी तरह हिल गये। उनकी खामोशी पानी खायी कच्ची दीवार की तरह ढह गयी।

“अब का बताएँ मतीन, नजबुनियों क त तिलाक हो गवा है।”

“ऐं!”

और आगे मतीन कुछ नहीं बोल सका। वह बर्फ की तरह ठण्डा हो गया। उसके भीतर की सारी हलचल समाप्त हो गयी। लगा कि वह खुद ही एक कब्रस्तान हो गया है.....और अब 'चलो साहबो मट्टी देओ' की पुकार लगायी जाने लगी तो उसकी समझ में यह नहीं आया कि वह किसी मिट्टी दे? रेहाना को? नजबुनिया को? खुद को? या बिरादरी के इस कोढ़ को?” (बिरिस्मिल्लाह 148)

कहने का भाव यह कि एक गरीब अथवा मजदूर किस्म के व्यक्ति के पास जब हद से ज्यादा मुसीबतें उसे बिन बताए पहुँचती रहती हैं और वह भी एक झटके के साथ तो उसकी चेतना का स्तर बहुत छोटा रहा जाता है। उसका दिमाग सुन्न होने की स्थिति में पहुँच जाता है। कार्य करने की समझ से परे हो जाता है। अन्य व्यक्तियों द्वारा ही उसे संचालित किया जाता है।

अर्धचेतनः -

साधारण शब्दों में कहें तो चेतनावस्था की बिगड़ी हुई हालत को हम अर्धचेतन कह सकते हैं। इसमें व्यक्ति पूर्णतः चेतन नहीं होता, बल्कि उसका कुछ अंश ही चेतन रहता है और वह भी प्रत्यन करने पश्चात् चेतनावस्था को प्राप्त होता है। जैसे घर में रखी हुई वस्तु का यदि हम किसी भी प्रकार से इस्तेमाल नहीं करते हैं तो वह पड़ी पड़ी निष्क्रिया होने लगती है। यदि वह इस्तेमाल होती रही तो उसकी क्रियाशीलता बरकरार रहती है। यही स्थिति मन के इस भाग की है। किसी भी बात, विचार, अनुभव, संवेदना इत्यादि को यदि हम अपने चेतन मन में से दोहराएँगे नहीं तो वह धीरे-धीरे चेतनावस्था से निकलती हुई अर्धचेतना में चली जायेगी और फिर प्रयत्न अथवा कोशिश करने उपरांत ही चेतनावस्था को प्राप्त होगी। दूसरे शब्दों में कहें तो यदि मेरे मन में कोई बात है तो वह यदि मैं इस्तेमाल करता रहूँगा तो वह मुझे याद रहेगी। यदि मैं लम्बे समय तक उसे याद नहीं करूँगा अथवा इस्तेमाल नहीं करूँगा तो वह धीरे-धीरे मेरे मन से निकल जाएगी। उसे याद करने हेतु उससे संबंधित वातावरण की आवश्यकता रहेगी। फिर कहीं जाकर वह बात या विचार मेरे मन में चेतनावस्था को प्राप्त होगा। तात्पर्य यह कि अर्धचेतनता चेतन मन की सुप्तावस्था है। उसे जगाने हेतु किसी अन्य का सहारा लेना पड़ता है अथवा दिमाग को भूतकाल में ले जाना पड़ता है।

अचेतनः -

यह मन की एक विशाल एवं महत्वपूर्णावस्था है, जिसमें बहुत कुछ छिपा होता है किन्तु स्वयं व्यक्ति उससे अज्ञान होता है। मन के इस भाग में गहन विचारधाराओं, संवेदनाओं एवं इच्छाओं का समुद्र होता है जो कदाचित् व्यक्तियों की समझ से परे होता है। वैसे भी अचेतन मन का शाब्दिक अर्थ ही यही है कि ऐसा कार्य, इच्छा और विचार जो चेतनता से परे हो। व्यक्ति को पता ही न हो कि हो क्या रहा है। अधिकांश होता क्या है कि दिनचर्या की विभिन्न घटनाओं का असर व्यक्ति के मन पर, दिमाग पर पड़ता है। बहुत सी बातें अथवा घटनाएँ अच्छी भी होती हैं, बहुत सी बुरी भी होती हैं। व्यक्ति

की मंशा होती हैं कि वह बुरी इच्छाओं, विचारों एवं अनुभवों को मन से निकाल दे क्योंकि यदि वह उन्हें याद करता है तो वह उसे दुख देती हैं। धीरे-धीरे वह इच्छाएँ, विचार एवं अनुभव मन के चेतन भाग में से निकलते जाते हैं और मन के अचेतन भाग में पहुँच जाते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि व्यक्ति का इन पर कोई असर नहीं पड़ता। स्वप्नों के माध्यमों से, अतृप्ति के कारणवश व्यवहार में असामान्यता के माध्यम से वह व्यक्ति के कार्यों को प्रभावित करते हैं। उसे बेचैन रखते हैं। इस भाग के कारण व्यक्ति न चाहते हुए भी गलतियाँ करता है। रात में स्वप्नों से प्रभावित होता है। कभी-कभी मन में ऐसे विचार आने लगते हैं जिन्हें वह सोच कर स्वयं ही प्रभावित होता है। जब फ्रायड ने मन के इस भाग को प्रस्तुत किया तो उसका बहुत से मनोवैज्ञानिकों द्वारा खण्डन भी हुआ। किन्तु उन्होंने हार नहीं मानी और अपना कार्य निर्विघ्न चलाते रहे। समयानुसार उनकी विभिन्न खोजों ने विरोधियों को उनकी बात मानने को बाध्य कर दिया।

अरुण कुमार अपनी किताब 'आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान' में मन की अचेतन अवस्था के बारे में कहते हैं कि

“अचेतन मन में रहने वाले विचार एवं इच्छाओं का स्वरूप कामुक, असामाजिक, नैतिक तथा घृणित होता है। चूँकि ऐसी इच्छाएँ एवं विचारों को दिन-प्रतिदिन की जिन्दगी में पूरा करना संभव नहीं होता है, अतः उनको चेतना से हटाकर अचेतन में दमित कर दिया जाता है। जब वैसी इच्छाओं एवं विचारों को अचेतन में दमित कर दिया जाता है, तो वे अचेतन में जाकर समाप्त नहीं हो जाते हैं। हाँ, थोड़ी देर के लिए निष्क्रिया अवश्य हो जाते हैं परन्तु हमेशा चेतन में आने के लिए प्रयत्न भी करते रहते हैं। अचेतन की इच्छाएँ चेतन में सीधे तो प्रवेश नहीं कर पाती हैं क्योंकि अहं का कड़ा प्रतिबंध ऐसी इच्छाओं को चेतन में आने से रोकता है। फलतः वे रूप बदलकर चेतना में प्रवेश कर जाती हैं। स्वप्न, दैनिक जीवन की मनोविकृतियाँ, सम्मोहन आदि कुछ प्रमुख अवसर हैं जहाँ अचेतन की अनुभूतियाँ चेतन में व्यक्त होती हैं। जैसे

किसी मित्र के घर पर यदि रूमाल या कलम या किताब छोड़कर हम चले आते हैं तो फ्रायड के अनुसार आप में उस मित्र से पुनः मिलने की एक इच्छा रहती है जो अचेतन में होती है। वही इच्छा वेश बदलकर चेतन में अर्थात् रूमाल या कलम या किताब मित्र के घर पर छोड़ देने के रूप में व्यक्त हो रही है।” (अरुण 127)

तात्पर्य यह कि मन के भागों में से अचेतन भाग व्यक्ति के व्यक्तित्व में एक विशेष भूमिका निभाता है। दरअसल यही वह भाग है जो व्यक्ति के व्यवहार के निर्माण का कारण बनता है।

अरुण कुमार अपनी इसी किताब में से अचेतन मन के स्वरूप को गत्यात्मक बताते हुए कहते हैं कि

“अचेतन मन में दमित इच्छाएँ होती हैं। दूसरे शब्दों में, अचेतन में वैसी इच्छाएँ होती हैं जो सामाजिक प्रतिबंध के कारण दिन-प्रतिदिन की जिन्दगी में संतुष्ट नहीं हो पायीं। फलतः उनका चेतन से अचेतन में दमन कर दिया गया। अचेतन मन में जाने पर ऐसी इच्छाएँ समाप्त नहीं हो जाती हैं बल्कि सक्रिय होकर बार-बार चेतन मन में लौट आना चाहती हैं। परंतु चेतन मन तथा अहं के प्रतिबन्धकता के कारण वैसी इच्छाएँ चेतन में नहीं आ पातीं और वेश बदलकर स्वप्न, तथा दैनिक जीवन की छोटी-छोटी गलतियों के रूप में व्यक्त होती हैं। इस तरह से अचेतन की इच्छाओं से सक्रियता होती है जो उसके स्वरूप को गत्यात्मक बना देती है।” (अरुण 128)

कहने का तात्पर्य यह कि मन क्रियाओं के बदले में प्रतिक्रिया करने की एक ऐसी स्थिति है जो पूर्ण रूप से मानवीय व्यवहार को सोते जागते प्रभावित करती है। उसे कार्य करने को उकसाती है; अन्य किसी कार्य को करने से परहेज करवाती है। मन की अवस्थाओं के संबंध में डॉ. पद्मा अग्रवाल अपनी किताब ‘मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ’ में कहती हैं कि

“प्रारम्भिक अवस्था में मन का वर्गीकरण ‘ज्ञात’, ‘अज्ञात’ और ‘ईषद्-ज्ञात’ मन के रूप में हैं। आगे चलकर, सिद्धांतों का पूर्ण विकास होने पर, उसका वर्गीकरण ‘अहं’, ‘इदम्’, और ‘नैतिक मन’ में रूपांतरित हुआ। फ्रायड की पिछली पुस्तकों में मन की प्रत्येक क्रिया के विश्लेषण में इन्हीं विचार-धारणाओं का उल्लेख मिलता है। और वास्तव में ‘मानवी व्यक्तित्व’ इन्हीं तीनों मानसिक शक्तियों की परस्पर संगति का परिणाम है।” (अग्रवाल 20)

कहने का भाव यह कि मन की इन तीनों शक्तियों के सहयोग से ही व्यक्ति कोई भी कार्य करता है जिससे उसके व्यक्तित्व का निर्माण संभव है।

अचेतनता से प्रभावित होता पीड़ित व्यक्तित्व: -

मन के तीन भागों में से अचेतन मन का क्षेत्र व्यापक है। यह व्यक्ति के सामान्य व असामान्य व्यवहार के कारण का मुख्य कारक बनता है। अचेतन मन की एक विशेषता के तहत व्यक्ति के मन में विराजमान व सभी इच्छाएँ, कार्य, विचार इत्यादि जो समाज में मान्य नहीं हैं, उन्हें वह अचेतन मन में दमित कर दिया जाता है। किन्तु वह समय एवं वातावरण के अनुकूल अवसर पाते ही चेतन मन में आने को आतुर रहता है। किन्तु सामाजिक नियम एवं व्यक्ति का अहं इसमें प्रतिकूल अवसर पैदा कर उसे आने से रोकते हैं, जिस कारण वह कोई अन्य रास्ता ढूँढ कर (गुस्सा, स्वप्न, असामाजिक व्यवहार इत्यादि) बाहर आने की कोशिश करता है। लेखक ने अपने विभिन्न उपन्यासों में इस प्रकार की विभिन्न क्रियाओं का वर्णन किया है जो मनोविश्लेषण पद्धति पर खरी उतरती हैं। लेखक अब्दुल बिस्मिल्लाह के ‘मुखड़ा क्या देखें’ नामक उपन्यास में विभिन्न ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई हैं। इस उपन्यास में पं. रामवृक्ष पाण्डे को गुस्सा तो किसी ओर राजनैतिक कारणों से है किन्तु उसका वश न चलने के कारण से वह गुस्सा और अपनी दमित की हुई बात को किसी ओर पर गुस्सा निकालते हुए प्रकट करता है।

“‘तुम चिन्ता न करो लता की माँ, मैं स्वयं खड़ा होकर परजा का हक दिलवाऊँगा। पर न जाने मेरी दृष्टि का दोष है या क्या; अल्ली चुड़िहार तो कहीं दिख नहीं रहा है।’

‘लता को चूड़ी पहनाने भी अल्ली की भउजी आयी थी। न जाने क्या बात है।’

यह सुनना था कि पंडित रामवृक्ष पाण्डे के तन में आग लग गई। वे क्रोध से भरे जाने लगे तो पत्नी ने रोक लिया।

‘देखिए आप अपना मन न खराब कीजिए। किसी से कहना दीजिए कि आकर अपना हक तो ले जाए। बात-बेबात परजा पर क्रोध करना ठीक नहीं।’

पं. रामवृक्ष पाण्डे ने अपनी पत्नी की बात चुपचाप सुन ली और बाहर निकलकर एक तरखत पर बैठ गए।

सामने से सृष्टिनारायण जा रहे थे, उन्होंने ज़ोर से पुकारा उन्हें और बोले :

‘जाकर अल्ली चुड़िहार को बुला लाओ, अपना हक ले जाए।’

‘जी, अभी जाता हूँ।’

इतना कहकर सृष्टिनारायण तो चले गए, पर पं. रामवृक्ष पाण्डे का जी ठंडा नहीं हुआ। इस शुभ अवसर पर हलवाई आया, कोंहार आया, चमार और पासी आए, सिपाही नाऊ भी आया; मगर चुड़िहार क्यों नहीं आया? जरूर उस मुस्लाने का दिमाग खराब हो गया है। अब बन न गया पाकिस्तान, हिंदुस्तान में जगह न मिली तो पाकिस्तान चले जाएँगे। वरना एक परजा की यह मजाल, कि गाँव के प्रतिष्ठित ब्राह्मण की कन्या का शुभ विवाह हो और वह अनुपस्थित रहे। वाह रे गाँधी बाबा, ख़ूब आजादी दिलाई है तुमने....

विवाह के सारे विधि-विधान तो हँसी-ख़ुशी संपन्न हो गए, पर अंत में आकर सब गड़बड़ हो गया। पूरा खीरा मीठा और आखिर में जाकर

कडुवा। पं रामवृक्ष पाण्डे का मन खराब हो गया। क्रोध और क्षोभ के मारे भीतर ही भीतर वे काँपने लगे।

इस अल्ली चुड़िहार को मैंने दर-दर का भिखारी न बना दिया तो मेरा नाम रामवृक्ष पाण्डे नहीं रमुआ चमार होगा।’ उन्होंने मन ही मन यह प्रण किया और दाँत पीसते हुए नीम के नीचे टहलने लगे।” (बिस्मिल्लाह 17)

इस सारी वार्तालाप में पं. रामवृक्ष पाण्डे के मन में गुस्सा तो राजनैतिक कारणों से पटेल के प्रधानमंत्री न बनने पर था जिसके बदले में जवाहर लाल नेहरू को प्रधानमंत्री बना दिया तो वह गांधी जी के इस किये कार्य पर बेहद गुस्सा थे किन्तु अब अपना गुस्सा तो वह गांधी जी पर निकाल नहीं सकते और न ही पटेल को प्रधानमंत्री बना सकते हैं तो अपना सारा उबाल उन्होंने अपने गाँव के गरीब अल्ली चुड़िहार पर निकाल दिया। इस प्रकार के व्यवहार का कारण अचेतन मन में दमित की गई उन सभी बातों का असर है जो किसी न किसी रूप में चेतन मन में आने की कोशिश कर रही हैं। यह वह मूल प्रवृत्तियाँ हैं जो प्रत्येक मानव में पायी जाती हैं और साहित्य में इनका आदिकाल से ही विभिन्न रूपों में चित्रण होता आ रहा है। मानव जाति के अंदर इन विभिन्न प्रकार की मूल प्रवृत्तियों के संबंध में जिज्ञासा शाह अपने शोध-प्रबंध ‘अज्ञेय के उपन्यासों का मनोविश्लेषणत्मक अध्ययन’ में कहते हैं कि

“मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार पशु तथा मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों में कोई खास अंतर नहीं देखते; आहार, निद्रा, भय, मैथुन, ये मूल प्रवृत्तियाँ पशु तथा मनुष्य दोनों में समान होती हैं। धर्म ही एक ऐसा तत्व है जो मनुष्य को पशु से अलग कर देता है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक पशु और मनुष्य में समान रूप से विद्यान इन्हीं प्रवृत्तियों के आलोक में उपन्यास की सृजना करते हैं, क्योंकि यह बलवती प्रवृत्तियाँ हैं। इन पर काबू पाना मुश्किल है। ये प्रवृत्तियाँ हम पर शासन करने लगती हैं।” (शाह 100)

लेखक अब्दुल बिस्मिल्लाह ने भी अपने इस उपन्यास में इन्हीं मनोवृत्तियों के आधार पर व्यवहार में आये परिवर्तन को बड़े ही सुन्दरता से प्रस्तुत किया है।

दूसरी बात एक यहाँ पर यह भी कही जानी वांछनीय है कि ऐसी परिस्थिति को यहाँ पर प्रसिद्ध मनोविज्ञानी 'एडलर' का वैयक्तिक सिद्धांत पूर्ण रूप से अपने अन्दर समाहित कर लेता है। उसमें प्रत्येक मानव का स्वयं को श्रेष्ठ साबित करने का सिद्धांत लागू होता है। इस संबंध में अरुण कुमार अपनी किताब 'मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास' में कहते हैं कि

“हालाँकि 'सफलता की कोशिश' अभिप्रेरण जन्मजात होता है तथा जन्म के समय मौजूद होता है, इसका विकास बाद में होता है। जन्म के समय यह मात्र एक अन्तः शक्ति के रूप में उपस्थित रहता है। अतः यह पूरी जिन्दगी के दौरान विकसित होते रहता है।” (अरुण 257)

बिल्कुल इसी प्रकार की प्रवृत्ति लेखक अब्दुल विस्मिल्लाह ने अपने इस उपन्यास में प्रस्तुत की है कि किस प्रकार अपनी जीत को, अपने सफलता को सिद्ध करने के लिए व्यक्ति जीवन के अन्तिम पड़ाव तक भी कोशिश करते रहते हैं। इसी प्रकार की एक अन्य उदाहरण लेखक ने अपने इस उपन्यास 'मुखड़ा क्या देखें' में से बड़े ही सुन्दर तरीके से प्रस्तुत की है।

“लता बिटिया की बिदाई में चूड़ी पहनाने के लिए अल्ली चुड़िहार या उसकी बीवी नहीं, बल्कि भौजाई आई थी; यह बात पं. रामवृक्ष पाण्डे को अच्छी तरह याद है। जन्म-भर उन्हीं के टुकड़ों पर पला और ऐन टेम पर गद्दारी की। हद तो ये कि सृष्टि गए बुलाने तो उनके साथ भी नहीं आया। हक लेने भी बेचारी भौजाई को आना पड़ा। उसकी तो जन्मानी भी नहीं है इस गाँव में.....

दरअसल रामवृक्ष पाण्डे इतने गुरसे में थे उस रोज़, कि सृष्टिनारायण से उन्होंने पूछा ही नहीं कि अली अहमद या उसकी बीवी के स्थान पर भौजाई क्यों आई है? और सृष्टिनारायण को भला क्या ज़रूरत थी छतिस पुराण बखारने की। जैसे सारी परजा को उन्होंने समधी से नेग दिलवाया था उसी तरह अली अहमद की भौजाई को भी दिलवा दिया। एक जनाना धोती और सवा रुपया। चलते-चलते पंद्रह-बीस पूड़ियाँ भी सृष्टिनारायण ने उसकी भौंकी में डलवा दी थीं। सब कारज भली प्रकार

संपन्न हो गया था। बाराती, अतिथि और परजा.... सभी प्रसन्न मन से अपने-अपने घर को लौटे थे।

लेकिन पं. रामवृक्ष पाण्डे के मन में जो फाँस अटकी थी, उसे किसी ने नहीं जाना। उनके भीतर की दाह को किसी ने नहीं समझा। उनके लिए सवाल अल्ली के आने या न आने का उतना नहीं था जितना यह, कि देश को स्वाधीनता मिलते ही उनकी एक परजा ने ऐसा विद्रोह क्यों किया।” (बिरिमल्लाह 23)

अब इस प्रकार के व्यवहार में भी वही अचेतन मन की स्थिति बरकरार रहती है जो ठहर-ठहर कर चेतन मन के माध्यम से होते हुए असामान्य व्यवहार की डोर पकड़े हुए बाहर आने को आतुर है। किसी न किसी प्रकार से मन शान्ति की तलाश में या तो किसी में दोष निकाल अथवा भाग्य को दोष देकर संतुष्टि चाहता है। जब तक वह नहीं मिलती है व्यक्ति के मन में एक प्रकार से भटकता ही रहता है। तात्पर्य यह कि मानवीय व्यवहार में चेतन के बदले अचेतन मन में दमित की हुई इच्छाओं, विचारों की विशेष भूमिका होती है। इस संबंध में डॉ. पद्मा अग्रवाल अपनी किताब ‘मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ’ में युग के विचारों को रखते हुए कहती हैं कि

“मन में दबायी हुई इच्छाएँ संचित रहती हैं। परिस्थिति और सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण जब कभी कोई प्रकृत इच्छा दबायी जाती है तो वह ज्ञात मन से निकल कर व्यक्तिगत अज्ञात मन में समा जाती है। साथ ही, जीवन की अनुभूतियाँ भी, समय जिन्होंने धीरे-धीरे भुला देता है, उन्हें स्मृति चिह्न भी मन के इसी भाग में बने रह जाते हैं। यही कारण है कि वर्षों की भूली-पुरानी घटनाएँ भी समय या आवश्यकता आने पर विस्मृति से उठकर हमें याद हो जाती है।”(अग्रवाल 24)

लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह की लेखनी में इस प्रकार का वर्णन सिद्ध करता है कि कहीं न कहीं उनके मन में भी ऐसी विभिन्न बातें दमित होंगी जो वह प्रत्यक्ष रूप से समाज को, समुदाय को या अमुक व्यक्ति जिससे संबंधित है, को न कह पाये हों। किन्तु ऐसी बातें व्यक्ति को सदैव किसी न किसी बहाने

से या तो स्वप्न अथवा गलतियों के माध्यम से, तकलीफ पहुँचाती रहती हैं जिनकी शान्ति हेतु व्यक्ति व्याकुल रहता है। संभवत् लेखक के मन में दमित भावनाओं की संतुष्टि हेतु लेखनी के माध्यम से समाज या समुदाय को अपनी बात रखने का एक माध्यम बना हो। क्योंकि संसार का प्रत्येक मानव मानसिक शान्ति की भूख के लिए बेचैन एवं व्याकुल है।

लेखक अब्दुल बिरिस्मिल्लाह अपने उपन्यास 'मुखड़ा क्या देखें' में ऐसे वृत्तांत का वर्णन किया है जो कदाचित् उनकी रचनाओं में अध्ययन पश्चात् ज्ञात होता है कि ऐसी परिस्थिति से वह स्वयं ही गुजर चुके हैं। उस दुःख को शायद वह भुला न पा रहे हों तो ऐसे विभिन्न प्रकार के वृत्तांत के प्रकाशन से कदाचित् वह आत्मिक शान्ति का अनुभव कर पा रहे हों वृत्तांत में वह कहते हैं

“रनिया की आवाज़ धीरे-धीरे बढ़ती जा रही है। लेकिन अली अहमद नहीं चाहता कि किसी को मदद के लिए बुलाए। एक तो संकोच, दूसरे आशंका! पता नहीं वही दर्द है या कोई और! फिर बुलाए भी तो किसको? कहने को तो भाई का परिवार ही बगल में रहता है, मगर कोई अपने को अपना समझे तब न! अपना ही समझते तो इस समय क्या वह चूल्हे में बैठा बीवी के लिए खिचड़ी बना रहा होता?” (बिरिस्मिल्लाह 19)

व्यक्ति की इस प्रकार की सोच अथवा सोच के माध्यम से मन में चल रहे संघर्ष को बड़ी ही सुन्दरता से वर्णन किया है। जैसा कि विगत इस बात का वर्णन आया है कि मानव मन के तीसरे व महत्वपूर्ण हिस्से में बहुत सी ऐसी बातें होती हैं जिसे न तो व्यक्ति को स्वयं जानकारी होती है एवं न ही कोई दूसरा उसे बता सकता है। वह तो केवल संबंधित वातावरण एवं हालात की मौजूदगी का ही इंतजार करती है। किन्तु उनके उजागर होने में भी व्यक्ति का अहं रुकावट बन कर सामने प्रस्तुत हो जाता है। अली को मालूम है कि बगल के घर में रहती उसकी भउनी उसकी अपनी सगी है। हालाँकि अब हालात उनसे उतने मेल-मिलाप वाले नहीं रहे। किन्तु फिर भी वह आस रखता है कि इस मुसीबत की घड़ी में जबकि उसकी पत्नी पेट से है और समय

पूरा होने को है, उसकी भउजी उनकी मदद करने जरूर आएगी। किन्तु ऐसा होता नहीं है।

अब यहाँ पर देखने वाली बात यह है कि अल्ली भी अपनी भउजी को बुलाने नहीं जाता हालाँकि उसकी पत्नी दर्द से कहार रही है। यहाँ उसे अपनी भउजी की सरख जरूरत है। किन्तु व्यक्ति का अहं उसके आड़े आ जाता है और वह उसे बुलाने से परहेज़ करता है। क्योंकि उनके साथ उसकी लम्बे समय से बोलचाल बंद है। हालाँकि उसकी भउजी को अल्ली व उसकी पत्नी की इस समय की हालात का भरपूर ज्ञान है। जैसा कि लेखक ने अपने उपन्यास 'मुखड़ा क्या देखें' में बड़ी संजीदगी से वर्णन किया है।

“ ‘आह री अम्माँ! अम्माँ री!’

रनिया अब ज़ोर-ज़ोर से चीखने लगी थी। अली अहमद चावल-दाल को चुल्हे पर थूँ ही फदकते हुए छोड़कर रनिया के पास पहुँच गया और उसका पेट सहलाने लगा। लेकिन आत्मीयता पाकर रनिया और भी ज़्यादा बिलखने लगी। तब अली अहमद ने भउजी को पुकारा:

‘भउजी, ए भउजी!’

मगर उधर से कोई आवाज़ नहीं आई। भउजी हालाँकि सब सुन रही थी, मगर उन्होंने कुछ ऐसा जताया मानो उन्हें नींद आ गई हो। अली अहमद को किसी तरह का आभास न मिले, इसलिए उन्होंने बेना डुलाना भी बंद कर दिया था।” (बिरिमल्लाह 21)

इस प्रकार की निम्न स्तर की क्रियाओं के प्रदर्शन से कदाचित् यह संदेश भी बाहर निकलता है कि भउजी के मन में भी वही बात चल रही है जो अल्ली चुड़िहार के दिमाग में चल रही है कि मैं पहले ही बिन बुलाए उनके घर क्यों जाऊँ? कदाचित् दिमाग में यह भी चल रहा हो कि वह पहले मेरे पास आए, मेरी मिन्नतें करे, मुझसे आग्रह करे फिर मैं कहीं जाकर उसकी मदद करूँ। इसी के साथ ही साथ वह इस प्रकार से अनजान बनने का झुठा व्यवहार भी कर रही है कि यदि किसी मुझसे बड़े ने आकर मुझे शर्मिन्दा करने अथवा

डांटने की कोशिश की तो अपने बचाव में यह भी कह सकती हूँ कि मुझे तो मालूम ही नहीं कि मेरे पड़ोस में क्या हो रहा है। मैं तो अपने कार्यों में व्यस्त थी। कहने का तात्पर्य यह कि मानवीय व्यवहार में चाहे वह सामान्य हो अथवा असामान्य मन के अचेतन मन की एक विशेष भूमिका होती है और इस भूमिका में व्यक्ति के अहं का महत्वपूर्ण रोल होता है जो कदाचित् हमारे व्यवहार में दमित इच्छाओं एवं विचारों को पूर्णतः प्रकट करने में एक बाधक का कार्य करता है जो कि कभी-कभी हमारे सामाजिक व्यवहार में संघर्ष उत्पन्न कर देते हैं। मन की इस स्थिति के संबंध में शोधार्थी अजीत कुमार अपने शोध-प्रबंध 'जेनेन्द्र के उपन्यासों में अहम् का साक्षात्कार- एक मनोविश्लेषात्मक अध्ययन' में कहते हैं कि

“यह चेतन विश्व प्रपंच निरंतर स्पन्दनशील रहता है। चराचरों के व्यवहार से यह चेतनता व्यक्त होती रहती है। इसलिए यह जगत व्यवहार संकुल भी है। ये व्यवहार प्राणियों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं के रूप में जब सामने आते हैं तो उनमें उनकी आन्तरिकता ही स्पष्ट होती है क्योंकि हर व्यक्ति की प्रतिक्रिया उसकी आन्तरिक स्थिति या चित्तावस्था के अनुरूप ही रूप लेती है। इसलिए हर व्यवहार या प्रतिक्रिया व्यक्ति की आन्तरिकता की अभिव्यक्ति है। सांस्कृतिक, सामाजिक एवं जनितक कारणों से हर व्यक्ति के आन्तरिक गठन में भिन्नता स्पष्ट होकर व्यक्ति के व्यक्ति को एक दूसरे से अलग कर देती है। इस प्रकार प्रतिस्पन्दन और व्यक्ति का व्यक्तित्व अथवा व्यक्तिस्वरूप उसके सूक्ष्म मानसिक और स्थूल व्यावहारिक स्तरों के क्रिया कलापों में व्यक्त होकर समाज के बीच प्रतिष्ठित होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि व्यक्ति के आन्तरिक पक्ष का आधार मन है।” (अजीत 01)

चेतन मन की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं से व्यक्ति के दिमाग में चल रही पुरानी व अचेतन मन की बुरी अवस्थाओं से, विचारों से, संवेदनाओं से कुछ समय के लिए राहत मिल जाती है। तब व्यक्ति के दिमाग अथवा मन का वातावरण इस प्रकार सकारात्मक तरीके से बदल जाता है कि वह पुरानी सारी मुसीबतें,

नकारात्मक परिस्थितियों को भूल जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो बदलती सामाजिक परिस्थितियाँ हमारे चेतन मन को प्रभावित करती हैं। तात्पर्य यह कि हमारा चेतन मन जिस प्रकार की परिस्थितियों से गुजरता है उसी प्रकार से मानव को व्यवहार करने को निर्देशित करता है। इसी परिस्थिति से संबंधित लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह ने अपने उपन्यास 'मुखड़ा क्या देखें' में वर्णन किया है।

“घर का नजारा बदल गया था। भीतरवाली कोठरी के द्वार पर पुरानी साड़ी का पर्दा पड़ गया था और अगले हिस्से को भतीजों ने गुलज़ार कर रखा था। जीवन में जन्म-मृत्यु और विवाह-त्योहार जैसी चीज़ें न हों तो अनेक तरह की शत्रुताएँ हमेशा तक शत्रुताएँ ही बनी रहें। ये चीज़ें कितनी आसानी से लोगों का मन बदल देती हैं.....अली अहमद बाहर बैठा सोच रहा था।” (बिरिस्मल्लाह 26)

अली का इस प्रकार का व्यवहार यह बताने के लिए पर्याप्त है कि व्यक्ति सदैव खुशी के लिए लालायित है। एक खुशी का लम्हा विगत मुसीबतों को सदैव के लिए खत्म करने को अमादा रहता है। चेतन मन के इस अंश से व्यक्ति के व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन की आशा बरकरार रहती है।

अहं अथवा इदम की मानवीय व्यक्तित्व में भूमिका

मानवीय व्यक्तित्व में उपाहं, अहं तथा पराहं की एक विशेष भूमिका होती है। किसी भी व्यक्ति के किसी दूसरे के प्रति, समाज के प्रति व्यवहार में इन तीनों का पूर्णतः महत्व होता है। उपाहं पर शारीरिक पक्ष और पराहं पर यदि नैतिक पक्ष का असर माने तो केवल अहं ही एक ऐसा पक्ष शेष रह जाता है जिसे व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं व्यवहार का मूल कारक माना जा सकता है। उपाहं में जीवन की मूल प्रवृत्तियों का तथा पराहं में आदर्शवादी सिद्धांत का नियंत्रण रहता है। किन्तु अहं का संबंध वास्तविकता से रहता है। सारांश में कहें तो केवल अहं ही एक ऐसा बिन्दु है जिसके आसपास जीवन चक्र अपना अस्तित्व कायम रख पाता है। जीवन का आधार ही अहं पर आकर ठहर जाता है।

फ्रायड के मनोविश्लेषण का मानवीय जीवन पर अत्यंत जोरदार असर पड़ा। उनके सिद्धांत को लोगों ने अपनाया भी, क्योंकि इनके सिद्धांत की पृष्ठभूमि में मानवीय जीवन के वर्तमान समय की झलक साफ दिखाई दे रही थी। लोगों के सामान्य अथवा असामान्य व्यवहार के पीछे कौन-कौन सी शक्तियाँ काम कर रही हैं, फ्रायड ने इन शक्तियों को सशक्त सबूतों सहित लोगों के सामने प्रस्तुत किया। लोगों को भी इस बात का एहसास हुआ कि हमारे किसी भी प्रकार के व्यवहार के पीछे किसी न किसी प्रकार की कोई शक्ति तो अवश्य है जो हमारे दिमाग अथवा मन के विचारों एवं शक्तियों को प्रभावित कर रही हैं। इस वजह से फ्रायड का यह सिद्धांत काफी लोकप्रिय रहा।

फ्रायड ने मानवीय व्यवहार में जिन शक्तियों की मौजूदगी का जिक्र किया है। उन्हें उपाहं, अहं तथा पराहं के नाम से विभूषित किया गया है। मानवीय व्यवहार में इनकी मौजूदगी से पहले इनके अस्तित्व पर चर्चा करना अनिवार्य है।

उपाहं: -

विगत भी यह विचार वर्णित हो चुका है कि संसार में प्रत्येक मनुष्य मानसिक शान्ति का इच्छुक है। जिसके तहत वह हर संभव प्रयत्न हेतु क्रियाशील रहता है। 'उपाहं' मन की एक ऐसी स्थिति है जिसे हम मुख्यतः प्रकृति प्रदत्त गुणों का भण्डार कह सकते हैं। यह मानव को उसके सम्पूर्ण जीवन में सदैव शारीरिक सन्तुष्टि तक ही सीमित रखने में अमादा है। इसके बारे में अरुण कुमार अपनी किताब 'आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

“उपाहं व्यक्तित्व का जैविक तत्व है जिनमें उन प्रवृत्तियों का भरमार होता है जो जन्मजात होती है तथा जो असंगठित, कामुक, आक्रामतापूर्ण तथा किसी नियम आदि को मानने वाली नहीं होती है। एक नवजात शिशु में मूलतः उपाहं की प्रवृत्तियों का ही भरमार होता है। उपाहं की प्रवृत्तियों 'आनन्द सिद्धांत' द्वारा निर्धारित होती हैं।” (अरुण 137)

यदि किसी व्यक्ति को भूख लगी है तो उसके शरीर को आनन्दमयी स्थिति में ले जाने के लिए उपाहं उसे बैचेन रखेगा जब तक कि वह खाना नहीं खा लेता। खाना खा लेने पर अथवा प्यास लगने पर पानी पीने से व्यक्ति स्वयं ही आनन्दमयी स्थिति में पहुँच जाता है। उस समय उपाहं यह कदापि ध्यान नह रखता कि ज्यादा ठण्डा पानी पीने से शरीर में विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ पैदा हो सकती हैं। किन्तु आनन्दमयी स्थिति में पहुँचाने के लिए वह गर्म की बनाए ठंडा पानी पीने के लिए ही मानव को लालायित करती है।

हमें अच्छी तरह से ज्ञान है कि सुबह जल्दी उठने से हमारी दिनचर्या के विभिन्न कार्य हो सकते हैं। किन्तु बालगों की अपेक्षा शिशु अवस्था में उपाहं के कारण देर तक सोने में रुचि दिखाते हैं। क्योंकि देर तक सोने में वह आनंद महसूस करते हैं और उपाहं 'आनन्द सिद्धांत' पर कार्य करता हुआ व्यक्ति को उसी स्थिति में पहुँचाने को अमादा रहता है।

अहं: -

अहं का संबंध वास्तविकता से होता है। दरअसल यह वह भाग होता है जो मानव के व्यवहार में स्थिरता बनाए रखता है। जब व्यक्ति की शारीरिक जरूरतें पूरी नहीं होती हैं तो व्यक्ति को बुरा अहसास होता है। जैसे कि जब बच्चा छोटा होता है तो उसकी जरूरतें बिना कहे ही पूरी होती रहती हैं। किन्तु जब वह बड़ा होता है तो उसकी इच्छा होती है कि उसकी जरूरतों को पूरा होने का सिलसिला उसी प्रकार चलता रहे किन्तु ऐसा होता नहीं है और कदाचित् सम्भव भी नहीं है क्योंकि समाज में ऐसे सभी कार्य मान्य नहीं होते हैं। बच्चा धीरे-धीरे जब बड़ा होने लगता है तो उसके उपाहं की जरूरतें की पूर्ति होना कम हो जाता है जिसे वह सहन नहीं कर पाता। उसे बुरा लगता है। किन्तु फिर उसे वास्तविकता का अहसास होता है। उसे लगने लगता है कि वह अब बड़ा होने लगा है। इस संबंध में अरुण कुमार अपनी किताब 'आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

“अहं मन के गत्यात्मक पहलू का दूसरा भाग है। जन्म के कुछ दिन बाद तक बच्चा पूर्णतः उपाहं की प्रवृत्तियों द्वारा नियंत्रित होता है। परन्तु

सामाजिक नियमों एवं नैतिक मूल्यों के कारण उनकी ऐसी प्रवृत्तियों या इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती है जिसके फलस्वरूप उसे निराशा का अनुभव होता है और उसका संबंध वास्तविकता से स्थापित होता है। इस प्रक्रिया में उसके अहं का विकास होता है। अतः अहं मन का वह हिस्सा है जिसका संबंध वास्तविकता से होता है तथा जो बचपन में उपाहं की प्रवृत्तियों से ही जन्म लेता है। अहं 'वास्तविकता सिद्धांत' द्वारा नियंत्रित होता है तथा वातावरण की वास्तविकता के साथ इसका सीधा संबंध होता है। अहं को व्यक्तित्व का निर्णय लेने वाला या कार्यकारिणी शाखा माना गया है।" (अरुण 136)

पराहं: -

यह व्यक्तित्व का वह हिस्सा होता है जो उपाहं एवं अहं से ऊपर होता है। यह एक प्रकार से उपाहं का ही दूसरा रूप है। उपाहं का भी वास्तविकता से कोई संबंध नहीं होता उसी प्रकार पराहं का भी वास्तविकता से कोई संबंध नहीं होता। उपाहं व्यक्ति को वास्तविकता से जितना नीचे की ओर ले जाता है उसी प्रकार पराहं व्यक्ति को वास्तविकता से उतना ही ऊँचा ले जाता है। इस संबंध में अरुण कुमार अपनी किताब 'आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान' में कहते हैं। कि

"पराहं को 'अहं'-से-ऊँचा भी कहा गया है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है, वह अपना तदात्म्य माता-पिता के साथ स्थापित करते जाता है जिसके परिणामस्वरूप वह यह सीख लेता है कि क्या उचित है तथा क्या अनुचित है। इसी तरह के सीखना से पराहं के विकास की शुरुआत होती है। पराहं को व्यक्तित्व का नैतिक शाखा माना गया है जो व्यक्ति का यह बतलाता है कि कौन कार्य नैतिक है तथा कौन कार्य अनैतिक है। यह आदर्शवादी सिद्धांत द्वारा निर्देशित एवं नियंत्रित होता है।" (अरुण 138)

इस प्रकार इन तीनों भागों की जानकारी से व्यक्ति के व्यवहार में आई तबदीलियों के बारे में भरपूर जानकारी मिल जाती है और व्यक्ति के व्यवहार

में बदलाव करने अथवा असामान्य व्यवहार के इलाज संबंधी आधारभूत जानकारी मिल जाती है जो कि सामाजिक व्यवहार हेतु वांछनीय है।

मानवीय व्यवहार एवं जीवन के मुख्य बिन्दुओं पर अहं का अपना एक विशेष महत्व है। कोई भी व्यक्ति इस पर चोट नहीं करना चाहता अथवा न ही चोट सहन करना चाहता है। यदि इस पर चोट लगती है अथवा ठेस पहुँचती है तो जीवन प्रभावित होता है। लेखक ने अपने 'मुखड़ा क्या देखें' नामक उपन्यास में मुख्य किरदार के माध्यम से उसके अहं पर चोट को दर्शाते हुए बहुत ही सुन्दर तरीके से दर्शाया है कि किस प्रकार अहं वाले व्यक्ति के अहं पर चोट से वह प्रतिक्रिया करता है अथवा उसके व्यवहार में क्या बदलाव एवं तबदीली आ जाती है।

“अली अहमद पराजित हो गया था और पराजय का यह बोध उसे बाहर-भीतर से मथे डाल रहा था। हालाँकि गाँव में किसी को पता नहीं था कि वह कहाँ गया है और किस उद्देश्य से गया है, किन्तु उसे तो पता था। मनुष्य की सबसे बड़ी पराजय तो तभी होती है जब वह अपनी दृष्टि में पराजित होता है। किन्तु जिसे मनुष्य अकेला ही जानता है। संसार जिसे जानता है, वह उसके एकांत में सिमटकर दुरुह हो जाता है। अल्ली चुड़िहार का मन भी दुरुहता से भर उठा था और वह अपनी ही नज़रों में शर्मिंदगी महसूस कर रहा था। वह गाँव के किसी भी परिचित व्यक्ति का सामना नहीं करना चाहता था। न जाने क्यों उसे बार-बार यही लग रहा था मानो उससे कोई पूछ रहा हो, कहे अल्ली मिल आए जवाहरलाला जी से ?” (बिरिमल्लाह 40)

अहं पर चोट के कारण व्यक्ति धाराशाही हो जाता है। उसे अहसास होता है कि उसके साथ बहुत बुरा हुआ है। उसके जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा खत्म होने की कगार पर आ चुका है। लोगों में जैसे इस के प्रति यह धारणा है कि जिन्दगी में अहं के बिना कुछ भी नहीं है उसे बचाकर रखना चाहिए। अब अल्ली चुड़िहार को यह अहसास सताने लगा है कि उसके अहं पर चोट हुई

है। वह अब गाँव जाकर कैसे अपना मुँह दिखायेगा। यह शर्मिन्दगी उसे जीने नहीं देगी।

जैसा कि उपर्युक्त इस बात का वर्णन किया जा चुका है कि उपाहं एक शारीरिक पहलू है। यह व्यक्ति के व्यवहार में केवल आनन्दमयी अहसास की पूर्ति हेतु कार्य करता है और वास्तविकता से दूर रहता है। जैसे तो अकसर यह प्रवृत्ति शिशु अवस्था में देखने में मिलती है। किन्तु जब अहं अपना प्रभाव व्यक्ति पर पैदा नहीं कर पाता तो उपाहं अपना असर दिखाना प्रारम्भ कर देता है। उस समय वह यह नहीं देखता कि व्यक्ति कौन है, किस जाति का है, किस धर्म का है, बड़ा है कि छोटा है, जमींदार है कि किसान है। इस प्रकार की बातों से उपाहं परे होता है। वह तो केवल अपने शारीरिक पहलू की संतुष्टि मात्र की पूर्ति हेतु ही कार्य करता है। इस प्रकार की घटना का वर्णन लेखक ने 'मुखड़ा क्या देखें' नामक उपन्यास में करने की चेष्टा की है। इससे पहले यहाँ पर एक बात का जिक्र करना अनिवार्य है कि फ्रायड ने अपने सिद्धांतों में काम को एक खास महत्व दिया है। वह मानते हैं कि जीवन का मूल आधार ही काम है और यह काम प्रवृत्ति छोटे बच्चों से शुरू होती है और ताउम्र चलती रहती है। इस संबंध में डॉ. पद्मा अग्रवाल अपनी किताब 'मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ' में फ्रायड के काम शक्ति सिद्धांत के बारे में कहती हैं कि

“शारीरिक शक्ति की भाँति अवश्य ही कोई मानसिक शक्ति है जो मन की क्रियाओं को प्रेरणा और गति देती है। फ्रायड की भाषा में यह मनः शक्ति 'लिबिडो' (कामशक्ति) कही गई है। यही अव्यक्त रूप से हमें प्रकार-प्रकार के विचार और कार्य के लिए प्रेरित करती है। दूसरे शब्दों में हमारी मन संबंधी प्रत्येक क्रिया का संचालक 'लिबिडो' ही है। यह जीवन में बचपन से ही सक्रिय रहती है।” (अग्रवाल 48)

इसी काम प्रवृत्ति के कारण और उपाहं के कारण व्यक्ति इसकी पूर्ति एवं आनन्द की स्थिति में पहुँचने को लालायित रहता है। फिर वह वास्तविकता एवं सामाजिक दायरों की मान्यता को नहीं मानता। लेखक अब्दुल बिरिम्ल्लाह

अपने उपन्यास 'मुखड़ा क्या देखें' में कामशक्ति से संबंधित प्रक्रिया का वर्णन करते हुए कहते हैं कि "ऐसी व्यस्तता के दिनों में एक रात चमरौटी में भयानक शोर होने लगा। लोग गोजियाँ ले-लेकर दौड़ पड़े। मगर चोर तो यह जा वह जा। सुबह पता चला कि फुल्ली दाई दालान में सोई थी और उसकी नातिन मइहे में। अचानक मइहे से एक चीख उठी और कोई आदमी अपनी धोती सँभालता भागता हुआ दिखाई पड़ा।

‘दाई दाई, ऊ दहिजरा हमरे उप्पर गिरि के हमका दबाए देत रहा.....।’

बारह बरस की नातिन रामकली बहुत घबराई हुई थी।

‘के? के रहा, बोल?’ फुल्ली दाई ने पूछा तो रामकली काँपने लगी।

‘ऊ बगिया वाले छोटे पंडित.....।’

‘चुप-चुप.....सो जा।’ फुल्ली दाई ने नातिन को लिटाया और खुद भी वहीं लेट गई।” (बिस्मिल्लाह 42)

इस घटना से यह निष्कर्ष निकलता है कि बगिया वाले छोटे पंडित मतलब कि रामवृक्ष पाण्डे के छोटे भाई सृष्टिनारायण जो कि अभी कुँवारे है। किन्तु रात के समय गरीब लोगों के घरों में जाकर उनकी बहु-बेटियों पर नज़र डालते हैं केवल अपनी काम तृप्ति हेतु। यदि हम फ्रायड की बात करते हैं तो वह जीवन जीने का आधार ही लिबिडो (कामशक्ति) मानते हैं। किन्तु डॉ. पद्मा अग्रवाल अपनी किताब 'मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ' में फ्रायड के मित्र युंग की भी लिबिडो के संबंध में विचार पर चर्चा करती हुई कहती हैं कि

“युंग के मत से 'लिबिडो' कामशक्ति का पर्यायवाची नहीं। वह वास्तव में एक 'मानसिक शक्ति' है जिसके द्वारा हमारी मन की प्रत्येक क्रिया संचालित होती है। वह हमारी प्रकृत इच्छाओं को हमारे अपने-अपने स्वभाव के अनुसार किसी को कम किसी को अधिक गति देती है। वह एक असाधारण शक्ति है जिसका प्रवाह कई दिशाओं में हो सकता है। मानव में अनेक वृत्तियाँ होती हैं। जिस व्यक्ति में जिस प्रवृत्ति की प्रधानता रहती है, उसी दिशा में उसकी मानसिक शक्ति का विशेष प्रवाह

होता है। किसी व्यक्ति की 'मानसिक शक्ति' के प्रवाह का रुख किस तरफ है, यही उसके चरित्र और व्यक्तित्व के प्रकार निर्धारित करता है।”
(अग्रवाल 44)

कहने का भाव यह कि युंग 'लिबिडो' को कामशक्ति नहीं मानते वह उसे एक ऐसी मानसिक शक्ति मानते हैं जो मानव को उसकी इच्छानुसार कार्य करने को अमादा करती है। जैसा कि लेखक ने इस उपन्यास में सृष्टिनारायण की इच्छाशक्ति का वर्णन किया जो काम से संबंधित भी है और शर्म से भी। जब उनके बड़े भाई उनकी शादी की बात करते हैं तो वह सदैव ही मना कर देते हैं कि अभी उन्हें पढ़ाई करनी है।

“सृष्टिनारायण अपनी लाठी की टेक लगाकर कलमी आम के नीचे खड़े हो गए और मुँह का थूक एक ओर पिच्च से थूककर भाई के प्रश्न का उत्तर देने के लिए तैयार हुए, मगर भैया ने तो तत्काल दूसरी बात छोड़ दी।

‘अच्छा छोड़ो सृष्टी, खेती-बाड़ी क्या, पूरी जमीनदारी ही तुम्हारी है; जैसा चाहो करो। मगर ई बताओ भइया, तुम बियाह के वास्ते क्यों नहीं तैयार हो रहे हो ? तुम्हारी भउजी कह रही थी कि....’

सृष्टिनारायण ने बात बीच में ही काट दी:

‘भैया मैं अविवाहित ही रहना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि मैं अपना जीवन आपकी सेवा और शास्त्रों के अध्ययन में ही काट दूँ। यह सुख मेरे लिए विवाह से बढ़कर है।’” (बिस्मिल्लाह 28)

अब इस प्रकार की बातों से यही देखने में लगता है कि सृष्टिनारायण निहायत ही शरीफ एवं समझदार व्यक्ति है जो केवल अध्ययन और सेवा करना चाहता है। किन्तु यह केवल उसका बाहरी दिखावा है। उसके मन के अचेतन भाग में काम की अतृप्ति की जो भावना छिपी हुई है वह उसके उपाहं के माध्यम से पूर्ति चाहती है। जिस कारण उसके अहं का कंट्रोल भी उस पर नहीं रह पाता।

छिपी हुई मानसिक इच्छाओं एवं विचारों के कारण व्यक्ति के दिमाग अथवा मन पर क्या असर पड़ता है या उनके व्यवहार में किस प्रकार का बदलाव आता है। मनुष्य इस बात से भली भाँति परिचित है। इसके साथ ही वह अपने रोज़ाना अथवा दिनचर्या के कार्य में वह गलतियाँ करता रहता है जिससे वह स्वयं भी अनभिज्ञ रहता है। किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा बतलाये जाने पर स्वयं को शर्मिदा महसूस करता है। अकेले में सोचता है कि उससे यह कार्य कैसे हो गया? कहने का अर्थ यह कि यह सच है कि कोई न कोई ऐसी शक्ति जरूर है जो मनुष्य से यह सभी कार्य अवश्य करवा रही है। सिगमंड फ्रायड की 'मनोविश्लेषण' नामक अपनी किताब जो कि देवेन्द्र कुमार के द्वारा हिन्दी में रूपांतरित हैं, के दूसरे अध्याय में फ्रायड कहते हैं कि

“हम अब सिद्धांतों के बजाय एक जांच-पड़ताल से अपनी बातचीत शुरू करेंगे। इसके लिए हम कुछ ऐसी घटनाएं देंगे जो बहुत होती हैं, जिन्हें हम रोज़ देखते हैं, और नज़रअंदाज कर देते हैं; और जो किसी बीमारी के कारण नहीं होती, क्योंकि हर स्वस्थ आदमी में वे दिखाई देती हैं। मेरा मतलब उन गलतियों से है, जो हर आदमी करता है; जैसे, आदमी कुछ कहना चाहता है, पर गलत शब्द बोल जाता है; या इसी तरह की भूल लिखने में कर जाता है, और उस पर उसका ध्यान नहीं जाता; या कोई आदमी किसी छिपी या लिखी हुई चीज़ को गलत पढ़ जाता है, या आदमी से जो कुछ कहा गया है उसे वह गलत सुन लेता है, हालाँकि उसकी श्रवण-इन्द्रिय में कोई रोग नहीं है। इसी तरह की दूसरी घटनाएं वे हैं जिनमें आदमी किसी बात को कुछ समय के लिए भूल जाता है, पर सदा के लिए नहीं; जैसे उदाहरण के लिए, कोई आदमी कोई नाम बहुत अच्छी तरह जानता है, पर उसे सोचने पर वह याद नहीं आता, हालाँकि चीज़ देखकर वह उसे तुरंत पहचान लेता है; या कोई आदमी कोई काम करना चाहता है, पर भूल जाता है, लेकिन बाद में उसे वह याद आ जाता है, और इसलिए वह उसे कुछ ही समय के लिए भूला था। तीसरी तरह की घटनाएं वे हैं, जिनमें उतने थोड़े समय की भूल नहीं होती; जैसे कोई चीज़ कहीं रख बैठना और फिर उसे ढूँढ न सकना। यह

भूलक्कड़पन आम भूलक्कड़पन से कुछ दूसरी तरह का होता है। इसका कोई कारण समझने की बजाय, आदमी इस पर चकित या परेशान होता है। इसके साथ संबंध रखने वाली कुछ भूलें होती हैं, जिनमें फिर थोड़े समय तक होने की बात दिखाई देती है; जैसे, एक आदमी किसी बात को कुछ समय के लिए सच मानता है, पर उसके पहले और उसके पीछे वह उसे झूठ समझता है, और इसी तरह की कई बातें दिखाई देती हैं जिनके हमने अलग-अलग नाम रख रखें हैं।” (फ्रायड 19)

सिगमंड फ्रायड की इस खोज ने मनोविज्ञान में एक नया अध्याय जोड़ पूरी दुनिया के सामने एक चुनौतीपूर्ण कार्य रख दिया था। जिसका शुरुआत में खण्डन भी बहुत हुआ किन्तु धीरे-धीरे इस पर कार्य अथवा शोधकार्य होने लगा और जिससे बहुत सी बीमारियों का इलाज संभव हो सका।

मन की शक्तियों के कारण प्रत्येक मनुष्य अपना एक अस्तित्व रखता है; एक पहचान रखता है क्योंकि यह शक्तियाँ उसे किसी भी कार्य के करने अथवा न करने के साथ-साथ अन्य व्यक्तियों से व्यवहार करने में भी अपना भरपूर सहयोग देती हैं। इन शक्तियों से प्रभावित होते कार्य से संबंधित लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह ने अपने ‘झीनी-झीनी बीनी चदरिया’ नामक उपन्यास में इस प्रकार की और इस प्रकार की परिस्थितियों से संबंधित विभिन्न घटनाओं एवं मानवीय कार्यों का वर्णन किया है “मतीन सोचता रहा है और देर तक वहीं बैठा रहता है, गुमसुम। फिर उठता है और अगले रजे के लिए कतान लेकर चल देता है।” (बिरिस्मल्लाह 17) इसी उपन्यास में से वह एक और उदाहरण पेश करते हैं कि “मतीन को रात में नींद नहीं आती, सिर्फ विचार आते हैं- तरह-तरह के विचार, जो उसे सोने नहीं देते।” (बिरिस्मल्लाह 17)

एक अन्य उदाहरण जो कि इसी उपन्यास में से लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह पेश करते हैं कि “विचार-ही-विचार हैं, बादलों की तरह उमड़-घुमड़ रहे हैं उसके दिमाग में। सवाल-ही-सवाल हैं, आँधियों की तरह उफन रहे हैं उसके दिमाग में।” (बिरिस्मल्लाह 17)

मन में छिपी अथवा दमित की हुई कोई बात अथवा विचार जो उसे अशांत किये रहते हैं, उसके कार्य को प्रभावित करते हैं। कहने का भाव यह कि कोई ऐसी अदृश्य शक्ति मानवीय व्यवहार एवं उसके कार्य को प्रभावित करती है। हमारे मन के विचार अथवा मन में आई कोई बात है। मन और विचार के संबंध में जेम्स ऐलन की किताब 'माईट ऑफ माईड' के हिन्दी अनुवादक बाबु चेतनदास कहते हैं कि

“मनुष्य अपने विचारों का फल है” इस बात को महर्षियों ने, कई युग हुए, कह दिया था; परन्तु बड़ा ही अचरज है कि इतना भारी समय बीत गया; परन्तु इस विचित्र सत्यता का पता बहुधा मनुष्यों को नहीं लगा। हमने विचित्र इसे इसलिए कहा है कि इसका सम्पूर्ण अर्थ विचित्र है। मनुष्य अपनी वसौती, स्थिति वंशावली, बाह्य क्षेत्र और कुछ बाह्य शक्ति का जिस पर वह अपने जीवन, चरित्र, सौभाग्य और दुर्भाग्य का भार सौंपते हैं, विचार सैकड़ों वर्षों से करता चला आता है। अपने जीवन में पूर्णता प्राप्त करने के लिए मनुष्य कभी इस वस्तु को दोष देते हैं और कभी उसको और सदा अपने बाहर उसके कारणों को ढूँढा करता है, किंतु बात यही है कि अपने भाग्य का बनाने वाले स्वयं आप हैं। प्रत्येक समय मनुष्य अपने आप को बनाते रहते हैं। मूर्ख अविश्वासी व्यक्ति भी अपने ही विचारों का उत्पादन है।” (जेम्स ऐलन 13)

मनोविकृति: -

लेखक द्वारा उपन्यास के मुख्य किरदार द्वारा प्रस्तुत उस प्रकार के व्यवहार के पीछे कदाचित् यही कारक अथवा कारण रहें हैं कि जब व्यक्ति का ध्यान उसकी चेतनावस्था में न हो या ऐसा कहें कि जब व्यक्ति की अचेतनावस्था में से कुछ विचार या इच्छाएँ अथवा छिपी हुई धारणाएँ किसी न किसी प्रकार से चेतनावस्था में आने को आतुर होती हैं तो व्यक्ति सोच ही नहीं पाता कि यह क्या हो रहा है। उसके द्वारा किया हुआ कार्य अथवा काम ही उसकी समझ से परे होता है। इस प्रकार के व्यवहार अथवा क्रियाओं में मन के अचेतन मन की अहम भूमिका होती है। क्योंकि मन के इस भाग में

वह सारी बातें होती है जो या तो अनैतिक होती है या ज्यादातर समाज में मान्य नहीं होती। तो मानव उन्हें दबा देता है। किन्तु वह किसी न किसी रूप में मन से बाहर आने को आतुर होती हैं; और जब वह अपना प्रदर्शन करती हैं तो वह मानव को अपने वश में कर लेती है। मानव उनके द्वारा की गई प्रतिक्रियाओं से अनभिज्ञ रहता है। बल्कि वह हैरान होता है कि मेरे साथ ऐसा क्यों हो रहा है?

इन शक्तियों से प्रभावित व्यक्ति कदाचित् वह कार्य भी कर जाता है जो उसकी चेतनता से बहुत परे होते हैं। इन्हें मानवीय भूलों के नाम से जाना जाता है। मनोविज्ञान में इन्हें 'मनोविकृति विज्ञान' कहा जाता है। इसमें हम उन व्यवहारों का अध्ययन करते हैं। जो चेतना से परे होते हैं। तात्पर्य यह कि बहुधा यह देखा जाता है कि व्यक्ति द्वारा बहुत से कार्य ऐसे हो जाते है जो कदाचित् उसे पता ही नहीं होते कि यह मेरे द्वारा किया गया है अथवा हो गया है। 'स्वप्नों का आना', 'नींद में चलना', बार-बार गलतियाँ करना ऐसे कार्य हैं जिनसे व्यक्ति अनभिज्ञ रहता है अथवा उसे पता ही नहीं होता कि यह कार्य उसके द्वारा किये गए हैं।

अब्दुल बिरिस्मल्लाह अपने उपन्यास 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में ऐसी ही मनोविकृति का निष्कर्ष करते हुए कहते हैं "अपने विचारों में खोया हुआ मतीन कब पहुँच गया हाजी साहब के यहाँ, उसे मालूम नहीं।" (बिरिस्मल्लाह 12) कहने का तात्पर्य यह कि उसका अचेतन मन उससे जो भी कार्य करवाना चाहता है व्यक्ति चेतनता के अभाव में उसे करता जाता है। किन्तु जब वह चेतन होता है तो वह हैरान होता है कि मुझसे यह कार्य कैसे हो गया।

अपने उपन्यास 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' में लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह इसी से संबंधित एक ओर उदाहरण पेश करते हुए कहते हैं कि

“सुबरात का दिन है। घर-घर में हलवे बन रहे हैं। मुहल्ले की लड़कियाँ साटन की सलवार और ल्यूरेक्स की पेरानी (कमीज़) पहनकर बालों में अपनी-अपनी भाभियों से अफ़शों के बेलबूटे इधर-उधर चहक रही है।

लड़के पटाखे छोड़ रहे हैं। आनन्द का एक समुद्र है, जो छित्तनपुरा से लेकर मदनपुरा तक में उमड़ा हुआ है।

लेकिन मतीन अपने तीस आदमियों की तलाश में घूम रहा है। जब तक वह तीस आदमी इकट्ठे नहीं कर लेगा, उसे चैन नहीं। अगर कुल मिलाकर साठ हजार भी मिल गये लोन के तो दो-दो हजार हिस्सा आयेगा। इतना बहुत है। जिसके पास करघा नहीं है वह करघा गाड़ लेगा, जिसके पास करघा है वह कतान खरीद लेगा और जिसके पास करघा भी है और कतान भी है वह अपने कारोबार को और भी बढ़ा लेगा। लोगों का माल भी बाहर के बाजारों में बिकने लगेगा। सबके दिन फिर जायेंगे। बस जरूरत है तीस आदमियों की, जो एक सौ दो रुपये खर्च करके सोसाइटी के मेम्बर बन सकें। फिर सबकी जो राय होगी उसी के हिसाब से किसी एक बुजुर्ग को चेयरमैन बना दिया जायेगा।” (बिरिमल्लाह 19)

अब इस किरदार की कल्पना को ही लीजिए। इसके अंदर किसी न किसी कार्य को करने का कीड़ा विद्यमान है जोकि पहले किसी ने नहीं किया उसके लिए इसे आदमियों एवं पैसे की सरख्त जरूरत है। जोकि इसके पास नहीं है किन्तु फिर भी इसे करने में अमादा है। वह इस कार्य हेतु एक प्रकार से खतरा मोल ले रहा है। किन्तु उसे ज्ञान है कि यदि वह अपने इस कार्य में सफल हो गया तो इसमें मेरे साथ-साथ अन्य लोगों का भी भला होगा। अब बात यहाँ पर यह ध्यान देने योग्य है कि किसी अन्य का फायदा हो अथवा न हो किन्तु उस व्यक्ति के दिमाग में यह कार्य करने की एक जिद्द है। उसे अपने मन की चेतनावस्था के माध्यम से यह साफ नज़र आ रहा है कि मुझे यह कार्य इस प्रकार करना है, यहाँ से इस प्रकार यह कार्य करना है। इस कार्य को करने से यह हो सकता है। इस कार्य की पूर्ति के लिए वह अपनी कल्पना शक्ति का भी भरपूर इस्तेमाल करता है और भावी योजनाएँ भी बना लेता है।

यहाँ पर उसका अहं जो है वह उसे किसी के आगे झुकने व किसी के आसरे अथवा सहारे के माध्यम से जीने को किसी भी प्रकार की तवज्जो नहीं

देता हैं। व्यक्ति का अहं उसे अपनी जिन्दगी में किसी की भी नज़रों में गिरने की इजाज़त नहीं देता। वह सदैव उसे कुछ नया करने अथवा आगे बढ़ते रहने को लाभायित करता रहता है। वह व्यक्ति का संबंध वास्तविकता से बनाये रखने में मदद करता है। डॉ. पदमा अग्रवाल अपनी किताब 'मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ' में अहं एवं चेतन मन के संबंध में कहती हैं कि

“अहं चेतन एवं विचारशील है। इसका संबंध अधिकतर बाह्य जगत् और वास्तविक जीवन से है। यह तीनों शक्तियों- बाह्य जगत् के नियम, इदम् की प्रकृत प्रवृत्ति के वेग-दबाव और 'नैतिक-मन' के सिद्धांत में मध्यस्ता करता है, अर्थात् उसकी पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं में समझौता लाता है जिससे हमारे व्यक्तित्व का संतुलन भंग न हो।” (अग्रवाल 27)

जैसा कि पहले भी ज्ञात्वय है कि फ्रायड के सिद्धांतों का मुख्य बिन्दु यह रहा है कि 'काम प्रवृत्ति' व्यक्ति के जीवन में एक आधारभूत तत्व का कार्य करती है। उसकी चेतनता एवं अहं ऐसे पहलू हैं जो उसे असामाजिकता भरपूर कार्य करने हेतु निषेधात्मक भूमिका निभाते हैं। किन्तु फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि यह प्रवृत्ति बच्चे के जन्म से ही शुरू हो जाती है और मरने तक अपना तदात्मय बनाये रखती है किसी न किसी रूप में। जिन व्यक्तियों का अहं इस पर अंकुश लगा पाता है वह तो इस प्रकार के असामाजिक अथवा सामाजिक दायरे से बाहर वाले कार्यों से परहेज कर जाते हैं और जिन व्यक्तियों पर उपाहं अपना प्रभाव जमा जाता है और अहं कमजोर पड़ जाता है तो उन व्यक्तियों से ऐसे असामाजिक कार्य हो जाते हैं जो बाद में उनके लिए समस्या खड़ी कर देते हैं। लेखक ने अपने 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' नामक उपन्यास में ऐसे बहुत से प्रसंगों को अपने उपन्यास में जगह दी है जो दोनों प्रकार से अपना प्रभाव दिखाते हैं।

“दरवाने के पास ही एक और पक्का कमरा है, जिसमें एक औरत रहा करती है। बगीचे की देखभाल कि लिए। लोगों का कहना है कि यह हाजी अमीरुल्ला की रखेल है। औरत कोई खास खूबसूरत तो नहीं, पर जवान है और मसल है कि जवानी में तो कुतिया भी खूबसूरत लगती

है। उस औरत के मर्द ने उसे छोड़ दिया है। सुना यह भी जाता है कि वह मल्लाहिन लगती है। वह औरत दिन-भर शृंगार करके पूरे बगीचे में घूमा करती है। सफेद रंग की छीटदार साड़ी और काले रंग के ब्लाउज में वह खूब जँचती है, लोगों का ऐसा विचार है। ब्लाउज हमेशा वह बड़े गले का ही पहनती है, ताकि उसका सौन्दर्य गुप्त न रहने पाये। ब्लाउज के भीतर अँगिया वह खूब कसकर बाँधती है। बालों में फीता इस तरह गूँथती है कि अठारह साल की छोकरी लगे। उसकी अदा पर हाजी अमीरुल्ला ही नहीं, उनके होने वाले समधी हाजी वलिउल्ला भी फिदा हैं। वैसे कभी-कभी हाजी अमीरुल्ला के बड़े भाई (जिन्हें लोग हाजी मिनिस्टर कहा करते हैं) भी मजाक कर लिया करते हैं।” (बिरिमल्लाह 23)

अब लेखक की इस प्रकार के चित्रण से दो बातें बाहर निकल कर आती हैं कि लेखक ने जो इस प्रकार से एक स्त्री के कपड़े पहनने के ढंग का वर्णन बड़ी ही संजीदगी से किया है। उसके वर्णन में इतना बारीकी से अंदर तक गये हैं तो कहीं न कहीं तो मन के अंदर जो मानवीय काम प्रवृत्ति का गुण प्राकृतिक रूप से विद्यमान है उसकी झलक किसी न किसी रूप में इस वर्णन में निकल कर आई है। तो यहाँ पर फ्रायड की अचेतन मन में छिपी भावनाओं की किसी न किसी रूप में बाहर निकलने की जो बात है वह कहीं न कहीं तो अपनी विशेष भूमिका निभा रही है। चाहे वह मर्द जाति के स्त्री के किसी भी प्रकार से वर्णन करने की प्रवृत्ति रही हो चाहे वह स्त्री जाति के स्वयं के प्रदर्शन का किसी भी रूप में करना रहा हो। अब यहाँ पर लेखक ने एक स्त्री के जिस प्रकार कपड़ों के पहनने के ढंग पर चर्चा की है तो यह तो साफ है कि यदि स्त्री ने इस प्रकार के कपड़े पहने हैं तो ही यह वर्णन हुआ है। इसका अर्थ है कि काम प्रवृत्ति केवल मर्द जाति ही नहीं बल्कि इससे स्त्री जाति भी संलग्न है। किन्तु प्रदर्शन के माध्यम विभिन्न हैं।

अब उस स्त्री के प्रदर्शन से दूसरों को अपनी और लुभावने का जो अप्रत्यक्ष रूप सामने आया है। वह मन के तीनों भागों चेतन, अर्धचेतन एवं अचेतन की क्रियाओं से प्रभावित है। साथ ही उपाहं एवं अहं से भी प्रभावित

है। विरोधाभास लिंग के कारण स्त्री एवं मर्द के आपसी संबंधों के मेल पर कोई संदेह नहीं है। यह एक दूसरे की ओर आकिर्षित होंगे ही। दरअसल यह एक प्रकार का उपाहं पहलू है जिस पर हम लम्बे समय तक काबू नहीं पा सकते हैं। उपाहं का केवल एक ही ध्येय है कि वह केवल आनन्द की पुर्ति हेतु ही अपना कर्म मानता है। उसी के कारणवश व्यक्ति कई बार अपना कंट्रोल खो बैठता है।

‘अहं’ ही एक ऐसा पहलू है जो मानव जाति को उपाहं एवं पराहं के प्रभाव से बचाता है। जब व्यक्ति समाज में अपना एक ऐसा रुतबा हासिल कर लेता है। जो दूसरों के लिए एक उपमा के रूप में इस्तेमाल होता है तो वह संभाल कर अपना कदम रखता है। अब ‘संभाल के कदम रखना’ वाक्यांश का अर्थ ही यह है कि ‘अहं’ नामक पहलू अपना कार्य कर रहा है। जो उपाहं पहलू को मनुष्य के दिमाग पर हावी ही नहीं होने देता। वह व्यक्ति को समाज की नजर में समझदार बनाकर पेश करता है।

लेखक ने जिस प्रकार उस स्त्री से अन्य व्यक्तियों के प्रभावित होने का भी जो वर्णन किया है। उसमें भी यह साफ हो रहा है कि उस स्त्री के सामने वह व्यक्ति उम्र एवं ओहदे में काफी बड़े हैं। वह उससे साफ तौर पर कोई ऐसी हरकत नहीं कर सकते जो उनकी उम्र एवं ओहदे को चोट पहुँचाये। दरअसल वह ‘अहं’ पहलू ही है जो उनके दिमाग में कोई भी ऐसी बात एवं विचार लाने से रोक देता है जो उनके हैसियत के अनुसार नहीं है। हालाँकि काम वासना के प्रति उनका रवैया भी सकारात्मक रहता होगा। किन्तु वह केवल उससे हंसी मजाक से ही काम चला लिया करते हैं।

उपर्युक्त भाग में इस बात की अहमियत का हिस्सा दिखाने की कोशिश की गई है कि हम यह मानकर चलते हैं कि ‘उपाहं’ प्रत्येक व्यक्ति पर अपना प्रभाव डालता है। किन्तु वह लोग ‘अहं’ एवं अपनी ‘चेतनावस्था’ के कारण ‘उपाहं’ के प्रभाव से बच जाते हैं। किन्तु उपन्यास में ऐसे अनेक एवं विभिन्न प्रसंग हैं जिनमें यह दिखाया गया है कि अमुक व्यक्ति देखने में तो सभ्य नजर आ रहा है। किन्तु कार्य ऐसे कर देता है जिससे यह सारांश निकलता है

कि इतने सभ्य होने के बाद भी 'उपाह' पहलू उस व्यक्ति पर इतना हावी हो गया है अथवा उस पहलू ने उसे इतना प्रभावित कर दिया है कि उसके 'अहं' एवं 'चेतना' ने किसी भी प्रकार से अपना उत्तरदायित्व नहीं निभा पाया।

लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह अपने उपन्यास 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में इसी परिस्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि

“शरफूद्दीन तेज़ी के साथ सोचने लगा और भीतर-ही-भीतर तनने लगा।

उसके दिमाग में यूनिवर्सिटी की अनेक लड़कियाँ और सिनेमा की अनेक अभिनेत्रियाँ घूमने लगी!

रेहनवा को नींद ने बुरी तरह चपेट लिया था। एक हाथ उसका सिर के नीचे तकिया बना हुआ था और दूसरा हाथ पेट के ऊपर रखा हुआ था जो साँस लेने के साथ-साथ रह-रहकर ऊपर उठता था और फिर नीचे दबता था। नीले साटन की पेरानी में उसकी छोटी-छोटी छातियाँ कुछ ज्यादा ही उभरी हुई दिख रही थी। इजार का एक पायँचा थोड़ा ऊपर खिसक गया था और उसकी साँवले रंग की पिण्डली उघड़ी हुई थी।

शरफूद्दीन आगे बढ़ा और उसने अपना एक पंजा रेहनवा की छाती पर रख दिया।

रेहनवा चीख उठी।

‘के है?’

शरफूद्दीन थरथराने लगा।

‘एज्जन से चल ज नाँहि त अच्छा न होइए!’

रेहनवा ने बेहद नफरत और गुस्से के साथ शरफूद्दीन की ओर देखा तो वह एकबारगी घबरा गया और झटके से पीछे की ओर मुड़कर जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतर गया।

रेहनवा खटिया पर चुपचाप बैठ गयी।” (बिरिस्मल्लाह 42)

स्त्री जाति भी इससे अत्यंत प्रभावित है। हालाँकि 'उपाह' उन पर अपना पूर्णतः प्रभाव डालने के कोशिश करता है। किन्तु कुछ परिस्थितियों में 'पराह' उन पर अपना असर डालता है तो वह कुछ इस प्रकार के असामाजिक व्यवहार की प्रवृत्ति से बच जाती हैं। किन्तु फिर भी हलके रूप में इसका प्रदर्शन अवश्य करती रहती हैं। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' नामक उपन्यास में अब्दुल बिरिमल्लाह मन की इस शक्ति के प्रभाव से स्त्रियों में पैदा होती हलचल के संबंध में कहते हैं कि

“सूरज अभी नहीं निकला हैं

नजबुनिया नगोल पर खड़ी बाल सँवार रही है। अभी-अभी नहाकर ऊपर चढ़ी है। पाँच दिन तक नापाक बनी रही। 'यह महीना-वहीना का झंझट भी बहुत बुरा है, 'वह सोचती है और पता नहीं क्यों उसे हँसी आ जाती है। वह अपने-आपमें ही मुस्कराती है।

मतीन आजकल नहीं आ रहा है। लगता है भउजी की तबीयत ज्यादा बिगड़ गयी है, वह सोचती है और इस कोने से टहलती हुई उस कोने तक चली जाती है

नजबुनिया चलती है तो ऐसा लगता है मानो मोरनी टहल रही हो।

वह अचानक अपनी पेरानी के ऊपर से अपनी छातियों पर हाथ फेरती है और अपना दुपट्टा ठीक करती हुई फिर कंधी करने लगती है।”
(बिरिमल्लाह 47)

एक कुँवारी लड़की की अकेलेपन में अपने आप में इस प्रकार की क्रियाएँ करना ओर किसी दूसरे मर्द के बारे में सोचना 'काम प्रवृत्ति' अथवा अप्रत्यक्ष रूप से 'उपाह' की उपस्थिति का असर है। जो इस प्रकार की हरकतें करवाने को मजबूर किये जा रहा है। किन्तु किसी कोने में नैतिक पक्ष अथवा 'पराह' नामक पहलू है जो उसे इस प्रकार की क्रियाओं को खुलेआम करने से रोक देता है।

एक और अन्य उदाहरण में लेखक अब्दुल बिरिस्मिल्लाह बड़े ही सुन्दर तरीके से 'झीनी-झीनी वीनी चदरिया' नामक उपन्यास में 'उपाहं' एवं 'पराहं' के कारण उत्पन्न हुए व्यवहार को जो कि मुख्यतः काम प्रवृत्ति के संबंध में ही है, बहुत ही सुन्दर तरीके से दिखाया है कि दोनों पहलू किस प्रकार अपनी मौजूदगी से व्यवहार में परिवर्तन लाते हैं।

“मतीन इन गलियों को पार करता हुआ जब रऊफ चचा के घर के सामने पहुँचा तो थोड़ी दूर से ही उसने देखा, नगोल पर खड़ी नजबुनिया किसी बात पर हँस रही थी। उसने सफेद रंग का इनार पहन रखा था और गुलाबी रंग की पेरानी। चेहरे पर एक अजीब-सी अलहड़ता नाच रही थी।

मतीन का दिल धड़-धड़ धड़कने लगा।

‘ई रऊफ चचा की बिटीवा के का हो गोवा है जो इ इम्में देख के एतर के हँसेती।’ उसने मन-ही-मन सोचा और उसकी आँखों के सामने खून की उल्टी करती हुई अलीमुन का चेहरा नाच गया।

वह काँप उठा। कहीं ऐसा तो नहीं है कि रोगग्रस्त अलीमुन से उसका युवा मन तृप्त नहीं हो पा रहा है और इसलिए वह नजबुनिया की ओर आकर्षित हो रहा है? उसने थोड़ी देर तक इस सवाल पर विचार किया, फिर एक दूसरा सवाल उसके दिमाग में उभरा कि क्या उस-जैसे एक लड़के के बाप की ओर नजबुनिया-जैसी कोई लड़की भी आकर्षित हो सकती है? और दोनों ही सवालों में उसे कोई तालमेल नज़र नहीं आया।

तब झटके से उसने अपने सारे सवालों को परे हटा दिया और रऊफ चचा के पास जाकर बैठ गया।” (बिरिस्मिल्लाह 73)

इस प्रकार की क्रिया-प्रतिक्रिया यह बताने के लिए पर्याप्त है कि किस प्रकार उपाहं, अहं, चेतन, अचेतन इत्यादि नामक पहलू किस प्रकार व्यक्ति के व्यवहार में बदलाव लाते हैं। इनके किसी भी एक पहलू के किसी दूसरे के ऊपर अधिक प्रभाव डालने से किस प्रकार व्यक्ति सामान्य एवं असामान्य

व्यवहार का प्रदर्शन करता है जबकि दिखने में सभी व्यक्ति साधारण एवं सभ्य नजर आते हैं।

‘झीनी-झीनी बीनी चदरिया’ नामक उपन्यास के अध्ययन से भी एक बात यह निकल कर बाहर आ रही है कि जैसा फ्रायड ने अपने सिद्धांतों में यह बात खुल कर कही कि काम प्रवृत्ति ही मनुष्य के जीवन का मूलाधार है। किन्तु पता नहीं क्यों लोगों में इसके प्रति सदैव ही घृणा की भावना रही है। हो सकता है कि नैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण आड़े आ रहा हो। पर सच्चाई तो यह है कि लोग इस पर खुलकर बात करने से भी परहेज पर आमादा हैं। सिगमंड फ्रायड अपनी किताब ‘मनोविश्लेषण’ (देवेन्द्र कुमार, हिन्दी अनुवादक) में कहते हैं कि

“मुझे ऐसा लगता है कि यौन विकृतियों पर बहुत सख्त पाबन्दी रही, जो इस सिद्धांत में भी घुस गई, और इस विषय में वैज्ञानिक विवेक में भी बाधा डालती है। ऐसा लगता है कि जैसे कोई भी यह बात नहीं भुला सकता था कि वे न केवल घृणा योग्य हैं बल्कि कोई राक्षसी और भयानक चीज़ हैं मानों उनसे प्रलोभनकारी प्रभाव पड़ता था, मानो हृदय के अन्तःस्थल में काम-विकृति का सुख लेने वालों से गूढ़ ईर्ष्या मौजूद थी जिसे दबाना पड़ता था। वास्तव में काम-विकृत लोग बेचारे मुसीबत के मारे ही जाते हैं जिन्हें इतनी कठिनाई से प्राप्त की हुई सन्तुष्टियों की बड़ी कड़ी सज़ा भुगतनी पड़ती है।” (फ्रायड 268)

कहने का भाव यह कि कामप्रवृत्ति के बारे में लोगों में पहले से ही एक बड़ी ही विचित्र धारणा रही है। उनकी इसी धारणा ने विभिन्न मनोवैज्ञानिक संप्रदायों में भी एक प्रकार से बाधा बनने का ही कार्य किया।

लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह और उनके जैसे अनेक ऐसे लेखक इस बात के लिए धन्यवादी रहेंगे कि उन्होंने निडरता एवं स्टीकता से ऐसे मुद्दे समाज के समक्ष रखे। अपने उपन्यास ‘झीनी-झीनी बीनी चदरिया’ उपन्यास में लेखक ने बनारस जैसे धार्मिक शहर में भी ऐसे प्रसंगों का वर्णन बड़ी ही निष्पक्षता से किया है। वह कहते हैं कि

“घाट पर ज़्यादा भीड़ नहीं है। चन्द धार्मिक किस्म की स्त्रियाँ नहा रही है, जिन्हें चन्द शोहदे किस्म के लोग देख रहे हैं। कुछ मर्द भी नहा रहे हैं और जलार्पण कर रहे हैं। घाट-किनारे के मन्दिरों में रामचरित मानस और कीर्तन के कैसेट बज रहे हैं। नाववाले मल्लाह यहाँ भी हिप्पियों के पीछे पड़े हुए हैं। ‘कम आन,’ ‘ओनली टेन रुपीज’, ‘बोटिंग’ आदि जुमलों के बनारसी उच्चारण यहाँ भी सुनायी पड़ रहा है। घाट की सीढ़ियों पर कुछ भिखारी कटोरे लिये खड़े हैं और गंगा मैया की जय-जयकार कर रहे हैं। एक ओर एक धर्मशाले के बरामदे में चन्द लोग सोये हुए हैं, जिनमें दो लड़कियाँ भी हैं। एक लगभग पाँच वर्ष की और दूसरी लड़की के शरीर पर एक फटी-सी धोती लिपटी हुई है। उसकी धोती अस्त-व्यस्त हो गयी है और चित लेटी उस लड़की का एक नन्हा स्तन कबूतर के बच्चे की तरह झँक रहा है। सामने गंगा के उस पार बबूल के दरख्तों से सूरज भगवान झँक रहे हैं। इस नये जमाने की सुब्हे-बनारस यही है!” (बिस्मिल्लाह 157)

कहने का तात्पर्य यह कि काम-प्रवृत्ति का संबंध व्यक्ति की अमीरी-गरीबी, उसके ओहदे, उसके बचपन, जवानी एवं बुढ़ापे इत्यादि से कोई संबंध नहीं होता। यही तो उसके प्रत्येक पहलू पर अपना असर बनाये रखती है। कुछ समय के लिए वातावरण के कारण तो प्रभावित हो सकते हैं किन्तु खत्म नहीं होती।

फ्रायड के सिद्धांतों की सच्चाई पर मोहर लगाते हुए लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि जिस प्रकार फ्रायड का यह मानना है कि व्यक्ति के कार्य करने का मूल मंत्र उसकी काम प्रवृत्ति है। वह व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक साथ चलती रहती है। चाहे इस बात को माने अथवा न मानें। किन्तु यह सत्य है। लेखक ने अपने तर्जुबे एवं ज्ञान के आधार पर लिखित इस उपन्यास में विभिन्न ऐसे पहलुओं का वर्णन किया है। वह अपने इस उपन्यास के माध्यम से यह बताने की कोशिश कर रहे है कि प्रत्येक व्यक्ति काम वासना में लिप्त है। उसी को आधार पर उससे विभिन्न कार्य हो

रहे है। जब भी व्यक्ति का 'अहं' उसका साथ छोड़ देता है। तो 'उपाहं' पहलू उस पर भारी हो जाता है और वह वास्तविकता से अपना नाता तोड़ देता है। उस समय व्यक्ति अपनी ज़िन्दगी के किस पड़ाव पर है। वह इस बात से भी अनभिज्ञ हो जाता है।

लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह अपने उपन्यास 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में एक व्यस्क आदमी की छिपी हुई काम वासना से संबंधित घटना का बड़ा ही स्टीक वर्णन किया है।

“मतीन जिस वक़्त टाल में पहुँचा, मोलबी साहब एक दस-ग्यारह साल की लड़की के गालों को मसल रहे थे और हँस-हँसकर डांट रहे थे कि अभी तक तुम्हें 'अलिफ़ लाम मीम' याद नहीं हुआ। लड़की मोलवी साहब की इस हरकत को निहायत शर्मिन्दगी के साथ झेल रही थी और पढ़ रही थी-

अलिफ़ लाम मीम

ज़ालिकल किताबो

लारेब फीह

हुँदल्लिल मुत्तकीनल्लज़ीन

यौ मे नून.....

‘सलौंवाले कुम!’ मतीन ने मोलबी साहब को सलाम किया तो बेचारे बुरी तरह झंप गये और लड़की का गाल छोड़कर खड़े हुए। उन्होंने अपने को फौरन इस तरह उदास बना लिया मानो बशीर की बिटिया नहीं, उन्हीं की बिटिया मरी है। झट से उन्होने सारे बच्चों की छुट्टी कर दी और मतीन को कफ़न का कपड़ा दिखाने में तल्लीन हो गये।” (बिरिमल्लाह 147)

इतने बड़े उमदरान एवं गुणवान एवं ज्ञानवान व्यक्ति की छोटे बच्चों के साथ इस प्रकार की हरकत करने की अदा और किसी के अचानक आ जाने पर शर्मिन्दा होने का अहसास यह साफ़ तौर पर बयाँ कर रहा है कि 'काम प्रवृत्ति' व्यक्ति का जन्म से मृत्यु तक साथ चलने वाला मूल आधार है। किन्तु

जब व्यक्ति का 'अहं' खत्म होने की कगार पर आता है तो 'उपाहं' उस पर अपना प्रभावा जमा लेता है और व्यक्ति को वास्तविकता से दूर कर देता है तो व्यक्ति से इस प्रकार की नीच हरकतों जैसे कार्य अंजाम होते है।

स्वप्नों में पूरी होती अवृष्ट इच्छाएँ :-

नींद में स्वप्न आना एक ऐसी प्रक्रिया है जो फ्रायड के अचेतन मन के अस्तित्व पर अपनी मोहर लगाता है। व्यक्ति के मन का एक भाग सोते हुए भी कार्य करता है और यही कार्य शैली स्वप्न के रूप में व्यक्ति के समक्ष आती है। दरअसल व्यक्ति जिस प्रकार के वातावरण से गुजर रहा होता है या जिस प्रकार की घटना से वह प्रभावित हो रहा होता है वह सभी विचारों के माध्यम से उसके दिमाग में या मन में छिप जाते हैं और हमारी चेतनता से परे अन्दर ही क्रिया करते है। यही क्रिया ही हमारे सोने के समय अचेतनता में स्वप्न के रूप में प्रकट होती है।

स्वप्न के संबंध में आदिकाल व आधुनिक काल के विद्वानों की विचारधारा में अत्यधिक अंतर पाया जाता है। आदिकाल की विचारधारा के संबंध में अरुण कुमार अपनी किताब 'आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान' में कहते हैं कि "आदिकाल के दार्शनिकों एवं विशेषज्ञों का मत था कि स्वप्न का स्वरूप आलौकिक होता है। अतः स्वप्न के समय आत्मा शरीर से अलग होकर भ्रमण करती है। इस अवस्था में आत्मा कुछ भी देखती है या सुनती है, वही स्वप्न है।" (अरुण, 163) स्वप्नों के संबंध में भी फ्रायड और एडलर में मतभेद बरकरार थे। जगदानन्द पाण्डेय अपनी किताब 'असामान्य मनोविज्ञान' में एडलर की स्वप्नों के संबंध में उनकी विचारधारा प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि "एडलर के अनुसार हमारे या किसी रोगी विशेष के स्वप्न गत जीवन पर प्रकाश नहीं डालते, बल्कि वह हमारी विभिन्न वर्तमान या भावी समस्याओं को सुलझाते हैं।" (पाण्डेय 25)

ऐसी बातें, ऐसे विचार, ऐसी भावनाएँ जो व्यक्ति के समाज में उसके रोज़ाना जीवन में उसकी चेतनावस्था के दौरान क्रियाशील रहती हैं। किसी भी कारणवश यदि वह उसके सामाजिक जीवन में असंतोष पैदा करें या वह अतृप्त रहें तो व्यक्ति उन्हें भुलाना चाहता है। वह उसे दमित कर देना चाहता है। अपने अचेतन मन में दबा देना चाहता है ताकि वह उसे फिर से परेशान न करे। किन्तु ऐसी सभी बातें जो उसके अचेतन मन में दमित हैं। वह सदैव बाहर आने को अमादा रहती हैं। जब व्यक्ति निद्रावस्था में होता है तो वह बातें व्यक्ति के दिमाग में घूमती रहती हैं जिन्हें हम स्वप्न कहते हैं।

स्वप्नों के संबंध में मुहम्मद सुलेमान अपनी किताब 'असामान्य मनोविज्ञान: विषय और व्याख्या' फ़्रायड के विचारों को प्रस्तुत करते कहते हैं कि "स्वप्न का अर्थ निद्रावस्था की वह अचेतन प्रक्रिया है, जिसके द्वारा हमारी अचेतन इच्छाओं की अभिव्यक्ति एवं सन्तुष्टि छद्म रूप में होती है।" (सुलेमान, 166) कहने का भाव यह कि व्यक्ति के दिमाग में सदैव इच्छाओं का जाल क्रियाशील रहता है जिनमें से बहुत सी अधुरी रह जाती है। वह किसी न किसी बहाने से बाहर आने को अथवा अपनी पूर्ति हेतु अमादा रहती हैं।

अब्दुल बिरिस्मल्लाह के विचार भी जिन्दगी और स्वप्न के संबंध में कुछ इसी प्रकार के ही रहे हैं। उनके 'रावी लिखता हैं' उपन्यास में ऐसे बहुत से बिन्दु बिखरे पड़े हैं। जो अधिकांश स्वप्न के करीब ही पाये जाते हैं। बहुत से ऐसे बिन्दु भी पाये गये हैं जो सोते हुए स्वप्नों की बजाए जागते हुए स्वप्नों को ज़्यादा महत्त्व देते नज़र आते हैं। अपने 'रावी लिखता है' उपन्यास में भी लेखक ने इसी प्रकार की एक उदाहरण प्रस्तुत की है वह प्रस्तुत करते हैं कि "कहाँ भाग गये?" ये शब्द मैंने बोले तो ख्वाब में ही थे, मगर आँख खुलने पर लगा कि नहीं, मैं सचमुच ही बोल पड़ी थी। क्योंकि बोलने के साथ ही मैं चौंककर उठ बैठी थी। ख्वाब में कोई और भी कहानी थी, कि कहानियाँ डेडी बहुत सुनाते थे।" (बिरिस्मल्लाह 59) ऐसी ही विचारधारा लेखक की भी रही है उनकी रचनाओं में से 'रावी लिखता है' उपन्यास में विभिन्न जगहों पर स्वप्न से संबंधित ऐसी विभिन्न दृष्टिकोणों का वर्णन है जो व्यक्ति को

साकारात्मक प्रवृत्ति प्रदान करवाते है। अब्दुल बिरिस्मल्लाह के प्रसिद्ध उपन्यास 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में भी विभिन्न स्थानों पर ऐसे अनेक पहलुओं का वर्णन है। जो यह सिद्ध करता है कि व्यक्ति जिस प्रकार के वातावरण से गुजर रहा होता है। उसी से संबंधित उसके अचेतन मन में चेतनता से परे सोते हुए जो प्रक्रिया चलती है। उस प्रक्रिया में वही बातें स्वप्न में आती हैं। "अचानक मतीन जाग जाता है। वह ख्वाब देख रहा था कि सोसाइटी बन गयी है और रुपया मिल गया है। वह खुशी खुशी रथ यात्रा से लोट रहा है और धड़धड़ाता हुआ ऊपर पहुँच गया है।" (बिरिस्मल्लाह 45)

स्वप्न मानवीय जीवन शैली का एक हिस्सा है। फ्रायड एवं उसके सहयोगियों एडलर एवं युंग के स्वप्न के विषय में भी विभिन्न विचारधाराएँ रही हैं। 'फ्रायड' के अनुसार स्वप्न में 'इच्छापूर्ति का सिद्धांत' होता है। जबकि 'युंग' ने स्वप्न को 'प्रतीकात्मक सिद्धांत' का नाम दिया है। 'एडलर' ने स्वप्न के संबंध में 'श्रेष्ठता का प्रयास प्रवृत्ति' कहा है। कहने का तात्पर्य यह कि स्वप्न के संबंधों में आधुनिक युग के विद्वानों में समानता होते हुए भी विभिन्नता बरकरार रही है।

लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह ने अपने उपन्यास 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में स्वप्नों से संबंधित, अतृप्त इच्छाओं के संबंध में विभिन्न प्रकार की घटनाओं का वर्णन किया है। जो यह सिद्ध करने के लिए संतुष्टिजनक है कि अतृप्त इच्छाएँ कैसे मानवीय व्यवहार को प्रभावित करती हैं। "अचानक मतीन जाग जाता है। वह ख्वाब देख रहा था कि सोसाइटी बन गयी है और रुपया मिल गया है। वह खुशी-खुशी रथयात्रा से लौटा है और धड़धड़ाता हुआ ऊपर पहुँच गया है। अलीमुन उसे देखकर हड़बड़ाती हुई सामने आती है तो साड़ी उसकी खटिया के पावा में फँस जाती है और वह गिर पड़ती है। उसके मुँह से फिर खून निकल आता है....मतीन चारपाई पर पड़े-पड़े ही अलीमुन और इकबाल को देखता है। दोनों तल्लीन हैः" (बिरिस्मल्लाह 45) इसी उपन्यास से अब्दुल बिरिस्मल्लाह एक और उदाहरण इसी प्रकार की परिस्थिति से संबंधित प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि

“छन्!

अचानक एक मधुर-सी आवाज़ से मतीन चौंक उठा। अलीमुन कब आकर वहाँ खड़ी हो गयी थ, उसे मालूम नहीं । वह क्या सोच रहा था ?

शायद सोसाइटी के बारे में।

नहीं, वह शायद कुछ और सोच रहा था।

शायद इकबाल के भविष्य के बारे में

नहीं, वह शायद कुछ और सोच रहा था।

‘का बात है ?’

वह अलीमुन से पुछता है तो अलीमुन कुछ नहीं बोलती। करघे पर बिनी जा रही साड़ी को देखती रहती है।

‘का बात हैं? ’ मतीन फिर पुछता है तो वह मुस्कराती है और सिर नीचे कर लेती है।

‘अबकी इदिया पर येही में की सड़िया हम्मे दियाय दों!’ वह बोलती है और सिर उठाकर मतीन को देखती है।

मतीन, यह दर्शाता हुआ कि उसने अलीमुन की बात सुनी ही नहीं, ऊपर की ओर ताकता रहता है-एकटक!

ऊपर पता है। कागज़ का वह नक्शा, जिसके आधार पर नीचे साड़ी पर बुटियाँ उगती हैं।

और ऊपर ही आकाश भी है!

सुनते हैं आकाश पर अल्ला मियाँ रहते हैं?

मतीन नक्शे को देखता है या आसमान को, कोई कह नहीं सकता।

‘सुनय के नाँहि ?’

अलीमुन टोकती है तो मतीन ऊपर से एक धागा खींचता हुआ उसकी ओर देखता है और मुस्कराता है।

‘सोसाइटी न बन जाय दे, जे ठे साड़ी कहबे दियाय देनै।’

और अलीमुन चली जाती है।” (बिस्मिल्लाह 46)

उपर्युक्त स्वप्नों के संबंध में दो प्रकार की घटनाओं का वर्णन है। किन्तु ध्यान से देखें तो पता लगता है कि दोनों स्वप्नों में दिन-रात का अंतर है। पहला स्वप्न साधारण एवं दूसरा स्वप्न जटिल प्रवृत्ति का है। स्वप्नों के स्वरूप एवं उसकी विशेषताओं के संबंध में मुहम्मद सुलेमान अपनी किताब ‘असामान्य मनोविज्ञान विषय ओर व्याख्या’ में कहते हैं कि

“(क) सरल स्वप्न: - सरल स्वप्न का अर्थ वह स्वप्न है जिसमें दमित इच्छा की सन्तुष्टि या अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से होती है। जैसे भूखा व्यक्ति स्वप्न में भोजन करने तथा प्यासा व्यक्ति पानी पीते हुए अपने आप को पाता है।

(ख) जटिल स्वप्न: - जटिल स्वप्न का अर्थ वह स्वप्न है, जिसमें दमित इच्छा की सन्तुष्टि या अभिव्यक्ति अप्रत्यक्ष रूप से होती है। ऐसे स्वप्न को स्वप्न देखने वाला भी समझ नहीं पाता है। इसका विश्लेषण या व्याख्या केवल विशेषज्ञ की कर पाते हैं।” (सुलेमान 170)

मनोरोग: -

सामाजिक एवं मानवीय व्यवहार में उतनी विकृति व्यक्ति के शारीरिक रोग के कारण पैदा नहीं होती जितनी मानसिक रोग के कारण पैदा होती है। इसका एक बहुत बड़ा कारण यह कि समाज में बहुत पहले से ही शारीरिक रोगों के इलाज तो संभव थे किन्तु मानसिक रोगों के इलाज के संदर्भ में समाज की हालत संकुचित ही रही जिसका असर पूरे समाज पर ही रहा क्योंकि एक मानसिक रोगी से उसके आसपास के लोग बुरी तरह प्रभावित होते हैं अथवा वह लोग अपने बुरे अथवा असामान्य व्यवहार से दूसरों को नकारात्मक विधि से प्रभावित करते हैं। मनोरोग की इसी प्रवृत्ति के संबंध में

मनजीत सिंह भाटिया अपनी किताब 'मनोरोग (गलत धारणाएं और सही पहलू)' में कहते हैं कि

“हमारे देश में अन्य चिकित्सा सेवाओं की तुलना में मानसिक स्वास्थ्य सेवा की तरफ बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया है। मनोरोग न केवल पीड़ित व्यक्ति के लिए कष्टप्रद हैं, बल्कि इससे परिवार के अन्य सदस्यों तथा समाज पर भी बुरा असर पड़ता है। हालाँकि, मनोरोग शरीर के अन्य रोगों की भांति दिखाई नहीं देते, परंतु इन्हें पहचानना मुश्किल नहीं होता। हमारे देश में मनोरोगों के बारे में बहुत सी गलत धारणाएं व्याप्त हैं।” (भाटिया 09)

कहने का भाव यह कि हमारे देश में शारीरिक रोगों की अपेक्षा मानसिक रोगों के इलाज के संबंध में मानसिकता संकुचित ही रही है जिससे समाज का दूषित होना वांछनीय है।

लेखक अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने उपन्यास 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में मनोरोग जैसी विभिन्न घटनाओं का वर्णन कर बहुत ही स्टीक सामाजिक हालातों का वर्णन किया है कि

“रेहाना की तबीयत ज्यादा गड़बड़ रहने लगी है। उसकी अम्माँ को पक्का यकीन है कि उसकी बिटिया को किसी ने कुछ करा दिया है। रेहाना के मामा समिउल्ला गये थे मख्रदूम शाह, वहाँ से 'पाक बत्ती' ले आये हैं। उसे जलाकर और लोबान सुलगाकर एक दिन जब बैठाया उन्होंने रेहाना को तो हबुआने लगी वह। पहले तो उसने इधर-उधर सिर को हिलाया, फिर जमीन पर दोनों हथेलियाँ दबाकर झूमने लगी। अम्माँ ने पीछे से जूड़ा खोल दिया।

‘बोल के है तैं ?’

मामा ने पूछा तो रेहाना ने क्रोध से आँखें तरेरी और फिर झूमने लगी। फिर पूछा तो बोली, “हम्मैं बहादुर सहीद लै चलो, वहीँ बतायेंगे।”

बहादुर शहीद का मजार कचहरी के पास है। बरना के इधर ही। वहाँ हर जुमेरात को बनारस और आसपास के गाँवों के स्त्रियाँ पहुँचती हैं तथा अपने-अपने भूतों से खेलती हैं। जुमेरात के रोज़ वहाँ अच्छा-खासा मेला ही लग जाता है। मजार के बाहर भैंस के कीमे की पकौड़ियाँ बिकती हैं ओर बेसन की फलोरियाँ तथा मौसमी फल। बच्चों के लिए आइसक्रीम वाले भी अपना-अपना ठेला लेकर पहुँच जाते हैं।

रेहाना को बहादुर शहीद ले जाया गया। जुमेरात का दिन। मजार के भीतर और बाहर स्त्रियों का मेला-जैसा लगा था। तमाशा देखनेवाले पुरुष भी कम नहीं थे। रेहाना की अम्माँ रेहाना को लेकर महार पर जब पहुँची, मेला अपने शबाब पर था।

वे बगल से घूमकर भीतर पहुँची और सिन्नी वगैरह खरीदकर लाइन में खड़ी हो गयीं। फिर ड्योढ़ी से जब हुक्म मिला गया तो सहन में वे दाखिल हो गयीं। हुक्म लेने के लिए सवा रुपया खर्च करना पड़ा। अपनी माँ के निर्देश पर रेहाना जमीन पर बिछे हुए कपड़े पर हाथ जोड़कर जुड़े हुए हाथों के बीच जलती हुई अगबत्ती थामकर, सवारी आने के इन्तजार में बैठ गयी। पास ही एक अन्य लड़की अपने भूत से खेल रही थी और गा रही थी-

करीले सलमिया गुरु जी,

लाल-लाल छड़िया न दिखावा हो बाबा

हमें एतना संसतिया न चढ़ावा हो बाबा!

इतना गाकर वह चुप हो गयी और जमीन पर हथेलियाँ पटक-पटककर झूमने लगी। थोड़ी देर तक इसी तरह झूमने के बाद वह अपने खुले हुए बालों को तेज़ी के साथ झटकारने लगी और मानों क्रुद्ध होकर वह गाने लगीं-

तोरी तकतिया देखी हो सैयद

अब की बिफइया नाहिं छोड़ब हो सैयद

छोड़ब त ओही उरुसवा में छोड़ब.....

और देखते-ही-देखते रेहाना भी खेलने लगी। उसके मुँह से भी गीत के बोल फूट पड़े-

छोटे-बड़े भइयन से करीले सलमिया.....” (बिस्मिल्लाह 65)

मानव जाति में इस प्रकार के व्यवहार का प्रदर्शन यह दर्शाता जब संसार अथवा समाज में फ्रायड जैसे मनोवैज्ञानिकों ने अपने सिद्धांतों के माध्यम से विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों को झेलते हुए बहुत सारी रूढ़िवादी परम्पराओं को तोड़ते हुए यह निष्कर्ष नहीं निकाला था कि इस प्रकार के असामान्य व्यवहार के पीछे कोई दैविक शक्ति नहीं बल्कि यह तो हमारे मन के विचारों की वह बीमार परिस्थिति है जो हमें उपर उठने ही नहीं देती। हमें, जो असलियत बात है उसे पर्दे में ही रखना चाहती है।

फ्रायड ने विभिन्न प्रकार की मुश्किलों का सामना करते हुए अपने जीवन को अध्ययन एवं विभिन्न प्रयोग करते हुए यह समाज के प्रतिकूल हालात के बावजूद भी अपनी साहसिक प्रवृत्ति का परिचय देते हुए यह बात कहने अथवा यह कार्य करने का निर्णय लिया और विभिन्न विफलताओं के बावजूद भी यह बताने में सफलता हासिल की कि यह सब हमारे मन की परिस्थितियों का ही हेरफेर है। इसे मनोवैज्ञानिक तरीके से बातों के माध्यम से ही हल किया जा सकता है।

इस बात अथवा इस व्यवहार की दृष्टि को यदि बहुत पुराने समय के अंतर्गत देखें तो पता चलता है कि यह समस्या परम्परागत रूप में आज से केवल कुछ समय पहले तक निर्विध्न चली आ रही थी। विभिन्न प्रकार के लोग इसे देवी-देवताओं का असर मानते हुए कोई इलाज अथवा समाधान की ओर उन्मुख ही नहीं था। बहुत से लोग इसे बुरी आत्माओं का असर मानकर प्रभावित व्यक्ति को बहुत ही बुरे तरीके से उस व्यवहार से छुटकारा पाने हेतु दंडित करते थे। ‘राबर्ट सी. कारसन’ अपनी हिन्दी रूपांतरित किताब ‘असामान्य मानोविज्ञान’ में इस संबंध में कहते हैं कि

“प्राचीन लेखों में असामान्य व्यवहार के उल्लेख दर्शाते हैं कि चीनी, मिस्रवासी, यहूदी और ग्रीस के लोग अक्सर इस प्रकार के व्यवहार के लिए पिशच या देवता को उत्तरदायी मानते थे जिन्होंने व्यक्ति को वश में कर लिया था। इस ‘वशीकरण’ में अच्छी आत्माएं शामिल हैं या बुरी आत्माएं इसका प्रमाण अधिकतर प्रभावित व्यक्तियों के लक्षणों पर निर्भर करता था। यदि व्यक्ति की भाषा या व्यवहार धार्मिक अथवा अध्यात्मिक महत्त्व का प्रदर्शित होता था, तो सामान्यतः यह सोचा जाता था कि व्यक्ति पर अच्छी आत्मा या ईश्वर का स्वामित्व है। ऐसे व्यक्तियों के साथ बहुधा बहुत अधिक आदरभाव और श्रद्धा के साथ व्यवहार किया जाता था क्योंकि लोगों को विश्वास था कि उनके पास देवीय/अद्भुत शक्तियाँ थीं।

हालाँकि, अधिकतर वशीकरण, देवताओं के गुरसे का परिणाम या बुरी आत्माओं का काम माने जाते थे, विशेष रूप से जब व्यक्ति उत्तेजित या अति क्रियाशील हो जाता था तथा वह धार्मिक शिक्षाओं के विपरीत व्यवहार में संलग्न हो जाता था। उदाहरण के तौर पर, प्राचीन यहूदियों में, इस प्रकार के वशीकरण को ईश्वर का दण्ड और क्रोधोन्माद का प्रतिनिधि माना जाता था। बाइबिल में मूसा का कथन इस प्रकार उद्धृत है, ‘ईश्वर पागल व्यक्ति को दण्डित करेगा’। ऊपरी तौर से, इस दण्ड से तात्पर्य था ईश्वर के संरक्षण का त्याग और बुरी शक्तियों के बीच उस व्यक्तियों को छोड़ देना। इस प्रकार के केस में, बुरी आत्मा से व्यक्ति को छुटकारा दिलाने के लिए प्रत्येक प्रयास किया जाता था। उल्लेखित है कि जीसस, ‘व्यक्ति के लिए मुसीबतें खड़ी करने वाले दैत्यों को सुअरों के झुंड में स्थानान्तरित कर देते थे, जो बदले में उन दैत्यों के वश में हो जाते थे और आक्रामक रूप से दौड़ते हुए पहाड़ी के नीचे समुद्र में गिर जाते थे’ इस प्रकार जीसस अस्वच्छ आत्मा-युक्त व्यक्ति को ठीक कर थे। पेशचिक वशीकरण के लिए प्राथमिक प्रकार का उपचार भूत-प्रेत निवारण की क्रिया थी, जिससे पीड़ित व्यक्ति के अन्दर से बुरी आत्मा को बाहर

निकालने के लिए विभिन्न प्रकार की तकनीकों का प्रयोग किया जाता था। इस प्रकार की तकनीकों में विविधता थी पर विशेषतया इसमें जादू, प्रार्थना, झाड़-फूंक, शोर-गुल, तथा भेड़ के गोबर और शराब से बने हुए भयावह स्वाद वाले काढ़े का प्रयोग सम्मिलित था।” (कारसन 34)

निरसंदेह रूप से कहा जा सकता है कि मानव का ऐसा व्यवहार जो कदाचित् समाज को दूषित करने में अपनी विशेष भूमिका निभाता हो और वह भी उस समय जब संबंधित व्यक्ति को भी इस बात से अनभिज्ञ हो कि प्रस्तुत कार्य उसके द्वारा किया जा रहा है तो उसे समय समाज स्वयं ही एक मनोरोगी की दशा का प्रतिबिम्ब बन जाता है। ऐसे समय में परम्परागत विचार जो ऐसी स्थिति को बढ़ावा देने का कार्य बाखूबी करते हैं, बहुत से मनोवैज्ञानिकों ने तोड़ने की बेहतरीन कोशिश की और कदाचित् चाहिए भी। साहित्यकारों द्वारा भी इस पर निष्पक्षता से कार्य होना चाहिए। अब्दुल विस्मिल्लाह ने अपने कथा साहित्य में ऐसी विभिन्न घटनाओं जो मन के प्रत्येक गत्यात्मक पहलू से संबंधित होने के साथ ही मानसिक रोगों एवं उनसे संबंधित सम्भावित समाधानों की ओर अपनी लेखनी चला एक बड़ा ही सकारात्मक एवं सराहनीय कार्य किया है। ऐसी घटनाओं से संबंधित रचनाओं से साहित्य और मनोविज्ञान के आपसी संबंधों के विभिन्न रहस्य खुलने की आस बनी रहेगी।

5.2 कहानी साहित्य में मनोविश्लेषणः

विगत ‘उपन्यास साहित्य में मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन’ अध्याय में मनोविश्लेषण की रूप-रेखा पर विस्तृत चर्चा की जा चुकी है। उसी चर्चा अथवा वर्णन पर फिर से बात करना कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता। हाँ, कहानियों में मनोविश्लेषण के आधार पर कोई भी ऐसा प्रसंग आया तो उससे संबंधित किसी सिद्धांत अथवा परिभाषा का संक्षिप्त वर्णन जरूर किया है। ‘उपन्यास’ विधा के साथ-साथ ‘कहानी’ विधा भी भावनाओं एवं कल्पनाओं सहित किसी भी घटना की प्रस्तुति ही है। और जहाँ भावनाएँ एवं कल्पनाएँ हैं वहाँ ही मनोविश्लेषण है। क्योंकि साफ तथा स्पष्ट रूप से इनका गहन अध्ययन ही मनोविश्लेषण है। इसी से मन की इन प्रवृत्तियों की दिशा एवं

दशा का ज्ञान होता है हालाँकि उसमें अप्रत्यक्ष रूप से और भी विभिन्न तत्व सम्मिलित होते हैं। किन्तु सारांश यही निकलता है।

लेखक लगभग तीस साल से कहानी लेखन में संलग्न हैं। साफ तौर पर यह तो स्वयंसिद्ध ही है कि उन तीस सालों में समाज अथवा परिस्थितियों में जितने भी तरह की बदलाव आये होंगे, कहानियाँ उसी प्रकार से प्रभावित हुई होंगी। उसी प्रकार लेखक की भावनाएँ एवं उसकी कल्पनाओं में भी बदलाव आया होगा। तो निश्चित रूप से मनोविश्लेषण से कहानियों में बहुत कुछ पाया जाएगा। यह भी देखना नितांत आवश्यक होगा कि हालात व परिस्थितियों के बदलाव से किस प्रकार लेखक की मानसिकता प्रभावित हुई होगी? किस प्रकार उसकी भावनाओं एवं कल्पनाओं ने कर्वट बदली होगी? और यदि ऐसा ही हुआ होगा तो किस प्रकार की कहानियों का निर्माण हुआ होगा?

लेखक ने अभी तक के सात कहानी संग्रह लिखे हैं। अस्सी के दशक से लेकर आज तक की लिखी गई कहानियों में बदलते दौर के अनुसार पूर्णतः विभिन्नता पाई गयी है। इस अध्याय में हमारा शोध उद्देश्य उनकी कहानियों को मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। इसके लिए हमने मनोविश्लेषण के मूल सिद्धांतों को उनकी प्रत्येक कहानी में से ढूँढने की कोशिश की है। हमारी तरफ से इस कार्य में पूर्णतः सावधानी एवं निष्पक्षता का ध्यान रखा गया है। फिर भी इसमें और शोध करने की गुंजाइश बनी रहेगी।

‘मनोविज्ञान’ विषय पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो हम यह कह सकते हैं कि इस पर काम तो बहुत पहले से होता आया है। किन्तु कोई एक विशेष धारणा के अन्तर्गत नहीं। जर्मनी के कुछ मनोविज्ञानियों ने इस पर कार्य करना आरम्भ किया तो बहुत से आश्चर्यजनक नतीजे सामने आये। धीरे-धीरे लोगों में इसकी प्रति दिलचस्पी बढ़ती रही तो इसने समाज के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में अपने पाँव फैलाने शुरू किये। नतीजा यह हुआ कि बहुत ही तेज़ी से इसके प्रयोग एवं मूल्यांकन की प्रक्रिया ने लोगों पर अपनी

जीत प्राप्त कर ली और इस विषय ने पूरे समाज को अपनी चपेट में ले लिया।

‘मनोविश्लेषण’ इसी ‘मनोविज्ञान’ विषय का एक हिस्सा है जिसमें व्यक्ति के व्यवहार का, उसकी चेतना का अध्ययन किया जाता है। किन्तु समयानुसार इसमें यह तत्व भी पाया गया कि बहुत से ऐसे कार्य होते हैं अथवा हो रहे हैं जिनमें चेतनता कहीं भी नहीं है। किन्तु फिर भी कार्य हो रहे हैं। इस संबंध में पद्मा अग्रवाल अपनी किताब ‘मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ’ में कहती हैं कि

“गत शताब्दी के मनोविज्ञान में केवल ज्ञात मन की क्रियाओं—स्मृति, कल्पना, विचार, बुद्धि, संवेदन, प्रत्यक्षीकरण इत्यादि का अध्ययन किया जाता था; अज्ञात मन के विषय से सभी अनभिज्ञ थे। मन के इस विशिष्ट स्तर का पहले-पहल अन्वेषण वियाना के प्रख्यात डॉक्टर सिगमंड फ्रायड ने अपनी विश्लेषक और तीक्ष्ण दृष्टि की प्रतिभा से किया, और यह निर्धारित किया कि अज्ञात मन मानव के संपूर्ण मन का एक प्रमुख भाग है और मानव की प्रत्येक बाह्य और आंतरिक क्रिया का वही वस्तुतः प्रवर्तक है।” (अग्रवाल 09)

कहने का भाव यह कि व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार एवं विकास में उसका अज्ञात मन विशेष रूप से भूमिका निभाता है। मन की तीनों अवस्थाओं तथा उपाह, अहं एवं पराहं के साथ-साथ, स्वप्न और गलतियों पर भी अध्ययन करने के साथ-साथ उन क्रियाओं एवं प्रक्रियों पर अध्ययन भी किया जाता है जिनसे स्वयं क्रिया करने वाला भी अनभिज्ञ रहता है। इसमें बहुत सी ऐसी मानसिक विकृतियों पर भी इलाज की दृष्टि डाली जाती है जो किसी समय भूत-प्रेतों की श्रेणी में गिनी जाती थी। मुख्य रूप से कहने का भाव यह कि जो कुछ भी चेतना से परे हो रहा है। किन्तु फिर भी कार्य हो रहे हैं और स्वयं व्यक्ति भी उस कार्य से अनभिज्ञ है। उसे अज्ञान शक्ति को जानने पहचानने एवं समस्य समझ कर उसका समाधान करने की प्रक्रिया को हम मनोविश्लेषण की श्रेणी में रखते हैं। हालाँकि सिगमंड फ्रायड, अल्फ्रेड एडलर तथा कार्ल युंग जैसे

मनोवैज्ञानिकों ने इस अज्ञात शक्ति को अपने विभिन्न दृष्टिकोणों के माध्यम से भिन्न-भिन्न रूप दिये हैं। उसी आधार पर इन्होंने अपने सम्प्रदाय एवं स्कूलों बनाये अथवा बने।

जैसा कि पहले भी सर्वविदित है कि मनोविश्लेषण एक प्रकार की चिकित्सा प्रणाली है जो मन की भावनाओं एवं कल्पनाओं में अप्रत्यक्ष रूप से पैदा हुई विकृतियों के इलाज के लिए तैयार की गई है। स्पष्ट रूप से कहें तो एक प्रकार से मानसिक रोगों के इलाज की एक विधि का नाम 'मनोविश्लेषण' है। इस रोग के विभिन्न कारण जैविक अथवा पर्यावरणिक कोई भी हो सकते हैं। इस विधि के माध्यम से केवल उनको पहचानना एवं उसका समाधान करना है। लेखक अब्दुल बिरि-मल्लाह ने अपने कथा साहित्य में ऐसे विभिन्न प्रसंगों का विवरण किया है जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी न किसी मनोरोग अथवा मनोविकृति से संबंधित है। साथ ही साथ इनमें लेखक ने अपनी सकारात्मक दृष्टिकोण का समावेश करवा इसके समाधान की ओर भी अपनी कलम चलाई है जो सामाजिक उपादेयता की दृष्टि से कदाचित् बहुत ज्यादा सहारा न बना हो किन्तु उनकी इस कोशिश को इन्कार भी नहीं किया जा सकता।

भारतीय समाज में जहाँ धर्म एक ऐसा पहलू है जिसमें विभिन्नता भी अत्यधिक है और उसके प्रति दृष्टिकोण भी। जब इतना कुछ एक स्थान पर हो तो उनमें अप्रत्यक्ष रूप से टकराव भी निश्चित है। कई बार तो यह टकराव बहुत से भ्रम के कारण पैदा हो जाता है और कई बार भ्रम के कारण टकराव पैदा हो जाता है। इसी स्थितियों में कट्टरता एवं अंधविश्वास व्यक्ति के मन में एक ऐसी उलझन पैदा कर देते हैं जो बढ़ते-बढ़ते एक बीमारी का रूप धारण कर लेती है। यह प्रक्रिया बहुत ही लम्बे समय से भारत में चली आ रही है जिसका असर समाज में रहते प्रत्येक प्राणी के प्रत्येक पहलू पर पड़ा है। इसका असर यह हुआ है कि अब यह जैविक कारक के रूप में भी विद्यमान है। सम्भवत् और भी बहुत से कारण हो सकते हैं किन्तु इस पहलू की मौजूदगी सर्वश्रेष्ठ है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से इसे असामान्य व्यवहार एवं मनोरोग की

संज्ञा दी जाती है। प्रसिद्ध मनोरोग चिकित्सक मनजीत सिंह भाटीया अपनी किताब 'मनोरोग: गलत धारणाएं और सही पहलू' में कहते हैं। कि "हमारे देश में सात प्रतिशत से भी अधिक ऐसे रोगी हैं जिन्हें तुरंत सक्रिय इलाज की जरूरत है और उन्हें अस्पताल में दाखिल कराना आवश्यक है। चार करोड़ से अधिक व्यक्ति सामाजिक एवं आर्थिक चिंताओं से ग्रस्त होकर मनोरोगियों की श्रेणी में आ गये हैं। इसका मतलब यह हुआ कि फिलहाल प्रति हजार व्यक्तियों में से साठ से अस्सी लोग मनोरोग से ग्रस्त कहे जा सकते हैं।" (भाटीया 09)

अवसाद: -

ऐसा व्यवहार जिसमें आदमी एक प्रकार से चुपचाप और शांत व्यवहार के साथ साथ अपनी शारीरिक एवं मानसिक के क्रियाशला में कमी महसूस करता है। कहने का भाव यह कि एक प्रकार से उदास हो जाता है। मनोवैज्ञानिक चिकित्सकों की ओर से इस बीमारी को 'अवसाद' कहा जाता है। अब्दुल बिरि-मल्लाह की कहानियों में बहुत से ऐसे प्रसंग एवं किस्से मिलते हैं जो मनोविश्लेषण की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। उनके कहानी संग्रह 'ताकि सनद रहे' में से 'पगला राजा' नामक कहानी में उस समय की विषमताओं पर भरपूर चित्रण किया गया है। जैसा कि मनोविज्ञान के विद्यार्थी होने के नाते हम जानते हैं कि यदि कोई असामान्य व्यवहार कर रहा है तो कहीं न कहीं उसके अज्ञात मन में उससे संबंधित कोई क्रिया चल रही है। किन्तु उसे नहीं मालूम तो ऐसे व्यक्ति से बातचीत के माध्यम से उस बात को पता कर उसका इलाज संभव है। यदि इलाज नहीं किया जाए तो उसकी हरकतों से प्रभावित लोग उसे पागल तक कहने से भी परहेज नहीं करते।

“भुल्लन की अक्ल इस बार 'भस्ट' हो गई। और भुल्लन पागल हो गया। उसके दिमाग में पता नहीं कहाँ से यह वहम पैदा हो गया कि वह राजा है। कुछ लोग कहते हैं, चूँकि उसका बड़ा बेटा असमय में ही चल बसा इसलिए उसका दिमाग फिर गया और कुछ लोगों का विचार है

कि उसकी बड़ी लड़की मेले में गायब हो गई इसलिए वह पागल हो गया। लेकिन यह किसी को नहीं मालूम है कि भुल्लन की बीधा भर जमीन को जब ठाकुर हरबंस सिंह ने अपने खेत के साथ मिला लिया तो रघुनाथ बाबा के उस कानून ने उसकी कोई सहायता नहीं की जिसकी रोशनी में भुल्लन को समझाया गया था कि अब धरती पर उसका राज्य आने वाला है।” (बिस्मिल्लाह 10)

तात्पर्य यह कि ऐसे व्यक्तियों का इलाज संभव है। क्योंकि यह अथवा ऐसे व्यक्ति कुछ समय के लिए अवसाद ग्रस्त हो जाते हैं। किन्तु समय पर इलाज के अभाव में यह इससे लम्बे समय तक पीड़ित रहते हैं। इस संबंध में ‘राबर्ट. सी.कारसन’ अपनी हिन्दी अनुवादित किताब (अनुवादक-पल्लवी भटनागर) ‘असामान्य मनोविज्ञान’ में कहते हैं कि

“हममें से अधिकतर लोग समय-समय पर अवसाद ग्रस्त होते हैं। परीक्षा के असफलता, अपनी पहली पसंद के कॉलेज में दाखिला न मिलना, भावुक संबंध का दूर जाना—कुछ ऐसी घटनाओं के उदाहरण हैं जो बहुत से लोगों में अवसाद की मनोदशा उत्पन्न कर सकते हैं। यद्यपि, मनोदशा विकृति में मनोदशा की गंभीर असामान्यताएँ होती हैं तथा वे अधिक लम्बे समय तक रहती हैं। ऐसे मामले में मनोदशा अशांत एवं तीव्र होती है और इतने अधिक समय के लिए होती है कि स्पष्ट रूप से अपानुकूली हो जाती है तथा अक्सर इसकी वजह से काम तथा रिश्तों में गम्भीर समस्याएँ आ जाती हैं।” (कारसन 292)

कहने का भाव यह कि समाज में किसी भी प्रकार से अमुक व्यक्ति के साथ घटित किसी भी प्रकार की घटना से अपना मानसिक संतुलन खो देते हैं और इस प्रकार का व्यवहार करने लग जाते हैं जिससे समाज हम से प्रभावित होता है और हम समाज से। दरअसल लेखक ने अपनी यह ‘पागल राजा’ कहानी लगभग इसी आधार बिन्दु को लेकर लिखी है कि किसी भी गाँव का कोई भी ऐसा व्यक्ति जो किसी भी प्रकार की अप्रत्याशित घटना का शिकार हो जाता है जिससे वह पूरे गाँव में मज़ाक का पात्र बनता है। दरअसल फ्रायड ने इसी

प्रकार के व्यक्तियों के इलाज हेतु ही अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग इस प्रकार की पढ़ाई में बिताया। हालाँकि इस प्रकार के इलाज के लिए उन्हें बहुत कष्ट झेलने पड़े थे। एन.सी.ई.आर.टी. की तरफ से प्रकाशित एवं श्वेता उप्पल द्वारा सम्पादित किताब 'मनोविज्ञान' में 'अवसाद' नामक इस बीमारी के बारे में बहुत अच्छे से वर्णित किया गया है। वह इसे भाव दशा विकार मानती हैं। वह कहती हैं कि

“भावदशा विकार में व्यक्ति की भावदशा या लंबी संवेगात्मक स्थिति में बाधाएँ आ जाती हैं। सबसे ज़्यादा होने वाला भावदशा विकार अवसाद होता है। जिसमें कई प्रकार के नकारात्मक भावदशा और व्यवहार परिवर्तन होते हैं, जैसे- किसी संबंध का टूट जाना या किसी महत्वपूर्ण लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल होना।” (श्वेता 85)

एक अन्य उदाहरण में भी लेखक ने अपनी 'विदूषक' नामक कहानी में इस प्रकार की एक और घटना अथवा परिस्थिति का वर्णन किया है जो इसी प्रकार के अवसाद से व्यवहार में आए असामान्य व्यवहार का जिक्र किया है।

“वाह बाबू साहब वाह! मेरी खैरून, मेरी लैला। सच्ची बाबू तुम्हीं ने किया उसे मेला। लेकिन बाबू साहब ने उसे लौटाया काहे नहीं ? मेरी लैला को मुझसे मिलाया काहे नहीं ? मैं क्या कर लेता तुम्हारा? जिसका जहान है सारा। मेरी लैला कहाँ गई बाबू साहब?

अरे लैला लैला पुकारूँ मैं वन में।

लैला प्यारी बसै मोने मन में।।

और धीरे-धीरे मशहूर हो गया कि सफुलवा की बीवी भाग गई, कि सफुलवा पगला गया, कि सफुलवा बड़ा मजा लगाता है.....” (बिरिमल्लाह 28)

लेखक ने कहानियों के माध्यम से यह बताने की कोशिश की है कि किसी भी व्यक्ति के जीवन में कोई भी ऐसी घटना घटे जिसकी उसे किसी भी प्रकार की आशा न हो तो मुख्य रूप से वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है। एक और बात यहाँ कहना वांछनीय है कि एन.सी.ई.आर.टी. की तरफ से प्रकाशित

एवं श्वेता उप्पल द्वारा सम्पादित किताब 'मनोविज्ञान' में 'भावदशा विकार' के बारे में बताते हैं कि

“एक अन्य कम सामान्य भावदशा विकार है उन्माद। उन्माद से पीड़ित व्यक्ति उल्लासोन्मादी, अत्यधिक सक्रिय, अत्यधिक बोलने वाले तथा आसानी से चित्त-अस्थिर हो जाते हैं। उन्माद की घटना या स्थिति स्वतः कभी-कभी ही दिखाई देती है, इसका परिवर्तन अक्सर अवसाद के साथ होता रहता है। इस प्रकार के भावदशा विकार, जिसमें उन्माद और अवसाद बारी-बारी से उपस्थित होते हैं, में कभी-कभी सामान्य भावदशा की अवधि भी आती है। इसे द्विधुवीय भावदशा विकार कहते हैं। द्विधुवीय भावदशा विकार को पहले उन्माद-अवसाद विकार कहा जाता था।” (श्वेता 85)

कहने का भाव यह कि किसी भी अप्रिय घटना से प्रभावित व्यक्ति जब बहुत ज्यादा शांत, उदास अथवा बहुत ज्यादा बोलने, हँसने या बिना वजह बड़बडाने लग जाये तो भावदशा विकार रोगी कहा जाता है। उसके अंतर्गत ही यह अवसाद-उन्माद नाम दिये जाते हैं। लेखक अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपनी कहानियों में दोनों तरह के व्यवहार करने वाले व्यक्तियों की उदाहरण पेश कर इस बीमारी के लक्षणों को प्रस्तुत किया है तथा जगह-जगह उनके सम्भावित समाधान का भी दृष्टिकोण रखा है।

चेतन, अचेतन: -

इस संबंध में पिछले अध्यायों में भी लिखा जा चुका है। संक्षिप्त में वर्णन करते हुए आगे चलते हैं कि वर्तमान में अमुक व्यक्ति के साथ घटित हो रही किसी भी प्रकार की घटनाएँ जो उसे ध्यानचित हैं और पुछने पर व्याख्यान कर देता है, चेतना कहलाती है। किन्तु जो उसे याद ही नहीं है और उसके मन के किसी कोने में वह बातें छिपी हुई हैं और बाहर निकलने को व्याकुल हैं, अचेतनावस्था की धारणी कहलाती हैं।

लेखक एक प्रगतिवादी एवं आदर्शवादी लेखनी के स्तंभ के रूप में कार्य करते आ रहे हैं। अपनी कहानियों में उन्होंने जहाँ पर यथार्थ के चित्रण का ब्योरा दिया है; उसी के साथ ही आदर्शवादिता पर भी चुटकी ली है। 'दंगाई' कहानी में इसका पुर्णतः असर दिखाई पड़ता है। मुख्य किरदार के माध्यम से उन्होंने बीमार मानसिकता से प्रभावित हो रहे समाज का जो चरित्रार्थ किया है। उसी के माध्यम से ही अपने को पछतावे पर दिखाकर उससे दूषित हुए समाज को सुधारने की ओर अग्रसर होने का संकेत भी दिया है।

“मैं कोशिश करता हूँ कि मुझे नींद आ जाए, पर नहीं आती। रात भर मैं अपनी योजना को उलटता-पुलटता रहता हूँ।

और सुबह जब अपनी आदत के अनुसार अम्माँ मुझे पुकारती हैं तो अपने भीतर की गॉँठ को, नासूर के स्रोत को, जहर की जड़ को, एक ही साथ अपनी सम्पूर्ण मनोवृत्ति को टटोलता हुआ मैं उठता हूँ और लगता है कि भीतर एक लम्बा-सा खालीपन तेजी के साथ भरता जा रहा है। अन्दर ही अन्दर मैं बिखर रह हूँ और टूट-टूटकर पतझड़ के पत्तों की भाँति गिर रहा हूँ। मेरे जिस्म पर असह्य प्रहार हो रहे हैं औ मैं अवाक्, हतप्रभ, किंकर्तव्यविमूढ़-सा खड़ा हूँ।” (बिस्मिल्लाह 36)

प्रस्तुत विवरण में अमुक व्यक्ति के मन में बेतरतीब व बेचेनी से भरी चल रही उठा-पटक स्वयं ही बताने को अमादा है कि मन की इस शक्ति से मानवीय व्यवहार में बेहताशा खालीपन नजर आता है। यह सारी ऐसी बातें होती हैं जो कदाचित् उसके दिमाग में एक अपूर्ण इच्छापूर्ति के रूप में विद्यमान हैं किन्तु स्वयं व्यक्ति उससे अनभिज्ञ रहता है। वही अपूर्ण अतृप्त इच्छाएँ मानवीय मन में हलचल मचाए रहती हैं और चेतना में आने को आतुर रहती हैं।

लेखक ने इस कहानी के माध्यम से मन के उपाहं, अहं एवं पराहं तीनों भागों का बहुत ही सुन्दरता से समाज में उनके योगदान का भरपूर वर्णन किया है। और अंत में आकर मुख्य किरदार के माध्यम से पराहं का बहुत ही संक्षिप्त में वर्णित हुआ है। जिससे कहानी का अंत यह दर्शाता है कि अब मुख्य किरदार का मन का मैल धुल गया है। अब वह समाज से शर्मिन्दा

है। लालजी राम शुक्ल अपनी किताब 'आधुनिक मनोविज्ञान में इस अचेतन शक्ति के संबंध में प्रसिद्ध मनोविज्ञानी युंग की विचारधारा को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि

“जिस प्रकार मनुष्य की सभी प्रकार की बुराइयों की जड़ उसके अचेतन मन में है, उसी तरह उसकी सभी प्रकार की भलाईयों की भी जड़ उसके अचेतन मन में हैं। चेतनातीत मन में न केवल दमन की गई वासनाएँ रहती हैं वरन् उसमें हमारे समस्त जीवन का मूल स्रोत पाया जाता है। हमारे शरीर का निर्माण इसी मन ने किया है। यह मन नैतिक धारणाओं का भी मूल स्रोत है। युंग महाशय के कथानुसार मनुष्य की नैतिक धारणाएँ उसके ऊपर बाहर से नहीं लादी गई, वरन् उसकी जड़ मनुष्य के अचेतन स्वभाव में ही हैं।” (शुक्ल 10)

मन के इन भागों की क्रियाशीलता की विभिन्नता से मानवीय व्यवहार में जो विभिन्नता आती है उससे स्वयं उस व्यक्ति के साथ-साथ आस-पास का वातावरण भी प्रभावित होता है। लेखक ने अपनी कहानी संग्रह 'रफ रफ मेल' में 'जीना तो पड़ेगा' नामक कहानी में इस प्रकार के व्यक्ति के चरित्र का चित्रण किया है जो काफी हद तक मन के अचेतन भाग की क्रियाशीलता के कारण प्रभावित है। जिससे वह स्वयं भी और उसके परिवार के लोग भी त्रस्त हैं।

“कल आप इतनी रात में क्यों नहा रहे थे ? कल रात कितनी ठंड थी, पता है?”

आकिल साहब चुप रहे। बस अपने छोटे-छोटे खिचड़ी बालों वाले कुम्हड़े जैसे आकार के लम्बोतरे सिर को दोनों हाथों से सहलाते रहे।

“आपने कुछ जवाब नहीं दिया। अगर आप बीमार पड़ गए तो ? बोलिए, क्यों नहीं रहे थे ?”

गुड्डन मियाँ ने जब जरा सरख्ती से अपना प्रश्न दुहराया तो सिर झुकाए-झुकाए ही आकिल साहब बोले—

“हमें लगा कि सोते में हमारा कपड़ा खराब हो गया है।”

यह सुनते ही गुड्डन मियाँ चुपचाप उठे और बाहर निकल गए।” (बिस्मिल्लाह 13) प्रस्तुत पात्रों की वार्तालाप से स्वयं ही सिद्ध हो रहा है कि हमारी अचेतन अथवा असामान्य परिस्थितियों का पूरे समाज पर असर पड़ता है। यदि लोग एक दूसरे के अनुभवों से सीखते हैं तो उनके बुरे व्यवहार से भी वह नकारात्मक तरीके से प्रभावित होते हैं। प्रस्तुत पात्र ‘आकिल साहब’ के मन में उनकी अचेतन शक्ति के कारण उसकी मनोवृत्ति वैसी ही बन जाती है और वह उससे जो कुछ भी करवाना चाहती है। उसके द्वारा स्वयं ही होता जाता है। उसे डांट कर उसे समझाने से कदाचित् कोई लाभ नहीं है जैसा कि कहानी के अन्य पात्रों के द्वारा उसे समझाने की कोशिश करता दिखाया गया है। ऐसे व्यक्तियों के मन में क्या क्रियाकलाप चल रहा है। मनोविश्लेषण विधि के अलावा इसके उपचार की सम्भावना कम है। लेखक अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपनी कहानी में अपने पात्र की कुछ ऐसी ही स्थिति दिखाकर उसकी मनोवृत्ति को प्रदर्शित करने की कोशिश की है और यह दिखाया है कि वर्तमान समाज में ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं जो ऐसी परिस्थिति में अपना जीवन बसर कर रहे हैं जिससे उन से संबंधित अनुकूल वातावरण समाज के लिए प्रतिकूल दृष्टिकोण अपना लेता है।

विक्षप्त सामाजिक कारकों से कुंठित एवं त्रस्त होती मानसिकता: -

समाज में प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे का सहयोग करता है; सहयोग पाता है। स्वयं दूसरों से सीखता है और दूसरों के सीखने हेतु स्वयं प्रेरक का उत्तरदायित्व निभाता है। समाज में घटित हो रही प्रत्येक समस्या का कारण प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से मानव ही है जिस कारण सहन भी इसे ही करनी पड़ती हैं। जैसे-जैसे मानव विकास के नाम पर आगे बढ़ने का दावा करता आ रहा है। उससे कहीं ज्यादा मुसीबतों को उपहार के रूप में पा रहा है। जिससे सम्पूर्ण सामाजिक वातावरण कुंठित हो गया है। वर्तमान में साहित्य और मनोविज्ञान ही इसके समाधान के किंचित मात्र सहारे के रूप में विख्यात हैं। लेखक ने अपनी कहानियों में विभिन्न प्रकार के ऐसे प्रसंग रखे हैं कि

स्वयंसिद्ध हो जाता है कि वह मनोविज्ञान के पाठक अथवा विद्यार्थी रहे होंगे। कुंठित स्थिति जैसे कितने ही प्रसंग उन्होंने अपनी कहानियों में दिए हैं। और उनसे बचने हेतु भी जहाँ तक संभव हो सका समाधान की कोशिश को भी बरकरार रखा है। उन्होंने अपने कहानी संग्रह 'ताकि सनद रहे' में ऐसी विभिन्न कहानियों में ऐसे कुंठित वातावरण का बड़ी ही सुन्दरता से प्रस्तुत किया है। वह कहते हैं कि

“आगे से नाला पार करके एक पहाड़ी पर चढ़ गया था, और चट्टान पर बैठते ही अचानक मुझे बेहद तकलीफ महसूस होने लगी थी। क्या यही दिन देखने के लिए मैंने शरीर जलाया है, रात-रात भर काव्यशास्त्र और भाषाविज्ञान की पुस्तकें चाटता रहा हूँ। विश्वविद्यालय परिसर में तुलसी और प्रसाद पर सोचता रहा हूँ। वेद, गीता और मानस का मनन करता रहा हूँ। घरवालों की इच्छा के विरुद्ध भी मैंने यह सब किया है। पर मुझे क्या मिला? अपाहिज वेतन की नौकरी और जाति के नाम पर अपमान! मैं बुझ गया था। फिर मेरी आँखों में माता-पिता की बूढ़ी आँखें झाँकने लगी थीं—इस आशा से भरी हुई आँखें कि उनका एक मात्र बेटा उच्च शिक्षा प्राप्त कर चुका है, अब उन्हें अभावों से मुक्ति मिलेगी.... ..! और लगा कि अध्ययन, मनन सब मिथ्या है। सत्य है केवल नौकरी। अब मनुष्य को मनुष्य बनने के लिए विद्या की नहीं, अर्थ की आवश्यकता है.....और पता नहीं कब तक मैं यही सोचता रहा। होश आया तो देखा, रात गहरी हो गई थी। मेरी नसों में भय दौड़ने लगा और अचानक ही मेरे भीतर जीवन का मोह बढ़ गया। मैं लौट पड़ा।”
(बिरिमल्लाह 51)

सामाजिक दायरों में रहते हुए कभी-कभी मनुष्य इतना हाताश हो जाता है कि उसे लगता है कि उसका जीवन व्यर्थ हो गया है। इस समान में उसका कोई भी मूल्य नहीं है। ऐसा व्यक्ति एक प्रकार से मानसिक संघर्ष से गुजर रहा होता है। लेखक द्वारा इस प्रकार की कहानियों का चित्रण सर्वविदित हो जाता है कि स्वयं लेखक भी इस प्रकार की मानसिक स्थिति में से अवश्य गुजरे

होंगे अथवा सामाजिक वातावरण ने उनके समक्ष ऐसे हालात पैदा किये होंगे अथवा हो गये होंगे जिनका साक्षात् चित्रण करने हेतु कलम चलाई।

कोई भी व्यक्ति लम्बे समय तक इस प्रकार के मानसिक संघर्ष के साथ नहीं रह सकता। वह उससे बचने हेतु प्रत्येक संभव कोशिश करता है। जैसा कि लेखक ने अपनी इस कहानी में दिखाया है कि जब व्यक्ति मानसिक संघर्ष से गुजरता है तो चीखकर अपनी सारी बातें, चाहे स्वयं को ही दुहरा कर अपने आप को मानसिक शांति प्राप्त करने की कोशिश करता है। मनोविज्ञान में इसे रक्षा-युक्तियाँ कहते हैं। इसके बहुत से भेद हैं जो व्यक्ति के कष्टों को कम कर उसे मानसिक शांति प्राप्ति की ओर ले जाती हैं। इस संबंध में अरुण कुमार अपनी किताब 'आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान' में कहते हैं

“विस्थापन भी एक ऐसी मनोरचना है कि जिसके सहारे व्यक्ति अपने अहं को कष्टकर एवं अनैतिक इच्छाओं से उत्पन्न द्वन्द्वों एवं संघर्षों से बचाता है। इस मनोरचना में व्यक्ति अपने संवेग या प्रेरणा को किसी विशेष वस्तु या व्यक्ति से अचेतन रूप से हटाकर दूसरे व्यक्ति या वस्तु से संबंधित कर लेता है।” (बिरिमल्लाह 154)

जैसा कि 'अधर्मयुद्ध' कहानी में मुख्य किरदार मानसिक संघर्ष से पीड़ित है तो चीख कर अपने बात को मन से बाहर निकाल कर स्वयं को कुछ हद तक राहत पा लेने में सफल हो जाता है।

अहं: मानवीय व्यक्तित्व को बचाता हुआ

मानवीय व्यवहार में 'अहं' पहलू की एक विशेष भूमिका है। लेखक ने इस पहलू की महत्ता को दर्शाने हेतु अपनी कहानियों में बहुत से प्रसंग रखे हैं जो हमें यह बताने हेतु पर्याप्त हैं कि मानवीय व्यवहार एवं समाज में अपना अस्तित्व कायम रखने हेतु यह किस प्रकार मदद करता है। लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह की एक कहानी 'अतिथि देवो भव' कहानी संग्रह के अंतर्गत 'पुण्यभोज' नामक से है। इसमें 'खुदाबक्स' नामक मुख्य किरदार को कुछ हद तक मंदबुद्धि के रूप में दिखाया गया है। जब तक उस व्यक्ति ने अपने

‘अहं’ को नहीं पहचाना था तो प्रत्येक व्यक्ति उसका मजाक उड़ाते हुए दिखाया गया था। किन्तु जब उसका ‘अहं’ अपनी अहमियत समझता है तो उससे उन सभी लोगों के मुँह पर ताला लग जाता है।

“अचानक खुदाबकस का मुँह बिगड़ गया। हम मरभूखे हैं यह ठीक है कि और लोगों की बनिस्बत हम कुछ ज़्यादा ही खाते हैं, लेकिन हमारी खुराक को इतना ज़्यादा बढ़ा-चढ़ाकर बताने का किसी को क्या हक है? क्या हम इतना खाते हैं, जितना यह लोग कह रहे हैं? तौबा! तौबा!

ये इंसान नहीं, हैवान हैं। हमें ये लोग फकीर समझकर खिलाते हैं। सवाब हासिल करने के लिए खिलाते हैं। इसलिए हमें खासतौर पर ग्यारही और चहल्लुम के खाने पर बुलाया जाता है। हम खाँए और इन्हें सवाब मिले। मतलब यह कि हम इन्हें सवाब दिलाने के लिए खा रहे हैं! दूसरे लोग अपने लिए खाते हैं, हम दूसरों के लिए खाते हैं! हमें इसलिए नहीं खिलाया जाता कि हम भूखे हैं, बल्कि इसलिए खिलाया जात है कि हमारे खाने से इन्हें सवाब मिलेगा! इनकी हराम दौलत हमारे खाने से हलाल होती है! हमें खाना खिलाकर ये अपने गुनाहों पर पर्दा डालना चाहते हैं! वाह भई वाह! यह तो ख़ूब रही!.....तिस पर, हम खाँए भी; खाकर इनको सवाब भी दिलाएँ, इनके गुनाहों पर पर्दा भी डालें और अपना मजाक भी उड़ाएँ, गालियाँ भी खाँएँ! अच्छा तमाशा है!

खुदाबकस की जबान का स्वाद कुछ ज़्यादा ही बिगड़ गया। शायद उनके भीतर कोई ऐसी चीज हरकत में आ गई थी, जो इतने दिनों से सोई पड़ी थी। वह उनकी चेतना को मानो मथे दे रही थी। खुदाबकस अचानक ही बुरी तरह परेशान हो उठे! हम क्यों किसी का सवाब दिलाएँ?

और अगले ही क्षण देखा गया कि खुदाबकस हलक में उँगलियाँ डालकर कै कर रहे थे!” (बिस्मिल्लाह 54)

कहानी के इस भाग से यह स्पष्ट हो रहा है कि 'अहं' एक ऐसा पहलू है जो इन्सान को जिल्लत भरी जिन्दगी से निकाल कर स्वाभिमान से जीना सिखाता है।

पद्मा अग्रवाल अपनी किताब 'मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ' में 'अहं' में कहती हैं कि

“यह तीनों शक्तियों—बाह्य जगत के नियम, इदम् की प्रकृत प्रवृत्ति के वेग-दबाव और 'नैतिक मन' के सिद्धांत—में मध्यस्ता करता है। अर्थात् उनकी पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं में समझोता लाता है। जिससे हमारे व्यक्तित्व का संतुलन भंग न हो। बाह्य जगत् में मनुष्य नियमों से बँधा है। इदम् की प्रकृत इच्छा इस प्रकार के बंधनों को तोड़ना चाहती है। परिणाम यह होता है कि बाह्य जगत उसे एक ओर खींचता है, प्रकृत इच्छाएँ दूसरी ओर। नैतिक मन का नियम तो ओर भी कड़ा है। इसके साथ प्रकृत इच्छाओं की तृष्टि का प्रश्न ही नहीं उठता। नैतिकता के कड़े नियमों से संचालित होने के कारण उसका प्रतिबिन्ध कठोर रहता है।”

(अग्रवाल 27)

तात्पर्य यह कि अहं मन की शक्तियों का एक ऐसा गत्यात्मक पहलू है जो हमें सही अर्थों में जीना सिखाता है। यह हमें बिल्कुल निचले स्तर एवं बहुत ज्यादा ऊँचे स्तर पर जाने से रोक कर वास्तविक जीवन जीना और नियमों में रहना सिखाता है। लेखक ने अपनी विभिन्न कहानियों में 'अहं' से संबंधित वातावरण पैदाकर कदाचित् स्वयं की जीवन शैली को चित्रण करने का प्रयास किया है। क्योंकि लेखक से वार्तालाप के दौरान उनके जीवन एवं उससे संबंधित वातावरण पर चर्चा के दौरान बहुत सी ऐसी बातें निकल कर बाहर आयी जिनका सारांश यही निकलता है कि अपने अहं के कारण ही वह अपने जीवन में कामयाब हो पाये। हालाँकि उनके पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक कारण तो उनके बिल्कुल भी तथा कभी भी अनुकूल नहीं रहे। उनकी 'अतिथि देवो भव' नामक कहानी संग्रह में 'अतिथि देवो भव' नामक कहानी में मुख्य रूप से हिन्दू-मुस्लिम की द्वन्द्ववात्मक स्थिति दिखाते हुए भी 'अहं'

की अप्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुति प्रदान की है। कहानी के माध्यम से वह कहते हैं कि

“बाहमण हैं?”

“नहीं, मैं मुसलमान हूँ, मेरा नाम मुहम्मद सलमान है।”

उन्होंने अपना पूरा परिचय दिया और रोटी के आखिरी टुकड़े में सब्जी लपेटने लगे। पांडे जी ने अपनी स्त्री की ओर आँखें उठाई तो पाया कि वह खुद उनकी ओर देख रही थी। ऐसा लगा कि दोनों ही एक-दूसरे से कुछ कह रहे हैं, पर ठीक-ठीक कह नहीं पा रहे हैं।

सलमान साहब अगली रोटी का इंतजार कर रहे थे, लेकिन स्त्री स्टोव के पास उठकर भीतर चली गई थी और कुछ ढूँढने लगी थी।

सलमान साहब आम खाने लगे थे।

स्त्री जब बाहर निकली तो उसके हाथ में काँच का एक गिलास था और आँखों में भय।

उसने सलमान साहब की थाली के पास रखा स्टील का गिलास उठा लिया था और उसकी जगह काँच का गिलास रख दिया था।

सलमान को याद आया कि अभी शाम को अभी जिस गिलास में उन्होंने चाय पी थी, जिस थाली में वे खाना खा रहे थे, वह भी स्टील की ही थी। पल-भर के लिए वे चिंतित हुए। फिर उन्होंने अपनी थाली उठाई और परनाले के पास जाकर बैठ गये। गुड़ना उठाया और अपनी थाली माँजने लगे।” (बिरिस्मल्लाह 147)

कहने का भाव यह कि हालाँकि इस कहानी में लेखक ने हिन्दू-मुस्लिम धर्म के आधार पर लोगों में पूरी कट्टरता दिखाई है। किन्तु फिर भी इसमें लेखक ने पात्रों के माध्यम से अपने अहं को बरकरार रखने अथवा उसके अनुसार कार्य करने का बाखुबी चित्रण किया है। बहुत सालों बाद अमुक व्यक्ति अपने पुराने विद्यार्थी को मिलने जाता है। किन्तु उसकी बजाए उसकी पत्नी घर पर

मिलती है जो यह नहीं जानती कि अमुक व्यक्ति हिन्दू है या मुस्लिम, उसकी पूरी खातिरदारी करती है। यह बात वह व्यक्ति भी नहीं जानता जो अप्रत्यक्ष रूप से अपनी खातिरदारी करवा रहा है। किन्तु जब बातों ही बातों में उस औरत को उसके मुस्लिम होने का आभास होता है तो वह उसको जैसा कि कहानी में वर्णित है, खाना खिना रही होती है वह वहीं रुक जाती है। इस बात का आभास जब उस व्यक्ति को होता है तो वह अपने 'अहं' को बचाता हुआ अथवा उसके अनुसार कार्य करता हुआ उठकर स्वयं ही खाने की थाली उठाकर माँजने के लिए चल पड़ता है। ताकि उस औरत को यह ग्लानि न महसूस हो कि उसने अपना हिन्दू धर्म भ्रष्ट कर एक मुस्लिम व्यक्ति के खाने के झूठे बर्तन माँजे। लेखक ने बड़ी ही स्टीकता एवं अप्रत्यक्षता से मन की शक्तियों एवं उसके गत्यात्मक पहलुओं का वर्णन कर 'अहं' की बड़ी सी सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत की है।

लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह ने अपने एक कहानी संग्रह 'रफ रफ मेल' में 'लंठ' नामक कहानी में अहं की एक बहुत ही उदाहरण प्रस्तुत की है। उसमें वह कहते हैं कि

“घर क्या था, बस मिट्टी की दीवारें थीं, जो गिरने-गिरने को थीं। लिपाई-पुताई तो होती नहीं थी, इसलिए फर्श पर भी धूल हो गई थी। वह फिर दिन भर अपनी दलान में पड़ा रहता। बस शाम को गाँव में निकलता और जहाँ कुछ पा जाता, खा-पी लेता! बच्चे और नौजवान ही नहीं, बूढ़े भी उसे छोड़ा करते; मगर वह सिवा मुस्कराने या लजा कर सिर झुका लेने के और कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता था।

एक रोज किसी ने कहा, “अरे आरिफ, अब तो तुम कोई काम-धंधा भी नहीं करते “मुफ्त का खाना तो तुम्हारा स्वभाव नहीं था।” बात उसे लग गई। और एक बार वह फिर सक्रिय हो उठा।

वह अब रात में निकलता। घर-घर के किवाड़ धकेलता! जहाँ द्वार खुला मिलता, वह खड़ा होकर बड़बड़ाने लगता-

“अरी एक रघू की अम्माँ, किवाड़ तो बंद कर लो। ज़माना कितना खराब है! कोई आएगा और सब उठा ले जाएगा! फिर रोओगी डेवढ़ी पर बैठकर!” (बिस्मिल्लाह 116)

कहने का भाव यह कि लेखक ने बड़ी ही स्टीकता से अपनी इस कहानी में पात्रों के माध्यम से उनके अहं को जगाने का प्रयास दिखाया है। प्रत्येक व्यक्ति के मन पर समाज की घटनाओं का असर पड़ता है। जाने-अनजाने में वह अपनी चेतनता से विमुख हो जाता है और वास्तविक जीवन से टूट जाता है। किन्तु जब उसे कोई उसके उपाहं से निकालता है तो उसमें स्वयं में ही अहं जागृत हो उठता है और स्वयं को वास्तविकता से जोड़कर क्रियाशील हो उठता है। यहाँ पर एक और बात कहनी वाँछनीय है कि जैसे यह सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति में विभिन्न गुणों का भण्डार होता है उसी प्रकार यह भी सत्य है कि वह अपने सभी प्रकार के गुणों के प्रति अनभिज्ञ होता है। कई बार पारिवारिक समस्याओं के कारण व्यक्ति परेशान अथवा असमायोजित होता है जिससे वह संतुष्ट नहीं रहता तो वह अपने जीवन को वास्तविकता से तोड़ लेता है और एक प्रकार से मानसिक रूप से परेशान हो जाता है। किन्तु यदि वह स्वयं की शक्ति को पहचान ले तो प्रत्येक समस्या पर विजय पा सकता है। इस संबंध में लालजी राम शुक्ल अपनी किताब ‘मानसिक चिकित्सा’ में इसी चिकित्सा के माध्यम से कहते हैं कि

“मानसिक चिकित्सा विधि के अध्ययन करने और दूसरे लोगों को चिकित्सा करने का प्रधान लाभ आत्म चिकित्सा कर सकने की शक्ति प्राप्त कर लेना है। जिस प्रकार की शक्ति का उपयोग हम दूसरे लोगों के उपहार के लिए करते हैं उसी प्रकार की शक्ति का प्रयोग हम अपने आप की भलाई के लिए भी कर सकते हैं। मानसिक शक्ति की वृद्धि अभ्यास से होती है। मनुष्य के मन में चमत्कारिक मानसिक शक्तियाँ हैं। पर उपयोग न कर पाने के कारण उसे इनका ज्ञान नहीं होता। उदार मनोवृत्ति के व्यक्ति अपनी शक्ति को काम में लाने के अवसर की कमी नहीं रहती। बार बार प्रयोग करने से उसे अपनी शक्ति में पूरा विश्वास

हो जाता है। मनुष्य अपने बहुत से रोग आत्म-निर्देश के द्वारा स्वयं अच्छा कर लेता है। पर आत्म-निर्देश का तत्व समझे और उसका प्रयोग किये बिना उसकी शक्ति में विकास नहीं होता। अतएव प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह जहाँ भी रोगी को देखे उसके प्रति मैत्री भावना प्रगट करे और उसकी जो कुछ भी सहायता कर सके करे।” (शुक्ल 21)

कहने का भाव यह कि प्रत्येक मनुष्य को दूसरे की प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में मदद करनी चाहिए। प्रत्येक मनुष्य में विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ विद्यमान हैं। लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह ने भी अपनी इस कहानी में इसी प्रकार की परिस्थिति का वर्णन किया है। किसी एक परेशान व्यक्ति को अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करके उसे सही राह पर ला खड़ा किया।

चिन्ता: -

बुद्धि या विवेक का चिन्ता के साथ गहरा संबंध है। समाज में रहते हुए व्यक्ति का किसी भी प्रकार के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा अन्य किसी भी प्रकार के वातावरण के साथ समायोजन ही हमारी बुद्धि कहलाती है। किसी भी प्रकार की लाभ-हानि के प्रति यदि हम स्थिर रहते हैं तो कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति में सहनशीलता है। यदि हमारे अंदर सहनशीलता की कमी पाई जाती है तो हम उस कार्य के प्रति डरने लगते हैं जिसे चिन्ता कहते हैं। कहने का भाव यह कि यदि हमारे अंदर किसी भी कार्य के परिणाम को सहन करने की शक्ति समाप्त हो जाती है तो हमारी बुद्धि पर दबाव पड़ता है और वह कार्य करना बंद कर देती है। मुश्किलों के प्रति समाधान करने की शक्ति से विहीन हो जाती है जिससे हम चिंतित हो उठते हैं। वर्तमान समाज में प्रति व्यक्ति इस से प्रभावित हैं। आधुनिक रहन-सहन, खान-पान से शारीरिक कमजोरी बढ़ती जा रही है जिससे दिल और दिमाग भी शारीरिक रूप से कमजोर होते जा रहे हैं और सहनशीलता की कमी होती जा रही है।

‘फ्रायड’ अपनी किताब ‘मनोविश्लेषण’ में चिन्ता के संबंध में कहते हैं कि

“चिन्ता (या त्रास) का वर्णन करने की कोई आवश्यकता नहीं; हर व्यक्ति ने किसी-न-किसी समय इस संवेदन को, या अधिक सही रूप में कहा जाए तो इस भाव-दशा को स्वयं अनुभव किया है। पर मेरी राय में इस बात पर काफी गम्भीर विचार नहीं हुआ कि स्नायविक लोग ही चिन्ता से, औरों की अपेक्षा मात्रा में और तीव्रता में अधिक, कष्ट क्यों पाते हैं। शायद यह स्वयंसिद्ध ही मान लिया गया है कि उन्हें यह कष्ट होना ही चाहिए। सच पूछिए तो चिन्ता और स्नायविकता शब्द एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त कर दिए गये हैं, मानों उनका एक ही अर्थ हो, परन्तु यह उचित नहीं। कुछ लोग चिन्तामुक्त होते हैं, पर वे स्नायविक (नर्वस) नहीं होते; और इनके अलावा, ऐसे स्नायु-रोगी होते हैं जिनमें बहुत से लक्षण होते हुए भी चिन्तित या त्रस्त होने की कोई प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती।” (फ्रायड 325)

ऐसी ही प्रवृत्ति लेखक ने अपनी ‘अतिथि देवो भव’ नामक कहानी संग्रह की ‘आधा फूल, आधा शव’ नामक कहानी में दिखाई अथवा प्रस्तुत की है।

“जैसे-जैसे रात गहरी हो रही थी, हाफिज्जी का दिमाग और अधिक उलझ रहा था। एक-एक कर राय साहब की सारी चालाकियाँ उनके सामने उजागर हो रही थीं। बाज़ार की वसूली, तालाब की नीलामी, चकबंदी में खेतों का चुनाव.....सब जगह राय साहब बाजी मार ले गए थे और हाफिज्जी दोस्ताना उदारता में पड़कर खामोश रह गए थे। मगर धीरे-धीरे अब उनकी समझ में आने लगा था कि राय साहब की ये सहज सफलताएँ नहीं थीं। इनके पीछे शतरंजी चाल की गहरी चालाकियाँ छिपी हुई थीं।

हाफिज्जी को नींद नहीं आ रही थी। शायद ऐसा पहली बार हुआ था, जबकि भीतरी कमरे से बेटे की हँसी और बहू की चूड़ियों की खनखनाहट उन्हें सुनाई पड़ी थी, वरना खाना खाकर और हुक्के का दम लगाकर जब वे पलंग पर पड़ते तो फौरन ही गहरी नींद में डूब जाते थे।

मगर चिंता तो बिना पंख का परिंदा है न, आदमी का गोश्त खानेवाला-

इके मुर्ग, दीदम न पा-ओ-न पर

न अज़ शिकमें-मादर न पुश्ते-पिदर

न बर आसमाँ है न ज़ेरे-ज़मी

हमेशा खुरद-गोश्त हैं आदमी!

(एक परींदा है, जिसके न नेत्र हैं न पाँव और न पंख; न वह माँ के गर्भ से उत्पन्न है न बाप की कूबत से; न आसमान में रहता न जमीन पर; वह हमेशा आदमी के गोश्त को रेज़ा-रेज़ा करता रहता है)

.....अगर राय साहब का घोड़ा वे न मारते तो मात न होती उनकी। अगर उस दिन वे शहर न चले गए होते तो बाजार की वसूली का अधिकार उन्हें जरूर मिल गया होता। अगर एक बार अपनी बोली वे और बढ़ा देते तो इतने बड़े तालाब के मालिक आज वही होते। अगर चकबंदी-अफसर से खामखा झगड़ा न कर लेते वे तो जो खेत राय साहब के मिले, वे उन्हें ही मिलते.....” (बिस्मिल्लाह 76)

मुख्य किरदार ‘हाफिज्जी’ के मन में जो उथल-पुथल लेखक ने दिखाई है वह इस बात का सबूत है कि वह अपने प्रतिद्वन्दी ‘राय साहब’ से मात खाने के बाद चिंतित हैं; लेकिन अपनी परिपक्वता के कारण उसे किसी दूसरे को अहसास नहीं होने दे रहे हैं। किन्तु अंदर से वह पूरी तरह से टूट चुके हैं। दिमाग को शांत रखकर वह विगत उन सभी बातों पर गौर फरमा रहे हैं। कि राय साहब से उन्होंने कहाँ-कहाँ मात खाई है। इस संबंध में वह स्नायविक (नर्वस) नहीं हो रहे हैं। किन्तु चिंतित हैं। लेखक ने बड़ी ही सुन्दरता से स्नायविक (नर्वस) तथा चिंता का सुमेल दिखाया है। इस संबंध में डॉ. एस अख्तर ‘मानसिक स्वास्थ्य पर रेडियो आधारित प्रसारणमाला ‘उजाले की ओर’ में कहते हैं कि

“साधारण शब्दों में चिंता या घबराहट आने वाले समय में कुछ बुरा या खराब घटने की आशंका होना है जबकि इनका कोई वास्तविक आधार नहीं होता। थोड़ी बहुत चिंता सभी को होती है और यह हमारे लक्ष्य की प्राप्ति या सफलता के लिए आवश्यक भी है। यदि चिंता बहुत बढ़ जाती है तो इसके व्यापक दुष्प्रभाव व्यक्ति के पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन पर पड़ने लगता है तो इसे हम घबराहट और चिंता रोग या *Anxiety Disorder* कहते हैं।” (अख्तर 24)

लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह ने अपनी किताब रफ रफ मेल (कहानी संग्रह) की कहानी ‘माटा-मिरला की कहानी’ में इसी प्रकार की आंतरिक चिन्ता जो कि बाहर से दिखाई नहीं देती किन्तु फिर भी मन में मौजूद है का बहुत ही स्टीकता से वर्णन किया है। वह कहते हैं कि “माटा का हाल यह था कि घर में नहीं दाने और अम्मा गई भुँजाने। फाके होते थे, पर डींगे लंबी-लंबी हाँकते थे। हालाँकि भीतर ही भीतर वे अपनी सही हालत को जानते थे इसलिए दुखी भी रहा करते थे।” (बिरिमल्लाह 124) कहने का भाव यह कि प्रत्येक व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में घटित हो रही प्रत्येक घटना से प्रभावित होता है। गरीबी होने के कारण चाहे व्यक्ति दिखावे के रूप में बड़ी-बड़ी डींगे हाँके। किन्तु उसे पता है कि समाज में अपना अस्तित्व कायम करने के लिए वह असमर्थ हैं जिससे वह अन्दर ही अन्दर दुखी रहता है।

काम से प्रभावित मानसिक प्रवृत्ति: -

सामाजिक जीवन एवं उससे संबंधित पहलुओं के समझने एवं समझाने के लिए विश्व प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों, लेखकों, विद्वानों, मनीषियों इत्यादि ने अपनी-अपनी बुद्धि विवेक के माध्यम से विभिन्न तरीके एवं रहस्य बताये अथवा समझाये हैं। वैसे तो प्रकृति निर्मित इस संसार एवं इससे संबंधित जीवन को समझना अत्यंत जटिल है। किन्तु फिर भी इन सबके प्रयासों से कुछेक रहस्यों से परदा उठाया जा सका है। ईसा पूर्व से लेकर आजतक इन

रहस्यों को सुलझाने हेतु कार्य चल रहा है। विडम्बना देखिए जैसे-जैसे खोज जारी है। वह उतनी ही गहरी होती जा रही है।

मनोविज्ञान से संबंधित यदि हम वर्णन करें तो इन्होंने दार्शनिकता को आधार बनाते हुए आज यह प्रयोगात्मक स्थिति तक पहुँच गये हैं। इतने लम्बे सफर में इन्होंने 'मन' को सदैव केन्द्र में ही रखा। उससे संबंधित मानसिक स्थिति को प्रत्येक क्षेत्र में आधार बिन्दु बनाया और अपने-अपने तरीके से अपनी विचारधाराएँ अथवा मनोवृत्तियाँ प्रस्तुत की।

आज तक जितनी भी कोशिश इस जीवन जीने के संबंध के रहस्यों को सुलझाने के लिए की गई। वह लगभग एक दूसरे से संबंधित ही रही। किन्तु प्रसिद्ध मनोविज्ञानी 'सिगमंड फ्रायड' की मनोविश्लेषण विधि एक अलग ही प्रकार की विधि थी। उन्होंने 'काम-प्रवृत्ति' को जीवन का आधार मान उस पर अपने विचार दिये। प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से इसका बहुत विरोध भी हुआ किन्तु फिर भी अपनी सच्चाई के दम पर यह अपना अस्तित्व कायम रख पाया। इस संबंध में कुमारी संध्या दूबे अपने शोध-प्रबंध 'मुक्तिबोध के साहित्य में प्रयुक्त पात्रों का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन' में कहती हैं कि

“वेसे यदि हम ध्यान से देखें तो पायेंगे कि संवेगों की द्रुद्धात्मकता भी एक प्रकार का रोग ही है। संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं वे अपनी-अपनी हठधर्मिताओं समूह के विरुध अपनी जिद के कारण ही प्रसिद्ध हुए हैं। सामान्य से विचलन के कारण ही उनके समकालीन समाज और व्यवस्था ने उन्हें या तो पागल ठहरा दिया है या उनकी वैसी ही उपेक्षा की है जैसी पागलों की जाती रही है।” (दूबे 04)

कहने का भाव यह कि किसी भी नई खोज अथवा शोध पर किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया होना लाजमी है। वह नकारात्मक एवं सकारात्मक कोई भी हो सकती है। किन्तु फ्रायड के इस सिद्धांत पर बहुत बुरी तरह से नकारात्मक प्रतिक्रिया हुई। फिर भी वह कहते हैं कि हमारी मन की शक्तियों में से 'काम' एक ऐसी शक्ति है जो अपने उपर नैतिकता एवं सांस्कृतिक मर्यादा का पर्दा ले छिपी हुई है। किन्तु उसकी जीवन की आधारशिला में एक अहम भूमिका है।

लोग उसे उसी पर्दे के कारण सार्वजनिक करने से डरते हैं। किन्तु फिर भी उसके प्रति अप्रत्यक्ष रूप से अपनी विशेष रुचि रखते हैं। सिगमंड फ्रायड अपनी किताब 'मनोविश्लेषण' (देवेन्द्र कुमार-हिन्दी अनुवादक) में कहते हैं कि

“आपके मन में निश्चित रूप से यही बात आती होगी कि 'यौन' (या कामात्मक) शब्द के अर्थ पर कोई संदेह नहीं हो सकता। निःसंदेह इसका सबसे पहला अर्थ है 'अनुचित', अर्थात् जिसकी चर्चा नहीं करनी चाहिए। मुझे एक प्रसिद्ध मनश्चिकित्सक के कुछ छात्रों के विषय में एक कहानी सुनाई गई है: इन छात्रों ने एक बार अपने गुरु को यह निश्चय कराने की कोशिश की कि हिस्टीरिया रोगी के लक्षण बहुत बार यौन बातों को निरूपित करते हैं। इस उद्देश्य से वे उसे हिस्टीरिया वाली एक स्त्री के पलंग के पास ले गए जिसके दौरे प्रसव के असंदिग्ध अनुकरण थे। पर वह बोला 'लेकिन प्रसव में यौन कहीं नहीं है।' निश्चय जानिए कि प्रसव सदा अनुचित नहीं होता।” (फ्रायड 253)

कहने का भाव यह कि लोग सदैव ही यौन को अनुचित समझते रहे हैं और छिप कर इसी में रुचि रखते हैं।

लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह ने अपनी कहानियों में भी इसी प्रकार के प्रसंग रख स्वयं की मनोवृत्ति को पेश करने की कोशिश की है। क्योंकि पहले भी इस बात को वर्णित किया जा चुका है कि मनोविश्लेषण में अचेतन मन में चल रही दमित बातों को बाहर निकालने की प्रक्रिया जारी रहती है। कदाचित् लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह के मन में भी इसके प्रति कहीं न कहीं संवेदना रही होगी जिसका विवरण उनकी रचनाओं में प्रदर्शित हो रहा है। अपने कहानी संग्रह 'रफ रफ मेल' में 'लंठ' कहानी में वह कहते हैं कि

“लड़कियाँ अपने घाघरे फहराती फुदकइया चिड़ियों की तरह फुदक रहीं थीं। एक लड़की खटोले पर लेटी पाँव हिला रही थी। गोरी चिट्ठी, उम्र यही कोई चौदह-पंद्रह साल, कलाइयाँ लाख की चुड़ियों से भरी हुई, पाँच में खूब चौड़े पायल, लाल छीट की कसी हुई चोली और गाढ़े पीले रंग का घाघरा। घाघरे से निकली हुई रोएँदार पिंडलियाँ.....आरिफ मियाँ उस

दृश्य में इस कदर तन्मय हो गए कि फिर कहाँ की जर्सी गाय और कहाँ के मजिस्ट्रेट साहब!” (बिस्मिल्लाह 113)

कहने का भाव यह कि ‘काम-शक्ति’ से प्रत्येक मानव प्रभावित है। यह एक ऐसी संवेदना है जो व्यक्ति के जीवन का आधार बन उसे क्रियान्वित करती है। प्रस्तुत कहानी में किसी ओर काम से जा रहे अमुक पात्र को जब अठखेलियाँ करती हुई लड़कियाँ जब रास्ते में मिल जाती हैं तो वह सब काम छोड़ उन्हीं के पास रुक जाता है। अपने इसी कहानी संग्रह में लेखक ‘जब नींद नहीं आती’ कहानी के माध्यम से एक और उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि

“एक रोज की बात है कि एक शरीफजादा, जो देखने में एकदम गँवई किसान लगता था, साफ धोती-कुर्ता पहने, पान दबाए उस इलाके में पहुँचा और सीधा चारों बेस्व्याओं की तरफ बढ़ने लगा। फिर अब क्या पूछना था, उन बेस्व्याओं की खुशी का पारावार न था। वे अपनी झ्योढ़ियों पर खड़ी उचक-उचककर उस शरीफजादे को देखने लगीं और अपने नैना चमका-चमकाकर इशारे करने लगीं। किसी ने कोयल जैसे मीठे सुर में गाना छेड़ दिया तो किसी ने अपना आँचल नीचे ढलका दिया.....” (बिस्मिल्लाह 102)

कहने का भाव यह कि ‘काम’ से मानव जितना परहेज करता है; दमित कर के रखता है। यह उतना ही निकलकर बाहर आता है। चाहे वह स्त्री हो या पुरुष। यह संवेदना सभी में बराबर पायी जाती है। केवल प्रदर्शन से दोनों में अंतर समझा जा सकता है।

गलतियों अथवा भूलों से प्रभावित मानवीय व्यवहार: -

कोई भी व्यक्ति जब किसी भी कारणवश स्वयं पर मानसिक दबाव महसूस करता है तो उससे छोटी-छोटी गलतियाँ होती रहती हैं। इसका एक दूसरा कारण यह भी है कि हमारे चेतन मन में जो भी दृश्यमान होता है वह सब हमें ज्ञात होता है। किन्तु बहुत सी बातें हमारे अचेतन मन में होती हैं जो समाप्त नहीं होती। किन्तु हमें लगता है कि वह खत्म हो चुकी हैं। जब कोई

भी ऐसा कार्य हमारे द्वारा होता है जो हम चेतनावस्था में नहीं कर रहे हैं। हमारे अचेतन मन की शक्ति के द्वारा हमसे हो रहा है तो हमें अहसास होता है कि वह कार्य गलत हुआ है अथवा हमसे गलती हुई है। किन्तु वह गलती नहीं बल्कि हमारे मन की अचेतनावस्था की क्रियाशीलता है जो हमें कार्य करने को मजबूर कर रही है।

बहुत से अन्य ऐसे काम स्वयं ही होते रहते हैं जिनसे कदाचित् वह अनभिज्ञ रहता है। दरअसल यह है तो चेतनावस्था की निद्रावस्था। कहने का भाव यह कि जब हमारी चेतनावस्था से परे कोई कार्य होता है तो हम उससे अनभिज्ञ रहते हैं। हमारे दिमाग में यह चल रहा होता है कि यह कार्य कैसे हो गया? मैं तो इसमें भागीदार हूँ ही नहीं। तो उस समय हम गलत होते हैं। दरअसल यह काम स्वयं ही नहीं होते। कहीं न कहीं हमारा अचेतन मन इसके पीछे भागीदार होता है। जिसके कारणवश यह कार्य हमारी चेतनावस्था से परे ही पूरे हो जाते हैं। फ्रायड इस संबंध में अपनी हिन्दी अनुवादित किताब 'मनोविश्लेषण' (अनुवादक-देवेन्द्र कुमार) कहते हैं कि

“हम देखते हैं कि ऐसी गलतियाँ और भलक्कड़पन तब भी होते हैं, जब लोग थके हुए या उत्तेजित नहीं होते, बल्कि हर तरफ से अपनी सामान्य अवस्था में होते हैं—यह बात और है कि इन गलतियों के कारण ही हम बाद में यह कहने लगें कि उत्तेजित अवस्था में थे, जबकि स्वयं यह बात मंजूर नहीं करते। और न ही मामला इतना सीधा हो सकता है कि यदि ध्यान खूब केन्द्रित हो तो कार्य सफलतापूर्वक हो जाएगा या ध्यान कम हो तो उसके बिगड़ने का डर रहेगा। कारण यह है कि बहुत सारी क्रियाएं बिलकुल स्वतः चालित मशीन की तरह बहुत थोड़े ध्यान से की जाती हैं, पर फिर भी वे ठीक हो जाती हैं। चलते हुए आदमी को शायद यह भी पता न हो कि वह कहाँ जा रहा है, पर वह सही रास्ते पर जाएगा और बिना भटके अपनी मंजिल पर पहुँचकर ठहर जाएगा। कम-से-कम आमतौर से तो यही होता है।” (फ्रायड 22)

इसी संबंध में लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह ने 'आधा फूल, आधा शव' नामक कहानी में इसी प्रकार की परिस्थिति को बड़ी ही सुन्दरता से बयान किया है कि

“अब देखते हैं राय साहब कोन सी चाल चलते हैं? यह शतरंज की चाल नहीं है, इस मुल्क की अकलियत का जब्बा है.....यह बाज़ार की वसूली और तालाब की नीलामी का मामला नहीं है, मामला है हमारे आबाओं अजदाद (पुरखों) की अरवाहे-पाक (पवित्र आत्माओं) का.....’ हाफिज्जी जितनी तेजी के साथ पर सड़क पर चल रहे थे, उससे कहीं ज्यादा तेजी के साथ खयालात उनके दिमाग में चल रहे थे।”
(बिरिस्मल्लाह 78)

कहने का भाव यह कि जब कोई बोल रहा है और हमारे कान सही हैं। किन्तु हमें सुनाई नहीं दे रहा तो स्पष्ट अर्थ यह है कि यह कार्य हमारे मन के अचेतन भाग के क्रियान्वित के कारण हो रहा है। देखने वाले को हम चेतनावस्था में नज़र आ रहे हैं। किन्तु उस समय हम चेतनावस्था में नहीं होते।

बहुत बार हमारे दिमाग में आता है कि हम चीजों एवं व्यक्तियों को भूल रहे हैं। किन्तु इसका अर्थ यह है कि हम उसे अपनी चेतनावस्था में नहीं गिन रहे हैं। हमें अहसास होता है कि हम किसी चीज को रखकर भूल गये हैं अथवा किसी व्यक्ति को भूल गए हैं। किन्तु वह हमारे अचेतन मन में एक प्रकार से दमित हो जाती है और संबंधित वातावरण पैदा होने से फिर से क्रियान्वित हो जाती है। लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह ने अपने कहानी संग्रह 'रफ रफ मेल' में 'जीना तो पड़ेगा' नामक कहानी में चेतनावस्था से दूर होती अथवा भूल को दर्शाती घटना से संबंधित प्रसंग को प्रस्तुत किया है। वह कहते हैं कि “गाँव के लोग—और घर के लोग भी अक्कल मामा उर्फ आकिल साहब को धीरे-धीरे भूल गए। समय तो अपने जिगर के टुकड़े तक को भुलवा देता है, फिर वे तो एक अनजान परदेसी थे।” (बिरिस्मल्लाह, 18) इस प्रसंग से यह तो ज्ञात होता है कि समय के बीतने से व्यक्ति सब कुछ भूल जाता है।

किन्तु यह एक अधूरा सत्य है। समय बीतने से व्यक्ति किसी भी घटना को केवल अपनी चेतनावस्था से ही परे हो पाता है। वह घटना उसके अचेतन मन में जाकर दमित रहती है। समय के बदलाव एवं उसी प्रकार की घटना के जैसा माहौल दुबारा मिलने पर वह सब कुछ याद आ जाता है। इस कहानी में भी ऐसा ही दिखाया गया है। जिस आकिल मामू को वह भूल जाने की बात करते हैं। कुछ सालों बाद उसके लड़के द्वारा वैसा ही वातावरण पैदा करके सारी घटनाओं को फिर से याद आने की घटना का वर्णन लेखक ने बाखूबी किया है।

मुहम्मद सुलेमान अपनी किताब 'असामान्य मनोविज्ञान: विषय और व्याख्या' में मानवीय व्यवहार की इन भूलों एवं गलतियों के संबंध में कहते हैं

“प्रश्न यह है कि व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में विभिन्न प्रकार की भूलें क्यों करता है। इस संदर्भ में दो तरह के सिद्धांत मिलते हैं। पहला सिद्धांत संयोग सिद्धांत है, जिसके अनुसार भूलें संयोगवश होते हैं। इन भूलों का न कोई कारण होता है, और न कोई सार्थकता होती है। इसलिए, इन भूलों को न तो कोई भूल करने वाला व्यक्ति ही महत्त्व देता है और न दूसरे लोग ही।

फ्रायड के पहले तक यह सिद्धांत मान्य था। दूसरे सिद्धांत को कारण प्रभाव सिद्धांत कहते हैं। इसके अनुसार प्रत्येक कार्य या व्यवहार का कुछ-न-कुछ कारण अवश्य होता है। फ्रायड ने इसी सिद्धांत का समर्थन किया। उन्होंने 1904 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'Psychopathology of Every day life' में स्पष्ट रूप से कहा कि अन्य व्यवहारों की तरह दैनिक जीवन की छोटी-मोटी भूलें भी कारणवश होती हैं। उन्होंने कहा कि प्रत्येक भूल का एक निश्चित कारण होता है, उसकी विशेष सार्थकता होती है और एक खास उपयोगिता होती है। फ्रायड के अनुसार जिन अवांछित इच्छाओं की संतुष्टि चेतन रूप में नहीं हो पाती है, वे अचेतन में दमित हो जाती हैं। लेकिन, अचेतन स्तर पर भी वे चेतन में आकर अपनी संतुष्टि के लिए प्रयास करती रहती हैं, जिससे इंगो चिन्ता उत्पन्न होती है और

व्यक्ति अचेतन मानसिक द्वन्द्वों का शिकार बन जाता है। इन द्वन्द्वों के समाधान हेतु दमित इच्छाओं की संतुष्टि आवश्यक बन जाता है। जब दमित इच्छाएँ साधारण रूप से अवांछनीय होती हैं तो उनकी संतुष्टि दैनिक जीवन की मनोविकृतियों अर्थात् छोटी-मोटी भूलों के रूप में कर दी जाती हैं। जिससे चिन्ता दूर हो जाती है तथा मानसिक द्वन्द्व समाप्त हो जाता है। यह सब कुछ अचेतन मन से होता है, इसलिए व्यक्ति को इसकी चेतना नहीं रहती है। अतः यह कहना युक्तिसंगत है कि हमारे दैनिक जीवन की भूलें या गलतियाँ कारणवश तथा उद्देश्यपूर्ण होती हैं।”
(सुलेमान 160)

कहने का भाव यह कि कोई भी व्यक्ति समय बीतने पर कोई भी घटना भूलता नहीं है। वह केवल उसकी चेतनावस्था से दूर हो जाती है। किन्तु रहती उसके मन में ही है।

सारांश-

यह बात तो सत्य है कि व्यक्ति का मन जन्म से मृत्यु तक किसी न किसी प्रकार से क्रियाशील रहता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे के संबंध में रहता है। जहाँ एक दूसरे के साथ तालमेल से उसके बहुत से कार्य बनते हैं तो बिगड़ते भी हैं क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव दूसरे से विभिन्न जैविक एवं वातावरणिक कारकों से प्रभावित होता है। जिस कारण आपसी तालमेल से वह सभी एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। मानव जाति में यह एक कुदरती प्रवृत्ति है कि वह आसान कार्य को पहल देता है बनिस्पत मुश्किल काम के। उसी प्रकार बुरे कार्य को करने में आनन्दित होता है बनिस्पत अच्छे कार्य करने के। इस प्रकार की प्रवृत्ति रखने से वह कष्ट भी भोगता है। लेखक अब्दुल बिसिम्ब्लाह ने अपने कहानी संग्रह में इस प्रकार की सामाजिक घटनाओं से भरपूर मानवीय प्रवृत्ति को बड़े ही अच्छे ढंग से विश्लेषित किया है। सामाजिक हालात व्यक्ति के व्यवहार को उतना ही प्रभावित करते हैं जितना कि जैविक कारक। लेखक ने अपनी कहानियों के माध्यम से इन दोनों पर बारी-बारी से अपनी कल्पना का समावेश करवा भावाभिव्यक्ति प्रस्तुत की है।

मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि से दृष्टिपात करने से दो बातों का विवरण स्पष्ट होता है। एक तो लेखक की स्वयं की मनोदृष्टि और दूसरा सामाज से प्रभावित होने पर उसका यथार्थ चित्रण। लेखक से साक्षात्कार के दौरान विभिन्न ऐसी बातों का खुलासा हुआ कि जिससे यह मालूम हुआ कि स्वयं लेखक के मन में विभिन्न ऐसी मनोविकृतियों से संबंधित एवं मनोवैज्ञानिक तत्वों का समावेश है जो उन्हें ऐसा कार्य करने को आमादा किए हुए हैं। उनके सम्पूर्ण कथा-साहित्य पर दृष्टिपात से पता चलता है कि उनके लगभग सभी उपन्यासों एवं कहानी संग्रह में उनका ही आत्मकथात्मक भाग दौड़ रहा है। विभिन्न प्रकार से सामाजिक हताशा लिए हुए लेखक अपनी लेखनी में आत्मकथात्मक पहलू को ही आगे रखे हुए हैं। जिससे यदि आत्म संतुष्टि का आधार मान भी लिया जाए तो दूसरी तरफ सामाजिक उपादेयता की दृष्टि से भी कार्य सराहनीय की श्रेणी में गिना जाएगा। जैसा कि विगत भी इस बात का विवरण है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के बनाये जाल में स्वयं ही फंसता जा रहा है। उसका मन जितना जिज्ञासु प्रवृत्ति लिए हुए है, उसकी पूर्ति हेतु किए जा रहे कार्यों की अपेक्षा वह उतना ही अशांत होता जा रहा है। अपनी पुरानी यादें अथवा अपना समय याद करके वह कदाचित् अपने मन को संतुष्ट कराने की कोशिश में अमादा है। किन्तु ऐसा हो नहीं रहा है क्योंकि बदलते समय ने सामाजिक वातावरण को इतना प्रभावित कर दिया है कि वह पुरातन समय के साथ न तो अपना तालमेल बिठा रहा है और न ही पुरातन समय अथवा उससे प्रभावित मानव को अपने साथ मिलाकर ले चलने में अपना कोई विशेष योगदान दे रहा है।

स्मपूर्ण साहित्य के विवेचन से यह तो स्पष्ट ज्ञात है कि लेखक ने जिस प्रकार से अपनी रचनाएँ रचित की; उनमें जो भी पात्रों का चयन किया; उनके संवादों की रचना की, पूर्ण रूप से परिलक्षित है कि प्रत्येक व्यक्ति मन की शान्ति की प्राप्ति हेतु दिशाहीन भाग दौड़ कर रहा है। किन्तु इस दौड़ में वह अपना पूरा जीवन तबाह कर बैठता है किन्तु शान्ति नहीं मिलती। लेखक ने मन के उन सभी पहलुओं पर भी भरपूर प्रकाश डाला है कि किस प्रकार

यह अपनी शक्तियों से मानवीय व्यवहार में परिवर्तन लाते हैं और किस प्रकार उसे नकारात्मक एवं सकारात्मक विधि से प्रभावित करते हैं।

अपनी आदर्शात्मक प्रवृत्ति के फलस्वरूप वह उपन्यासों व कहानियों के सभी पात्रों के व्यवहार में आई विकृतियों को मिटाने अथवा उनके समाधान के लिए सदैव ही प्रयत्नशील रहे हैं। उन्होंने अपने कथा साहित्य में अनेक जगहों पर विभिन्न विधियों से अपना सकारात्मक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया है जो कदाचित् किसी न किसी स्तर तक मानसिक विकृतियों को दूर करने में अपना भरपूर सहयोग देगा।

अध्याय-छह

6. अब्दुल बिरिमल्लाह के कथा-साहित्य में नारी मनोविज्ञान

6.1 उपन्यास साहित्य में नारी मनोविज्ञान:

‘मनोविज्ञान’ विषय ने अपनी निरंतर प्रयोगात्मक प्रवृत्ति के कारण अपने क्षेत्र को एक ऐसे व्यापक स्तर तक पहुँचा दिया है कि आज जीवन से संबंधित कोई भी ऐसा क्षेत्र अथवा विषय शेष नहीं रह गया जिसमें मनोविज्ञान ने अपना साकारात्मक प्रभाव न छोड़ा हो। आज कदाचित् समाज की मानव जाति से संबंधित कोई भी ऐसी समस्या नहीं है जिसमें मनोविज्ञान ने अपना कोई योगदान न दिया हो अथवा उसके समाधान के लिए स्वयं मानव को ही लालायित न किया हो।

समाज में मानव जाति की जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण तथा उससे संबंधित संतुष्टिजनक परिणाम की प्राप्ति हेतु मानव ने आज स्वयं को इतना उलझा लिया है कि आज वह स्वयं ही इस मांग पर अमादा है कि मनोविज्ञान उसके जीवन के प्रत्येक पहलू पर उसकी मदद करे और खुशी की बात है कि इस कार्य हेतु मनोविज्ञान ने कभी भी पीछे मुड़कर नहीं देखा। उसने अपने क्षेत्र में मानवीय जीवन से संबंधित प्रत्येक पहलू के सुधार हेतु विस्तार किया है।

नारी मनोविज्ञान: -

यद्यपि यह तो पहले से ही ज्ञातव्य है कि मनोविज्ञान ने समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी भूमिका निभाई है और आज भी इसी कार्य में और नये प्रयोगों की श्रृंखला को आगे लेकर चलता हुआ आज भी विशेष कार्यों में संलग्न रहकर और अन्य क्षेत्रों में अपना सहयोग एवं समस्याओं के समाधान हेतु अपनी भूमिका निभा रहा है।

वैसे तो मानव जाति एवं पशुओं के व्यवहार के अध्ययन का नाम ही मनोविज्ञान है। किन्तु किसी विशेष कार्य एवं क्षेत्र विशेष का मनोवैज्ञानिक कार्यविधि के अंतर्गत किया जाने वाला अध्ययन उसी के कार्य एवं क्षेत्र विशेष

का मनोविज्ञान कहा जाता है। जैसे खेल के संबंध में मनोवैज्ञानिक कार्यविधि के अंतर्गत किया जाने वाला मानवीय व्यवहार का अध्ययन खेल मनोविज्ञान के अंतर्गत ही आएगा। सामाजिक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं के संबंध में मानवीय व्यवहार के किये जाने वाले अध्ययन को समाज-मनोविज्ञान कहा जाता है। इसी प्रकार अन्य कार्य एवं क्षेत्र विशेष का मनोवैज्ञानिक अध्ययन उसी के नाम के अंतर्गत पुकारा जायेगा। बिल्कुल इसी प्रकार यही बात स्त्री मनोविज्ञान पर भी पुर्णतः स्टीक बैठती है। तात्पर्य यह कि केवल स्त्री के व्यवहार का मनोवैज्ञानिक कार्यविधि के अनुसार अध्ययन करना ही स्त्री मनोविज्ञान कहलाता है। हालाँकि यह मानव जाति के व्यवहार के अंतर्गत ही गिना जाता रहा है। क्योंकि स्त्री भी तो मानव जाति का ही एक हिस्सा है। किन्तु जब हम केवल स्त्री जाति, इसमें मर्द जाति को शामिल नहीं किया जाता के व्यवहार के अध्ययन की बात चलेगी तो उसे स्त्री मनोविज्ञान ही कहा जाएगा।

आदिकाल से लेकर आधुनिक काल के साहित्य के सफर पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो ज्ञातव्य रहेगा कि स्त्री जाति का वर्णन विभिन्न आयामों से होता आ रहा है। आधुनिक साहित्य में विभिन्न माध्यम एवं विधा से स्त्री जाति के उपर कार्य हो रहा है। विभिन्न लेखकों, साहित्यकारों, विद्वानों इत्यादि द्वारा स्त्री की आधुनिक एवं पुरातन दशा एवं दिशा को लेकर कहानी, निबंध, उपन्यास, आलोचना के माध्यम से कार्य होता आ रहा है। किन्तु यह कार्य केवल उसके नख-शिरा वर्णन एवं उनके चरित्र की विशेषताओं के मद्देनजर ही हुआ है। आधुनिक युग में शोध-प्रबंध एवं शोध-लेखन के माध्यम से उनके विभिन्न पहलुओं को उधेड़ा गया है। आज विभिन्न शोधार्थियों द्वारा स्त्री के व्यवहार के मद्देनजर उनके विभिन्न पहलुओं पर आलोचनात्मक चर्चा के माध्यम से कार्य हो रहा है। विभिन्न नारी लेखकों ने भी स्त्रियों के मनोवैज्ञानिक चरित्र का चित्रण अपनी कहानियों एवं अन्य विधाओं में किया है। आदिकाल से ही हिन्दी साहित्य में स्त्री जाति का लेखन के संबंध में एक बहुत बड़ा भाग क्रियाशील रहा है। वर्तमान में तो यह संख्या बहुत बड़े स्तर पर पहुँच गई है।

इस संबंध में विष्णुदत्त शुक्ल (अनुवादक) अपनी किताब 'नारी विज्ञान' में कहते हैं कि

“इस समय हिन्दी लेखकों की प्रवृत्ति नारी-विज्ञान की ओर आकृष्ट हुई है। यह प्रसन्नता की बात है। हिन्दी भाषा में इस विषय का अभाव सा है। इसको पूर्ती की आवश्यकता है। इस ओर विद्वान लेखकों की प्रवृत्ति का आकृष्ट होना हिन्दी के लिए सौभाग्य का विषय है। किन्तु अभी तक जितनी भी पुस्तकें प्राप्त हुई हैं, वे आवश्यकता की पूर्ती के लिए न के बराबर है। अंग्रेजी भाषा में इस विषय में जितने अनुसंधान, जितनी विवेचना और जितने परिश्रम के साथ ग्रन्थ रत्न रचे गये हैं और रचे जा रहे हैं, उनका अनुमान करते हुए अपनी वृत्तियाँ एक हँसी खेल सी मालूम होती हैं। अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर जो मौलिक पुस्तकें लिखी गई हैं, उनमें अभी बहुत कुछ परिवर्द्धन और संशोधन की आवश्यकता है।” (विष्णुदत्त (अनुवादक) भूमिका के कुछ अंश)

कहने का भाव यह कि भारत में हिन्दी भाषा में इस पहलू पर बहुत कम कार्य हुआ है। किन्तु फिर भी कोशिश जारी है। लेखक अब्दुल बिरिम्मल्लाह ने अपने कथा साहित्य में इस पहलू पर कार्य करने की सराहनीय कोशिश की है। जिसके अध्ययन से बहुत सी नयी बातें निकल कर बाहर आयी हैं।

यह तो सर्वविदित है कि स्त्री जाति का संवेदनशीलता से बहुत ही नजदीकी का संबंध होता है। पुरुषों के मुकाबले में स्त्री के कारुणिक हृदय के कारण इनमें संवेदनाओं के माध्यम से भावनाएँ बहुत ही जल्दी क्रियाशील हो जाती हैं। इसका एक बहुत बड़ा कारण प्रकृति निर्मित कारक है जिसमें हम अपनी तरफ से कितना भी बदलाव करने की कोशिश करें, उसमें हम मनचाहा बदलाव नहीं कर सकते। सामाजिक हालात में वातावरण अनुसार चाहे कितने भी बदलाव आयें। मामूली से बदलाव के अलावा स्त्री का हृदय संवेदनशील ही रहेगा। संवेदनाओं के संबंध में पा. कल्पना वी. भट्ट अपने शोध-प्रबंध 'मन्नू भण्डारी की कहानियों में नारी संवेदना' में कहते हैं कि

“ ‘संवेदना’ शब्द साहित्य और मनोविज्ञान, दोनों विषयों में गृहीत है और भिन्न अर्थों का द्योतक है। मनोविज्ञान में संवेदना का अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द ‘Sensation’ और वहाँ इसका अर्थ ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव है। साहित्य में इस शब्द का प्रयोग इस सीमित अर्थ में नहीं किया गया है। विशेषतः जब हम मानवीय संवेदना की बात कहते हैं तो उसका आशय मात्र ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव न रहकर मानव मन की अतल गराईयों में छिपी करुणा, दया एवं सहानुभूति की उदात्त वृत्तियों तक हो जाता है। अपने व्यापक अर्थ में संवेदना शब्द ‘अनुभूति का भी व्यंजक है।’”(भट्ट 04)

तात्पर्य यह कि संवेदना केवल ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया अनुभव ही नहीं बल्कि इसमें तो अनकही वह सभी बातें शामिल होती हैं जो व्यक्ति चाह कर भी कह नहीं सकता।

जैसा कि इतिहास गवाह रहा है कि हमारे समाज में आदिकाल से ही स्त्रियों की दशा बहुत ज्यादा अच्छी नहीं चली आ रही थी। उसके विरोध में हमारे बहुत सारे संत-महात्माओं ने अपने विभिन्न माध्यमों से आवाज़ को बुलंद किया। कुछ हद तक इस पर अंकुश लग पाया। किन्तु अत्याचार की यह परम्परा बदस्तूर जारी रही। वर्तमान समय में इसमें बहुत ही क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है। पुरातन समय में स्त्री की दशा की अपेक्षा आज इसमें बहुत ज्यादा बदलाव आया है। घर के चुल्हे चौंके से लेकर आसमान की सैर तक सफर में स्त्री की भूमिका आज बहुत अहम रही है। इस संबंध में चन्द्रावती अपनी किताब ‘स्त्रियों की स्थिति’ में कहती हैं कि

“हमारा समाज जो स्त्रियों के प्रश्नों के प्रति स्वथा उपराम था, अब उन प्रश्नों पर बड़े गौर से विचार करने लगा है। स्त्रियों के बन्धनों को काट देने के लिए अब चारों तरफ से आवाज़ें आने लगीं हैं। प्रत्येक पढ़ा लिखा आदमी स्त्रियों की आजादी के लिए सोचने लगा है। गरीब घरों के लोग भी लड़कियों को पढ़ाने लगे हैं। स्त्रियों की हमारे समाज में अब तक जो स्थिति रही है, उसके विरुद्ध प्रबल प्रतिक्रिया हो रही है, और यह

प्रतिक्रिया ऐसे आँधी के वेग से हो रही है कि पुराने विचारों को जड़ से उखाड़ फेंके दे रही है।”(चन्द्रावती प्रारंभिक शब्द)

आज लेखन के माध्यम से इस पर बहुत काम हो रहे हैं। जिसका असर समस्त समाज पर हो रहा है। मनोविज्ञान विषय ने समाज की धारणा ही बदल कर रख दी है और जब से मनोविज्ञान ने शिक्षा जगत में कदम रखा है। उसके बाद तो शिक्षा में गुणवत्ता के साथ-साथ विभिन्न नये पहलुओं की भी जानकारी निकलती आ रही है।

हमारे इस शोधकार्य के इस अध्याय अथवा भाग में लेखक के कथा-साहित्य में से उन स्त्रियों का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करना है जो लेखक ने अपनी कथा-साहित्य में पात्र बनाकर प्रस्तुत की हैं। स्त्रियों ने किस उपन्यास में अथवा किस कहानी में किस प्रकार का व्यवहार किया है? किस प्रकार के हालात अथवा वातावरण के अनुसार किस प्रकार उन्होंने प्रतिक्रिया की है? किस प्रकार उन्होंने अपने बच्चों व पति अथवा उनके परिवार को कैसे और किन परिस्थितियों में संभाला? किस प्रकार उन्होंने स्वयं को गुरसे, प्यार, बीमारियों, मुसीबतों इत्यादि जैसे हालातों में संभाला? इस तरह की सभी प्रकार की परिस्थितियों में एक औरत कैसे कार्य करती है। समस्याओं के प्रति किस प्रकार स्वयं को तथा अपने परिवार को संभालती है? उसके दिमाग में किस प्रकार की द्वन्द्वात्मक प्रतिस्थिति बनी रहती है। उसका दिमाग एवं मन की क्या स्थिति बनी रहेगी। वह कौन-कौन से संवेगों को काबू में कर पाती है अथवा कौन से संवेग उसको काबू करते हैं। इस संबंध में कोच्चुराणी जॉसफ अपने शोध-प्रबंध 'मन्नू भण्डारी की कहानियों में मनोविज्ञान' कहते हैं कि

“मनोविज्ञान के माध्यम से व्यक्ति का अंतर्मन अभिव्यक्त होता है। मनुष्य के व्यक्तित्व में अंतर्वृत्तियों का प्रमुख स्थान है। समस्त बाह्य व्यापार इन्हीं प्रवृत्तियों की बाह्याभिव्यक्ति है। मनोविश्लेषण ने मानव अंतर्जगत में चेतन मन के साथ अचेतन मन की स्थिति को रूप दिया है। अचेतन की कल्पना फ्रायडियन मनोविश्लेषण का मूल सिद्धांत है।

व्यक्ति की इच्छा शक्ति बाह्याभिव्यक्ति न पाकर अंतर्मुखी हो जाती है और अचेतन में अक्षुण्ण रहकर कुंठाओं एवं अस्पष्ट स्वप्न चित्रों में जन्म देती है। व्यक्ति की कामेच्छाएँ अचेतन के क्षेत्र में प्रवेश कर उनका मानसिक संतुलन नष्ट करके अराजकता फैला देती हैं।” (जॉसफ 125)

कहने का तात्पर्य यह कि अचेतन मन की अतृप्त इच्छाएँ प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार को असंतुलित कर देती हैं। अधिक संवेदनशील होने के कारण इसका असर स्त्रियों पर अधिक पड़ता है। लेखक ने अपने कहानी संग्रहों में समय-समय पर स्त्रियों की मानसिक स्थिति पर बहुत ही सुन्दर व स्टीकता से वर्णन किया है।

इसके साथ ही इस बात पर हम प्रयत्नशील रहे हैं कि लेखक ने किस प्रकार की परिस्थितियों को वर्णित किया है। उनमें स्त्रियों को कहाँ और कितना स्थान दिया है? क्या उनकी यह परिस्थितियाँ वास्तविकता से संबंधित रही हैं अथवा कल्पना मात्र हैं ? यदि वह परिस्थितियाँ वास्तविकता से संबंधित हैं तो उस समय एवं उन प्रकार की हालातों से वहाँ की स्त्रियों ने उस वातावरण से किस प्रकार तालमेल किया होगा और यदि वातावरण केवल लेखक की कल्पना मात्र है तो लेखक ने अपने साहित्य में किस प्रकार की स्त्रियों को किस प्रकार के हालातों के समक्ष प्रस्तुत किया होगा और खुशियों एवं मुसीबतों से लैस वातावरण से उनसे किस प्रकार की संवाद शैली एवं चरित्र चित्रण का वातावरण बनाया होगा?

वातावरण से समायोजन करना अथवा कर लेना या फिर समायोजन न करना अथवा न कर पाना हमारी चेतना एवं अहं पर निर्भर करता है। यदि हमारा अहं अथवा चेतना किसी भी प्रकार की क्रिया पर प्रतिक्रिया करने में सक्षम अथवा असक्षम है तो उसी के आधार पर समाज में वह अपना सामान्य अथवा असामान्य व्यवहार के अंतर्गत अपना स्थान स्थापित कर पाता है। प्रकृति निर्मित मानव संरचना में स्त्री व पुरुष की शारीरिक बनावट के साथ-साथ मानसिक बनावट में भी भारी अंतर पाया जाता है। उनका अहं एवं उनकी चेतना पुरुषों के अहं एवं चेतना से विभिन्न पाया जाता है और उनकी

समाज के प्रति क्रिया-प्रतिक्रिया में भी भारी विभिन्नता पायी जाती है। जिससे स्त्री मनोविज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता पड़ी और इस पर प्रयोगात्मक, तुलनात्मक, मनोविश्लेषणात्मक कार्यविधि के माध्यम से कार्य एवं अध्ययन होना शुरू हुआ। अभी इस विषय पर इतना कार्य नहीं हुआ है। किन्तु फिर भी जितनी भी विभिन्न आलोचकों, साहित्यकारों, विद्वानों एवं मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस पर कार्य हो रहा है, वह सराहनीय है।

शिक्षा जगत में जितने भी मनोवैज्ञानिक हुए हैं। उन्होंने अपने प्रयोगों एवं अध्ययनों के माध्यम से मानवीय व्यवहार को पूर्णतः चित्रण करने की कोशिश की है। स्त्री जाति के मनोवैज्ञानिक अध्ययन में उन सभी बिन्दुओं को उठाने का प्रयास किया गया है जो मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के अंतर्गत आते हैं और स्त्री जाति उन से प्रभावित होती है। मानवीय व्यवहार में 'उपाहं', 'अहं' एवं 'पराहं' का विशेष रूप से योगदान होता है। जैसे तो विभिन्न विद्वानों एवं मनोवैज्ञानिकों ने मानवीय व्यवहार के संबंध में अपना-अपना दृष्टिकोण रखा है। किन्तु फ्रायड ने इस पर अपना विशेष दृष्टिकोण अपने अहम प्रयोगों एवं अध्ययन के आधार पर रखा। जिसे काफी हद तक सराहा गया। उन्हीं के द्वारा मन के भागों पर भी की गई चर्चा के आधार पर भी मानवीय व्यवहार का स्टीक संतुलन बिठाया।

लेखक के कथा-साहित्य में स्त्री मनोविज्ञान के अन्तर्गत केवल स्त्री जाति के व्यवहार से ही संबंधित चर्चा अथवा शोध पर हमारा ध्येय रहा है। उसी के आधार पर ही स्त्री जाति के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया गया। मनोविज्ञान के भी मूलभूत सिद्धांतों एवं उसके विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया गया और फिर उन दोनों पक्षों के पहलुओं को संबंधित सिद्धांतों के आधार पर जोड़ा गया।

जैसा कि ज्ञातव्य है कि मनोविज्ञान का क्षेत्र दिन-ब-दिन विस्तृत एवं व्यापक होता जा रहा है। इसमें समयानुसार प्रयोगों एवं अध्ययन के आधार पर बदलाव विगत समय से आ रहा है और कदाचित् अपनी बरकरारता भी रखेगा, इसलिए जैसे-जैसे मानव की प्रवृत्ति उसकी बुद्धि एवं उसके व्यवहार में

परिवर्तन आता जाएगा, उसी प्रकार उसके अध्ययन के सहारे ही मनोविज्ञान के क्षेत्र एवं उसके उद्देश्यों तथा उसके कार्य करने के माध्यमों में भी अंतर आएगा, जिससे दिन-प्रतिदिन मनोविज्ञान विषय अपनी समृद्धि के साथ हमारी समस्याओं के समाधान हेतु सराहनीय कार्य करता रहेगा।

लेखक के कथा-साहित्य के प्रारम्भ से लेकर आजतक के कार्यों पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो पता चलता है तो उनके लेखन कार्य के प्रारम्भ से आज तक के चल रहे लेखन के बीच का समय लगभग तीस वर्ष बनता है तो इन तीस वर्षों में समाज के प्रत्येक वर्ग विशेष के हालात बदले हैं। जाहिर है उनमें स्त्रियाँ भी हैं तो तीस साल पहले की स्त्री की सामाजिक दायरे में रहते हुई उसकी मानसिकता और आज की स्त्री की मानसिकता में एक बहुत ज़्यादा अंतर पाया गया है, तो इस पर उनके मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए मनोविज्ञान के तीस साल पहले के सिद्धांतों एवं परिभाषाओं के साथ-साथ आधुनिकता के प्रयोगों एवं सिद्धांतों की जानकारी वांछनीय रहेगी।

उनके पहले उपन्यास 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में बहुत ही गरीबी, सामाजिक दायरा धार्मिक एवं जातियों के आधार पर भेद-भाव से भरपूर, मजदूर-साहूकार जैसे रिश्तों से लैस है। उनमें स्त्रियों की दशा भी जानवरों से ज़्यादा अच्छी नहीं है। लेखक ने उस वातावरण से संबंधित स्त्रियों का दशा का यथार्थ परिस्थितियों से भरपूर सुन्दर व स्टीक चित्रण पेश किया है।

स्त्री जाति की मानसिक दशा पर सामाजिक हालातों का सबसे ज़्यादा असर दिखाई देता है। वह सदेव ही अपने डर एवं भययुक्त मन को हालातों के सहारे छोड़ देती है जैसा कि इस उपन्यास के अध्ययन से स्त्री जाति के संबंध में यह बात अथवा बिंदु निकल कर बाहर आया है।

चिंतित मानसिकता का दृष्टिकोण: -

बुद्धि में विद्यमान एक विशेष प्रकार की विकृति जो मुसीबतों एवं मुश्किलों का सामना करने में बाधा उत्पन्न करे; मन में एक विशेष डर पैदा करे जो प्रत्येक उस कार्य करने में हमें रोके जो कदाचित् हम पहली बार कर

रहे हों और उसके बारे में कोई जानकारी न रखते हों; साथ ही साथ हमारे आत्मविश्वास पर भी प्रश्न चिह्न लगाए; चिन्ता कहलाती है। यह एक ऐसा मानसिक डर है जिस पर हम कदाचित् उसी वातावरण में उस समस्या को काबू न कर सकते हों। अधिक संवेदनशील व्यक्तियों पर इसका असर बहुत ज्यादा होता है।

डॉ. एस अख्तर मानसिक स्वास्थ्य पर प्रसारित प्रसारणमाला 'उजाले की ओर' में कहते हैं कि

“साधारण शब्दों में चिन्ता या घबराहट आने वाले समय में कुछ बुरा या खराब घटने की आशंका होना है जबकि इसका कोई वास्तविक आधार नहीं होता। थोड़ी बहुत चिन्ता सभी को होती है और यह हमारे लक्ष्य की प्राप्ति या सफलता के लिए आवश्यक भी है। यदि चिन्ता बहुत बढ़ जाती है और इसके व्यापक दुष्प्रभाव व्यक्ति के पारिवारिक सामाजिक और आर्थिक जीवन पर पड़ने लगता है तो हम इसे घबराहट और चिन्ता रोग कहते हैं।” (अख्तर 24)

कहने का भाव यह कि यह एक प्रकार का डर होता है जो यदि हमें यदि किसी कार्य करने के प्रति रुकावट के रूप में नजर आता है तो इसका दूसरा रूप भी है कि इसके कारण हम कार्य करने लगते हैं। अब यहाँ इन दोनों की मात्रा की तादात के कारण व्यक्ति प्रभावित होता है। यदि तो यह कम मात्रा में व्यक्ति के मन में पैदा होता है तो यह हमें कार्य करने में उत्साहित करता है और यदि यह अधिक मात्रा में पैदा हो तो यह प्रत्येक कार्य में रुकावट बनता है।

इस प्रकार की चिन्तित प्रवृत्ति के कुछ कारण होते हैं जिनकी वजह से बच्चों से लेकर व्यस्क तक यह मानसिक विकृति पायी जाती है। इस संबंध में इलाचन्द्र जोशी अपनी किताब 'दैनिक जीवन और मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

“हमारे अधिकांश भयों के बीज बचपन में ही बोये जाते है। जिन बच्चों के माँ-बाप का बर्ताव उनके साथ अच्छा नहीं रहता, जिन्हें बात-बात में

डराया-धमकाया जाता है, जिनका वातावरण संवेदनापूर्ण नहीं होता, उन्हें चारों ओर से भय और आशंकाओं आ घेरती हैं। बच्चे अनुकरणशील होते हैं। वे अपने माता-पिता का जिस प्रकार का स्वभाव या व्यवहार देखते हैं, अपने अज्ञात में वे उसी को अपनाते हैं। जिन बच्चों के माता-पिता चंचल-चित्त, शक्की, क्रोधी, निराशावादी और फलतः डरपोक स्वभाव के होते हैं, वे निराशा और आशंकाओं के वातावरण में पलने से जीवन भर स्वयं भी उसी प्रकार की भावनाओं से पीड़ित रहते हैं। जिन बच्चों को शांत करने के लिए भूत-प्रेतों का भय दिखाया जाता है; उनके मन में भी भय का बीज बो दिया जाता है जो बाद में पनप कर व्यक्ति के सारे जीवन का विषमय कर देता है।” (जोशी 10)

कहने का भाव यह कि चिन्ता मानसिक डर अथवा भय की वह स्थिति है जो हमारे कार्य को प्रगति देने की अपेक्षा कार्य में विघ्न डालने पर अमादा होती है। यह किसी भी व्यक्ति में अचानक पैदा नहीं होती बल्कि इसका बीज तो बचपन से ही बोया जाता है जो धीरे-धीरे पनप कर हमें यथास्थिति में पहुँचा देता है।

लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह ने अपने उपन्यास ‘झीनी झीनी बीनी चदरिया’ में स्त्री मनोविज्ञान के दृष्टिकोण के अंतर्गत एक माँ का अपने बच्चे के प्रति भविष्य की चिन्ता के संबंध में बहुत ही सुन्दर व स्टीक चित्रण पेश किया है वह कहते हैं कि

“अलीमुन की तबीयत कुछ ठीक हो गयी है। वह मतीन से बतिया रही है। घर-गृहस्थी के बारे में, लड़के के बारे में, कपड़े-लत्ते के बारे में। बातें-ही-बातें हैं।

“एकबलवा क नउवाँ लिखाय दो एनायरी।”

“हमहूँ सोचिते। दिनवाँ-भर खेलत रहेते।”

“उहै कमरुनिया क लड़का बिगाड़ेते ओके।”

“ऊ न पड़िया का ?”

“क जानी पड़िया कि नाँहीं! कहत त रही कमरुनिया की संझावाले मनरसा में नाँव लिखाएँने। दिनवाँ में बिनकारी सिखिए। दिन-रात ओका धियान पइसवे में रहेते। तोरा कागज क का भोवा।”

“तें का करबे जान के ? होइ न! अभई अउर रुपिया चइए।”

अलीमुन चुप हो जाती है।

मतीन भी चुप हो जाता है।” (बिस्मिल्लाह 30)

पति-पत्नी की इस प्रकार की वार्तालाप स्वयं ही बयान करती है कि वार्तालाप में पति और पत्नी दोनों बातें करते हैं किन्तु केवल पत्नी के ही मन में यह प्रश्न अथवा बात उठती है कि कैसे अपने परिवार का ध्यान रखा जाए? किस प्रकार अपने बच्चे का ध्यान रखा जाए? अब वह बड़ा हो गया है। बाहर की संगत में जाकर रहने लगा है। बाहर के लड़कों के संग खेलने कूदने लगा है। किन्तु माँ को ही चिन्ता है अथवा उसे अहसास हो रहा है कि उसका लड़का गली के दूसरे लड़कों के संग रह कर पढ़ाई नहीं कर रहा है। वह निकम्मा होता जा रहा है। उसे केवल खर्च करने को पैसे चाहिए।

यहाँ पर माँ अपने पति से अपने बच्चे के भविष्य को लेकर चिंतित है कि किस प्रकार उसका घर का गुजारा चलेगा ? वह अपने पति से अपने लड़के को बारे में बात करती है कि उसे किसी काम पर लगा दीजिए। वह सारा दिन खेलता रहता है। उस पर ध्यान न दिया गया तो वह अवारा हो जाएगा।

इस प्रकार की वार्तालाप से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्त्री के हृदय में, उसके मन में जितनी चिन्ता अपने परिवार अपने घर एवं बच्चों को लेकर होती है। वह कदाचित् मर्द जाति में कम ही पाई गयी है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चिन्ता का स्तर स्त्री जाति में पुरुषों के मुकाबले ज्यादा रहती है। इसी उपन्यास के एक अन्य प्रसंग का चित्रण भी लेखक इसी संदर्भ में करते हैं कि

“अलीमुन सोच रही है।

कई दिन से काम पर नहीं बैठ रहे हैं। खाने-पीने की फिक्र भी नहीं है। बस हाथ धुन वही सोसाइटी। सोसाइटी न हुई। बिटिया की शादी हो गयी कि दिन-रात इन्तजाम में लगे हुए हैं। अरे मिलेगा रुपया तो सबको मिलेगा, न कि तूँहें अकेले ही सब मिल जायेगा? और लोग तो हर्जा नहीं कर रहे ह। आपने काम का। अरे सब लोग इतने बेकूफ थोड़े हैं। देखते नहीं कि घर की क्या हालत है? बीमारी का इलाज करना है। दक्खनवाली दीवार की मरम्मत करानी है। इकबाल की खुजली तो ठीक हो गयी है, पर कमजोरी इतनी है कि ज़रा सा भी दौड़कर चलता है तो गिर पड़ता है। उसे भी डाक्टर अंसारी को दिखाना है। धीरे-धीरे साल-भर हो गया। पिछले जाड़े से लेकर इस साल का जाड़ा भी बीत गया, पर एक सूट तक नहीं बना तन के लिए। इ सबकी फिक्र नहीं करेंगे, बस सोसाइटी बनायेंगे। सोसाइटी क्या हमें खाने को दे देगी?

” (बिस्मिल्लाह 38)

पूरे समाज में अपने परिवार से संबंधित प्रत्येक पहलू पर स्त्री जागरूक है। उसे हरपल चिन्ता है, फिक्र है अपने परिवार की। क्या क्या कार्य करने शेष रह गये हैं। कौन-कौन से कार्य पूरे हुए हैं? यदि घर में कुछ गलत भी हो रहा है तो भी वह चिंतित है कि यह काम नहीं होना चाहिए। वह उसके प्रति भी अपने पति के समक्ष आवाज़ उठाती है। वह उसे समझाना चाहती है कि वह गलत काम कर रहा है। उसे दूसरों से सीख लेनी चाहिए। यह काम सभी का है तो केवल एक व्यक्ति इसमें अपना सर्वस्व क्यों लगा रहा है। यह काम सभी को मिल कर करना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह कि यह एक स्त्री की अपने परिवार की भलाई हेतु एक प्रकार की सोच है जो उसे चिंतित किए हुए है।

इस संबंध में एक और बहुत ही सुन्दर उदाहरण लेखक ने अपने इसी उपन्यास में स्त्री की अपने बच्चों के प्रति फिक्र का प्रस्तुत किया है कि यह औरत के व्यवहार का एक पक्ष है कि वह अपने बच्चों की देखभाल व उनकी परवरिश के संबंध में सदैव चिंतित रहती है।

“अचानक पड़पड़ाकर बूँदे पड़ने लगती हैं। सड़क पर चलने वाले लोग भाग-भागकर छज्जों के नीचे खड़े हो गये हैं। अलीमुन उठकर भागते-भागते भीग गयी है। बगल वाली गली में जो मकान है उसके छज्जे के नीचे भी कई लोग खड़े हैं। वह खिड़की से एक नज़र झाँककर देखती है और अपने काम में लग जाती है। नीचे कोई बोल रहा है-

“बड़ी जबड़ी बुन्नी पड़े थी।”

पानी रुकता है तो अलीमुन छत पर निकलती है और गली की ओर देखती है-शायद मतीन आता हो, लेकिन वह नहीं दिखायी पड़ता। हाँ इकबलवा अलबत आता हुआ दिखाई पड़ता है। लगता है बारिश-बूँदी की वजह से जल्दी छुट्टी हो गयी है। लेकिन इसका चेहरा उतरा हुआ क्यों है? कहीं मार-वार खाकर तो नहीं आया है। इस्कूलिया के मास्टर भी तो बड़े हरामी हैं। अलीमुन चिन्तित हो जाती है और जैसे ही इकबाल का हाथ पकड़ती है, घबरा उठती है।

लड़के को बुखार है। बदन तवे की तरह जल रहा है। अब इसी बात पर उसका जी जलता है। न जाने कहाँ जाकर बइठ गये हैं। इनकी हमेशा की यही आदत है कि जहाँ जाते हैं वहीं के होके रह जाते हैं। लड़के को कहाँ लेकर जाय वह? डॉक्टर अंसारी के यहाँ जाने के लिए तो कम-से-कम तीन रुपिया चाहिए। और यहाँ रुपिया-डेढ रुपिया से ज्यादा है नहीं डिब्बे में। वह सोच में पड़ जाती है। क्या करे? तभी उसे ख्याल आता है कि क्यों न वह बुनकर अस्पताल में चली जाय। वहाँ पच्चीस पैसे के पुर्जे में ही काम चल जायेगा। और वह जल्दी-जल्दी नकाब डालकर इकबाल की बाँह पकड़े हुए कोठरी में ताला लगाकर बाहर निकल जाती है।” (बिस्मिल्लाह 56)

स्त्री जाति के इस प्रकार के व्यवहार से साफ पता चलता है कि उसके मन में अपने बच्चों व परिवार की परवाह के मायने क्या है। प्रस्तुत भाग में स्पष्ट ज्ञातव्य है कि जैसे ही माँ को पता चलता है कि उसके बच्चों की तबीयत खराब है। उसका मन बेचैन हो उठता है। वह उसके समाधान हेतु चारों

दिशाओं में घूमने लगता है। उसका बेटा स्कूल से बीमार आ रहा है। कहीं किसी ने मारा तो नहीं, कहीं किसी मास्टर ने तो नहीं कुछ कहा। कहने का तात्पर्य यह कि परिकल्पनाओं की उड़ान से उसका मन विचलित हो उठता है।

उसे मन ही मन अपने पति पर भी गुस्सा आता है। दरअसल यह एक प्रकार की अपने बच्चे के तकलीफ को देखते हुए झुँझलाहट है जो निकलकर बाहर आ रही कि उसका पति जहाँ भी जाता है, वहीं बैठ जाता है। उसे बच्चे की कोई फिक्र नहीं है।

इसी भाग एवं उदाहरण में से एक और भी बात स्त्री व्यवहार के मद्देनजर निकलकर बाहर आती है कि यह सब देखते हुए उसे अपने गरीबी के माहौल में से आर्थिक वातावरण से भी जूझना पड़ता है। उसे वह भी पूरा ध्यान है कि यदि मैं अपने बच्चे को उस डॉक्टर के लेकर गई तो ज्यादा पैसे लेंगे। उसका दिमाग इस बात पर जोर देता है कि बच्चे का इलाज भी हो जाए और पैसे भी कम खर्च हों तो साफ तौर पर यह निष्कर्ष निकलता है कि जितनी फिक्र अपने परिवार की एक स्त्री को होती है उतनी पूरे परिवार में किसी को नहीं होती। यह स्त्री के व्यवहार का एक अहम हिस्सा है।

यदि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इन सभी प्रकार के व्यवहार का चिंतन किया जाए तो यह सभी प्रकार की हरकतें संवेग कहलाएँगी। जो व्यक्ति में जन्म के कुछ समय बाद से ही क्रियाशीलता की स्थिति में आ जाते हैं और समय एवं परिस्थितियाँ बदलते ही यह भी अपना स्थान एवं क्रियाशीलता में बदलाव करते रहते हैं। इस संबंध में 'जीवनायकम' अपनी हिन्दी किताब 'मनोविज्ञान और शिक्षा' कहते हैं कि

“मनुष्य जीवन में भावनाओं का भाग बड़ा महत्वपूर्ण होता है। कुछ लोगों ने कहा है कि प्राणी विज्ञान की दृष्टि से वह सबसे पहले विकसित होता है। हम इस मत को न भी माने तब भी यह तो मानना ही होगा कि यह चेतना में सदा वर्तमान रहती है और हमारे अनुभवों को उचित मूल्य तथा विशेषता देती है। कला और धर्म के उत्पादन में यदि यह अकेली नहीं, तो विशेष कर्तृणी तो है ही। विचार मार्ग दिखाता, इच्छा

उसे कार्यरूप में परिणत करती, परन्तु शक्ति प्रदान करने वाला संचालक भावना ही है। सब दार्शनिकों ने स्थायीभावों द्वारा मनुष्य-जीवन के अंदर खेला हुआ बड़ा भाग माना है। यह भाग विचार और इच्छा से भी बड़ा है। यह बातें हमें बताती हैं कि भावना को जाग्रत करना बहुत ही आवश्यक है। हमें यह भी जानना चाहिए कि भावना की प्रकृति बढ़ते हुए बालक के साथ बदलती रहती है। बालपन में भावना अपने चारों ओर, किशोरावस्था में दूसरों के चारों ओर, युवावस्था और प्रौढ़ावस्था में कुछ आदर्शों के चारों ओर केन्द्रित रहती है। आत्मश्लाघा, परोपकार और आदर्शवाद के इस क्रम का यही कारण है। बालपन में सबसे प्रधान संवेग, अपने से, आनन्द से, प्रशंसा से और अधिकार से प्रेम, गर्व, अहंकार, भय, क्रोध, आनन्द और दुःख होते हैं। यह सबसे पहले विकसित होने चाहिए, क्योंकि यह आत्मरक्षा और विकास की मूल प्रवृत्ति से निकलते हैं। इनका संबंध सुख-दुःख, आवश्यकता, इच्छा और व्यक्ति की सामान्य कुशलता से है। यह स्थायी भाव समाज-विरोधी हैं, क्योंकि आत्मकेन्द्रित हैं। हमारा बड़ा उद्देश्य उनमें स्वार्थ बढ़ने से रोकना और परोपकार की अवस्था की ओर परिवर्तित करना हो। युवावस्था में परोपकार की भावना का राज्य होता है। जिसका उद्देश्य अन्यजन होते हैं। वह है प्रेम और घृणा, मित्रता, आदर, सहानुभूति, स्पर्द्धा और देश-प्रेम। जैसे-जैसे व्यक्ति समाज के अधिक सम्पर्क में आता जाता है, वह दूसरों की आवश्यकता के लिए सचेत होता जाता है। और बालपन का स्वार्थ धीरे-धीरे किशोरावस्था की परोपकार भावना से दब जाता है। जैसे ही किशोरावस्था युवावस्था की ओर बढ़ती है, कुछ आदर्शों को उद्देश्य में रखकर भावना उन में लग जाती है।” (जीवनायकम 111)

कहने का अर्थ यह कि मनुष्य के व्यवहार में भावनाओं का अहम रोल होता है। सभी मानव इनके काबू में रहते हैं अथवा भावनाएँ मनुष्य को अपने कंट्रोल में रखती हैं। जैसे-जैसे व्यक्ति की उम्र बढ़ती है वैसे ही उसकी भावनाओं में भी विकास होता जाता है। जैसे ही लेखक ने अपने उपन्यास के माध्यम से अलीमुन व नजबुनिया के आपसी व्यवहार का वर्णन किया है। उस

प्रकार के व्यवहार पर मनोविज्ञान की यह भावना का अंश स्टीक बैठता है। अब अलीमुन अपनी उम्र के हिसाब से काम कर रही है। वह नजमुनिया व रऊफ चचा के प्रति चिंतित है। यहाँ पर अलीमुन की चिन्ता भावनाओं के उस स्तर का बखान कर रही है जब व्यक्ति अपनी प्रौढ़ता के आधार पर देशप्रेम अथवा किसी का सहयोग या मदद की भावना से कार्य करता है। लेखक ने बहुत ही खूबसूरती से अपने इस उपन्यास में इस प्रकार की भावनायुक्त परिस्थितियों का वर्णन किया है।

कुल मिलाकर निष्कर्ष यह निकलता है कि भावनाओं के विकास के साथ ही व्यक्ति का व्यवहार निर्धारित होता है। जो जितना ज़्यादा भावनात्मक होता है उसी के अनुसार ही उसका व्यवहार निर्धारित होता है।

चुगली, ईर्ष्या से संतुष्टि पाने को आतुर व्यक्तित्वः -

किसी की निन्दा, चुगली करना अथवा किसी से ईर्ष्या करना मानवीय व्यवहार का एक ऐसा पहलू है जो कहीं न कहीं मन में छिपी हुई किसी भी प्रकार की द्वन्द्वत्मक स्थिति का प्रदर्शन करता है और मन की शान्ति हेतु व्याकुलता का प्रदर्शन है तथा जिसकी प्राप्ति हेतु व्यक्ति कोई न कोई अथवा किसी भी प्रकार का समाधान ढूँढने की तैयारी में किसी भी प्रकार का व्यवहार करने को अमादा रहता है। अपनी मन की द्वन्द्वत्मक स्थिति को शांत करने हेतु किसी दूसरे व्यक्ति की नकारात्मक बातों को अपने आनन्द हेतु बढ़ा-चढ़ा कर किसी दूसरे से कहना चुगली निन्दा की श्रेणी में रखा जाता है। यह बातें करने का तरीका 'कान में बात कहना', 'धीरे-धीरे बोलना' 'बातें करते समय किसी के आने व हलकी सी आहट पर चुप होना' 'चेहरे के हाव भाव तथा शरीर के अन्य अंगों का बेतरतीब विधि से इस्तेमाल करना' इत्यादि कोई भी हो सकता है।

दूसरी बात यह कि इस प्रकार की बातों पर चर्चा करने के बाद व्यक्ति स्वयं को एक आरामदायक स्थिति में पाया हुआ महसूस करता है। उसे अपने दिल और दिमाग को शांत की स्थिति में पाए होने का अहसास होता है। और कहीं न कहीं वह यह समझता है कि उसने एक बहुत ही बहादुरी वाला कार्य

किया है। जिस पर कदाचित् वह गर्व का भी अहसास महसूस करता है। कदाचित् स्त्री जाति को भी इस प्रकार का अहसास है कि ऐसा करके वह कहीं न कहीं अपने मन को शांत कर लेती हैं। यदि वह ऐसा नहीं कर पाती हैं तो वह तनाव में रहती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस प्रकार के व्यवहार को रक्षात्मक युक्तियाँ कहते हैं। जो किसी न किसी प्रकार से मानवीय मन को शान्ति प्रदान करती हैं। लेखक ने अपने उपन्यासों में ऐसे विभिन्न पहलुओं का विविध प्रकार से वर्णन किया है। उपन्यास 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' में से एक उदाहरण प्रस्तुत है।

“तभी अचानक सीढ़ियों पर खट-खट की आवाज होती है और अलीमुन चौंक जाती है। लगता है आ गये। लेकिन नहीं, बशीर की बीवी है। अमिनवा। ऊपर आते ही उसने नकाब उतार दिया है और अलीमुन के पास बैठ गई है। गोद के बच्चे को उतार दिया, जिसे लेकर इकबाल नीचे चला गया है।

आमिना और अलीमुन में खुसुर-फुसुर बातें शुरू हो गयी हैं।

कभी दोनों स्त्रियाँ सामने की ओर झुककर एक-दूसरे से एकदम सट जाती हैं और कभी किसी बात पर वे बारी-बारी से दुखी हो उठती हैं। बीच में एकाध बार आमिना बाहर की ओर भी झाँक लेती है और इस मौके का फायदा उठाकर अलीमुन उसके चेहरे को गौर के साथ देख लेती है।

अचानक सीढ़ियों पर आवाज होती है और अलीमुन सतर्क हो जाती है। लगता है, पल्ला इकबलवा के अब्बा आ गये। लेकिन पल-भर बाद वह देखती है, कमरुन अपने नकाब का पल्ला सँभालती हुई थके हुए कदमों से चली आ रही है।

अमिनवा की फुसफुसाहट बन्द हो जाती है।

“बइठो हो।”

अलीमुन कहती है तो लतीफ की बीवी दरवाने पर खड़ी-खड़ी ही इनकार कर देती है। दरअसल वह समझ जाती है कि ये कोई ख़ास बात करने में मशगूल हैं।

“नाँहीं बइठवा नाँहीं।”

“बा हो तइसा बइठयो भी नाँहीं? अरे तइसा बइठ जाओ। कहाँ गयी रहिउ ?”

“गयी रहे अपनी अम्माँ कियेँ।”

लतीफ की बीवी अनमने ढंग से जवाब देती है और उलटकर सीढ़ियाँ उतरने लगती है। साथ ही बतियाती भी जाती है; “अच्छा अब जाइला हो, फिर कब्बो सुचित से अइबा त सुचित से बतियइबा।”

“अच्छा त अइये, देखा भूला मत जइयो।”

“नाँहीं, भूलइबा नाँहीं।”

और कमरून अपना नकाब सँभालती हुई सीढ़ियाँ उतर जाती है।

अमिनवा फिर खुसुर-फुसुर बतियाने लगती हैं। अलीमुन यह सुनकर चिंतित हो जाती है कि हाजी अमीरुल्ला जबरन उनका मकान खरीदना चाहते हैं। इसके लिए बशीर पर चारों ओर से दबाव पड़ रहा है।
(बिस्मिल्लाह 38)

इस पूरी वार्तालाप को यदि ध्यान से देखें तो मानवीय व्यवहार की ख़ास तौर पर स्त्री व्यवहार की कितनी ही बातें यहाँ पर निकल कर बाहर आती हैं कि कैसे रित्रियाँ जब आपस में मिलती हैं तो अपने मन में छिपी हुई कितनी ही बातों को निकाल कर अपना मन हलका करती हैं। मन में छिपी हुई द्बन्द्वात्मक बातों को एकतरफा करती है। कहने का भाव यह कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो उन के व्यक्तित्व पर उपांह का पूरा प्रभाव है जो केवल अपनी संतुष्टि की चाह लगाए बैठा है। इस प्रकार की बातों का हालाँकि कोई अर्थ नहीं है। न समाज को, न उन्हें स्वयं को। किन्तु फिर भी मानसिक

संतुष्टि हेतु वह ऐसा कर रही हैं। विडम्बना देखिए कि उन्हें इस बात की कोई भनक भी नहीं है कि 'उपाहं' नामक पहलू उन पर अपना असर बनाए हुए है जो केवल संतुष्टिप्रदक ही ध्येय लिए हुए है। इस संबंध में श्री जगदानन्द पाण्डेय अपनी किताब 'असामान्य मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

“अबोधात्मा इच्छाओं की जननी है, जिसे वास्तविकता से कोई भी प्रयोजन नहीं रहता। कहा गया है कि 'यह सभी मनोजैव शक्तियों का मूल है।' अबोधात्मा पुर्ण रूप से सुखेच्छू-वृत्ति द्वारा निर्देशित होती है, जो चाहे प्रेम की हो या घृणा की। समय, स्थान तथा उचित-अनुचित कुछ का भी ज्ञान अबोधात्मा को नहीं रहता। जिसे कोई प्यार करता है अबोधात्मा कहती है 'चूम लो' जिससे व्यक्ति घृणा करता है अबोधात्मा कहती है 'उसे मार डालो'।” (पाण्डेय 44)

कहने का तात्पर्य यह कि 'स्त्री मनोविज्ञान' के अंतर्गत जब हम लेखक के उपन्यासों में स्त्री के व्यावहारिक पक्ष का अध्ययन कर रहे हैं तो देखने में आ रहा है कि जब दो या तीन स्त्रियाँ आपस में बातचीत कर रही हैं तो वह साधारण बातचीत का माध्यम नहीं है। हालाँकि आम जन को दूर से देखने से साधारण बातचीत ही लगेगी। किन्तु जब मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अवलोकन करते हैं तो पता चलता है कि उनके मन में बातचीत के माध्यम से बहुत कुछ उनके अचेतन मन में छिपा हुआ जो बातचीत के माध्यम से चेतनावस्था में आने की कोशिश कर रहा है।

बातचीत करने का माहौल तो एक बहाना है। दरअसल यह एक प्रकार का उपाहं अथवा अबोधात्मा पहलू है जो उन्हें आत्मिक संतुष्टि प्रदान करने के माध्यम से अपना कार्य कर रहा है और जिससे वह स्त्रियाँ अन्जान हैं। वह अपनी बातों के माध्यम से वास्तविकता से दूर होती जा रही हैं। वह इस बात से ज्ञातव्य नहीं है कि उन्हें कोई देख रहा है। घर में कोई दूसरा आ रहा है। उन्हें यह बातें करनी चाहिए भी अथवा नहीं उनके बात करने का माध्यम अथवा उनकी शारीरिक अवस्था भी उनके काबू में दिखाई नहीं पड़ती है। वह कभी आगे झुकती हैं तो कभी पीछे की ओर। बोलते वक्त फुसुर-फुसुर जैसे

हरकतें करती हैं। तो सत्यता यह निकलती है कि वह केवल अपने मन की संतुष्टि चाहती है और उसके लिए बिना वजह की आस-पास की बातों को माध्यम बनाती हैं। इन बातों का कोई सामाजिक औचित्य भी नहीं है। किन्तु फिर भी वह ऐसा कर रही हैं। दरअसल वह ऐसा कर नहीं रही है। उनके अचेतन मन के द्वारा उनसे करवाया जा रहा है।

मानवीय व्यवहार में विभिन्नता का अंश सदैव विद्यमान रहता है। तुलनात्मक विधि के माध्यम से अपने इस शोध-कार्य को प्रभावशाली बनाने का कार्य एवं कोशिश हमारी सदैव ही रहे है और रहेगी। जैसा कि वर्णित है कि इस प्रकार का कार्य सदा ही केवल स्त्री जाति में ही नहीं बल्कि पुरुषों में भी पाये जाते हैं। यहाँ पर हमारा कार्य स्त्री जाति के व्यवहार का वर्णन करने के साथ-साथ पुरुष जाति के इस प्रकार के व्यवहार का वर्णन करना भी ध्येय है ताकि तुलनात्मक विधि के माध्यम से इस पर और जोरदार तरीके से शोध हो सके।

अब्दुल बिरिस्मिल्लाह अपने उपन्यास 'अपवित्र आख्यान' में कहते हैं कि

“ऊ जो चन्द्रशेखरवा है न, नम्बर एक का हरामी है। मैनेजर का चमचा है साला। किस तरह से गर्मजोशी से हाथ मिला रहा था आपसे!”

सिद्दकी साहब ने सन्नाटा तोड़ा। “और वे जो शर्मा जी हैं, उनका रंग देखा आपने?” अंसार साहब ने आगे लुक्का लगाया। “मैं तो जमील साहब रंग, देखकर आदमी को पहचान जाता हूँ। क्या काले रंग के बाम्हन के साथ कभी आपका पाला पड़ा है ? अरे करिया बाम्हन गोर चमार, इनके संग न उतरे पार। साला इधर की बात उधर करता है और उधर की इधर। एकदम काला नाग है।”

“अरे तिवरिया ?” अब मुमताज साहब शुरू हुए। मगर जैसे ही उनके मुँह से तिवरिया निकला, और तिवारी जी प्रकट हो गये।

“आइए, आइए तिवारी जी।” मुमताज साहब ने उनका स्वागत किया। जमील साहब को हम यहाँ की राजनीति बता रहे थे।” (बिरिस्मिल्लाह 54)

मर्द जाति में इस प्रकार की वार्तालाप यह सिद्ध करती है कि वह भी कहीं न कहीं अप्रत्यक्ष रूप से अपने अशांत मन को शांत करने की कोशिश करते हैं। किन्तु उनका मुख्य ध्येय दूसरों के सामने स्वयं को सर्वश्रेष्ठ साबित करना है। जिस कारण उनके व्यवहार में इस प्रकार की तबदीली आती है।

ईर्ष्या के इस भाव के कारण कई बार स्त्रियों में पारिवारिक विघटन के साथ-साथ गुस्से के भाव भी पैदा होने शुरू हो जाते हैं। फिर वह सामाजिक वास्तविकता से दूर हो जाती है। कहने का अर्थ यह कि 'उपांह' उसे अपने काबू कर लेता है। लेखक अब्दुल बिरिस्मिल्लाह अपने उपन्यास 'समर शेष है' में इस संबंध में कहते हैं कि

“भाभी मुझे देखते ही भड़क उठीं।

घर में फिर एक खिंचाव पैदा हो गया और मेरे अस्तित्व की परीक्षा पुनः आरंभ हो गई थी।

भैया ने अकेले में मुझे समझाया, “देखो भाई, अगर यहाँ रहना है तो कुछ-न-कुछ तुम्हें सहना ही होगा। मुझे देखो, आखिर मैं सह रहा हूँ कि नहीं?” (बिरिस्मिल्लाह, 43)

इस प्रकार की स्थिति से यह स्पष्ट होता है कि यदि स्त्री के मन में किसी के प्रति ईर्ष्या पैदा हो जाये तो वह अपने और पराये में फिर कोई अंतर नहीं करती। वह पूर्णतः वास्तविकता से दूर हो जाती है।

अर्द्धचेतन मन से बीती बातें याद कर खुश होने की प्रवृत्ति: -

प्रसिद्ध मनोविज्ञानी सिगमंड फ्रायड ने मन के तीन भाग बताये हैं। चेतन, अर्द्धचेतन तथा अचेतन। अरुण कुमार अपनी किताब 'आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान' में सिगमंड फ्रायड के दृष्टिकोण से अर्द्धचेतना के संबंध में कहते हैं कि

“अर्द्धचेतन मन से तात्पर्य वैसे मन से होता है जो सचमुच में न हो तो पूर्णतः चेतन होता है और न ही पूर्णतः अचेतन ही होता है। इसमें

वैसी इच्छाएँ, विचार, भाव आदि होते हैं जो हमारे वर्तमान चेतन या अनुभव में नहीं होते हैं परंतु थोड़ा प्रयास करने पर वे हमारे चेतन मन में आ जाते हैं। अर्द्धचेतन का अन्य नामों से 'अवचेतन' तथा सुलभ स्मृति से भी जाना जाता है।" (अरुण 125)

'अर्द्धचेतनता' व्यक्ति की वह अवस्था है जो उसे कभी कभी चेतनता से परे ले जाती है। जब कभी व्यक्ति स्वयं को अकेला महसूस करता है तो अपने पुराने विचारों, स्थानों एवं अहसासों में चला जाता है और बीती बातों से स्वयं को खुश करने की कोशिश करता है। दरअसल उस समय वह अर्द्धचेतनतावस्था में होता है और अपने दिमाग पर थोड़ा सा जोर डाल कर विगत अच्छी बातों को याद कर खुश होने की कोशिश करता है।

'झीनी झीनी बीनी चदरिया' नामक उपन्यास में लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह कहते हैं कि

“अलीमुन भोर में जाग जाती है। वजू करती है। फजिर की नमाज़ पढ़ती है और इकबलवा को जगाकर रेशम लेकर बैठ जाती है।

अलीमुन रेशम के धागे सुलझा रही है।

इकबाल उसमें मदद कर रहा है।

मतीन अभी सोया है।

अलीमुन को याद आ रहा है कि जब पहली बार वह ब्याह कर यहाँ आयी थी तो इस तरह मतीन उसके बालों को अपनी उँगलियों में फँसाकर घण्टों सहलाया करता था। वे भी कैसे अच्छे दिन थे। तब उसे यह बीमारी नहीं लगी थी और उसका चेहरा भरा-भरा था। हालाँकि ब्याह के दस-बारह रोज़ बाद से ही हॉड़ी-चूली और चर्खा-भरनी के काम में जुट गयी थी, पर मेहनत से उसकी देह में और भी चमक आ गयी थी। उसके बाल तो काले रेशम की तरह ही लगते थे। लेकिन फिर न जाने क्या हुआ कि.....”
(बिरिमल्लाह 44)

इस प्रकार की बातें यह सिद्ध करने की कोशिश करती हैं कि प्रत्येक व्यक्ति शान्ति प्राप्ति का इच्छुक होता है। वह किसी न किसी प्रकार से इस तरह की कोशिश करने में अमादा रहता है कि उसे सुख व शान्ति मिल सके। दुख के दिनों में अपने अच्छे दिनों की याद उन्हें कुछ समय के लिए शान्ति प्रदान करती है। उसके व्यथित मन को आराम देती है। फ्रायड ने तो इस बात पर जोर दिया कि व्यक्ति का व्यवहार उसके अचेतन अथवा अद्धचेतन के कारण ही प्रेरित अथवा संचालित होता है। इसलिए यदि हमें व्यक्ति द्वारा किये जा रहे व्यवहार की जांच करनी है। हमें यह पता लगाना है कि यदि व्यक्ति के व्यवहार में बदलाव आने के कारणों का पता लगाना है तो हमें सबसे पहले मन के अचेतन अथवा अद्धचेतन भागों को समझना होगा। यदि हम उन्हें फ्रायड द्वारा स्थापित अथवा निर्धारित किसी भी सिद्धांत पर स्टीक बैठा देते हैं तो हमें उनसे संबंधित विभिन्न बातों का ज्ञान हो जाएगा और हम सिद्धांतों की सही जानकारी के साथ ही मानवीय व्यवहार की विभिन्नताओं पर भी अपनी स्पष्टता रख पाएँगे।

जैसा कि मनोवैज्ञानिकों का यह मानना है कि मन के तीनों भाग ही व्यक्ति के व्यवहार पर अपना पूर्णतः प्रभाव डालते हैं। व्यक्ति न चाहते हुए भी उन्हीं के अनुसार अपना कार्य करता है। उसी प्रकार फ्रायड ने मानवीय व्यक्तित्व के तीन अन्य आधार उपाहं, अहं एवं पराहं का भी विशेष रोल का अपने सिद्धांतों में वर्णन किया है। अध्याय के इस भाग में स्त्री मनोविज्ञान पर कार्य हो रहा है। तो हम उपाहं, अहं एवं पराहं को स्त्रियों के व्यवहार के नज़रिये से देखने की कोशिश करेंगे कि लेखक ने किस प्रकार से अपने कथा-साहित्य में स्त्रियों के व्यवहार को इस दृष्टि से प्रस्तुत करने की कोशिश की है।

पराहं एक ऐसा पहलू है जो व्यक्ति में वास्तविकता को दूर कर बहुत आगे निकल जाता है। वह अपनी इच्छाओं का ध्यान न रखते हुए सामाजिक दायरे के नियमों का पालन करने का तरजीह देता है। व्यक्ति के दिमाग में यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि ऐसा करना हमारे लिए अच्छा नहीं है। यदि

हम यह कार्य करेंगे तो वह समाज में मान्य नहीं रहेगा। इससे हमारी आन पर भी आँच आ सकती है। इस प्रकार के व्यवहार का लेखक अब्दुल बिरिम्मल्लाह ने अपने उपन्यास 'अपवित्र आख्यान' में बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है।

“वे दोनों पहली बार साथ-साथ रिक्शे पर बैठे थे। गर्मियों के दिन थे। चारों तरफ धूप चिलचिला रही थी। रह-रहकर धूल-भरे बवंडर उठ रहे थे। पसीने से रिक्शा चलानेवाले की कमीज तर हो गई थी। मगर था वह मस्त। गले में लाल रंग का रुमाल बाँधे गुनगुनाता हुआ इतनी तेज़ी के साथ रिक्शा चला रहा था कि वे लोग रह-रहकर एक-दूसरे को पकड़ लेते थे जब कभी वह दाँएँ या बाँएँ रिक्शा घुमाता तो ऐसा लगता मानों अब गिरे, अब गिरे। रिक्शा जैसे ही चौड़ी सड़क को पार करके सँकरी सड़क पर पहुँचा, यासमीन ने अपना पर्स खोला और नकाब निकालकर जल्दी-जल्दी उसे पहनने लगी। जमील हक्का-बक्का रह गया।

“यासमीन तुम नकाब ओढ़ती हो ?”

“क्यों ?” यासमीन ने उँगलियों से नकाब का पल्ला उठाते हुए उसकी तरफ ताका। “हिन्दी पढ़ने का यह मतलब तो नहीं होता कि आदमी अपनी तहज़ीब भुला दे।”

“यह तुम्हारी तहज़ीब है, या डर ?”

“क्या मतलब ?”

“कुछ नहीं, कुछ नहीं.....।”

“देखो जमील.....” बस, इतना ही यासमीन ने कहा और रिक्शेवाले को आगे बढ़ने से रोकती हुई बोली, “रुको।” रिक्शा रुक गया।

“तुम यहीं उतर जाओ।” यासमीन ने उस क्षण ठीक से अपना चेहरा छिपा लिया था, “मैं चलती हूँ। तुम थोड़ी देर बाद आना।”

“क्यों ?”

“यूँ ही, हमारा इस तरह एक साथ रिक्शे पर बैठकर घर चलना ठीक नहीं होगा। अब्बू ने या बड़े भैया ने देख लिया तो.....?”

“तो क्या होगा ?”

“होगा तो कुछ नहीं, मगर.....”

“जमील रिक्शे से उतर गया।

“चलो...” यासमीन ने रिक्शेवाले से कहा और जमील से बोली:

“थोड़ा इधर-उधर टहलते हुए आना-आँ.....। मकान नम्बर एक सौ पैंतीस, ठीक रोड पर.....।”

धूल का एक जलता हुआ बवंडर आया और पल-भर में रिक्शा ओझल हो गया।” (बिरिमल्लाह 09)

आजके सामाजिक वातावरण में स्त्रियों की तरफ से इस प्रकार का व्यवहार पराहं का जीता जागता सबूत है। दोनों रिक्शा पर बैठकर तो घर तक आ जाते हैं। किन्तु लड़की के मन में इस बात का आना कि तुम थोड़ा पीछे ही उतर जाओ। अब्बू ने या बड़े भैया ने देख लिया तो.....?” कहने का तात्पर्य यह कि सामाजिक दायरे में रहकर भी सारे कार्य करना कुछ हद तक पराहं का एक कारक है। जिसका लेखक ने सुंदरता से वर्णन किया है।

बेबसी और असहाय से प्रभावित स्त्री मनः -

प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह स्त्री हो चाहे पुरुष, अपने आसपास के वातावरण से उसकी विचारधारा का प्रभावित होना आवश्यक है। और विचारधारा से ही मानवीय जीवन की कार्यशैली प्रभावित होती है। इसलिए हमारे विचार हमारे जीवन में विशेष महत्त्व रखते हैं। विचारों के संबंध में महात्मा गाँधी अपनी किताब ‘विवाह-समस्या अर्थात् स्त्री जीवन’ में कहते हैं कि “पवित्र जीवन के सभी इच्छुक मुझसे यह बात सुन लें कि कभी कभी बुरा विचार भी शरीर को उतना ही नष्ट करता है जितना कि बुरे काम। विचारों के ऊपर काबू करना बहुत दिनों के अभ्यास के कष्ट और परिश्रम के

बाद ही आता है।” (गाँधी 66) कहने का भाव यह कि हमारे जीवन की प्रत्येक क्रियात्मक प्रक्रिया हमारे विचारों से ही जुड़ी है। हमारे विचारों से ही हमारा व्यवहार आकार लेता है।

स्त्री और पुरुषों के व्यवहार में मुख्य अंतर उनके विचारों के कारण ही होता है। जो भी प्राणी जैसे विचार रखता है उसे से वह प्रतिक्रिया पाता है। बहुत सी किताबों में अक्सर से सुनने पढ़ने में आता है कि स्त्रियाँ अक्सर डर जाती हैं; कमजोर होती हैं; असाहय होती हैं; अबला हैं इत्यादि। यह सभी बातें जाहिर हैं कि कदाचित् उनके विचारों से संबंध रखती हैं। यदि वह अपने विचारों में दृढ़ता ले आती हैं तो उनके व्यवहार में अद्भुत बदलाव की गुंजाइश रहती है। कारण चाहे कुछ भी रहे हों किन्तु है तो यह सत्य ही कि बहुत लम्बे समय से ही स्त्रियों ने अपने मन में किसी न किसी सहारे की तलाश में ही अपना जीवन बसर की पद्धति अपना रखी थी और यह परम्परा उन्होंने आने वाली पीढ़ियों में भी कूट-कूट के भर रखी थी। जिस कारण सहारे से हटने पर ही वह स्वयं को बिल्कुल असहाय मानने लगती हैं अथवा हो जाती हैं। यह पद्धति आज भी वैसी ही है। हालाँकि आधुनिक समाज में थोड़ा परिवर्तन आया है किन्तु आधारशिला अभी भी वैसी ही है। लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह ने अपने उपन्यास ‘झीनी झीनी बीनी चदरिया’ में स्त्री जाति के विभिन्न पहलुओं पर अपनी कलम के सहारे से अपने विचार एवं उनके सामाजिक यथार्थ का बारंबारी चित्रण किया है। वह कहते हैं कि

“लतिफ ने कमरून को तलाक दे दिया।”

अलीमुन ने जब यह खबर मतीन को सुनायी तो उसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। तलाक तो बिरादरी में आम बात हो गयी है। औरत जात की आखिर हैसियत ही क्या है? जब चाहो चूतड़ पर लात मारकर निकाल दो! औरत का और इस्तेमाल ही क्या है? कतान फेरे, हॉंड़ी-चूली करे, साथ में सोये, बच्चे जने और पाँव दबाये। इनमें से अगर किसी भी काम में हीला-हवाली करे तो कानून-इस्लाम का पालन करो और बोल दो कि मैं तुम्हें तलाक देता हूँ। तलाक! तलाक! तलाक! बिरादरी में ते

‘महर’ का झंझट भी नहीं है। भला हो सरदार-महतो का जिन्होंने कानून बना दिया कि साढ़े बत्तीस रुपया से ज्यादा महर बाँधेगा ही नहीं। एकदम शरई उखूल। इस ज़माने में साढ़े बत्तीस रुपये की बिसात ही क्या है? यहाँ मिल्की पठान थोड़े हैं कि पँच-पँच हजार का महर बाँधे जा रहे हैं, उस पर गिन्नी मुहर अलग से। अरे जितना अदा कर सको आसानी से उतने से ज्यादा का महर बाँधो ही नहीं साढ़े बत्तीस रुपया देना कौन बड़ी बात है? फिर दहेज-वहेज का झंझट भी नहीं कि मुकदमा चलायें माँ-बाप, कि हमने इतना सामान दिया था, दामाद सब हजम कर गया। यहाँ न देना है न लेना।” (बिरिमल्लाह 49)

समाज में इस प्रकार के हालात स्पष्ट अपनी झलक पैदा कर रहे हैं कि नर प्रधान समाज में नारी की स्थिति विभिन्न धर्मों के बावजूद भी कोई खास अच्छी नहीं है। हालाँकि इस पर बहुत से धार्मिक विद्वानों, समाज सुधारकों, विभिन्न संस्थाओं ने भी बहुत कार्य किया। किन्तु जब इसका दूसरा पक्ष स्त्री के व्यवहार की दृष्टि से देखते हैं तो पता चलता है कि लेखक ने सामाजिक हालातों एवं समकालीन परिस्थिति के अनुसार स्त्री के व्यवहार में बेहद बेबसी का स्वरूप दिखाया है।

एक अन्य उदाहरण में भी लेखक ने स्त्री की बेबसी का सुन्दर उदाहरण इसी उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत किया है कि स्त्री अपने आप को मर्द के सामने न बोल पाने व सदैव उसके नीचे रहने को किस प्रकार बेबस है हालाँकि स्त्री लगभग मर्द के समान ही कार्य करती आ रही है।

“सुना कि लतीफ ने परसों ताड़ी नहीं , गोलगड्डा मार्का पीया था। और ठर्रे के नशे में झूमता हुआ जब वह घर पहुँचा तो कमरुन लेटी हुई थी। उसके पेट में दर्द था। इसने उसे झँझोड़कर उठाया तो वह कराह उठी और ना-नुकुर करने लगी। इस पर इसने पिटाई की उसकी। सुबह कमरुन जब चाय-रोटी लेकर इसके पास पहुँची तो इसे रात की बाद याद आ गयी और इसने चाय-रोटी के बदले दो-तीन झापड़ जमा दिये उसे। कमरुन को भी गुस्सा आ गया। वह चुपचाप लेटी रही। जब इसने देखा

कि यह तो कुछ काम ही नहीं कर रही है तो और बिगड़ उठा। इसने फिर उसे झँझोड़कर उठाया तो वह भड़क उठी। उसने भी कुछ उल्टा-सीधा कह दिया। बस इसने उसे तलाक बोल दिया और साढ़े बत्तीस रुपये निकालकर उसके आगे फेंक दिये! कमरून ने भी बुर्का उठाया और चल दी!

मतीन समझ गया कि कल जब अलीमुन जा रही थी कमरून के यहाँ तो ज़रूर उस वक़्त वहाँ झगड़ा होता रहा होगा।

लेकिन इसने बताया क्यों नहीं ?

मगर यह बता भी देती तो क्या मतीन उसे रोक सकता था ?

वह सोचता है और देर तक सोचता रहता है। शाम हो जाती है।”
(बिस्मिल्लाह 50)

इस घटना विवरण में स्पष्ट ज्ञात होता है कि पति को यदि कोई परेशानी है, कोई तकलीफ है तो वह ताड़ी अथवा शराब इत्यादि पी कर अपनी परेशानी को कम करने की कोशिश कर सकता है। किन्तु यदि अपनी किसी भी प्रकार की परेशानी अथवा बीमारी के कारण अपनी कठिनाई को सोकर अथवा लेट कर दूर करने की कोशिश भी करती है तो वह चाह कर भी ऐसा नहीं कर सकती। वह किसी भी प्रकार से अपने गुस्से का भी प्रकट नहीं कर सकती। यह एक प्रकार की धर्म की आड़ के माध्यम से मुस्लिम जाति की औरतों में डर की एक ऐसी गलत धारणा दिमाग में बैठा दी गयी है कि यदि वह अपना विरोध का प्रदर्शन करेगी तो उसको तलाक दे दिया जायेगा। इसी डर के कारण उसके व्यवहार में दबी हुई बेबस स्त्री की हरकतों का जाल बनता जा रहा है।

तात्पर्य यह कि स्त्रियों के संबंध में बेबसी का पैदा होना सामाजिक वातावरण की एक ऐसी विकृति है जो मानवीय समाज में स्त्री और पुरुष के रिश्तों में जहाँ एक तरफ मतभेद पैदा करती है वहीं दूसरी ओर स्त्रियों की भावनाओं के निचले स्तर के साथ-साथ साहस पर भी प्रश्न चिह्न लगाती है।

भावुकता: प्रेरणा के साथ-साथ विकृति का समावेश भी

समाज में रह रहे प्रत्येक मनुष्य, पशु और यहाँ तक कि वैज्ञानिकों अथवा पुरातन संत-महात्माओं की मानें तो यह भी कहा जा सकता है कि पेड़-पौधों में भी विभिन्न प्रकार की भावनाएँ पायी जाती हैं। किसी भी प्रकार की भावना का प्रकट होना अथवा छिपे रहना मानवीय व्यवहार का वह लक्षण है जो उसे दूसरों से एक अलग अच्छे अथवा बुरे की पहचान दिलाता है। समाज में उसके अस्तित्व को एक विशेष जगह पर खड़ा करता है।

भावनाओं के संबंध में श्रीमान् चम्पतराय जैन अपनी किताब 'आत्मिक मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

“इच्छा के अधीन जो क्रिया-शक्ति है वह will (वासना, भावना) है। इच्छाओं का समूह ही भावना है। स्वयं इच्छायें मानसिक अभिलाषायें अथवा मानसिक मांगे हैं, जो पूरा होना चाहती हैं। मन के केन्द्रिय दफ्तर में आत्मा भावना-रूप में प्रकट होता है। अपने उद्देश्य के कारण मानसिक उद्धारों में भेद होता है; क्योंकि प्रत्येक उद्धार किसी खास कार्य को लक्ष्य रखता है। यह उद्देश्य चेतना की दशा के रूप में रहते हैं जो चक्षु अथवा अचक्षु-दर्शन से संबंधित होते हैं।

मानसिक इच्छाओं (वासनाओं) में सो जो बहुत तेज़ होती है, उसी के अनुसार एक खास समय में व्यक्ति के कार्य और विचार करने की रूप-रेखा बनती है। कमज़ोर वासनार्यें मौन रहती हैं—उनमें इतनी शक्ति नहीं होती कि अपना प्रभाव दिखा सकें। किन्तु स्वभाव में वह भी ज्वाला मुखी से कम नहीं हैं, और उनका उचित कारण पाकर क्रिया रूप में पलट जाना संभव है।” (जैन 34)

स्त्रियों में भावनात्मक परिस्थियों की जब बात करें तो उनका अपनी भावनाओं पर काबु करना कम ही पाया जाता है। दरअसल यह एक प्रकार का मन में छिपी हुई अथवा दबी हुई भावनाओं अथवा बातों का एक ऐसा समूह होता है दूसरी मनोवैज्ञानिक भाषा में कहें तो अचेतन मन में दबी हुई विभिन्न बातों

का उबाल होता है जो बाहर आने को लात्नायित होता है। वह केवल एक प्रकार से मौके की तलाश में होता है। जैसे ही मौका मिलता है। यह सैलाब फूट जाता है। जैसा कि अब्दुल बिरिस्मल्लाह ने अपने उपन्यास 'रावी लिखता है' में कहते हैं कि

“जब टेम्पो से उतरकर ताँगे पर बैठे तो खुली हवा मिली। हचकते-फचकते किसी तरह नानी के गाँव पहुँचे। नानी-नाना बहुत खुश हुए। मगर यह क्या? अम्मी तो नानी से लिपटकर रोने लगीं। हो क्या गया है इन्हें? गाँव की औरतों ने भीड़ लगा ली। धूल में सने नंगे-अधनंगे बच्चे दौड़े चले आए और हमें घूर-घूरकर देखने लगे। एक लड़की ने तो मुझे छूने की कोशिश भी की। मैं उछलकर दूर खड़ी हो गई। मेरा छोटा भाई दुबककर मेरे पीछे खड़ा हो गया। फिर जल्दी से नाना हमें भीतर लिवा गए।” (बिरिस्मल्लाह 13)

जैसा कि उपर वर्णित है कि अचेतन मन में छिपी हुई अनकही बातों का ऐसा समूह जो किसी विशेष कारक से प्रभावित हो सैलाब के रूप में निकलने को व्याकुल रहता है। बिल्कुल इसी प्रकार की स्थिति लेखक ने अपने इस उपन्यास में वर्णित की है। कि जब बेटा अपनी माँ से मुद्दतों के बाद मिलती है तो लिपटकर रोने लगती है। यह रोना अथवा गुस्सा होना ही एक प्रकार से अचेतन मन की बातों को सैलाब का एक रूप है। जो स्त्रियों में ज्यादा पाया जाता है।

‘रावी लिखता है’ नामक उपन्यास में से एक ओर उदाहरण से लेखक ने इसी प्रकार की स्थिति को बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है जो यह सिद्ध करता है कि दमित इच्छाएँ सामने आने पर भावनाओं को सैलाब बना देती हैं। लेखक कहते हैं कि “अपने मरे हुए बाप को ज़िन्दा देखकर देवयानी इतनी खुश हुई, इतनी खुश हुई कि रो पड़ी।

जैसे अपने डैडी को याद करती हुई एक रोज़ में रो पड़ी थी।” (बिरिस्मल्लाह 61)

लेखक ने अपनी लेखनी में आदर्शवादिता का एक बेहतरीन उदाहरण पेश किया है। जैसे ही उन्होंने स्त्रियों की भावुकता का जिक्र 'रोना' शब्द से संबोधित किया। उसी प्रकार रोने के संबंध में भी लेखक अब्दुल बिरिस्मिल्लाह ने अपने उपन्यास 'रावी लिखता है' में एक पात्र के माध्यम से साकारात्मक प्रभाव का भी वर्णन किया।

“मगर आँखें भी अजीब हैं। वे बंजर नहीं होती। कुछ ही दिनों के बाद उनमें फिर आँसू बनने लगते हैं। “आँसू न बनें तो लोग ज़िन्दा कैसे रहें?” डैडी अक्सर कहा करते थे, “रोना एक तरह का टॉनिक है। यह शरीर को शक्ति देता है।”

तो, उस औरत के शरीर में भी शक्ति का संचार हुआ और वह फिर गर्भवती हुई। अबकी उसने कुछ नहीं चाहा। न बेटा न बेटी। बच्चे को जब ज़िन्दा ही नहीं रहना है तो बेटा हो या बेटी, क्या फर्क पड़ता है?”
(बिरिस्मिल्लाह 23)

कहने का तात्पर्य यह कि लेखक ने अपनी बुद्धि एवं विवेक का सहारा लेते हुए समाज को सही दिशा देने की कोशिश की है। यदि रोने पर नकारात्मक परिस्थिति का वर्णन भी कर देते तो समाज में गलत संदेश जाता। किन्तु उन्होंने उसका सकारात्मक पक्ष रखा और उससे संबंधित उदाहरण भी देकर अपने इरादा को पक्का किया और समाज में भी यह संदेश भेजने में कामयाब रहे कि 'रोना' सदैव ही बुरा नहीं होता। वह लगभग प्रत्येक स्थिति में व्यक्ति की मदद ही करता है। उसके सहारे से व्यक्ति कहीं न कहीं राहत ही महसूस करता है।

दमन से राहत पाने का प्रयास: -

दमन मानवीय व्यवहार एवं मानवीय प्रवृत्ति का एक ऐसा पहलू है। जिसका सामना करने से मानव सदैव ही डरता रहता है अथवा परहेज करता है। यह एक प्रकार से ऐसी विभिन्न इच्छाओं, बातों, विचारों एवं घटनाओं का समूह होता है जो कहीं न कहीं व्यक्ति की मानसिकता को नकारात्मक तरीके

से प्रभावित करता है। उसे बेचैन करता है। इससे बचाव के लिए व्यक्ति ऐसी सारी इच्छाओं, बातों, विचारों एवं घटनाओं को अपने मन के अचेतन भाग में दबा कर रख देता है जिससे कि यह उसकी चेतनावस्था में न आ सके। इसी प्रक्रिया को दमन कहते हैं। इस संबंध में पद्मा अग्रवाल अपनी किताब 'मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ' में कहते हैं कि

“अब प्रश्न यह खड़ा होता है कि हमारे अज्ञात मन की इच्छाएँ अपने वास्तविक रूप में क्यों नहीं प्रकट होती? इस पर मनोवैज्ञानिकों के अपने-अपने विचार हैं। फ्रायड के अनुसार इसका प्रमुख कारण है कि इनकी अभिव्यक्ति सामाजिक नियमों के अनुकूल नहीं। सामाजिक प्रतिबंधों के कारण सामान्य जीवन से हम अपनी प्रकृत वासनाओं की इच्छानुसार पूर्ति नहीं कर पाते। इस लिए उनका दमन किया जाता है। पर दमन द्वारा किसी मूल प्रवृत्ति का नाश नहीं हो जाता, केवल ज्ञात मन से बहिष्कृत होकर वह अज्ञात मन में चली जाती है। वे बहिष्कृत इच्छाएँ अन्य रूप में प्रकट होती हैं, क्योंकि ज्ञात मन इन इच्छाओं को अपने प्रकृत रूप में प्रकट होने में बाधा डालता है।” (पद्मा 36)

लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह ने अपने उपन्यास 'रावी लिखता है' में इस प्रकार की विभिन्न इच्छाओं से भरपूर प्रसंगों को अपने उपन्यास में स्थान दिया है और वह भी वर्तमान समाज के यथार्थ हिस्सों से प्रभावित।

“डेडी ने आगे कुछ नहीं कहा। मैंने ही कुरेदा, “अच्छा, यह बताइए, मैं तो गर्मी के मौसम में पैदा हुई थी; फिर मुझे गर्मी से इतनी सरख्त चिढ़ क्यों है? आपकी फिलॉसफी के हिसाब से तो मुझे चिलचिलाती हुई धूप में डांस करना चाहिए।”

“इस चिढ़ की वजह है।” उन्होंने मेरी आँखों में आँखों डालकर कहा, “तुम गर्मी के मौसम में नहीं, एयरकंडीशंड अस्पताल के मौसम में पैदा हुई हो।”

लगा, किसी ने जोरदार थप्पड़ जड़ दिया हो। मैं नाराज़ होकर उठी और अपने कमरे में चली गई।” (बिरिमल्लाह 19)

इस प्रसंग में स्पष्ट है कि कभी कभी अनायास ही अत्यंत व कठोर दबी हुई बात जिसे हम सुनना भी पसंद नहीं करते, वह सामने आ खड़ी हो जाती है जिससे हम परेशान हो जाते हैं। एक लड़की अपने जन्म के संबंध में ऐसी दमित बात अपने पिता के मुख से सुनने के लिए कदाचित् भी मानसिक रूप से तैयार नहीं थी। किन्तु जैसे ही उसके सामने यह प्रश्न अथवा वातावरण आया तो वह उसे सहन नहीं कर पाई और उठकर चली गई।

उस लड़की का वहाँ से उठकर चले जाना इस बात को स्पष्ट करता है कि व्यक्ति सदैव ही उस बात, घटना, इच्छा अथवा परिस्थितियों से परहेज करता है जो उसे दुःख देती हैं। ईलाचन्द्र जोशी ने अपनी किताब 'दैनिक जीवन और मनोविज्ञान' में हमारे जीवन में जुड़ी ऐसी विभिन्न बातें जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से हमारे जीवन में प्रभाव डालती हैं। उनमें से बहुत सी बातें हमें पता भी नहीं चलती कि वह कैसे हमारे जीवन को प्रभावित कर रही हैं, का विस्तृत वर्णन किया है। 'दमन' के संबंध में उनका विचार है कि

“यह स्वाभाविक नियम है कि मन के किसी भी उद्वेग के सहज प्रस्फुटन में जब कोई बाधा उत्पन्न होती है। तो वह उद्वेग या तो परोक्ष उपायों से अप्राकृतिक रूपों से बाहर को फूट पड़ेगा या समुन्नत, अपार्थिव रूपों में। खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि हमारे समाज में अधिकतर विकृत अप्राकृतिक उपायों के द्वारा ही 'सेक्स' संबंधी अवृत्त वासना को चरितार्थ करने की मनोवृत्ति पाई जाती है। 'सेक्स' संबंधी सामाजिक शासन हमारे समाज में जितना कड़ा है, उतना पाश्चात्य समाज में नहीं। समाज का शासन मानकर हमारे युवकगण इस प्रवृत्ति को बाहर से दमन करते जाते हैं; पर भीतर से इस दमन की जो भयंकर प्रतिक्रिया होती है, वह उनके सारे परवर्ती जीवन की मनोधारा को विकृत और विषेली बना देती है।” (जोशी 117)

जोशी जी ने यहाँ पर 'दमन' की बात को स्पष्ट कराने हेतु 'सेक्स' की बात का उठाया है किन्तु मुख्य बात भावनाओं को अचेतनमन में दफन करने की है जिससे हमारे जीवन में विकृतियाँ पैदा होती हैं तथा हमारी भावनाएँ भी

आहत होती हैं और व्यक्ति के व्यवहार में नकारात्मक प्रवृत्ति का वास होने लगता है।

लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह ने भी इसी बात से संबंधित अपने उपन्यासों में विभिन्न पात्रों एवं विभिन्न घटनाओं के माध्यम से 'दमन' के बारे में अपनी बातें कहीं हैं। अपने 'समर शेष है' नामक उपन्यास में वह कहते हैं कि

“माफ कीजिएगा, मैं इस धिनौने दृश्य का वर्णन नहीं करना चाहता था, लेकिन कुछ धिनौनी चीजें इस किताब के नायक के साथ इस तरह जुड़ी हुई हैं कि उनका वर्णन किए बगैर नायक की जिन्दगी का वह हिस्सा बिल्कुल अधूरा छूट जाएगा, जिसने उसे बेहद प्रभावित किया। जिन्दगी में जो कुछ भी धिनौना है, कुरूप है, असुन्दर है, वीभत्स है, उन सबसे हम प्रायः नफरत करते हैं और उन्हें प्रकट करने में शर्म महसूस करते हैं। लेकिन जिसे हम सुन्दर और पवित्र समझते हैं, जीवन को सुन्दर और पवित्र बनाने में वह बहुधा व्यर्थ सिद्ध होता है। जीवन की संपूर्ण सुन्दरता और पवित्रता संभवतः उसके धिनौनेपन और उसकी वीभत्सता को प्रेरणा से ही जन्म लेती है।” (बिरिस्मल्लाह 118)

काम अतृप्ति से प्रभावित मानसिकता: -

‘काम’ को फ्रायड ने जीवन का मुलाधार माना। उसका नाम इसने ‘लिबिडो’ रखा। हालाँकि इस बात पर इसका बहुत विरोध भी हुआ। किन्तु समयोपरांत इस बात को बहुत से मनोवैज्ञानिकों ने इस पर अपनी सहमति की मुहर लगाई। फ्रायड का ‘काम-शक्ति’ से अर्थ केवल ‘सेक्स’ तक ही सीमित नहीं था। उसके इसने मानव की विभिन्नावस्था के अनुसार काम-शक्ति की भी विभिन्न अवस्थाओं के आधार पर उसका विश्लेषण किया। इस संबंध में डॉ. पद्मा अग्रवाल अपनी किताब ‘मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ’ में काम तृप्ति के संबंध में कहती है कि

“वास्तव में फ्रायड ने ‘काम’ शब्द का बहुत ही व्यापक अर्थ में प्रयोग किया है। इसमें स्त्री-पुरुष का परस्पर आकर्षण-भाव ही अभिप्रेत नहीं, बल्कि हरेक प्रकार का प्रेम-संवेग—स्नेह, ममता, आकर्षण, सहानुभूति सभी—उसमें समाया हुआ है। यहाँ तक कि बच्चों में माता-पिता और खेल-कूद के साथियों के प्रति जो भावना होती है, उसे फ्रायड की शब्दावली में ‘सेक्स डिजायर’ ही कहते हैं” (पद्मा 50)

लेखक ने अपने उपन्यासों में इस प्रकार से पीड़ित विभिन्न स्त्रियों का वर्णन किया है जो समाज के हालातों के आगे मजबूर हैं। किन्तु उनके मन में काम-शक्ति का जो सैलाब उमड़ रहा है। वह किसी न किसी प्रकार से उसे उमड़ जाने देना चाहती हैं। अपने ‘समर शेष है’ नामक उपन्यास में अब्दुल बिरिमल्लाह कहते हैं कि

“फागुन का महीना था इस महीन में वातावरण वैसे ही मादक होता है, पर उस रोज़ हवा में ज्यादा ही नशा था। खेतों में गेहूँ की अधपकी बालियाँ मुग्धा किशोरियों की भान्ति लहरा रही थीं। उनसे एक अजीब-सी तीखी-तीखी गंध उड़कर चारों ओर बिखर रही थी। मेरे लिए अपनी चेतना को सँभाले रखना कठिन हो रहा था

छाया गेहूँ की बालियों के बीच, मेंड़ पर खड़ी थी। उस क्षण वह भी गेहूँ की एक छरहरी-सी बाली ही लग रही थी। अँधेरे में उसका चेहरा गेहूँ के अधपके दाने की तरह चमक रहा था और बाली के रोएँ की भाँति चंद लटें उसके चेहरे पर मेंडरा रही थीं। बदन से दुधौले दाने की खुशबू निकल रही थी और पूरा आकार एक पौधे की भाँति हिल रहा था। छाया की गंध और गेहूँ की बालियों की गंध दोनों ही एक-दूसरे में घुल-मिल गई थी।

“लीजिए, मैं प्रस्तुत हूँ जो जी में आए कीजिए।”

छाया ने अपनी भुजाएँ मेरे कंधों पर रख दीं। जैसे गेहूँ की दो ताजा बालियाँ कानों के पास मचल रही हों। मेरा पूरा जिस्म सनसना उठा।

“में क्या करूँ छाया?”

“कुछ भी कीजिए—में हाज़िर हूँ।”

“यह हाज़िरी कोई हाज़िरी तो नहीं है।”

“तब ?”

“में तुम्हें हमेशा के लिए चाहता हूँ। चलो हम-तुम भाग चलें कहीं।”

“कहाँ।”

“कहीं भी। में कहीं भी चल सकता हूँ।”

“जैसे ?”

“तुम हौं तो कहो छाया, में तुम्हें कहीं भी ले जाकर रखूँगा। भीख माँगकर खिलवाऊँगा, पर तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होने दूँगा।”

“लेकिन ऐसा नहीं हो सकता।”

“क्यों छाया ?”

“क्या बताऊँ! शायद हम अभागे हैं।”

“नहीं छाया, तुम डर रही हो। या शायद यह बात हो कि तुम विवाहिता हो और तुम्हारे पति शायद मेरी अपेक्षा.....”

“बस कीजिए अब, बहुत बक चुके आप।”

“तब क्या बात है ?”

“आप समझने की कोशिश कीजिए। यह कितना कठिन होगा। ऐसी ज़िद नहीं की जाती। बस, जब तक यहाँ हूँ, में आपकी हूँ। मेरा जो चाहे से कीजिए।”

और उसने मुझे अपने और निकट खींच लिया। मैंने अपना हाथ उसके हृदय पर रख दिया था।

“यह क्या है छाया ?”

“दिल ।”

“दिल किसे कहते हैं?”

“मैं नहीं जानती ।”

“इसीलिए तुम मेरी जिद को समझ नहीं पा रही हो ।”

उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और उसे मेरी ही जाँघ पर कसकर दबा दिया ।

“आज आइये मेरे पास । मैं दरवाजे के पासवाली चारपाई पर सोती हूँ । आइएगा न ?” (बिस्मिल्लाह 92)

उपर्युक्त वार्तालाप फ्रायड के ‘काम-शक्ति’ के सिद्धांत पर आधारित पूरी स्टीक बैठती है । यह कोई बुरी बात अथवा असामाजिक कार्य नहीं है । इस संबंध में डॉ. पद्मा अग्रवाल अपनी किताब ‘मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ’ में कहती हैं कि

“जीवन गतिशील है । उसका विकास एक प्रगतिशील क्रम में होता है । आरम्भ में बच्चों में माता-पिता के प्रति राग होता है; फिर मित्रों के प्रति खिचाव है; और युवावस्था में परवर्ग की ओर—स्त्री का पुरुष के प्रति और पुरुष का स्त्री के प्रति आकर्षण होता है । इस प्रकार रुचि विषय से दूसरे पर बदल जाती है । यह विकास की साधारण अवस्था है ।” (पद्मा 53)

‘समर शेष है’ नामक उपन्यास में भी ‘छाया’ नामक एक लड़की है जो स्वयं लेखक से प्रेम करती हैं । है तो वह उसके मामा की लड़की । किन्तु वह बचपन से ही उसके साथ खेलती हुई बड़ी हुई और छिपे हुए रूप में दोनों ही एक दूसरे से प्यार करने लगे और मन ही मन बड़े होकर एक दूसरे से शादी करने की भी सोचने लगे थे । लड़की के मन में कहीं न कहीं काम की भावना जागृत थी जिसकी तृप्ति हेतु वह अपना हाथ जबरदस्ती ही उसके हाथ में पकड़ा देती थी । जबकि लेखक इस बारे में संकोच करता था । इसी उपन्यास में दूसरी लड़की ‘खातून’ को भी लेखक ने इसी प्रकार से काम की अतृप्ति के

रूप में दिखाया है। सामाजिक बंधनों के कारण स्त्रियाँ इस संबंध में अपना विशेष झुकाव इस तरफ नहीं दिखा सकती तो वह कोई दूसरा रास्ता प्रेम-पत्र लिखने जैसा अख्तियार करती है।

“उसने लिखा—

हम आपको बहुत ज्यादा चाहते हैं। लेकिन जो आप सोच रहे हैं वह नामुमकिन है। हमारी और आपकी जाति में फर्क है, इसलिए हमारे घरवाले इस रिश्ते को मंजूर नहीं करेंगे। हम सोच नहीं पा रहे हैं कि क्या करें ? बस यही कहेंगे कि आप अपने दिल से हमें निकाल दें।

आपकी

खातून” (बिस्मिल्लाह 124)

तात्पर्य यह है कि स्त्रियों की बहुत सी भावनाएँ, उनकी इच्छाएँ सामाजिक दबाव के कारण अन्दर ही दफन होकर रह जाती हैं। ‘काम’ संबंधी भावनाएँ युवावस्था में परलिंग के प्रति प्रस्फुटित तो होती ही हैं। पुरुष तो उनका समाधान किसी न किसी प्रकार गुस्सा करके अथवा नशे इत्यादि का सेवन करके हल कर लेता है। किन्तु स्त्री जाति में तो गुस्सा अथवा नशे का सहारा लेने का भी अधिकार नहीं होता जिस कारण वह अंदर ही अंदर घुटती रहती हैं।

दया से निखरता व्यक्तित्वः -

विभिन्न प्रकार के संवेगों, भावनाओं के बीच ‘दया’ नामक संवेग स्त्री जाति में एक ऐसा पहलू है जो पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा पाया जाता है। यह संवेग केवल मानव से मानव के प्रति ही सहानुभूति नहीं रखता बल्कि अन्य जीवों के प्रति भी अपनी विशेष भूमिका निभाता है। लेखक ने अपने कथा-साहित्य में स्त्री जाति की विभिन्न भावनाओं का वर्णन किया है। उनका ‘दंतकथा’ उपन्यास है तो पक्षी जगत की एक विशेष जाति पर आधारित। किन्तु फिर भी उन्होंने उसमें विभिन्न स्थानों पर स्त्री जाति की ‘दया’ का पक्षियों के प्रति दिखाने का प्रयास किया है जहाँ भी संभव हो सका है।

‘दंतकथा’ उपन्यास एक मुर्गे की कहानी है। जो कि कथा के अनुसार किसी दूसरे घर में आता है। तो उसकी बुरी हालत हो जाती है। वह अस्वस्थ हो जाता है। किन्तु उस घर की एक औरत उसकी रूब्याल रखती है। लेखक कहते हैं कि

“फिर मेरी बूढ़ी मालकिन ने शायद अनुमान लगा लिया कि मैं कुछ अस्वस्थ हूँ और उसे मुझे पर कुछ दया आ गई। उसने एक कोने से मुझे पकड़ा और ध्यानपूर्वक मेरा निरीक्षण करने लगी। थोड़ी देर बाद बुढ़िया वह कटोरी उठा लाई जिसमें उसके पोते की मालिश के लिए अजवाइनयुक्त गरम तेल रखा हुआ था। उसने आहिस्ता-आहिस्ता मेरी टाँगों के घावों पर वह तेल लगाया और फिर मेरे आगे विशेष रूप से चावल के कुछ दाने डाल दिए। मैं उसके प्रति कृतज्ञता से भर उठा। मनुष्यों में भी यदा-कदा इस प्रकार के दयावान प्राणी मिल ही जाते हैं। अगर दया, करुणा और प्रेम जैसे तत्व न होते तो मनुष्य का परिंदों से रिश्ता ही क्यों होता ?” (बिरिमल्लाह 38)

आत्म-ग्लानि, पछतावा: -

समाज में व्यक्ति से अच्छे व बुरे कर्म प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से होते रहते हैं। क्रोध अथवा गुस्से के कारण हम कई बार किसी के साथ बुरा अथवा असामाजिक व्यवहार करते हैं। यह सब उपाह के कारण होता है। किन्तु गुस्से के शांत होने पर हमारा ‘अहं’ जागृत होता है और वह हमें अपने किये कार्यों की असलियत से परिचित करवाता है। उस समय हमारे मन में उस किये गये कार्य व व्यवहार के प्रति पछतावा व आत्मग्लानि उत्पन्न होती है। इलाचन्द्र जोशी इस अपनी किताब ‘दैनिक जीवन और मनोविज्ञान’ में कहते हैं कि

“ऐसा व्यक्ति अपनी अंतश्चेतना में आत्मग्लानि और हीनता की अनुभूति से पीड़ित रहता है। इसलिए वह आत्मरक्षा के लिए तरह-तरह के काल्पनिक उपायों को सोचता रहता है। उसका सचेत मन अपनी हीनता को स्वीकार नहीं करना चाहता। फल यह होता है कि वह अपने स्वभावगत

मानसिक कष्टों के लिए बाह्य संसार को उत्तरदायी समझने लगता है। उसे पग-पग पर यह वहम होने लगता है कि उसके परिचित उसकी सब गुप्त बातों का भेद जानने के लिए सब समय सचेष्ट हैं।” (जोशी 21) अपनी इसी किताब में एक अन्य जगह पर वह कहते हैं कि “इस प्रकार के मनोविकार-ग्रस्त व्यक्तियों से क्रुद्ध अथवा असंतुष्ट होने की बजाय उनके प्रति सहनशीलता और सच्ची सहानुभूति दिखाने की आवश्यकता है। वास्तव में ऐसे व्यक्ति दया के पात्र होते हैं।” (जोशी 22) लेखक ने भी बिल्कुल इसी प्रकार की परिस्थिति को पैदा कर स्त्री पात्रों के माध्यम से आत्मग्लानि के भाव को बहुत ही सुन्दर तरीके से पेश किया है। अपने उपन्यास ‘समर शेष है’ में लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह कहते हैं कि

“अचानक मुझे लगा कि मेरे सिरहाने बैठा कोई रो रहा है।

मेरी नींद टूट गई

रात का वह तीसरा पहर था और चारों ओर एक भयानक सन्नाटा छाया हुआ था। वह रुदन उस सन्नाटे में बड़ा वीभत्स लग रहा था।

मैं घबरा उठा।

मेरे सिरहाने भाभी बैठी थीं।

“क्या हुआ भाभी ?”

मैंने लोटे-लोटे ही अत्यंत सहज भाव से प्रश्न किया तो उत्तर में उनका रुदन और तेज हो गया।

मुझे लगा कि शायद उन्हें शायद भैया की याद आ रही है और वे बर्दाश्त नहीं कर पा रही हैं। अतः मैंने उन्हें समझाना चाहा

“सब्र कीजिए भाभी, अब तो जो होना था, हो गया। आपके चार-चार लड़के हैं। मैं हूँ। आपको किस बात की कमी है!”

लेकिन वे बुरी तरह हिचकने लगीं और लगा कि सन्नाटे की बुनावट अभी तड़क जाएगी।

“चुप रहिए भाभी! जाइए, सो जाइए!”

“हम एक बात कहना चाहते हैं।”

उन्होंने आँचल से अपनी आँखें पोंछते हुए और सिसकते हुए अत्यंत रहस्य-भरी आवाज में यह बात कही तो मैं भीतर-ही-भीतर धड़क उठा।

भाभी कौन-सी बात कहना चाहती हैं?

“कहिए!”

मैंने हकलाते हुए कहा तो क्षण-भर के लिए वे खामोश हो गईं। फिर अपनी नाक से बहते हुए पानी को उन्होंने उँगलियों से साफ किया और अत्यंत रूँधे हुए गले से बोलीं, “हमें यही कहना है कि आप हमें माफ कर दीजिए। हमने आपके साथ बहुत बुरा बर्ताव किया है और हमारा दिल हमको आज धिक्कार रहा है। हम अब्बामियाँ के सामने क्या मुँह दिखाएँगे? हम आपसे माफी माँगने के लिए वक्त यहाँ आए हैं। यकीन मानिए हमारा रोआँ-रोआँ तड़प रहा है इस वक्त। भैया! हमें माफ कर दीजिए।”

और मेरा सिर पकड़कर वे पुनः रोने लगीं। उनके आँसू मेरे माथे पर टप-टप टपकने लगे। मैं अपने आँसुओं को रोकने में असमर्थ हो गया।”
(बिस्मिल्लाह 143)

कहने का भाव यह कि प्रत्येक व्यक्ति का मन दया, करुणा, स्नेह इत्यादि भावनाओं से भरपूर है। अन्य नकारात्मक भावनाओं के जागृत होने से कुछ समय के लिए हम भटक जाते हैं किन्तु समयानुसार व्यक्ति उसी स्थान पर फिर लौट आता है।

6.2 कहानी साहित्य में स्त्री मनोविज्ञान:

साहित्य में ‘कहानी’ एक ऐसी विधा रही है जिसके माध्यम से विभिन्न लेखकों ने अपनी भावाभिव्यक्ति को अंजाम दिया है। सर्वविदित है कि कहानी एक घटना प्रधान किस्सा होता है जो लेखक का यथार्थ के साथ कल्पना मिश्रित चित्रण होता है। लेखक अथवा साहित्यकार की मनोवृत्ति एवं सामाजिक

वातावरण से संबंधित हालात के अनुसार ही आधुनिक काल के प्रारम्भ से कहानियों का निर्माण होता आया है। विभिन्न कहानियों के उल्लेख से विभिन्न प्रकार के कहानी आंदोलनों का भी जन्म हुआ। बदलते समयानुसार ही कहानियों के रूप, आकार व शैली में विभिन्नता आती गयी।

कहानी लेखन के लगभग सवा सौ साल के समय दौरान कहानी लेखकों के विभिन्न स्तर देखने को मिले। हमारा शोध कार्य आधुनिक एवं प्रगतिवादी लेखक अब्दुल विस्मिल्लाह के कथा साहित्य से संबंधित है। जिनके अध्ययन से उनकी कहानियों में से स्त्री जाति के व्यवहार का विश्लेषण करना है। उनके समकालीन अथवा उनसे पूर्व के कहानीकारों ने अपनी मनोवृत्ति के अनुसार बहुत ही अच्छी, प्रेरणादायक एवं आदर्शात्मक कहानियाँ लिखी और निरंतर जारी भी हैं। किन्तु हिन्दी साहित्य में कुछेक ऐसे कहानीकार भी हुए हैं जिन्होंने केवल मानवीय मनोवैज्ञानिक चित्रण को ही अपनी कहानियों को आधार बनाया। 'मन्नू भण्डारी' भी एक ऐसे ही कहानीकार हैं। जिन्होंने इसी प्रश्न के साथ-साथ नारी चित्रण का भी साथ मिलाया। इस संबंध में प्रा कल्पना वी. भट्ट अपने शोध-प्रबंध 'मन्नू भण्डारी की कहानियों में नारी संवेदना' में कहते हैं कि

“मन्नू भण्डारी की कहानी में संवेदना और शिल्प विधान दोनों दृष्टियों से कथानक का ह्रास, परम्परा का विच्छेद, आधुनिक मनुष्य के लक्षण एवं चरित्र की मनोवैज्ञानिकता प्रस्तुत है। अपने समकालीन सशक्त रचनाकारों की तरह उन्होंने अपनी कहानी में मानवजीवन के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं को ध्यान में रखते हुए सत्वशील कहा जाए ऐसा आलेखन किया है। फिर भी ज्यादातर कहानी के रूप में उन्होंने नारीजीवन की अकथ्य-अनकही उन क्षणों को अपनी कलम से आकारित किया है।” (भट्ट 186)

हिन्दी साहित्य में स्त्रियों के बारे में विवरण से पहले उनकी समाज में भूमिका खास तौर पर हिन्दी साहित्य के संबंध में यदि की जाए तो बहुत से अहम पहलू बाहर निकल कर आते हैं। हिन्दी साहित्य में ही क्या वैसे भी

स्त्रियों की सामाजिक दशा पर दृष्टिपात किया जाए तो ज्ञात होता है कि आदिकाल अथवा उससे पहले के समय से भी अवलोकन किया जाए तो पता चलता है कि इनकी दशा दयनीय ही रही है। कारण तो बहुत से हो सकते हैं और रहे भी हैं। किन्तु इसके लिए पूर्णतः जिम्मेदार यदि उसके अलावा केवल दूसरों को ही ठहराया जाए तो अन्याय होगा। कारण, कि प्राकृतिक रूप से जो स्त्री और पुरुष में अंतर है उसके अलावा भी बहुत से कारण रहे हैं जो स्त्री जाति ने स्वयं ही पैदा किये हैं अपनी कमजोर अथवा बीमार मानसिकता के कारण। सर्वविदित है कि समाज एक जंग का मैदान है जिसमें भावनाएँ, नैतिकता, संवेदनाएँ इत्यादि भी पूर्णतः से भाग लेती हैं और प्रतिस्पर्धा में पछड़ जाने के कारण अमुक व्यक्ति के व्यवहार में ऐसे बदलाव लाने को अमादा हो जाती हैं जो उसे समाज में पीछे करने में कोई कसर नहीं छोड़ती हैं। जिन स्त्रियों ने अपनी भावनाओं, संवेदनाओं इत्यादि के बल पर दूसरों से मुकाबला किया है। उन्होंने इतिहास में अपना नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखवाया है।

यहाँ पर स्त्रियों ने स्वयं को ही मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से जैविक एवं वातावरणिक अथवा पर्यावरणीय आधार के अनुसार अपना एक पहलू प्रस्तुत कर दिया है। कहने का भाव यह कि देखने में आता है कि जो स्त्रियाँ दिल अथवा दिमाग से कमजोर या अधिक संवेदनशील पायी जाती हैं। उनका कोई जैविक कारण भी हो सकता है। किन्तु इसके अभाव में उन्होंने एक संकुचित सा वातावरण पैदा करके अन्य स्त्री जाति के लिए बाधा उत्पन्न कर दी है। क्योंकि व्यक्ति का मन अथवा उसकी चेतनाता जैविकीय अथवा पर्यावरणीय कारकों से ही प्रभावित होती है। इस संबंध में पी.सी.मिश्र अपनी किताब 'आज का विकासात्मक मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

“पर्यावरणवादियों के अनुसार आज व्यक्ति जो कुछ भी है वह पर्यावरण का ही परिणाम है। पर्यावरणवादियों का दावा है कि मानव के विकास के लिए उचित पर्यावरण जरूरी है। जैसा पर्यावरण होगा वैसा ही बच्चे का विकास होगा।

इससे यह सिद्ध होता है कि पर्यावरण के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता है।” (मिश्र 56)

समाज के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्रियों की कार्य के दृष्टिकोण से परिस्थिति के साथ-साथ हिन्दी साहित्य में भी यदि उनके कार्य के स्थान का नापा जाए तो पुरातन व नवीन युग में एक व्यापक अंतर देखने को मिलता है। इस संबंध में राधादेवी गोयनका अपनी किताब ‘स्त्री समस्या’ में कहती हैं कि

“प्राचीन हिन्दी साहित्य को यद्यपि मीरा, सहजो जैसी देवियों की वाणी के मधुर रस ने संचित किया था तथापि पीछे अपनी सामाजिक अधोगति के साथ स्त्रियाँ साहित्य क्षेत्र में भी बहुत पछड़ गईं। आज फिर से हिन्दी साहित्य में ऊँचा स्थान प्राप्त कर रही हैं यद्यपि उनका ध्यान अभी संतोषजनक मात्रा में इधर आकृष्ट नहीं हो पाया है।” (राधादेवी 60)

कहने का भाव यह कि कहीं न कहीं उन्होंने अपनी मानसिक स्थिति ही ऐसी बना ली है कि कोई भी पहल करने को तैयार नहीं है। जिस कारण उनके पीछे रहने से भावी स्त्री वर्ग भी प्रभावित हुआ।

कहानियों के माध्यम से लेखक ने अपने कहानी संग्रह की विभिन्न कहानियों में स्त्री जाति की विभिन्न उन सभी पहलुओं पर यथार्थ स्थिति में अपनी कल्पना का सहारा ले प्रकाश डाला है जो आधुनिक युग में समकालीन वातावरण का एक हिस्सा है। इसी अध्याय के उपन्यास भाग में हमने स्त्री-मनोविज्ञान से संबंधित बहुत सी भावनाओं से ओत-प्रोत पहलुओं पर प्रकाश डाला है। वही सभी सैद्धांतिक बातों का कहानी भाग में भी वर्णन करना समीचीन नहीं लगता। इस लिए हम इस कहानी संग्रह में केवल स्त्री जाति के उन्हीं पहलुओं को उठाएँगे जो मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों पर स्टीक बैठेंगे।

वैसे तो सभी इस बात से ज्ञातव्य हैं कि कहानी जीवन अथवा समाज की किसी एक घटना का कल्पना मिश्रित वह आख्यान है जो केवल एक बैठक में ही पढ़ा जा सके। लेखक ने लम्बे समय तक साहित्य की इस विधा पर

अपनी लेखनी चलाई है और आज भी जारी है। तो संभवतः यह बात अथवा बिन्दु यह बाहर निकल कर आता है कि पहले कहानी संग्रह से लेकर आज तक के चल रहे कहानी संग्रह में जीवन अथवा समाज की विभिन्न प्रकार की घटनाएँ घटी होंगी। क्योंकि समाज और उससे संबंधित जीवन तो प्रत्येक क्षण बदल रहा है तो कहानियाँ भी बदल रही होंगी। तो इसी बात के मद्दे नज़र हम अपने शोध का केंद्र बिन्दु उनकी समयानुसार बदलती कहानियों में से केवल स्त्री जाति के मनोवैज्ञानिक बिन्दुओं को ही उठाएँगे।

हर्ष एवं गर्व से आनन्दित होती मानसिकता: -

मानव जाति में विभिन्न प्रकार की भावनाएँ, वासनाएँ, अहसास इत्यादि समय व समाज की जरूरतों के अनुसार क्रियान्वित होते रहते हैं। किन्तु स्त्री जाति में विभिन्न प्रकार के ऐसे भाव होते हैं जो किसी दूसरे के कारण से, किसी दूसरे के काम से उसमें स्वयं में पैदा होते हैं कि कार्य कोई दूसरा करे और खुशी किसी ओर को हो। लेखक के कहानी संग्रहों में से कई ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें इस प्रकार की भावनाओं एवं अहसासों का स्त्री के माध्यम से दिखाया गया है। 'खुशी' एक ऐसी मानसिक स्थिति है जो हमारे व्यक्तित्व पर बहुत ही सकारात्मक प्रभाव डालती है। प्रत्येक व्यक्ति ऐसी मानसिक स्थिति की प्राप्ति को लालायित रहता है। वैसे भी समाज में इतनी वेदना भरी पड़ी है कि हर कोई इससे दुखी है। ऐसे में खुशी के दो पल पाने की इच्छा ने व्यक्ति को दयनीय हालत में पहुँचा दिया है। इसकी प्राप्ति के लिए व्यक्ति विभिन्न प्रकार की कोशिश करता नज़र आता है। इस संबंध में इलाचन्द्र जोशी अपनी किताब 'दैनिक जीवन और मनोविज्ञान' में कहते हैं कि "हम केवल इतना ही नहीं चाहते कि दूसरे व्यक्ति हमारी ओर ध्यान दें; बल्कि यह भी चाहते हैं कि वे हमारी प्रशंसा करते रहें। प्रत्येक व्यक्ति जो भी कोई कार्य करता है, उसके संबंध वह जान में अनजान में यह इच्छा रखता है कि दूसरे लोग इसे सराहें। वक्ता बिना श्रोताओं की प्रशंसात्मक तालियाँ सुने आगे बोलने का उत्साह नहीं पाता, संगीतज्ञ प्रत्येक बार सम में आने के बाद 'वाह वाह' के नारे की आशा रखता है। प्रशंसा पाने की उत्सुकता प्रत्येक बच्चे में वर्तमान रहती है।" (जोशी

134) कहने का भाव यह कि खुशी अथवा गर्व की स्थिति पाने हेतु व्यक्ति प्रशंसा पाने की आकांक्षा अपने मन में पाले रखता है। जो कहीं न कहीं उसे खुशी प्राप्ति में सहयोग करती है। दरअसल विगत भी इस बात का वर्णन किया जा चुका है कि यह एक प्रकार की मनःस्थिति होती है जो हमारे व्यवहार को प्रभावित करती है। इस संबंध निर्मला शेरजंग अपनी किताब 'मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

“संवेग के अनुभव के उपरांत व्यक्ति के मन पर उसका जो प्रभाव रह जाता है, उसे ही मनःस्थिति कहते हैं! जैसे क्रोध के दूर हो जाने पर भी व्यक्ति का मन उखड़ा-उखड़ा रहता है। उस अवस्था में वह इतना चिड़चिड़ा हो जाता है कि थोड़ी सी उत्तेजना मिलने पर वह फिर सिर से क्रोधित हो जाता है। इसी प्रकार व्यक्ति यदि प्रसन्नता की मनःस्थिति में होता है तो वह ऐसी स्थिति की ओर ध्यान ही नहीं देता जो साधारणतः क्रोध उत्तेजित करने में समर्थ होती है। उस स्थिति की वह यों ही अवहेलना कर देता है। इस प्रकार की मनःस्थिति को संवेग का अनुवर्ती प्रभाव कहा जा सकता है।” (शेरजंग 254)

कहने का भाव यह कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मिली खुशी अथवा गमी का अहसास व्यक्ति की शारीरिक उत्तेजनाओं से पता चलता रहता है। स्वयं व्यक्ति चाहे इसे कितना भी छिपाने की कोशिश करे। किन्तु यह दृश्यमान हो ही जाता है।

लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह ने अपने आसपास के सामाजिक वातावरण से एकत्रित की घटनाओं के यथार्थ चित्रण से अपनी कल्पना का समावेश करवा मानवीय जीवन की जिन्दगी के विभिन्न पहलुओं पर अपनी कलम चलाई है उनकी 'अलिया धोबी और पाव-भर गोश्त' नामक कहानी में इस प्रकार की भावनाओं का वर्णन है।

“और फिर देखते ही देखते हुआ क्या कि अलिया को धोबियों का चौधरी बना दिया गया। जब कोई काम बगैर उसकी राय के न होता। यहाँ तक कि शादी-ब्याह तक में उससे पूछताछ की जाती। उसकी माँ ने जब देखा

कि उसका बेटा तो बिरादरी-भर का चौधरी हो गया है तो उसकी छाती भी गर्व से फूल उठी।” (बिस्मिल्लाह 16)

इस प्रकार की भावना चाहे वह बहन हो, माँ हो या पत्नी हो एक स्त्री के ही मन में आ सकती है बनिस्पत पुरुषों के। अपने निजी किसी भी पारिवारिक सदस्य की किसी भी प्रकार की उपलब्धि से जैसे तो सभी परिवारजन खुश होते हैं; गर्व से फूले नहीं समाते। किन्तु माँ के हृदय में जो आनन्दानुभूति का जो अहसास होता है वह तो शब्दों से परे ही होता है। इस संबंध में डॉ. पी.सी. मिश्र कहते हैं कि

“दैनिक जीवन में बच्चों में अनेक प्रकार के संवेग परिलक्षित होते हैं। इन संवेगों के कारण बालक एवं बालिकाओं के व्यवहार में अनेक परिवर्तन नजर आते हैं। संवेग भाव की अनुभूति के अति निकट होने के कारण जन भाव की मात्रा बढ़ती है तो शरीर उद्दीप्त हो जाता है उस उद्दीप्त अवस्था को ही संवेग (भय, क्रोध, चिन्ता, प्रेम, ईर्ष्या, निज़ासा आदि) कहते हैं। संवेग के कारण कभी-कभी व्यक्ति इतना प्रेरित हो जाता है कि वह बड़े से बड़े कार्य करना चाहता है। इनका मानव विकास में महत्वपूर्ण योगदान होता है।” (मिश्र 97)

कहने का भाव यह कि सम्पूर्ण मानव जीवन में संवेग व्यक्ति को जन्म से मरण तक प्रभावित करते हैं। संवेगों की अत्याधिक क्रियाशीलता से व्यवहार में आत्मनिष्ठा आने की गुंजाइश बढ़ जाती है और व्यवहार भावुकता की ओर अग्रसर हो जाता है।

साहसिक कार्यों से बदलती परिस्थितियाँ: -

स्त्रियों में जहाँ हम अक्सर मानकर चलते हैं कि उनका दिल कमजोर होता है। क्योंकि कुछेक अपवादों को छोड़कर आजतक ऐसा ही देखने को मिला है। वह कोई बड़ा कार्य करने से डरती हैं। तो कुछ हद तक यह मान भी लें तो भी हमें यह मानकर चलना पड़ेगा कि इसके पीछे भी कोई न कोई कारण है। किन्तु ऐसा सदैव ही नहीं रहता। स्त्री जाति में सामाजिक दायरे के

अनुसार यह मान कर चलते हैं कि यदि उन्हें कोई सहारा मिल जाता है तो वह असहाय होती जाती हैं। तात्पर्य यह कि उनके मन में यह भाव रहता है कि चलो कोई और कार्य कर रहा है जिससे उनके मन में स्वयं कार्य करने की भावना धीरे-धीरे समाप्त होने लगती है। क्योंकि स्वयं को सहज प्रवृत्ति में रखना मानवीय मूलप्रवृत्ति है। जहाँ तक संभव हो सके मनुष्य कोई भी ऐसा कार्य करने का इच्छुक नहीं होता जिससे उसे कष्ट हो अथवा कोई काम करना पड़े। इस संबंध में निर्मला शेरजंग अपनी किताब 'मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

“मूलप्रवृत्तियों से प्रेरित होने के कारण जीवन के आरम्भकाल में प्राणी का व्यवहार सहज होता है। मूलप्रवृत्तियाँ प्रत्यक्ष स्थिति से उत्तेजना पाती हैं। उत्तेजना मिलने पर व्यक्ति को संवेग के साथ प्रेरणा होती है। यह प्रेरणा उसे प्रत्यक्ष स्थिति के संबंध में क्रियाशील होने को उत्तेजित करती है। इच्छा की पूर्ती के लिए वह सहज प्रयत्न करता है। इन प्रयत्नों की सफलता बहुत कुछ वातावरण की अनुकूलता तथा बुद्धि की तीव्रता पर निर्भर करती है।” (शेरजंग 50)

कहने का भाव यह कि मूल प्रवृत्तियों के कारण भी स्त्री एवं मर्द के कार्यों में विभिन्नता पाई जाती है। और दूसरा बुद्धि की तीक्ष्णता भी बहुत प्रभावित करती है। संवेदना से स्त्री वर्ग को समय-समय पर उत्तेजना मिलती रहती है जो उसे कार्य करने को तथा न करने का उकसाती है। यदि उनके मन में यह बात बैठ जाये कि उन्हें यह कार्य पूरा करना ही है तो वह उसे किसी भी परिस्थिति में कर लेती हैं। दूसरी तरफ उनके किसी नजदीकी पर किसी भी किस्म की आँच आने की संभावना अथवा खतरे के अहसास में वह सभी कार्य कर लेती हैं जो कभी हमें उनकी तरफ से असंभव लगते थे। लेखक की 'अतिथि देवो भव' नामक कहानी संग्रह में 'सिद्दकी साहब' नामक कहानी में इसी प्रकार की परिस्थिति का वर्णन दिखाया गया है।

“मैंने सोचा अब क्या करूँ ? घरवालों को बताता हूँ तो लोग घबरा जाँगे खैर, मैंने जाकर अपनी बीवी को जगाया। वह बेचारी हड़बड़ाकर

उठीं और बेहद घबरा गई। बोलीं, 'क्या बात है?' मैंने कहा, 'शयद मुझे चूहे ने काट लिया है।' वे और घबराईं। उन्हें यकीन नहीं आया। खैर....
उन्होंने कपड़ा-वपड़ा बाँध दिया और मैं जाकर लेट गया। लेकिन उन्हें सब नहीं। वे बाहर पहुँचकर मेरे बड़े भाई साहब को जगाने लगीं। भाई साहब उठे तो एकदम घबरा गए कि यह बहु कैसे बाहर निकली? बोले, 'तुमने कदम कैसे निकाले? तुम्हें मालूम नहीं है क्या कि इस घर की औरतें कभी बाहर नहीं निकलीं अकेले। वो भी इस तरह रात में। आखिर क्या मुसीबत आ गई?' खैर साहब, वे दुबकी हुई, डरी हुई, मद्धिम आवाज़ में बोलीं, 'उन्हें किसी कीड़े ने काट खाया है।'
 (बिरिमल्लाह 21)

इस प्रकार इस प्रसंग को ध्यान से पढ़ने से यह बात अथवा बिन्दु निकल कर बाहर आते हैं कि जो औरत कभी घर से बाहर नहीं निकली। कभी मुँह से आवाज़ नहीं निकली। किन्तु जब वह देखती है कि उसके पति को खतरे है तो वह सभी उन रूकावटों को पार करती हुई अपना कार्य पूरा करती हुई अपने साहस का परिचय देती है। जो कभी उसके लिए स्पष्ट रूप से बाध्य थे।

यहाँ पर पुरुष और स्त्री की साहस की बात को अप्रत्यक्ष रूप में दिखाया गया है। पुरुष मुसीबत में अपने ही घरवालों से बात करने से डरता है जबकि स्त्री उन लोगों से भी बात कर लेती है अथवा उस स्थान पर भी चली जाती है जहाँ उसे जाने में पूरी तरह मनाही है। तो मुख्य रूप से यह बात निकलती है कि स्त्री जितनी डरपोक लगती है। कहीं-कहीं वह पुरुषों से भी ज्यादा मजबूत है।

दूसरी बात यह कि व्यक्ति के अंदर 'भय' नामक एक ऐसा पहलू है जो अक्सर डर के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। किन्तु इसका एक दूसरा पहलू भी है। भय एक प्रकार का वह कारक है जो मनुष्य में अप्रत्यक्ष रूप से साहस को जन्म देता है। किसी भी प्रकार के भय से बचने के लिए व्यक्ति वह कार्य कर जाता है। जो वह करने से डरता था। कहानी में औरत जो घर से बाहर निकलने से डरती थी, किसी से बात करने से डरती थी। अपने पति की जान

को खतरे में देखकर भय से वह सभी कार्य करने लगी जो कभी उसके लिए आसान नहीं थे।

उनकी इसी कहानी संग्रह में से 'अभिनेता' कहानी में भी एक इसी प्रकार की औरत का जिक्र किया गया है। जो अपने पति से तलाक के बाद किसी भी प्रकार की परिस्थिति से निपटने के लिए साहस के साथ अपना अलग काम शुरू करती है। उसका पुराना पति जब उससे मिलने आता है तो वह बहुत ही साहस और सहजता से उसका सामना करती है।

“आप शायद गलत दुकान में आ गए हैं। मेरा नाम बानो नहीं है और न ही मैं किसी रहमान नाम के आदमी को जानती हूँ। माफ कीजिएगा, यह मेरे ग्राहकों का वक्त है। आप लोग यहाँ से चले जाएँ तो बड़ी मेहरबानी होगी।”

औरत ने लगभग चिढ़ते हुए यह बात कही और खड़ी होकर अलमारी पर रखे डिब्बों को दुरुस्त करने लगी।

“तो तुम्हारा तुरा अभी तक खत्म नहीं हुआ है बानों! इस हालत तक पहुँच जाने पर भी?”

उसने अपने संवाद को पैना बनाने की कोशिश की, लेकिन दूकानदारिन चिंघाड़ उठी।—

“आप जाते हैं या बुलाऊँ किसी को? एक शरीफ औरत से इस तरह की बातें करते हुए आपको शर्म नहीं आती ? आप-जैसे न जाने कितने स्कूटरवाले यहाँ रोज आते हैं, पर किसी की मजाल नहीं कि दो लफज बोल दे। मुझे एक मामूली दूकानदारिन समझकर आप अंट-शंट मत बकिए, आप यहाँ से चले जाएँ।” (बिरिमल्लाह 46)

कहने का भाव यह कि हमारे संवेग, हमारी संवेदनाएँ, हमारी मूलप्रवृत्तियाँ, बुद्धि की तीक्ष्णता, हमारी मानसिक स्थिति, हमारा वातावरण इत्यादि हमें कार्य करने अथवा परहेज करने के लिए आधारशिला का कार्य करते हैं।

ईर्ष्या से संतुष्टि पाने के इच्छुक: -

मानवीय व्यवहार का गहन अध्ययन किया जाए तो बहुत सी आश्चर्यजनक नतीजे निकलकर बाहर आएँगे। स्त्री और पुरुष के सामान वातावरण में रहते हुए भी दोनों में ढेर सारी विभिन्नताएँ पायी जाती हैं। दया और ममता जैसी अनेक भावनाओं के लिए यदि स्त्रियों को आगे लाया जाता है और पुरुषों को पीछे। तो पहल करने व खतरा मोल लेने में पुरुषों को आगे लाया जाता है और स्त्रियों को पीछे। मित्र बनाने में पुरुषों को आगे लाया जाता है तो ईर्ष्या करने में स्त्रियों को। कहने का तात्पर्य यह कि मानवीय व्यवहार में विभिन्नताएँ भरपूर हैं। स्त्रियों में संवेदनशीलता ज्यादा होने के कारण उनमें भावनाओं की गहराई पाई जाती है। उनका प्रत्येक भाव आंतरिक होता है।

यह सब कुछ हमारी भावनाओं से संबंधित होता है और हमारी भावनाएँ हमारे संवेगों से क्रियाशील होती हैं और संवेग हमारी मूलप्रवृत्तियों की मोहताज होते हैं। संवेगों के संबंध में डॉ.पी.सी. मिश्र अपनी किताब 'आज का विकासात्मक मनोविज्ञान' में कहते हैं कि "संवेग वह मूल शारीरिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति संवेगात्मक परिवेश में वर्तमान उद्दीपक को प्रत्यक्षीकृत करके चेतन अनुभव करता है जो उसमें शारीरिक परिवर्तन उत्पन्न कर देते हैं।" (मिश्र 97) कहने का भाव यह कि हमारे शारीरिक परिवर्तन जो वातावरण के कारण अचानक बदलाव के रूप में आते हैं वह हमारे संवेगों के माध्यम अथवा कारण से आते हैं। विभिन्न प्रकार के संवेगों की क्रियाशीलता से शरीर में विभिन्न प्रकार के बदलाव आते हैं। दूसरी बात यह संवेग एक व्यक्ति के जन्म से मृत्यु तक के सफर में अपना विभिन्न रोल एवं अपनी विकासात्मक प्रक्रिया का सबूत देते हैं। जो संवेग बचपन में होते हैं, वह मानव के जवान होने पर अपनी प्रतिक्रिया में बदलाव ले आते हैं। जैसे-जैसे व्यक्ति प्रौढ़ होता जाता है। संवेगों का रूप बदलता जाता है। बचपन में किसी की जीत की खुशी में जश्न मनाने की प्रवृत्ति प्रौढ़ होने पर ईर्ष्या में बदल जाती है। स्त्रियों में तो यह संवेग बहुत ही जल्दी अपनी प्रतिक्रिया दिखाने लगता है। संवेगों की दशा

के बारे में डॉ.पी.सी. मिश्र अपनी किताब 'आज का विकासात्मक मनोविज्ञान' में कहते हैं कि

“कुछ मनोवैज्ञानिकों ने यह ज्ञात करने का प्रयास किया कि निश्चित आयु में किस प्रकार संवेगात्मक प्रतिमान अनुक्रम बच्चों में प्रदर्शित होते हैं। विभिन्न प्रयोगात्मक अध्ययनों एवं शोधों से यह ज्ञात हुआ कि विभिन्न आयु स्तर में बच्चों में समान रूप से संवेगात्मक प्रतिमान प्रदर्शित रहते हैं। आयु तथा अनुभव में वृद्धि होने के फलस्वरूप इन संवेगात्मक प्रतिमानों में परिवर्तन भी होता है।” (मिश्र 103)

संवेगों की यह प्रक्रिया वातावरण के अनुसार बदलती रहती है।

लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह ने अपने कहानी संग्रह 'अतिथि देवो भव' में 'नर-लीला' नामक कहानी में लेखक ने स्त्रियों की आपसी 'ईर्ष्या' संवेग का बाखूबी चित्रण किया है। कि कैसे किसी केवल चाबू कहीं जाने वाली स्त्री के बारे में मामूली सा इशारा मिलते ही उसके बारे में अंदाजा लगाना शुरू कर देती हैं। बिना किसी ठोस आधार के मिले बिना ही।

“यह भी बड़ी छँटी हुई औरत है। कहती है अपने को मिस, मगर न जाने कितनी बार मिसेज बन चुकी होगी अब तक ? तीस से तो क्या कम होगी? भला इतनी उम्र तक कोई औरत ऐसे ही रह सकती है?” श्री प्यारे लाल गुप्त जी ने मिस रेखा देवी के बारे में जब यह टिप्पणी की, तो लोगों का ध्यान थोड़ी देर के लिए भंग हुआ, पर सब के सब फिर गेट की ओर देखने में तल्लीन हो गए। हाँ स्त्रियाँ अवश्य कुछ खुसुर-फुसुर करने लगीं।

“हे तो खैर बहुत छरछटी!”

संतोखी बुआ बोलीं तो भला मास्टर नरेश प्रसाद की पत्नी कैसे चुप रहती? उन्होंने भी एक पक्ष उद्घाटित किया।

“यह जा सुरेश नहीं है, शोभाकांत का लड़का, उससे इसकी कुछ चिट्ठी-पत्री भी.....”

“चुप-चुप, वो आ रही है!”

रेखा देवी वाकई आ रही थीं। उनके चेहरे पर एक अजीब-सी उदासीनता पुती हुई थी।

“क्या हुआ ? कुछ मालूम हुआ ?” पं. रामासरे शुक्ल आगे बढ़कर रेखा देवी के एकदम सामने खड़े हो गए थे।” (बिस्मिल्लाह 68)

इस प्रकार की वार्तालाप स्वयं ही बता रही है कि स्त्रियों को कई बार केवल हल्का सा बहाना ही चाहिए होता है। उसी को आधार बना वह अपने मन में छिपी किसी अन्य स्त्री अथवा पुरुष के बारे में बातों के माध्यम से अपना मन हल्का करने को उतेजित हो उठती हैं। अपने से सुन्दर अथवा बन-ठन कर रहने वाली स्त्री से वह अकसर ईर्ष्या भाव से ही देखती हैं। दरअसल यह भाव उनके मन में तब आता है जब उन्हें कोई विशेष अहमियत नहीं देता या उनको छोड़ कर कोई किसी अन्य का विशेष महत्त्व देता है। जिससे स्त्रियों में यही ईर्ष्या का भाव जागृत होता है।

एक और अन्य उदाहरण में भी लेखक ने स्त्री के इसी भाव को पुरुषों के प्रति भी अपनी ‘रफ रफ मेल’ कहानी संग्रह में से ‘जीना तो पड़ेगा’ नामक कहानी में इस प्रकार जाहिर किया है कि

“ये कौन हैं जी ?”

“कौन ?”

“अरे यही, जो दालान में पड़े हुए हैं?”

“आदमी हैं, और कौन ?”

“आदमी हैं, यह तो हम भी देख रहे हैं। मगर आखिर ये हैं कौन ?”
मतलब , क्या आपके कोई रिश्तेदार हैं?”

“दुनिया के सारे मुसलमान आपस में बिरादर होते हैं, समझीं!”

“यह तो मैं भी जानती हूँ, पर भई मुसलमान होने पर से ही क्या किसी को इस तरह रखा जा सकता है घर में ?”

“क्यों, उनमें बुराई क्या है ?”

“अरे पड़े-पड़े यहाँ रोटियाँ तोड़ रहे हैं, यह भी कोई अच्छाई है क्या, अपने घर वालों के साथ क्यों नहीं रहते ?”

“मान लो घर वाले हों ही न तब ?”

“तब कहीं और जाँ काम धंधा करें.....” (बिस्मिल्लाह 16)

पति पत्नी की आपसी इस प्रकार की यह वार्तालाप सिद्ध कर रही है कि स्त्री के मन में सदैव यह भाव रहता है कि उनकी विवाहित जिन्दगी में किसी भी प्रकार का कोई भी हस्ताक्षेप न हो। चाहे वह स्त्री के रूप में हो चाहे वह पुरुष के रूप में।

इन सभी उदाहरणों में एक ही बात सामान्य है कि व्यक्ति का पूर्ण व्यक्तित्व उसके संवेगों की क्रियाशीलता पर आधारित होता है। इस संबंध में मनोविज्ञान के साथ-साथ साहित्य में भी बहुत ही सुन्दर एवं स्टीकता से वर्णन होता आया है क्योंकि सभी इस बात से ज्ञातव्य हैं कि मानव जाति अपनी बुद्धि के कारण संवेदनशील है और यह सब उसके अंदर मौजूद मूल प्रवृत्तियों के कारण होता है जो वातावरण से संपर्क में आने पर संवेदनाओं का प्रगटावा करते हैं। हिन्दी साहित्य में काव्यशास्त्र में विभिन्न आचार्यों ने मन की इस क्रियाशीलता को रस का रूप दे उसे प्रभाशित करने की कोशिश की है। प्रसिद्ध काव्य आचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में रस अथवा भाव के जागृत होने की एक बहुत बड़ी गुत्थी सुलझाने में मानव जाति की एक बहुत बड़ी समस्या को हल किया है। उन्होंने अपना एक रस सिद्धांत प्रस्तुत कर संवेदनाओं की समस्या को सुलझाने की भरपूर कोशिश की है। इस संबंध में डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी अपनी किताब ‘वस्तुनिष्ठ काव्यशास्त्र (सम्पूर्ण भारतीय-पाश्चात्य काव्य चिन्तन)’ में कहते हैं कि

“रस सम्प्रदाय का क्रमिक इतिहास सूचित करता है कि आचार्य भरत ने अपने ‘नाट्यशास्त्र’ में नाटक के विशेष संदर्भ में रस का उल्लेख छठे एवं सातवें अध्यायों में किया है। रस विकल्प नामक छठे अध्याय में भरत ने

नाटक का मुख्य लक्ष्य सामाजिक के हृदय से रासोत्पत्ति करना स्वीकार किया है और रासोत्पत्ति के लिए अपने विशिष्ट सूत्र की प्रस्तावना की है। भरत के अनुसार, रस के बिना कोई अर्थ नाटक में प्रवर्तित नहीं होता, क्योंकि नाटककार का सारा रचना व्यपार भावों अनुभवों और संचारी भावों के सहयोग से रस की निष्पत्ति पर केन्द्रित है—‘विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगादरसनिष्पत्तिः’ रस निष्पत्ति सम्बन्धी रस सूत्र के समानांतर भरत ने रसावयव, रस प्रक्रिया, रस संख्या, रस स्वरूप, रस दशा और रसाधिकारी की भी व्याख्या की है।” (तिवारी 32)

कहने का भाव यह कि भरतमुनि ने मानवीय जीवन के व्यवहार से संबंधित प्रत्येक हिस्से को अपने रस सिद्धांत की व्याख्या के अंतर्गत समझाने की कोशिश की है। सारांश यह निकलता है कि व्यक्ति की मूलप्रवृत्तियों के संबंध में जब वातावरण से अपना सहयोग करता है तो विभिन्न प्रकार के परिवर्तन उसमें पैदा होते हैं। वही परिवर्तन हमारा व्यवहार निर्धारित करते हैं। इसी प्रकार इसी सूत्र के अनुसार यदि उन्हें कोई प्यार से अथवा अपनेपन से व्यवहार करता है तो वह उससे ईर्ष्या की बजाए आत्मिक प्रेम भाव से व्यवहार करती हैं। लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह अपने कहानी संग्रह ‘अतिथि देवो भव’ में इसी भाव से संबंधित एक सुन्दर उदाहरण इसी कहानी में से प्रस्तुत की है।

“तुम्हारा नाम क्या है?” एक दिन संताखी बुआ ने पूछा तो औरत अचानक ही जैसे खिल उठी थी।

“कमली!” उसने धीरे से जवाब दिया था और कपड़ों की गठरी सिर पर रखकर खड़ी हो गई थी।

मुहल्ले की रित्रियों में कमली बहुत घुल-मिल गई थी और यह प्रसिद्ध हो गया था कि औरत बहुत सीधी है। एकदम गऊ। शायद इसी औरत पर भरोसा करके लोग अब अपने कपड़े फिर से वहाँ देने लगे थे।

धोबियाने में कमली के आ जाने से इस मुहल्ले की स्त्रियाँ बहुत खुश थीं। मुसीबत की मारी औरत के दुर्भाग्य को लेकर टिप्पणी करने का उन्हें अच्छा मौका मिल गया था।

“अभी उम्र ही कितनी है बेचारी की और भाग देखो कि बूढ़े के पल्ले आ पड़ी!”

संतोखी बुआ एक सर्द आह भरती हुई कहती, तो मास्टर नरेश प्रसाद की बीवी उनसेभी ज़्यादा दुखी हो जाती।

“बेचारी घुट-घुट मर जाएगी। इस बुढ़वे से तो इसको कोई बाल-बच्चा भी होने से रहा!” (बिरिमल्लाह 70)

फिक्र, प्यार, सहानुभूति: -

विगत भी इस बात का वर्णन किया जा चुका है कि हमारी मूल प्रवृत्तियाँ एवं संवेग ही हमारे व्यवहार की आधारशिला का मुख्य कारण होते हैं। वातावरण से संबंधित एवं सम्पर्क के पश्चात् यह अपना असर दिखाते हैं। भय, प्यार, आक्रोश, सहानुभूति इत्यादि के अलावा जितने भी संवेग हैं वह सभी हमारे अंदर विद्यमान हैं केवल वातावरण के संपर्क से क्रियाशीलता द्वारा प्रभावित होते हैं। किसी के प्रति स्नेह, प्यार, फिक्र इत्यादि हमारी मानवीय जीवन शैली का एक हिस्सा भी है और एक कुदरती देन भी है। जिससे हमारे जीवन को समाज में स्थान व प्रतिष्ठा मिलती है। लेखक ने अपनी कहानी संग्रह में जितनी भी कहानियाँ लिखी हैं उनमें जहाँ कहीं भी स्त्री को माँ के रूप में दिखाया गया है तो लेखक ने वहाँ पति अथवा पिता के साथ तुलनात्मक दृष्टि के अंतर्गत माँ को सदैव ही दया एवं करुणा के संबंध में ही दिखाया है। कहीं न कहीं लेखक की माँ के प्रति इस भावना ने भी उनकी ऐसी लेखनी में अपना भरपूर सहयोग किया है। ‘फिक्र’ के संबंध में स्त्रियों में जो भावना अथवा अहसास का जो गुण पाया जाता है। उसे सारी दुनिया मानती है। स्त्री जिस भी चीज़ अथवा प्राणी के संबंध में फिक्र करती है तो उसे किसी भी प्रकार से नुकसान से बचाने को यत्नशील रहती है। यही

भावना मानव जाति की स्त्रियों के साथ-साथ मादा जानवरों में भी पाई जाती है। यह दोनों अपने बच्चों के प्रति सबसे संवेदनशील पायी जाती हैं।

लेखक ने अपनी कहानी संग्रह 'अतिथि देवो भव' में से 'टिन्नु का टेलीफोन' नामक कहानी में इसी प्रकार की संवेदनशीलता का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

“मगर मैं सोचता हूँ कि मेरा जाना ठीक नहीं।”

“क्यों?”

“मान लो पुलिस ही आ जाए! मुझे तो आज भी वो मार याद है जब लल्ले के चक्कर में पकड़ा गया था फलस में।”

“तब?”

“क्यों न टिन्नु को भेज दिया जाए ?”

“अरे हाय!” मुन्नी का कलेजा मुँह को आ गया, “मेरा स्ती-भर का लाल जाएगा

लूटपाट करने ? और मान लो पुलिस आ ही गई तो ?” (बिस्मिल्लाह 133)

कहने का भाव यह कि लेखक ने यहाँ पर स्त्री व पुरुष के बीच में एक करुणा एवं दया अथवा वात्सल्य के दृष्टिकोण से बहुत ही सुन्दर व स्टीक अंतर को दर्शाया है। पुरुष स्वयं को बचाने हेतु बच्चे को आगे धकेलना चाहता है। ऐसा करते हुए उसके मन में एक किसी भी प्रकार की बच्चे के प्रति दया का भाव जागृत नहीं होता जबकि माँ केवल इतना सुनते ही भावुक हो जाती है कि मेरे बच्चे को कहाँ फंसाया जा रहा है। एक और अन्य उदाहरण में 'शादी का जोकर' कहानी में भी लेखक ने माँ का अपने बच्चे के प्रति प्यार एवं अपनी ममता का सुन्दर प्रसंग पेश किया है। किसी कारणवश पुलिस किसी बच्चे को नाज़ायज पकड़ कर ले जाती है। सभी लोग उसे छुड़ाने के लिए तरह-तरह के क्यास लगा रहे हैं। स्त्रियों का झुण्ड सन्नाटे की तरह बैठा है।

“तभी अन्दर से एक स्त्री की आवाज़ आई, “तुम्हीं लोग क्यों नहीं चले जाते थाने। दरोगा साहब के पाँव पकड़ लेना, तो हो सकता है उन्हें रहम आ जाए अउर छोड़ दें हमारे कलुवा को।” (बिस्मिल्लाह 73)

यह वार्तालाप सिद्ध करती है कि माता का हृदय पिता के हृदय से अत्यन्त संवेदनशील होता है। वह सदैव अपने बच्चों के प्रति वात्सल्य भाव रखती हैं। उनके प्रति हल्के से खतरे के प्रति भी वह चिंतित हो जाती है। वह हर संभव कोशिश करती है कि उसके बच्चों को कोई भी नुकसान न हो। वह सदा ही हँसते खेलते रहें।

बेटा-बेटी के साथ-साथ ही यह भाव परिवार के किसी भी सदस्य के प्रति भी पैदा हो सकते हैं चाहे वह बुढ़ा, बच्चा या जवान हो। लेखक ने अपने कहानी संग्रह ‘रफ रफ मेल’ में ‘चमगादड़’ नामक कहानी में ऐसी ही एक बहू के माध्यम से अपने बूढ़े ससुर के प्रति इस प्रकार के भाव का वर्णन किया है।

“मगर छोटी बहू पर करीम बूढ़े को बड़ा नाज़ था। वह उसका बहुत ख़याल रखती थी। खाने में उसे क्या पसंद है क्या नहीं, यह बात सिर्फ वही जानती थी। जिस रोज़ घर में रोटियाँ कम पकतीं, दोनों बहुएँ बूढ़े को सिर्फ चावल दिया करतीं लेकिन छोटी बहू छिपा कर एकाध रोटी उसे दे दिया करती थी। उसे मालूम था कि कई दाँत टूट जाने क बावजूद उसके बूढ़े ससुर को रोटी बहुत प्रिय है। रोटी न मिले तो उसका पेट नहीं भरता।” (बिस्मिल्लाह 24)

अपने बूढ़े ससुर की इस प्रकार की देखभाल उसके मन में जागृत हो रहे फिक्र, दया, प्यार इत्यादि का वह रूप है जो एक ही घर में रहती बाकी दोनों बहुएँ के मन में नहीं उपजा। वह अपने ससुर के उनके यहाँ रहने से स्वयं को तंग महसूस कर रही थीं। इस वार्तालाप में हम दो बहुओं की लड़ाई का प्रसंग नहीं उठाएँगे बल्कि ध्यान से देखने पर यह कहा जाएगा कि यह तो छोटी बहू का अपने बूढ़े ससुर के प्रति प्यार, अपनापन अथवा फिक्र है जो उसे किसी दूसरी स्त्री से लड़ने पर मजबूर कर रहा है।

‘रफ रफ मेल’ नामक कहानी संग्रह में भी ‘दुलहिन’ कहानी में भी माँ का अपनी बेटी को शादी के समय समझाना अथवा शिक्षा देना एक प्रकार से उससे प्यार अथवा उसके प्रति चिंता एवं फिक्र का ही आलम है जो उसे लगातार दो मिनट में ही ढेर सारी बातें कहने को मजबूर किए जा रहा है।

“सुषमा की अम्माँ इन चीजों को सेंतती जाती थी और सुषमा को समझाती जाती थी कि दिल्ली में ज़रा ढंग से रहना। ठीक से पहिरना-ओढ़ना, अगल-बगल की रित्रियों से मेल-मिलाप बना लेना और ‘ये’ जब काम पर गए हों तो भीतर से सिकड़ी लगा कर घर में रहना, आवाज पहचान कर ही किवाड़ खोलना, लुग्गा (साड़ी) हमेशा उल्टा पल्ला डाल कर पहिरना, कंधी-चोटी रोज़ करना, जैसे ‘ये’ अंग्रेजी बोलते हैं वैसे ही तुम भी बोलना, ज्यादा घूमाना-फिरना नहीं, पैसा बचाने की कोशिश करना.....आदि।” (बिस्मिल्लाह 82)

माँ को चिन्ता है कि देहाती गाँव में पली-बढ़ी मेरी बेटी दिल्ली जैसे बड़े शहर में कैसे रहेगी? उसको दिल्ली जैसे और समाज में लोगों से मेल-मिलाप जैसे तौर तरीके से रहने की जानकारी देना अपनी बेटी के प्रति प्यार का इज़हार है ताकि उसकी बेटी को आगे जाकर किसी किस्म की कोई तकलीफ न हो।

लेखक अब्दुल बिस्मिल्लाह की ‘ताकि सनद रहे’ नामक कहानी संग्रह में से ‘कागज़ के कारतूस’ नामक कहानी में से भी इसी प्रकार की परिस्थिति का वर्णन किया है।

“दादी मुँह अँधेरे ही चीखना शुरू कर देती है।

“नज्मा! अरी ओ नज्मा! फातमा! अरी ओ फातमा! अब उठोगी कि दस बजे तक रजाई में ही दुबकी रहोगी! अजान भयो कित्ती देर हो गई। चलो उठो जल्दी! आज काम नहीं पीटना है का? करो खूब लापरवाही हमें का करना है। खसम के हियॉ से जब निकाली जाओगी तब पता चलेगा। भोग रही है न आखिर बिट्टन! देख-सुनकर भी इन्हें शर्मनहीं आती! अरी ओ नज्मा! फातम!” (बिस्मिल्लाह 42)

अकसर समाज में यह भी देखा गया है कि घर का सारा काम, घर की देखभाल उसकी जिम्मेदारी औरत के सिवा कोई नहीं समझ सकता। औरत ही सबसे अच्छे से घर का संचालन कर सकती है। लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह अपने कहानी संग्रह 'ताकि सनद रहे' की 'कागज़ के कारतूस' नामक कहानी में इस प्रकार का प्रसंग अच्छे से प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी में घर का मालिक तो लीडरी में पड़ गया है। उसकी तीन जवान बेटियाँ हैं। बेटा अवारा रहता है। किन्तु उसे राजनीति का ऐसा चस्का पड़ा है कि उसे घर की कोई फिक्र नहीं है। उसे समय घर की औरत ही अपने घर के बारे, अपने परिवार के बारे में चिंतित होती है।

“लेकिन वे जानती हैं कि पाँच-छह आदमियों का पेट इसी से चलना है। अब्बा मियाँ तो बगैर नौकरी तलाशे रहेंगे नहीं ! कई बार बीवी ने समझाया कि दुनिया का चक्कर छोड़ो और अपना धंधा करो। उसी में लड़के को भी लगा लो और दामाद को भी। लेकिन वसीउल्ला ख़ाँ बिगड़ गये, “तुमसे किसने कहा कि मुझे नसीहत दो? मैं चलूँगा दुकानदारी करने अब?” (बिरिमल्लाह 44)

अन्तिम वाक्य खुद ही बयान कर रहा है कि घर के मालिक को घर की कोई चिन्ता नहीं है। बार-बार पत्नी ही उसे समझाती है। कि घर के बारे में कुछ सोचो।

इस कहानी में ही घर की दादी भी अपने पोते-पोतियों की हरकतों से परेशान है। दरअसल वह चिंतित है कि लड़कियाँ जवान हो रही हैं और काम में ध्यान नहीं लगाती हैं। अगले घर जाकर क्या करेंगे? मन ही मन अपनी बहू की हरकतों पर भी चिंतित होती है।

“नज्मा और फातमा शायद फिर हँस रही हैं। छत पर खट खट खट का बन्द हो जाना इस बात का सबूत है। लड़कियों की यह हरकत दादी को बहुत खराब लगती है और अपनी ताजा बनी हुई आँख की पट्टी ठीक करती हुई वे खड़ी हो जाती है। हालाँकि सीढ़ियाँ वे नहीं चढ़ पाती पर सीढ़ियों के पास पहुँचकर चीख तो सकती ही हैं लेकिन वे देखती हैं कि

लड़कियाँ नीचे उतर रही हैं। पीछे-पीछे बहू भी उतर रही है। वे बाहर जा रही हैं। दादी रुक जाती हैं। मन-ही-मन भुनभुनाती हैं, “इस डायिन ने मेरे लड़के को भी खराब किया और अब लड़कियों को खराब कर रही है। या गौस पाक! तू ही आबरू रखियो!” और वे अपनी जगह आकर बैठ जाती है।” (बिरिमल्लाह 46)

तात्पर्य यह कि चाहे पत्नी हो, बहू हो, बहन हो, दादी हो कोई भी हो। घर की देखभाल के लिए, बच्चों की देखभाल के लिए उनके जीवन के प्रति चिंतित होने के लिए औरत ही जिम्मेदार रही है।

आक्रोश: -

मानवीय व्यवहार में ‘उपाहं’ एक ऐसा पहलू है जिसके भारी होने पर मनुष्य वास्तविकता से हट जाता है। वह एक प्रकार से असामान्य व्यवहार करने लगता है। दूसरे शब्दों में कहें तो उस व्यक्ति का अहं से कंट्रोल हट जाता है जो असलियत में वास्तविकता का आधार बिन्दु है। जैविकीय दृष्टि से देखें तो ज्ञात होता है कि यह सब संवेगों की गड़बड़ी का नतीजा है। इस संबंध में निर्मला शेरजंग अपनी किताब ‘मनोविज्ञान’ में कहते हैं कि

“संवेग के उत्तेजित होने पर व्यक्ति भावाविष्ट हो जाता है, जिससे उसकी विचार और तर्कशक्ति बहुत कुछ शिथिल हो जाती है। व्यक्ति की भवात्मक मानसिक स्थिति में इतनी उथल-पुथल मच जाती है कि उसे अपनी इच्छा का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं रह पाता। उसकी शारीरिक अवस्था में भी इतना परिवर्तन आ जाता है कि दूसरे व्यक्ति को दूर से ही उसके संवेग का अनुमान हो जाता है। कुछ व्यक्ति के बाह्य व्यवहार से हम कह सकते हैं कि उसके क्रोध का आवेग कैसा है। इसी प्रकार भयभीत व्यक्ति के संवेग को भी जानने में भी कोई कठिनाई नहीं होती। प्रत्येक संवेग की शारीरिक अवस्था दूसरे संवेगों से प्रायः इतनी भिन्न रहती है कि कुछ मनोवैज्ञानिकों का तो यह मत है कि शारीरिक अवस्था द्वारा संवेग का ठीक-ठीक अध्ययन किया जा सकता है।” (शेरजंग 244)

लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह के कहानी संग्रह 'रफ रफ मेल' में 'गृह प्रवेश' नामक कहानी में पति-पत्नी की नोक-झोंक में से इसी प्रकार की प्रवृत्ति नजर आती है जो समझदार दिखने वाले व्यक्तियों को भी बच्चों की तरह लड़ने पर मजबूर कर देती है।

“दो कमरों वाले उस फ्लैट का एक कमरा भोजन के कड़ाहों से भरा हुआ था। पूड़ियाँ, कचौड़ियाँ, लड्डू, रायता, कटी हुई कच्ची तरकारी.....त्रिपाठी जी कड़ाहों के पास उकड़ूँ बैठ गए और चुपचाप उन्हें निहारने लगे।

“हो गई न साध पूरी ?”

पत्नी भुनभुनाई तो त्रिपाठी जी का पारा गर्म हुआ, मगर वे ख्रामोश रहे। उन्होंने अपनी आवाज को मुलायम बनाया और बोले:

“विनोद जी की पत्नी को बुलाकर नीचे-ऊपर के घरों में भिजवा दो सारा भोजन।”

“मैंने पहले ही भिजवा दिया है। क्या अब दुबारा भिजवाऊँ ?”

पत्नी फिर भुनभुनाई।

“सबके यहाँ ?”

“हाँ, सबके यहाँ ?”

“कोहली और राधे बाबू के यहाँ भिजवाया है ?”

पत्नी चुप।

“बोलती क्यों नहीं ?”

“नहीं, वहाँ भूल गई मैं।” (बिरिस्मल्लाह 70)

वार्तालाप में झुंझलाहट इस बात की ओर संकेत करती है कि पत्नी नाराज़ हैं। क्यों? क्योंकि पति द्वारा उसका कहना नहीं माना गया और पति का काम खराब हो गया। अब पत्नी को मौका मिल गया। अपनी समझदारी व सामाजिक वास्तविकता को दरकिनार कर वह बच्चों की तरह उनसे अपने पर

भारी पड़ रहे उपाहं के नतीजे को प्रस्तुत कर रही है। कहने का भाव यह कि मानवीय जीवन में मनोवैज्ञानिक स्तर के जो पहलू हैं। वह किसी न किसी रूप में मानवीय व्यवहार में अपना योगदान जरूर डालते हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जब मानवीय शारीरिक वृद्धि और विकास पर बात की जाती है तो शारीरिक रूप में जो बढ़ोतरी होती है उसे वृद्धि कहा जाता है और मानसिक रूप में जो बढ़ोतरी होती है उसे विकास कहा जाता है। दोनों में यदि कोई मुख्य रूप से अंतर निकाला जा सकता है तो वह यह है कि इस संबंध में डॉ. महावीर प्रसाद अपनी किताब 'शिक्षा मनोविज्ञान' में कहते हैं कि "अभिवृद्धि केवल धनात्मक दिशा में होती है। विकास धनात्मक और ऋणात्मक दोनों ही दिशाओं में होता है।" (प्रसाद 79) तात्पर्य यह कि यदि व्यक्ति का कद पाँच फीट का हो चुका है तो वह उससे ज्यादा बढ़ तो सकता है। किन्तु कम नहीं हो सकता। यह अभिवृद्धि का लक्षण अथवा विशेषता है। जबकि छोटी उम्र में बच्चा भी समझदारी की बातें कर सकता है और बड़ी उम्र में भी व्यक्ति बच्चों जैसी हरकतें कर सकता है। यह विकास की प्रवृत्ति अथवा गुण है। बिलकुल यही धारणा 'गृह प्रवेश' नामक कहानी में पति पत्नी की लड़ाई में नज़र आती है जो कि विकास का ऋणात्मक पहलू है। इसका दूसरा कारण यह भी है कि जब व्यक्ति का अहं जिसका पूर्णतः संबंध वास्तविकता से है, अपना कार्य ठीक से नहीं करता है तो दिखने में समझदार व्यक्ति भी बच्चों जैसी हरकतें करने लगता है। "यह क्या कर रहे हो ? तुम पागल तो नहीं हो गए हो ? दाना है इसमें पैसा लगा है—खून-पसीने का।"

पत्नी चीखने लगी।" (बिस्मिल्लाह 73) अपने पति को पागल कहना, गुस्से में चीखना जैसी हरकतें स्त्रियों का 'अहं' पर कंट्रोल न होना बताता है। जिसका कि स्त्रियाँ अक्सर ज्यादा शिकार होती हैं। अपनी एक 'नायिका' कहानी में भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति से जूझ रही स्त्री का वर्णन लेखक ने किया है। "गोविंद प्रसाद जी से उसका यह रूप देखते नहीं बना और वे ममतालू हो उठे। बोले-

"लगता है आप किसी परेशानी में हैं!"

स्त्री चौकी। वह नागिन की तरह पलटी और तड़प उठी—

“आपसे मतलब ?”

“अरे भाई आप गुस्सा क्यों होती हैं ? मुझे लगा कि आप परेशान हैं, इसलिए पूछा। क्या कोई गुनाह किया?” (बिरिमल्लाह 75) इस प्रकार के अधीरता भरे व्यवहार के संबंध में इलाचन्द्र जोशी जी अपनी किताब ‘दैनिक जीवन और मनोविज्ञान’में कहते हैं कि “इच्छापूर्ति में स्वाभाविक बाधा प्राप्त होने के कारण उसके भीतर द्वन्द्व और विद्रोह चलता है। अपनी इसी असमर्थता और अपूर्णता के कारण उत्पन्न हुई क्षति का पूर्ण किसी-न-किसी रूप में करने के लिए वह अधीर हो उठता है।” (जोशी 02) लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह अपनी कहानी संग्रह ‘शादी का जोकर’ में इसी अधीरता के संबंध में कहते हैं कि

“यह कहते हुए मैं बाहर निकल आया। पीछे-पीछे बीवी भी आ गई। लेकिन उनका गुस्सा थमा नहीं था। जैसे ही राजू असलम और जुबेदा के साथ बाहर निकला वे बरस पड़ीं।

“आप उसे ऐसे ही शह देंगे तो देखते रहिएगा एक रोज़ वह सर पर चढ़कर बोलेगा। अगर कोई सुन लेता तो? आपको तो उसने अच्छा-ख़ासा हज्जाम बना दिया।” (बिरिमल्लाह 83)

कहने का भाव यह कि मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यदि इस प्रकार के प्रसंग को देखा जाए तो सारांश यही निकलता है कि किसी भी व्यक्ति की जब कोई भी दबी हुई इच्छा पुरी नहीं होती तो वह स्वयं को असहज महसूस करता है। उस असहजता से उसके व्यवहार में नकारात्मक दृष्टिकोण पैदा होता है जिससे हमें उसके व्यवहार में असामान्यता के लक्षण नज़र आते हैं।

वहम से खत्म होता विवेक: -

यह मानवीय व्यवहार का एक ऐसा पहलू है जिस पर स्त्रियों की तरफ से बहुत कम ही काबु पाया जा सका है और इसकी मात्रा इसमें बहुत ही तादात में पायी जाती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह एक प्रकार का विकार है।

समाज में लगभग प्रत्येक व्यक्ति इससे पीड़ित है। जिससे व्यक्ति स्वयं को कहीं न कहीं असाहय एवं हीन महसूस करता है। इलाचन्द्र जोशी जी अपनी किताब 'दैनिक जीवन और मनोविज्ञान' में इस संबंध में कहते हैं कि

“व्यक्तिगत हीनता और असमर्थता की यह भावना किसी हद तक प्रत्येक मनुष्य में वर्तमान रहती है। पर कुछ विशेष प्रकार के व्यक्तियों में यह अत्यधिक मात्रा में बढ़ी हुई पायी जाती है। किसी किसी व्यक्ति को तो अपनी असाहाय्यता की यह अनुभूति भूत की तरह धर दबाती है और उसे प्रतिपल पीड़ित करते हुए जीवन भर उसका पिंड छोड़ने के लक्षण नहीं दिखाती। ऐसे व्यक्ति को सारा संसार अपना शत्रु जान पड़ता है और वह समाज और संसार से धीरे-धीरे अपनी आत्मा का संबंध छिन्न करता चला जाता है। पग-पग में झिझक, बात-बात में आशंका, अकारण भय और अनावश्यक चिन्ताओं से उसका मन भ्रमित होता चला जाता है।” (जोशी 07)

दरअसल यह एक प्रकार मानसिक डर होता है जो किसी न किसी विगत घटित दुर्घटनाओं एवं घटनाओं के परिणाम स्वरूप हमारे समक्ष उपस्थित होता है और भावी नकारात्मक परिणामों के बारे में अवगत करवाता है और यह हमारे मन में इस प्रकार चेतनावस्था में स्थापित हो जाता है कि व्यक्ति स्वयं को उससे बाहर ही नहीं निकाल पाता और व्यक्ति उस कार्य को करने से डरता है। अब्दुल बिरिस्मल्ला अपने कहानी संग्रह 'रफ रफ मेल' में 'नायिका' कहानी में मुख्य किरदार निभा रही लड़की की भी यही मानसिक स्थिति है। एक तो वह काम घर से बाहर करती है और दूसरा आटो-रिक्शा वाले से डरती है।

“आपको बस का पता नहीं तो स्कूटर क्यों नहीं ले लेती ?”

“स्कूटर वाले बहुत बदमाश होते हैं। ये रास्ते में कुछ भी कर सकते हैं। उनका कोई भरोसा नहीं। रात का वक्त है।” (बिरिस्मल्लाह 77) इसी कहानी में से एक अन्यउदाहरण के अनुसार भी उस स्त्री की वही समस्या है।

“यह कौन आदमी था जो आपसे बातें कर रहा था ?” गोविंद प्रसाद जी ने चलते-चलते फिर एक सवाल किया।

हमारे साथ ही काम करता है, पर अच्छा आदमी नहीं हैं। कह रहा था, मेरे घर चली चलो।”

“आपने उससे यह क्यों नहीं कहा कि मुझे मेरे घर छोड़ दो।”

”मैं उसके साथ जाना ही नहीं चाहती थी—कहीं भी। उस आदमी का कोई भरोसा नहीं।” (बिस्मिल्लाह 78)

इस प्रकार का मानसिक डर वास्तविकता से बहुत दूर होता है। ऐसे लोग किसी एक व्यक्ति अथवा किसी एक घटना से उसे सभी जगह के लिए प्रासंगिक मानते हैं और दूसरों के प्रति वैरभाव रखते हुए स्वयं भी बेचैन, चिंतित एवं असहाय महसूस करते हैं। इसी प्रकार की एक परिस्थिति ‘महामारी’ नामक कहानी में लेखक ने बारखूबी व्यक्त की है।

“यह सुनना था कि हमारी नायिका ने तत्काल अपना इरादा बदल दिया और बोली, “देखो जी, माँ मरे या बाप, हम न तो खुद जाएँगी और न आपको जाने दूँगी। हम अपना सुहाग तो न लुटने देंगे। लगता है, शनि ग्रह का प्रकोप भयंकर हो उठा है। आप अपने परिवार की सोचो। किसी पंडित को बुलाकर यज्ञ का प्रबंध कराओ।” (बिस्मिल्लाह 78)

ऐसी परिस्थितियाँ बताती हैं कि स्त्रियों का मन इस संबंध में उनके स्वयं के काबू में भी नहीं रहता। किसी की सुनी सुनायी बातों को इस प्रकार गाँठ बाँध लेती हैं कि पूर्णतः वास्तविकता से दूर हो जाती हैं। और बाद में पछतावे के अलावा उनके पास कुछ नहीं होता।

बेबसी से नरक बनती जिन्दगी: -

सहनशीलता और बेबसी दोनों शब्द सुनने में बेहद करीब लगते हैं किन्तु दोनों में बहुत ज्यादा अंतर है। ‘सहनशीलता’ मानवीय जीवन की सूझ की ओर जाने वाली भावनाओं की निशानी है। यह मानवीय व्यवहार में दृढ़ता

लाती है जबकि बेबसी एक प्रकार का सहनशीलता की मजबूरीवश दयनीय स्थिति है जिस पर व्यक्ति को कोई भी काबू नहीं रहता है। वह उस व्यवहार को अपने अनुसार क्रियान्वित नहीं कर सकता। वह उसे करने में अपनी इच्छा के विपरीत बाध्य हो जाता है। अपने कथा साहित्य में लेखक ने स्त्री जाति की यह दशा बाखूबी ही दिखाई है। जैसे तो सारी उम्र हालातों से लड़ती रहती है। जहाँ तक संभव हो सके अपने परिवार को तथा घर को चलाने हेतु हर संभव प्रयास एवं प्रयत्न करती है। किन्तु जब हालात काबू में न रहे तो बहुत बार बेबस सी भी नजर आती है जिससे उसका मानसिक स्तर कुछ बिगड़ जाता है और वह अपने बच्चों व अन्य पारिवारिक सदस्यों से लड़ती हुई नजर आती है। अपने कहानी संग्रह 'ताकि सनद रहे' में 'कागज़ के कारतूस' नामक कहानी में इसी प्रकार की बेबसी का आलम दिखाया गया है।

“अम्मा, हम क्या पहनेंगे? ईद वाला जोड़ा तो एकदम पुराना हो गया है। और दुपट्टा भी पुराना हो गया है”

नज्मा और फातमा एक ही साथ अम्माँ की योजना पर प्रहार करती हैं तो वे तिलमिला उठती हैं। “यह सवाल अपने बाप से क्यों नहीं करती। जो मुल्क के नेता बने घूमते हैं मैं क्या बताऊँ ? यहाँ रस्म पूरी करने के लाले पड़े हैं और तुम लोग हो कि अपने ही फैशन की फिक्र में घुली जा रही हो!”
(बिस्मिल्लाह 46)

लेखक जैसा कि विगत भी वर्णित है कि मुस्लिम समाज से संबंधित है, उनका सम्पूर्ण साहित्य हिन्दू और मुस्लिम समाज के आपसी अंतर्द्वन्द्व का ही सूचक है। जिस कारण उन सभी रचनाओं में प्रस्तुत पात्र उनकी रचनाओं के सामाजिक वातावरण के प्रत्येक पहलू से प्रभावित हुए हैं। उसमें नारी जाति जैसा कि मुस्लिम समाज में रिवाज है कि पुरुष तीन अथवा चार शादियाँ करने को स्वतंत्र है। बदलते सामाजिक वातावरणिक संदर्भ में यह रिवाज मुस्लिम समाज के लिए एक मुसीबत बना हुआ है खास तौर पर महिलाओं के लिए। और जहाँ पर शोहर गरीब है अथवा सामाजिक हालात उनके अनुकूल नहीं है तो यह स्थिति और भी ज्यादा संगीन हो जाती है। लेखक ने भी

अपनी रचनाओं में विभिन्न स्थानों पर ऐसी कितनी ही परिस्थितियों का वर्णन किया है। इस संबंध में राधादेवी गोयनका अपनी किताब 'नारी समस्या' में कहती हैं कि

“इस देश में स्त्रियों को तलाक देने का और पुनर्विवाह करने का न सामाजिक अधिकार है और न कानून ही। पुरुष पत्नी की चाहे उपेक्षा करे, चाहे उसे त्याग दे, पर पत्नी कुछ नहीं कर सकती। पुरुष पत्नी के जीते जी चाहे जितनी शादियाँ कर ले, समाज में निन्द्य नहीं माना जाता क्योंकि हमारे देश के राजा ही ऐसा करते आये हैं तो फिर प्रजा करे तो दोष क्या?” (गोयनका 27)

कहने का भाव यह कि समाज में प्रत्येक मनुष्य पदार्थवादी बनता जा रहा है। जिस किसी को भी किसी भी प्रकार का अवसर प्राप्त होता है। वह उसका पूरा फायदा उठाता है। लेखिका ने इस प्रसंग में प्रबंधकीय प्रणाली अथवा सरकार को भी इस सामाजिक विकृति के लिए जिम्मेदार ठहराया है क्योंकि किसी भी विकृति को काबू करने वाला भाग जब खुद ही उसे बिगाड़ने में लगा है तो सामाजिक विकृति अथवा उससे पीड़ित मानव का तो कोई दोष ही नहीं है।

मुख्य रूप से कहें तो यह बात पुर्णतः सही साबित होती है कि साहित्य ने इस पर अपनी विशेष भूमिका अदा की है। लेखिका के इस प्रसंग से कहीं न कहीं समाज के ठेकेदारों को चोट तो अवश्य पहुँचती है। यदि इसके साथ अन्य साहित्यकार, लेखक, विद्वान सभी ऐसी ही चोट करने लगे तो समाज का स्वरूप ही बदल जाएगा।

सारांश: -

सम्पूर्ण समाज में सदा से ही स्त्रियों के संबंध में विभिन्न ग्रंथों में, साहित्य में, व्यावहारिक जीवन में समय-समय पर विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। यही हाल उनकी दशा का भी रहा है। वैसे तो शिक्षा का कोई एक उद्देश्य अथवा मकसद नहीं होता है। जैसे-जैसे समाज बदलता रहता है; परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। उसी के अंतर्गत ही शिक्षा के उद्देश्य भी

बदलते रहते हैं। किन्तु फिर भी कुछ उद्देश्य शाश्वत होते हैं तो सदा ही कायम रहते हैं। किसी पर भी अत्याचार करना किसी भी शिक्षा का उद्देश्य नहीं रहा है। हाँ अपने दुश्मनों के प्रति आक्रामक व्यवहार अपनाना किसी पर अत्याचार नहीं होता। किन्तु समझ से परे है कि आदिकाल से ही स्त्री को निचले स्तर पर ही क्यों रखा गया है। भारत की आज़ादी से पहले तो यह दशा और भी संगीन और गमगीन रही है। उसे केवल एक पदार्थ के समान ही समझा जाता रहा था। इस्तेमाल किया और फेंक दिया। राजाओं-महाराजाओं के समय भी जैसा कि हम पुरातन कहानियों अथवा प्रसंगों में सुनते आ रहे हैं, ऐसा ही होता आया है। स्त्रियों की दशा केवल जानवरों की समान ही रही जिसे केवल उपभोग के लिए ही इस्तेमाल किया जाता था। मुस्लिम समाज में तो इसकी हालात और भी समस्याओं से भरपूर रही है। जैसा कि लेखक अब्दुल विस्मिल्लाह के कथा-साहित्य के अध्ययन से यह पता चलता है कि उनके स्वयं के मुस्लिम धर्म के होने के कारण उन्होंने इस हालात को बहुत ही नज़दीक से देखा और उस पर कलम चलाई। उन्होंने जिस प्रकार की कहानियों एवं उपन्यासों में औरत की सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण के अंतर्गत उसका चित्रण किया है। उससे तो स्पष्ट रूप से यह ज्ञात होता है कि मुस्लिम धर्म में औरत का जीवन समस्यामूलक का पर्याय ही रहा है। बाकी जगहों पर भी कदाचित् यही हालात रहे हैं। हाँ उस स्थान पर कुछ राहत जैसे हालात देखे जा सकते हैं जहाँ समाज के दिमाग में से धार्मिक कट्टरता निकल चुकी है। कहने का भाव यह कि समाज में किसी भी प्रकार की कट्टरता पुर्ण रूप से मानव जाति के लिए नुकसानदेय ही रही है।

प्रकृति के नियम सदा ही लेने और देने की प्रवृत्ति पर अमादा रहे हैं। हमें कुदरत से कुछ चाहिए तो हमें उसे कुछ देना भी पड़ेगा। यही नियम समाज पर भी लागू होते हैं। यदि हम किसी की मुसीबत के समय मदद करेंगे तो हमारे बुरे समय में भी वह हमारी मदद के लिए आएगा। यदि हम अपने दिमाग में यह बात रखेंगे कि हमारी मदद के लिए तो सभी आएँ और हम किसी के भी न जाएँ तो ऐसा बहुत दिनों तक नहीं चलता। यही नियम स्त्री और मर्द के आपसी व्यवहार पर भी लागू होता है। स्त्री और मर्द संसार की

गाड़ी के दो पहलू हैं। इनमें से एक के प्रभावित होने से दूसरा भी प्रभावित होता है। और दोनों के प्रभावित होने से संसार प्रभावित होता है।

आज समाज में विभिन्न प्रकार की समस्याएँ अपना मुँह खोले खड़ी हैं। और पूरी मानव जाति उसमें अपना अस्तित्व खोती जा रही है। उसका मुख्य कारण स्त्री और मर्द के आपसी तालमेल अथवा मर्द का अपने प्रति और औरत के प्रति रवैया में जो अंतर है, उसे बरकरार रखने में है। मर्द केवल अपनी शारीरिक और मानसिक भूख की शान्ति हेतु स्त्री को केवल साधन मात्र मानता है और अप्रत्यक्ष रूप से दुख पाता है। साथ ही स्त्री को भी दुखी करता है। आज के संसारिक समाज में ऐसा ही चल रहा है। लेखक ने इसी परिदृश्य को अपनी लेखनी के माध्यम से बड़ी स्टीकता से दृश्यमान किया है।

दूसरी स्त्री जाति के संबंध में उससे भी बड़ी समस्या वह स्वयं ही है। कहने का भाव यह कि उसका व्यवहार अन्य स्त्रियों के प्रति अपनी छोटी व बीमार सोच का सूचक है। इसका कहीं न कहीं कारण मर्द जाति द्वारा उसके उपर किए गये अत्याचार भी हो सकते हैं अथवा मर्द द्वारा किसी दूसरी औरत के लिए उसकी की गई अवहेलना भी हो सकती है। समाज में अकसर देखने सुनने में आता है कि सदैव प्रत्येक स्त्री स्वयं का दूसरी से अच्छा व बेहतर दिखने व बनने की कोशिश में रहती है। यदि वह ऐसा नहीं कर पाती है तो उसका मन खिन्न हो जाता है और उसके व्यवहार में विकृति आती है जिससे पूरा परिवार तथा समाज प्रभावित होता है।

लेखक ने अपनी रचनाओं में विभिन्न ऐसे प्रसंगों को स्थान दे स्त्री जाति के उस छिपे हुए पहलू को उजागर करने की संभावित कोशिश की है जो अकसर देखने में आती है। लेखक ने स्त्री जाति के मानसिक व्यवहार को साक्षात् प्रदर्शित करने की कोशिश की है जिसमें वह विकृतियों सहित अपना जीवन जीने को मजबूर है। लेखक ने उसके सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पहलुओं को बड़े ही अच्छे ढंग से प्रदर्शित कर अपनी परिपक्वता का पुरस्ता सबूत दिया है।

उपसंहार

शिक्षा के जितने भी पहलू हैं, सभी में मानवीय कल्याण निहित है। समाज में किसी भी तरह का समय अथवा परिस्थिति रही हो, शिक्षा ने बिना किसी भेदभाव के निरंतर एवं निर्विघ्न अपनी विशेष एवं महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। शिक्षा की इस विशेष भूमिका के पीछे भाषा का अपना एक अत्यंत सराहनीय कार्य रहा है जिसने शिक्षा में जान डालने का निश्चित रूप से एक मील पथर के रूप में कार्य किया है। निःसंदेह इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि भाषा ने ही मानवीय जीवन में पशु प्रवृत्ति को बाहर निकाल उसमें सभ्य गुणों का समावेश कराया है।

व्यक्ति की संवेदनाओं से उसकी भावनाएँ प्रभावित होती हैं और उन भावनाओं से उसके व्यवहार में परिवर्तन आता है। 'मनोविज्ञान' ने जहाँ मानवीय मन एवं उसके व्यवहार को जानने की कोशिश की तो साहित्य ने भावनाओं की अभिव्यक्ति में अपना भरपूर योगदान दिया। इसी प्रक्रिया की निरंतर एवं निर्विघ्न लड़ी ने मानवीय जीवन को समाज में प्रकृति निर्मित विभिन्न श्रेणियों में से सबसे बुद्धिमत्ता की श्रेणी में ला खड़ा किया।

साहित्य और मनोविज्ञान के आपसी संबंधों पर कार्य करना एवं उसमें से अन्य सम्भावनाएँ तलाश करना एवं भावी पीढ़ियों के लिए एक चिन्गारी पैदा करना ही हमारा ध्येय रहा। हिन्दी साहित्य में अभी तक जितना भी कार्य हुआ, उसके अध्ययन से यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि केवल साहित्य ही शिक्षा का एक ऐसा पहलू है जिसने लगभग अन्य सभी विषयों को अपनी चपेट में लिया है। मुख्य रूप से अपनी भावनाओं को शब्दों एवं वाक्यों के माध्यम से एक व्यवस्थित विधि से प्रस्तुत करना जो मानवीय कल्याण में सहायी हो, साहित्य कहलाती है। हालाँकि साहित्यकार द्वारा समाज में साक्षात् घटित हो रही घटनाओं के यथार्थ चित्रण के साथ-साथ उसमें अपनी कल्पना का भी समावेश करवाना होता है जिससे उसमें रोचकता एवं सरसता बनी रहे। ऐसा करते हुए साहित्यकार को समाज के प्रत्येक पहलू को अपनाना पड़ता है जिस कारण से सदैव ही यह कहा जाता रहा है कि साहित्य समाज की

चित्चृतियों का दर्पण होता है। इसलिए साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक बने रहते हैं।

दूसरी महत्वपूर्ण बात मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की जिसके तहत साहित्यकार उन सभी अनकही बातों को भी चित्रित कर अपनी बुद्धिमत्ता एवं कुशलता का पुख्ता सबूत देता है जिनके पढ़ने से पाठक गदगद् हो उठता है। कोई भी ऐसी रचना जो पाठकों के हृदय को भेदती हुई जाती है जिससे मुख्य रूप से सारांश यही निकलता है कि साहित्यकार मन में बसी हुई उन सभी बातों से अवगत है जो कदाचित् पाठक स्वयं भी नहीं जानता। कहने का भाव यह कि किसी के दिल की बात जिससे कदाचित् वह भी अनभिज्ञ हो, उसे किसी कविता, कहानी अथवा उपन्यास के माध्यम से उसे मिलकर उसे आत्मिक संतुष्टि दे तो ऐसी रचनाएँ सदा ही सराहनीय रहेंगी और पाठक उस रचना के करीब रहेंगे।

लेखक अब्दुल बिरिस्मल्लाह आधुनिक युग के हिन्दी साहित्य के एक अग्रणी साहित्यकार रहे हैं जिन्होंने हिन्दी साहित्य के दिग्गज रहे साहित्यकारों की लड़ी को आगे बढ़ाया। वैसे तो प्रत्येक ऐसा कोई भी लेखक अपनी किसी भी रचना की प्रसिद्धि के कारण अमर हो जाता है। किन्तु कुछ ऐसे लेखक, कवि अथवा साहित्यकार होते हैं जो सामाजिक कल्याण हेतु अपनी रचनाओं को बिना किसी यश अथवा प्रलोभन के अपना कार्य निर्विघ्न करते रहते हैं। अब्दुल बिरिस्मल्लाह हिन्दी जगत के ऐसे ही एक साहित्यकार हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में वह सभी सामाजिक पहलुओं को स्थान दिया है जिससे सम्पूर्ण मानव जाति प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपना संबंध रखती है। लम्बे समय तक निरंतर लेखनी का चलते रहना स्वयं में ही एक तपस्या बन जाती है क्योंकि यह तो एक प्रकार का प्रेरक है जो व्यक्ति को मानव कल्याण हेतु कुछ न कुछ देने को व्यक्ति को उकसाए रखता है। अब्दुल बिरिस्मल्लाह ने विभिन्न विषम परिस्थितियों में अपना जीवन बसर करते हुए अपनी लेखनी को बरकरार रखा। अप्रत्यक्ष रूप से उनके जीवन की कठिनाइयों ने उन्हें इस ओर लानाशयित किए रखा होगा। अपनी अभी तक के जीवन के सफर में

उन्होंने लगभग तीस वर्ष साहित्य की सेवा में ही गुजारे हैं। विश्वविद्यालय से सेवा निवृत्ति के पश्चात् आज भी वह इस कार्य में संलग्न हैं।

सम्पूर्ण जीवन में अभी तक के सफर में लेखक ने साहित्य की दोनों विधायों के प्रत्येक पहलू कहानी, नाटक, उपन्यास, काव्य, आलोचना इत्यादि पर अपनी कलम चलाई। उनके सम्पूर्ण साहित्य में से हमारा ध्येय उनके कथा-साहित्य में से केवल कहानी संग्रह एवं उपन्यासों पर मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अवलोकन करना था। कथा-साहित्य के इस हिस्से के गहन अध्ययन से उनके जीवन, उनकी मानसिक प्रवृत्ति एवं अन्य साहित्यिक संदर्भों के प्रति उनका जो दृष्टिकोण हमें ज्ञात हुआ उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि वह एक बहुत ही मंजे हुए मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाए हुए मानवीय मन की प्रत्येक तह का अवलोकन करने वाले प्रगतिशील एवं स्पष्टवादी साहित्यकार रहे हैं।

अब्दुल बिरिस्मल्लाह की जितनी भी रचनाएँ हैं। उनके अध्ययन एवं स्वयं उनके साथ साक्षात्कार के समय बिताये गये पलों के दौरान हुई बातों के दौरान यह निष्कर्ष निकलता है कि उनकी सभी रचनाएँ उनके जीवन का एक विशेष अंग रही हैं। उनकी प्रत्येक रचना में उनके जीवन के संघर्ष की आभा नज़र आती है। उनकी बेहतरीन एवं सामाजिक उपादेयता की दृष्टि से अत्यंत बहुमूल्य कृति 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' की यदि चर्चा की जाए तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि उन्होंने अपनी इस कृति अथवा उपन्यास में उन परिस्थितियों को वर्णित किया है जो उन्होंने अपने जीवन के साथ घटित हुए देखा। अपने साक्षात्कार के दौरान उन्होंने बताया कि इस उपन्यास को लिखने के लिए उन्हें दस साल इन्तजार किया। तात्पर्य यह कि जब वह काम के सिलसिले में बनारस रह रहे थे तो जिस मुहल्ले में वह रह रहे थे। उस गली में लगभग सभी बुनकर रहते थे जो अत्यंत गरीबी के साये में रहते हुए भी सर्रात मेहनती थे। किन्तु साहूकारों द्वारा उनका भरपूर शोषण हो रहा था। दलित होने के कारण भी यह दुख उनके भाग्य में था। लेखक ने उन लोगों के साथ रहते हुए उनके जीवन को बहुत करीब से लगभग दस वर्षों तक देखा। तब जाकर

कहीं उनके शोषण एवं दलित होने के कारण उनके दुःख के निवारण एवं समाज को उसका सही आईना दिखाने हेतु उनकी कलम उठी और बहुत ही स्टीकता के साथ एक सजीव चित्रण उन्होंने पेश किया। हालाँकि उनके इस उपन्यास ने साहित्य के क्षेत्र में बहुत प्रसिद्धि हासिल की। किन्तु उस बुनकर समाज के साहूकारों की तरफ से इस बात का बहुत विरोध भी हुआ। मारने तक की धमकियाँ भी मिली। लेखक बहुत सालों तक दुबारा बनारस जा भी न सके। किन्तु कुछ सालों बाद जब वह बनारस गये तो उनके इस उपन्यास की सामाजिक उपादेयता के कुछ लक्षण दिखाई दिये। मुस्लिम लोगों ने अब अपनी लड़कियों को पढ़ाना शुरू कर दिया था। बुनकर लोग अपने दम पर अपना खुद का कार्य करने लग गये थे। कहने का भाव यह कि लेखक ने अपने साक्षात् अनुभवों को अपनी किंचित मात्र कल्पना के आधार पर यह उपन्यास लिखा। जो मात्र मनोरंजन का साधन न बनकर एक स्पष्ट मार्ग निर्देशक बना।

उनके 'दंतकथा' उपन्यास के अध्ययन के संबंध में भी हम यही कह सकते हैं कि लेखक ने एक मनोवैज्ञानिक चिकित्सक के रूप में भी उभर कर समाज में अपना एक प्रगतिशील एवं निम्मेदार उत्तरदायित्व निभाया है। मानवीय भावनाओं को समझने के साथ-साथ उन्होंने जानवरों अथवा पक्षियों के प्रति भी अपने कोमल हृदय से उनकी भावनाओं को समझने का भरपूर प्रदर्शन किया। इस संबंध में भी वह उनके साथ हुए साक्षात्कार के समय की बातों के दौरान बताते हुए कहते हैं कि उनके पिता जी ने अपनी पास बकरी, घोड़ा, मुर्गियाँ इत्यादि काफी जानवर पाल रखे थे। जब मैं छोटा सा था तो उनके साथ खेला करता था। तब मुझे उनके व्यवहार के बारे में धीरे-धीरे जानकारी प्राप्त होने लगी कि वह किस प्रकार स्वयं अपनी दुनिया में रहते हैं और किस प्रकार हमारे वहाँ होने पर खुद को कैसा महसूस करते हैं। इस उपन्यास में उन्होंने एक मुर्गे की जुबानी उसकी भावनाओं का बड़ा ही सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्रण पेश किया है। पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि जैसा कोई मुर्गा स्वयं अपनी बात कह रहा हो। तात्पर्य यह कि लेखक ने इस उपन्यास

में भी जानवरों के साथ बिताये अपने जीवन के अनुभवों को साँझा कर अपनी विलक्षण एवं कुशाग्र बुद्धि का पुरस्ता सबूत पेश किया है।

‘समर शेष है’ नामक उपन्यास को तो लेखक की आत्मकथात्मक रचना कहें तो कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए क्योंकि इसमें लेखक ने अपनी संघर्षमयी जीवन के वृत्तांत को अपने शब्दों में पिरोया है। इतने कठिन हालात में अपना जीवन बरस करना सराहनीय कार्य के साथ-साथ दृढ़ निश्चयी संकल्प को दर्शाता है। सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से अपनी अवहेलना का दुख सहते हुए उन्होंने किस प्रकार अपनी जीवन यात्रा को इस छोर तक लेकर आए। यह सारा वृत्तांत ही इस उपन्यास का सारांश रहा है। ‘मुखड़ा क्या देखें’ नामक उपन्यास में उन्होंने शहरी व ग्रामीण लोगों की आपसी टकराती हुई विचारधारा एवं पुराने व नये जमाने के समय के अनुसार बदलते हालातों को दिखाने का भरपूर प्रयास किया है। ‘अपवित्र आख्यान’ उपन्यास में उन्होंने आधुनिक नारियों की मनोवृत्ति पर करारा व्यंग्य कसा है। कैसे कैसे मनुष्य अपना स्वार्थ सिद्ध करने हेतु किस किस प्रकार के हथकंडे अपनाता है। कैसे लोग अपने सपनों को पूरा करने के मकसद हेतु अपना सब कुछ दाँव पर लगा देते हैं। यह उपन्यास भारतीय संस्कृति के मुँह पर एक करारे तमाचे के रूप में पड़ा हुआ विदित होता है जो सभी नैतिक मूल्यों एवं परम्पराओं को तोड़ता हुआ केवल हवस एवं खोखली शोहरत पाने को आतुर होता जा रहा है। इसी प्रकार ‘जहरबाद’ उपन्यास भी सामाजिक विषमता के साथ-साथ गरीबी, शोषण, दलित एवं बेरोजगारी की ओर इंगित करता हुआ समाज का असली चेहरा दिखाने को प्रयास करता हुआ दिखाई देता है।

उनके सन् 2010 में प्रकाशित हुए नये उपन्यास ‘रावी लिखता है’ में लेखक ने भारतीय संस्कृति एवं पाश्चात्य संस्कृति को दिखाने का भरपूर प्रयास किया है। लेखक के जीवन विकास की यात्रा पर दृष्टिपात करें तो यह देखने में आता है कि भारत में कार्य करते हुए जब लेखक को विदेश जाने का अवसर प्राप्त हुआ तो उन्होंने जो तीन-चार वर्ष जो बाहर बिताये यह उपन्यास उसका ही सारांश है। भारतीय संस्कृति में पलने बढ़ने के पश्चात् व्यक्ति विदेश

में जाकर बस जाता है और उसके बच्चों का जन्म विदेश में होता है तो वह बच्चे वहाँ की संस्कृति में पलते बढ़ते हैं और उसी के अनुसार ही अपना कार्य-व्यवहार करते हैं तो पिता का बुरा लगता है। वह अपनी भारतीय संस्कृति को अच्छा मानता है और बच्चों को भी उसी की राह पकड़ने को कहता है। किन्तु बच्चे इस बात से स्वैर अपना मत भिन्न रखते हैं। इस प्रकार इस उपन्यास में भारतीय व पाश्चात्य संस्कृति व बच्चों के रहन-सहन का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है। तात्पर्य यह कि यह उपन्यास भी लेखक के जीवन में भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृतियों के दौरान घटित घटनाओं का ही सारांश है।

इसी प्रकार यदि हम लेखक के कहानी संग्रह की बात करें तो उनमें भी विभिन्नता नज़र आती है जो सामाजिक यथार्थ के वर्णन के साथ-साथ मनोवैज्ञानिकता का पुट लिये हुए चलती है। लेखक के 'रैनबसेरा', 'कितने-कितने सवाल', 'टूटा हुआ पंख', 'ज़ीनिया के फूल', 'शादी का जोकर', 'अतिथि देवो भव', 'रफ रफ मेल' इत्यादि कहानी संग्रह में जिन्दगी की विभिन्न घटनाओं एवं पहलुओं को बड़ी ही स्टीकता से प्रस्तुत किया गया है। उनकी कहानियों में अमीरी गरीबी का भेद दर्शाते हुए अपने अहं को बचाए रखने, खुशमिज़ाज प्रवृत्ति के व्यक्तियों के मन में भी जातिवाद का बीज, परम्परागत रूढ़ियों को निभाने का जज़्बा, लालच के लिए कुछ भी करने अथवा किसी भी हद तक गिरने का जन्म, बेवजह किसी भी व्यक्ति से तालमेल बढ़ाने वाले असाधारण किसम के व्यक्तियों का जन्म, निहायत ही गरीबी के बावजूद भी साहूकारों द्वारा उनका शोषण, औरतों के विभिन्न प्रकार के रूप, उनकी विभिन्न मनोवृत्ति के आधार पर उनका व्यवहार, धर्म के नाम पर आडम्बर, सामाजिक हिंसा, साम्प्रदायिकता, भीड़ इत्यादि जैसे आडम्बर के साथ-साथ भोले भाले एवं अत्यंत गरीब लोगों को अमीरों एवं चालाक लोगों द्वारा ठगे जाने का विवरण, इकट्ठे रहने की अपेक्षा एकल परिवार की ओर अग्रसर, औरतों के बीच उनकी बीमार मानसिकता की बदौलत उनके मानसिक ढ़न्ड का बाख़ूबी चित्रण, छोटी-छोटी घटनाओं को अपनी अनपढ़ता के कारण आतंकवाद के साथ जोड़ने की घटनाएँ, गरीबों की भावनाएँ उनका मूर्खतापूर्वक

व्यवहार तथा उनका पागलपन, उनका बीती पुरानी बातों में खोए रहने जैसे विभिन्न प्रसंगों का लेखक ने अपनी सभी कहानी संग्रह में मनोवैज्ञानिकता का पुट देते हुए उसमें अपनी सुधारात्मक प्रवृत्ति का भी समावेश किया है।

लेखक के यदि साहित्यिक दृष्टिकोण पर दृष्टिपात किया जाए तो यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि उनकी लेखनी साधारण जन के आत्मा की आवाज़ को पूर्ण राह दिखाती हुई प्रतीत होती है। उनके लेखन के लम्बे सफर के दौरान से अभी तक की वार्तालाप से यह तो स्पष्ट होता है कि जैसे-जैसे उनकी जीवन लीला में जिस किसी भी प्रकार की परिस्थितियों को भी उन्होंने अपने उपर हंडाया, उसी के आधार पर ही उन्होंने अपनी रचनाओं को अपनी साकारात्मक प्रवृत्ति के अनुसार वही रूप दिया। उनके कहानी संग्रह में जितनी भी कहानियों का वर्णन आता है। उन सभी में एक ही बात सामान्य रूप से बाहर निकलती है कि उन्होंने कहानी का कथानक एवं घटना कोई भी प्रस्तुत की हो, उनमें हिन्दू-मुस्लिम धर्म से संबंधित झगड़ों का बहुत ही सजीव चित्रण किस न किसी बहाने से दिखाया गया है। उनसे हुई वार्तालाप से दौरान जब इस विषय में बात की गई तो उन्होंने बेजिझक बताया कि हमारे देश की यह विडम्बना ही है कि यहाँ पर सरकारों की ओर से इस बिन्दु को खत्म करने की बजाए इस पर अधिक नमक छिड़का जा रहा है। उन्होंने साफ तौर पर बताया कि भारत के उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार इत्यादि मध्य भारत के प्रांतों में यह बीमारी इतनी तेजी से और कट्टरता के साथ अपने पंख फैलाए हुए बैठी है कि मैंने स्वयं इसे बहुत ही नजदीक से सहन किया है। मैं ताउम्र ऐसी साम्प्रदायिक घटनाओं को नहीं भूल सकता। मेरी लेखनी में अप्रत्यक्ष रूप से यह कहीं न कहीं अवश्य जिम्मेदार हैं। कहने का तात्पर्य यह कि स्वयं लेखक भारत में फैली सामाजिक कुरीतियों का बहुत बुरी तरह से शिकार रहे हैं जिस कारण उनके साहित्यिक दृष्टिकोण का यह भाग पूर्णतः जिम्मेदार है।

दूसरा पहलू जो उनके सम्पूर्ण कथा-साहित्य में हमें देखने को मिला कि उन्होंने गरीब, मजबूर, असहाय एवं अकेलेपन से जूझ रहे लोगों की मनोवृत्ति

को अपने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा। प्रसिद्ध मनोविज्ञानी एडलर के सिद्धांतों को उन्होंने अपनी साहित्यिक कृतियों में बाखूबी उतारा जो जीवन जीने के सिद्धांतों को अपने विशेष सिद्धांतों के माध्यम से प्रस्तुत किये थे। प्रसिद्ध मनोविज्ञानी सिगमंड फ्रायड के सिद्धांतों को भी उन्होंने अपनी कहानियों एवं उपन्यासों में जगह दी और जताया कि जीवन में 'काम-तृप्ति' का अपना एक महत्त्व होता है। लोग इसे अनैतिक मानते हैं। किन्तु यह सत्य नहीं है। समाज की मनोवैज्ञानिकता के चित्रण पर इन्होंने मैक्स वैबर, कार्ल मार्क्स एवं अन्य महत्वपूर्ण दार्शनिक एवं समाज मनोवैज्ञानिकों के विचारों एवं सिद्धांतों को बाखूबी चित्रण करने का प्रयास किया।

लेखक भारतीय आज़ादी के दो वर्ष बाद के अपने जन्म से लेकर आज तक के अपने जीवन के सफर में विभिन्न हालात एवं परिस्थितियों को सहन एवं देख चुके हैं। उनकी पहले कहानी संग्रह 'कितने-कितने सवाल' के प्रकाशन वर्ष 1984 से लेकर सन् 2010 में प्रकाशित उपन्यास 'रावी लिखता है' तक के सफर में उनकी लेखनी में भी विविधता पाई जाती है। गाँव के निहायत ही गरीब तबके के गरीब अनपढ़, गँवार मजदूर से लेकर विदेश में बस रहे लोगों की सांस्कृतिक तुलना तक में उन्होंने अपनी मनोवैज्ञानिकता का पुट दिया। उन्होंने अपने 'रावी लिखता है' नामक उपन्यास में भारतीय एवं पाश्चात्य सांस्कृतिक वातावरण का बहुत ही सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। गाँवों के लोगों की निहायत ही गरीब दशा का इतने सुन्दर तरीके से विवरण किया है कि पढ़ते-पढ़ते कभी-कभी ऐसा महसूस होने लगता है कि हम कदाचित् इसी गाँव का ही एक हिस्सा हैं और इसी उपन्यास में विदेशी वातावरण का भी इतना स्टीक चित्रण किया है कि बैलगाड़ी से लेकर मेट्रो तक के यातायात के साधनों के साथ-साथ बनारस से लेकर वासा विश्वविद्यालय तक के सफर को एक ही उपन्यास में पिरो कर रख दिया है।

अपनी विभिन्न कहानियों एवं उपन्यासों में विभिन्न स्थानों पर उन्होंने ऐसे साहस का परिचय दिया जो कभी धमण्डी एवं समाज से परे अथवा समाज विरोधी होने का सबूत भी प्रस्तुत करता है। किन्तु सामाजिक सुधार हेतु उनका

सदैव यह मानना रहा कि यदि साहित्यकार ही हालात के साथ समझौता कर केवल उसके सकारात्मक यथार्थ का ही चित्रण करेगा तो समाज को आईना कौन दिखाएगा? उन्होंने समाज के सभी पहलुओं को इतनी स्टीकता से रखा है कि आलोचकों को वह कभी-कभी समाज हितैषी नजर नहीं आए। किन्तु उनका मानना था कि मेरी लेखनी केवल यश प्राप्ति के अंतर्गत नहीं आती और न ही मैंने यह मानकर लिखा। मैंने तो जो समाज में देखा; जिन सामाजिक कुरीतियों को अपने उपर हंडाया; जो समाज ने धर्म एवं भाषा के नाम पर मेरे उपर अत्याचार किये; सामाजिक असहनशीलता के जिस रस का मैंने पान किया; मैंने तो केवल उसका चित्रण ही किया है। और वह है भी पूर्ण सत्य। साथ ही उसमें सुधार की अपनी सकारात्मक प्रवृत्ति का समावेश भी करने की कोशिश की है जो कदाचित् किसी को अच्छी भी न लगे।

मनोविज्ञान विषय के सिद्धांतों के अनुसार जो व्यक्ति जिस किसी भी चीज़ अथवा बात से परेशानी झेलता है; असंतुष्ट रहता है। वह आगे चल कर किसी न किसी माध्यम से उसे किसी न किसी रूप में पूर्ण होने का सपना सदैव मन में लिए रहता है। ताकि उसे किसी प्रकार की मानसिक शान्ति मिल सके। कदाचित् यही बात लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह पर भी लागू होती है। उनसे हुई वार्तालाप के दौरान हुई बातों का सारांश एवं उनकी लेखनी के अध्ययन के सारांश में इसी मनोवेज्ञानिक सिद्धांत की पूर्ती होती हुई नजर आती है।

निष्कर्ष: -

निश्चित एवं निःसंकोच रूप से यह कहा जा सकता है कि लेखक अब्दुल बिरिमल्लाह आधुनिक युग के हिन्दी साहित्य की नौका को आगे बढ़ाने वाले ऐसे पतवार हैं जो अपनी सकारात्मक सोच, साहसिक एवं दृढ़ संकल्प से ओतप्रोत विचारधारा एवं निरंतर एवं निर्विघ्न लेखनी के सहारे इसे निश्चित रूप से आगे ले जाने को अमादा हैं। क्योंकि साहित्यकार तो कोमल हृदयी होता है। वह अपनी कला को भावाभिव्यक्ति के माध्यम से मानवीय कल्याण हेतु ही प्रस्तुत करता है। जो समाज में घटित हो रहा है उसी में अपनी

कल्पना का समावेश करवा एक सम्पूर्ण कृति का स्वरूप दे अपनी शैली की विभिन्नता से उसे समाज को अर्पित कर देता है। अब्दुल बिरिमल्लाह भी हिन्दी साहित्य के ऐसे ही एक बहुआयामी व्यक्तित्व के रूप में कार्य करते नज़र आते हैं जिन्होंने भारतीय समाज एवं संस्कृति के साथ-साथ विदेशी समाज एवं संस्कृति के भी हमें अपनी अमूल्य रचनाओं में दर्शन कराये। साथ ही ग़रीब व असहाय लोगों के मन में से वह सभी बातों को बाहर निकाल रखने में सहायक हुए जो कभी भी वह लोग नहीं कह पाते। लेखक की मनोवैज्ञानिक सोच से ओतप्रोत रचित रचनाओं से हिन्दी साहित्य के भण्डार में बेतहाशा वृद्धि हुई है। उनके कथा-साहित्य में लोक-कल्याण की झलक के साथ-साथ एक प्रगतिशील मनोवृत्ति भी नज़र आती है।

उद्देश्यों की पूर्ती के स्थान एवं परिस्थिति: -

शोधकार्य के प्रारम्भ में हमने इसके कुछ उद्देश्य निर्धारित किये थे जिनको आधार बना यह शोधकार्य प्रारम्भ किया गया था। विभिन्न किताबों के अध्ययन एवं महानुभावों के अनुभवों, परामर्श एवं निरीक्षणों के पश्चात् इस शोधकार्य के अंतर्गत निर्धारित किये गए उद्देश्यों की जिस प्रकार से प्राप्ति की संभावना बनी है वह निम्नलिखित है।

1. साहित्य तथा मनोविज्ञान विषयों का आपसी संबंध प्रदर्शित करना :-

सम्पूर्ण शोधकार्य में साहित्य तथा मनोविज्ञान विषयों के आपसी संबंध के प्रत्येक पहलू पर हर संभव कोशिश की गई है। दूसरे अध्याय में इस बिन्दु पर काफी चर्चा की गई है। प्रथम अध्याय से लेकर उपसंहार तक इन दोनों विषयों के कार्य क्षेत्र में विभिन्न ऐसे पहलू पाये गये हैं जिसे देखकर ऐसा लगता है कि साहित्य और मनोविज्ञान का आपस में गहरा संबंध है। मुख्य रूप से यह एक दूसरे के पूरक हैं। बिना एक दूसरे के सहयोग से कार्य करने पर दोनों की सामाजिक उपादेयता न के बराबर ही रहेगी। हिन्दी साहित्य के इन दोनों विषयों के आपसी संबंधों पर अभी तक के हुए कार्यों के आधार यह कहा जा सकता है कि समाज को उसकी बीमार मानसिकता

से निकालने हेतु व भविष्य में सही मार्गदर्शन हेतु इस पर कार्य होना वांछनीय है।

2. **लेखक के साहित्य लेखन के कालक्रमानुसार उनकी मानसिक स्थिति को स्पष्ट करना :-** लेखक का अभी तक का साहित्य लेखन का कालक्रम लगभग तीस साल का रहा है जो आज भी निरंतर जारी है। उनके कथा साहित्य के अध्ययन से उनकी मानसिकता के संबंध में तीन बातें निकल कर बाहर आई हैं। एक तो यह कि उनका जीवन काल संघर्ष भरा रहा है जिसका असर उनके साहित्य पर भी पड़ा उनके 'समर शेष है' एवं 'ज़हरबाद' उपन्यास एक प्रकार से उनकी आत्मकथात्मक रचनाएँ ही हैं। उनकी कहानियों में उनके जीवन में घटित घटनाओं के संबंध में उनके साथ हुए सामाजिक द्वेष का असर मिलता है। उनके सन् 2010 में प्रकाशित उपन्यास 'रावी लिखता है' में उनके भारतीय गाँव की गरीबी एवं परम्परागत रूढ़ियों का विदेशी चाल-चलन के साथ मुकाबले एवं अंतर की परस्पर प्रतिबद्धता को दिखाने की मानसिकता खूब झलकती है।
3. **हिन्दी साहित्य लेखकों का मनोविज्ञान से सम्बन्ध प्रदर्शित करना:-** शोधकार्य के दूसरे अध्याय में इस बात पर विशेष रूप से यह पता लगाने की कोशिश की गई है कि साहित्य के किन लेखकों ने मनोविज्ञान से अपना संबंध जोड़कर साहित्यिक रचनाएँ लिखी और निर्णायक रूप से इस तथ्य तक पहुँचे हैं कि आदिकाल से लेकर लगभग सभी साहित्यकार मनोविज्ञान विषय से संबंधित अपनी रुचि रखते हैं। हिन्दी साहित्य में तो कुछ लेखक तो मनोविज्ञानी और साहित्यकार दोनों ही रहे हैं। आज भी बहुत से साहित्यकार मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों एवं सम्प्रदायों को अपनी रचनाओं में स्थान देते हैं जिस आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी लेखकों का आदिकाल से ही साहित्य के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण रहा है जो आधुनिकता में भी बरकरार है।

4. **मनोवैज्ञानिक विचारधारा से भावी हिन्दी साहित्य लेखन की सम्भावनाओं को स्पष्ट करना:** - समाज में सभी प्राणी एक दूसरे के सहयोग से सीखते हैं। संसार में जितने भी कार्य अथवा शोधकार्य हुए हैं उन्हीं को आधार बना आगे के कार्यों की रणनीति तैयार की जाती है। आज बीमार मानसिकता से त्रस्त संसार के लिए जरूरी है कि ऐसा साहित्य रचित होना चाहिए जो इस भयानक विकृति से मानव जाति को मुक्त कर सके। यह कार्य केवल साहित्य और मनोविज्ञान के एक साथ सहयोग से ही होगा। हमारे शोध कार्य में इन दोनों विषयों के संबंध को प्रस्तुत करना भावी लेखकों एवं शोधार्थियों के लिए इसी मनोवृत्ति के अनुसार कार्य करने को तालाघित करना है। भावी लेखकों एवं शोधार्थियों का इस तरफ चलन धीरे-धीरे बढ़ रहा है। देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में शोधार्थी विगत नामी लेखकों की रचनाओं में से विभिन्न मनोवैज्ञानिक बिन्दुओं पर शोध कर रहे हैं।

5. **कथा-साहित्य में छिपे मनोवैज्ञानिक बिन्दुओं से अवगत कराना :-** मानव जाति की यह प्रवृत्ति ही रही है कि उसे जिस चीज़ की जानकारी न हो उसे झूठ ही मानता है। इस शोधकार्य में साहित्य में मनोवैज्ञानिक बिन्दुओं को बाहर निकालने में हमने प्रत्येक अध्याय में पूर्णतः कोशिश की है। मानवीय प्रवृत्ति से किसी भी प्रकार की मनोवृत्ति को हमने विभिन्न लेखकों की रचनाओं में से अपने निरीक्षकों की मदद से निकालने व प्रस्तुत करने की कोशिश की है ताकि इस बात को सत्य साबित किया जा सके कि साहित्य की प्रत्येक विधा में कहीं न कहीं किसी न किसी प्रकार से कोई न कोई मनोवैज्ञानिक बिन्दु अवश्य होता है जिसे समाज कल्याण हेतु अपनी बृद्धि एवं जानकारी के आधार पर बाहर निकालना अवश्य है। हमने लेखक की सामाजिक स्थिति एवं मानसिक स्थिति के अनुसार लिखे गये साहित्य में से संबंधित विभिन्न मनोवैज्ञानिक शाखाओं एवं उनसे संबंधित विभिन्न मनोवैज्ञानिक बिन्दुओं पर लेखक की रचनाओं से संबंधित करते हुए विस्तार से प्रत्येक पहलु पर कार्य किया है।

6. **मनोविकारों को दूर करने के साधनों को स्पष्ट करना:** - 'साहित्य' शब्द का अर्थ ही यह है कि ऐसी रचनाओं का समूह जो मौलिकता के साथ-साथ मानवीय कल्याण में सहायी हों। इस शोध कार्य में ऐसी विभिन्न उदाहरण लगभग सभी अध्यायों में प्रस्तुत की गई हैं जो लेखक ने अपनी सकारात्मक दृष्टिकोण के जरिए जताने की कोशिश की है। ऐसे विभिन्न अन्य लेखकों का वर्णन भी इस शोधकार्य के विभिन्न अध्यायों में किया गया है जिन्होंने मनोविज्ञान के सम्प्रदायों एवं प्रवृत्तियों आधार पर अपनी रचनाएँ लिखी जो उनकी बीमार मानसिकता के प्रदर्शन के साथ-साथ उनके समाधान के सुझावों पर भी चर्चा करते हैं। विभिन्न मनोवैज्ञानिक सम्प्रदायों एवं सिद्धांतों के आधार पर लेखक के साहित्य को आधार बना प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न समाधानों पर चर्चा की है जो पाठकों के विभिन्न मनोविकारों के समाधान में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सहायी होगा।

7. **भावी लेखकों एवं शोधार्थियों में मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि का बीज बोना:** - जैसा वातावरण पैदा किया जाता है; कार्य भी स्वयं उससे ही संबंधित होने लगते हैं। हमारे शोधकार्य का मुख्य उद्देश्य ही ऐसा वातावरण पैदा करना है जिससे भावी शोधार्थियों के मन में मनोग्रस्त समाज को शांत एवं संतुष्ट करने की ललक पैदा हो सके और वह लोगों के मन में छिपी बातों को बाहर निकालने वाली संभावनाएँ पैदा करने जैसी रचनाएँ रच सके। वह केवल प्रकाशित साहित्य के गहन अध्ययन में ही अपना समय न बितायें बल्कि लोगों से साक्षात् मिलकर उनकी भावनाओं, समस्याओं एवं विचारों को सुनें। वह उन सभी विचारों को भी जानने की कोशिश करें जो वह किसी कारण कह न सकते हों। लेखक द्वारा रचित साहित्य के अध्ययन के साथ-साथ उनसे विभिन्न मुद्दों पर वार्तालाप कर, उनके मन में छिपी व अप्रकाशित विभिन्न बातों का जानने एवं शोधकार्य में उन सभी वार्तालाप के अंशों को लिखने का अर्थ केवल मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि से लेखन कार्य के चलन को बढ़ावा देना है।

परिशिष्ट

लेखक अब्दुल बिरिस्मिल्लाह जी से के साथ हुई वार्तालाप के दौरान

साक्षात्कार

दिनांक-12.06.2018



हिन्दी साहित्य सम्पूर्ण भारत वर्ष के साथ-साथ विश्व का एक विशाल भारतीय सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान एवं प्रेरणादायक सामग्री का कोष रहा है। अनेक वर्षों से विभिन्न संतों, महात्माओं, फकीरों, विद्वानों, साहित्यकारों, भाषा वैज्ञानिकों, आलोचकों इत्यादि द्वारा इसमें अपना-अपना सहयोग दिया जाता

रहा है। आज भी शोधार्थियों द्वारा इसे आगे बढ़ाने का प्रयत्न निर्विघ्न जारी है। समयानुसार बदलते वातावरण एवं परिस्थितियों के अनुसार साहित्य के प्रत्येक भाग में भी बदलाव आ रहा है। मुख्यतः दो विधाओं से आज इसमें विभिन्न प्रकार से बदलाव के कारण इसके विभिन्न रूप हमारे सामने हैं।

प्रत्येक लेखक अथवा कवि की किसी भी प्रकार की कृति अथवा रचना में उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व, उसका अनुभव, उसकी मौलिकता, उसकी कल्पना का समावेश होता है। 'साहित्य' जैसा कि शाब्दिक अर्थ से ही ज्ञातव्य हो रहा है कि मानवीय कल्याण हेतु किसी के भी द्वारा लिखी गई कोई भी मौलिक रचना साहित्य के अंतर्गत आती है। इसलिए सामाजिक कल्याण के प्रति उत्तरदायित्व निभाते हुए सामाजिक परिस्थितियों के ध्यान हित लेखक का यह कर्तव्य बन जाता है कि वह सामाजिक मूल्यों के साथ-साथ नैतिकता का भी ध्यान रखते हुए अपनी रचना को जन्म दे; उसे समाज के हवाले करे। इस प्रकार के बंधन से साहित्यकार कभी भी मुक्त नहीं हो सकता। फलस्वरूप अपनी भावनाओं को भी काबू में करना पड़ता है जिससे कदाचित् वह अपने मन की टीस को शांत नहीं कर सकता। जिस कारण साक्षात्कार ही केवल एक ऐसा माध्यम शेष रह जाता है जिससे बहुधा वह अपने मन के भावों को व्यक्त कर सकता है। 'साक्षात्कार' में समाहित प्रश्नों के माध्यम से वह अपने विचार खुले मन से व्यक्त कर सकता है। उस वक्त वह रचनाओं के प्रति बनी नियमावली से कदाचित् दरकिनार हो जाता है।

'अब्दुल बिरिमल्लाह के कथा-साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' नामक शोध-कार्य के दौरान भी इसी प्रकार का विचार मन में आया कि सम्भवतः बहुत सी बातें हो सकती हैं जो कदाचित् लेखक अपनी रचनाओं में न लिख पायें हों। तो उन्हीं अनकही अथवा लेखक के अचेतन मन में छिपी बातों को बाहर निकालने की सोच के आधार पर निरीक्षक की सहायता से प्रश्नावली तैयार कर उनसे सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित मुलाकात की रूपरेखा तैयार की गई और 12.06.2018 को उनसे मुलाकात कर साहित्य के विभिन्न पहलुओं पर विचार विमर्श किया गया। जिसका उन्होंने बहुत ही स्टीकता व

निष्पक्षता से पालन करते हुए इसे पूर्ण करने में हमारा सहयोग दिया। इस कार्य के लिए हम उनके तहदिल से आभारी हैं।

उनसे हुई भेंट, मुलाकात अथवा साक्षात्कार के समय उनके विचार: -

प्रश्न: -(1) लेखन कला की लगन के पीछे किस बात, किस घटना अथवा किस प्रवृत्ति या परिस्थिति को आप सहायी अथवा जिम्मेदार मानते हैं ?

बिरिमल्लाह जी: -

लेखन कला की प्रेरणा मुझे अपने जीवन से मिली। जब मैं इंटरमीडियट का विद्यार्थी था, तभी मैंने बांग्ला भाषा के सुप्रसिद्ध कथाकार शरच्चंद्र का एक उपन्यास पढ़ा-परिणीता। उसे पढ़कर लगा कि मैं भी ऐसी प्रेम-कथा लिख सकता हूँ। और मैंने एक कहानी लिख मारी। 'वाद' शीर्षक से। मगर बाद में वह कहानी मुझे वाहियात लगी और उसे मैंने नष्ट कर दिया। मगर लेखन का सूत्रपात तो हो चुका था, अतः लेखन बंद नहीं हुआ। और जब मैं बी.ए. का विद्यार्थी था, तभी मेरी रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगी थीं। इससे मुझे लगा कि मैं लेखक बन सकता हूँ। और लगभग बन ही गया। कैसा? यह मैं नहीं कह सकता।

प्रश्न: -(2) साहित्य और मनोविज्ञान विषयों के आपसी सम्बंध में आपके क्या विचार हैं?

बिरिमल्लाह जी: -

साहित्य और मानोविज्ञान दोनों ही अन्योन्याश्रित हैं। दोनों का मेल आवश्यक है। अवश्यांभी। साहित्य और मनोविज्ञान के बीच गहरा सम्बंध है।

प्रश्न: -(3) कौन से संभावित कारण हो सकते हैं कि देवराज उपाध्याय जी के बाद लगभग छह दशकों के अन्तराल में भी हिन्दी साहित्य और मनोविज्ञान पर बहुत थोड़ा कार्य हुआ है?

बिरिमल्लाह जी: -

देवराज उपाध्याय की पुस्तक बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने साहित्य और मनोविज्ञान को लेकर काफी गम्भीर अध्ययन किया है। किन्तु यह एक ऐसा विषय है, जिस पर काम करना या लिखना आसान नहीं है। शायद इसलिए हिन्दी में अन्य कोई गम्भीर लेखक नहीं हुआ। मगर विदेशी भाषाओं में काफी कुछ लिखा गया है। दरअसल इस तरह के काम के लिए दोनों विषयों की गहरी समझ होनी चाहिए। मगर कितने लेखक होंगे, जिन्होंने मनोविज्ञान भी पढ़ा होगा? केवल फ्रायड और युंग वगैरह को पढ़ लेने का यह अर्थ नहीं है कि 'मनोविज्ञान' पढ़ लिया। इन लोगों ने 'मन' के सिर्फ एक पक्ष को समझने या समझाने का प्रयास किया है। जबकि मनोविज्ञान के अनेक पक्ष हैं। अनेक प्रकार की गुत्थियाँ हैं।

मैं यह बात शायद इसलिए कह पा रहा हूँ कि मैंने इण्टरमीडियट में मनोविज्ञान को एक विषय के रूप में पढ़ा है तथा मेरा एक मित्र जब बी.ए. में मनोविज्ञान को एक विषय के रूप में पढ़ रहा था (उन दिनों में हिन्दी साहित्य में एम.ए. कर रहा था और हम दोनों किराए के एक ही कमरे में रहते थे।) तब हमारे दरम्यान इस विषय पर बहुत बहसें होती थी।

यहाँ मैं एक रोचक घटना का जिक्र करना चाहूँगा। बी.ए. में मनोविज्ञान विषय पढ़ने वाले विद्यार्थियों की एक प्रैक्टिकल परीक्षा भी पास होनी थी, जिसके लिए प्रत्येक विद्यार्थी को अपने साथ किसी एक व्यक्ति को उस पर 'मनोवैज्ञानिक प्रयोग' करने को ले जाना पड़ता था। अतः मेरा मित्र मुझे भी 'प्रयोग' के उद्देश्य से अपने साथ ले गया। परीक्षा-स्थल पर उसने मुझे वे तमाम प्रश्न पूछे, जो उसे दिए गए थे मुझे याद है कि उस प्रैक्टिकल परीक्षा का निरीक्षण करने वाली अध्यापिका संयोग से मनोविज्ञान विभाग की ही थीं।

खैर.....

जब हमारे बीच सवाल-जवाब हो रहे थे तब वे राउण्ड लगाती हुई हमारे पास आकर खड़ी हो गई। वे थोड़ी देर तक चुपचाप खड़ी रहीं, फिर उन्होंने मेरे मित्र से पूछा, “यह लड़का कौन है?” उसने उत्तर दिया, “यह मेरे मित्र हैं और हम एक साथ रहते हैं।” तब वे मुझसे मुख्रातिब हुई। पूछा, “तुम कौन हो और यहाँ क्या कर रहे हो?” मैंने उत्तर दिया, “मैं इसका मित्र हूँ और इसी विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य में एम.ए. कर रहा हूँ।” तब मुझसे एक अन्य प्रश्न पूछा गया: “क्या तुमने बी.ए. अथवा इण्टरमीडियट में मनोविज्ञान विषय पढ़ा है?” मैंने कहा, “बी.ए.में तो नहीं, हाँ इण्टरमीडियट में पढ़ा है।”

फिर क्या था! उनका चेहरा तमतमा गया और वे मेरे मित्र पर बिफर उठीं। बोली: “क्या तुमने प्रैक्टिकल परीक्षा से संबंधित निर्देशों को पढ़ा नहीं है या फिर समझा नहीं है! उन निर्देशों में स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि अपने प्रयोग हेतु किसी ऐसे व्यक्ति को न लाया जाय जिसे मनोविज्ञान विषय की जानकारी हो। यह लड़का तो मनोविज्ञान पढ़े हुए है। इसलिए तुम्हारे प्रश्नों का वही उत्तर दे रहा है जो मनोविज्ञान के अनुसार दिए जाने चाहिए। मगर हमें ऐसे उत्तर नहीं चाहिए। तुम कल किसी दूसरे व्यक्ति को ले आओ, वरना प्रैक्टिकल परीक्षा में फेल हो जाओगे।” और उसकी परीक्षा स्थगित हो गई। वह बेचारा निराश और उदास हो गया। फिर हम दोनों उठे और परीक्षा स्थल से बाहर निकलने लगे, तभी परीक्षिका ने मुझे रोक लिया। उसे जाने दिया। मैं डरा, कि कहीं ये हिन्दी विभाग में मेरी शिकायत तो नहीं करेंगी! मगर उन्होंने अत्यंत स्नेह के साथ मुझसे पूछा, “तुमने ग्रेजुएशन में मनोविज्ञान क्यों नहीं पढ़ा?” मैंने कहा, “मैंने आपका मतलब नहीं समझा!” बोली, “मतलब यह कि इण्टरमीडियट में तो इतना सारा मनोविज्ञान पढ़ाया ही नहीं जाता, इसलिए.....” उनका वाक्य पूरा होने से पहले ही मैंने कहा, “इसलिए कि बी.ए. में प्रैक्टिकल परीक्षा की जो अतिरिक्त फीस देनी होती है, वह मैं दे नहीं सकता था।” और मैं अपनी भीगी हुई आँखों के साथ बाहर निकल गया।

प्रश्न: -(4) साहित्य मनोविज्ञान को या मनोविज्ञान साहित्य को प्रभावित करता है। इस सम्बंध में आपकी क्या राय हैं?

बिरिमल्लाह जी: -

मैंने पहले ही कह दिया है कि दोनों का सम्बंध अन्योन्याश्रित है। साहित्य मनोविज्ञान को इस तरह प्रभावित करता है कि रचनाकार जब कुछ लिखता है, तब उसके लेखन पर उसका अपना 'मनोविज्ञान' परोक्ष रूप से अपना असर डालता है। इसी प्रकार मनोविज्ञान को साहित्य अपने भीतर निहित मनश्चेतना के माध्यम से मनोविज्ञान के अध्ययन में कुछ न कुछ कड़ियाँ अवश्य जोड़ता है। उदाहरणार्थ: मेघदूत में कालीदास का अपना मनोविज्ञान तो है ही, यक्ष का भी है। रामचरितमानस में तुलसीदास के अपने मनोविज्ञान के साथ राम का मनोविज्ञान भी है और रावण का भी। छायावाद के प्रख्यात कवि जयशंकर प्रसाद के 'आँसू' में प्रसाद जी का अपना 'कल्पित प्रियतम' का अपना कल्पित मनोविज्ञान। अज्ञेय और जैनेन्द्र के साहित्य में भी तो मनोविज्ञान का ही खेल है। और आज का साहित्य? उसमें तो मनोविज्ञान ही मनोविज्ञान है। मगर, यह मेरा व्यक्तिगत विचार है (जो कि ग़लत भी हो सकता है।) कि वह एकपक्षीय मनोविज्ञान है। मात्र रचनाकार का मनोविज्ञान। उसे इससे कोई लेना-देना नहीं है कि रचना और उसमें आए हुए चरित्रों का भी कोई मनोविज्ञान होगा!

प्रश्न: -(5) यथार्थ चित्रण से मानसिकता प्रभावित होती है। आप क्या समझते हैं?

बिरिमल्लाह जी: -

यथार्थ चित्रण से मानसिकता प्रभावित होता है या नहीं, यह तो 'चित्रण' पर निर्भर करता है। मानसिकता प्रभावित हो भी सकती है और नहीं भी। वैसे मेरा यह मानना है कि मात्र यथार्थ-चित्रण से कोई साहित्यिक रचना नहीं बनती। उसमें कल्पना का समावेश होना आवश्यक है। उदाहरणार्थ: यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, तो मात्र उसकी मृत्यु और मृत्यु के कारण

को लिख देने से कोई साहित्यिक रचना नहीं बनेगी। बनेगी तब, जबकि उस मृत्यु की पूर्वापर स्थितियों को उजागर किया जाएगा, जोकि कल्पना से ही संभव हो पाएगा। और कल्पना भी मनोविज्ञान का एक अंग है।

प्रश्न: -(6) आधुनिक तकनीक साहित्य को प्रभावित कर रही है। आपकी क्या राय है?

बिरिमल्लाह जी: -

आधुनिक तकनीक साहित्य को प्रभावित नहीं, बल्कि दुष्प्रभावित कर रही है। साहित्य तकनीक नहीं है। वह एक भाव है। और भाव को तकनीक से व्यक्त नहीं किया जा सकता।

प्रश्न: -(7) विदेशों में हिन्दी भाषा और साहित्य और भारत में हिन्दी भाषा और साहित्य के आपसी अंतर को आप किस दृष्टि से देखते हैं?

बिरिमल्लाह जी: -

जहाँ तक 'हिन्दी भाषा और साहित्य' पर भारत तथा विदेश में हो रहे कार्य—अर्थात् शोधकार्य—के अंतर का प्रश्न है, तो एक प्राध्यापक होने के नाते मैं यह कह सकता हूँ कि भारत में ऐसे कार्य का स्तर बहुत नीचे चला गया है। और इसके लिए सरकार की ऊटपटाँग नीतियाँ जिम्मेदार हैं। सेवानिवृत्त होने के पश्चात् मैंने शोध-प्रबंधों के परीक्षण का काम लगभग बंद कर दिया है। मगर जब यह काम किया करता था, तो बहुत अफसोस होता था। कुछेक बार तो मैंने संशोधन के लिए शोध-प्रबंध लौटाए भी किसी शोध-प्रबंध को निरस्त भी किया और शोधार्थी ही नहीं, बल्कि उसके निर्देशक का कोपभाजन भी बना।

दरअसल दोष न तो शोधार्थी का है और न ही निर्देशक का, दोष है शोध-प्रणाली का। जहाँ तक विदेश की बात है, वहाँ स्थिति बेहतर है। यह मैं अपने अनुभव से कह रहा हूँ। क्योंकि दो वर्षों (1992-1995) तक मैं वार्सा विश्वविद्यालय, पोलैंड में विज़िटिंग प्रोफेसर रहा और दो वर्षों (2003-2005) तक मॉस्को में। मुझे वार्सा वि.वि. (पोलैंड) की एक घटना याद आ रही है, जिसे

बताना चाहता हूँ। वहाँ मेरे अलावा एक पोलिश अध्यापिका भी थीं। उन्हें अमेरीका के किसी विश्वविद्यालय में जाना था और तुलसीदास की किसी एक कृति पर व्याख्यान देना था। उन्होंने अपने व्याख्यान के लिए तुलसीदास द्वारा रचित सबसे छोटी रचना को चुना 'रामलला नहछू' यह रचना लगभग ढाई पृष्ठों की है।

एक दिन उन्होंने मुझसे निवेदन किया कि मैं। उन्हें 'रामलला नहछू' पढ़ा हूँ। यानी समझा हूँ। मैंने पूछा, 'क्या आपने इस रचना को कभी किसी भारतीय प्राध्यापक से नहीं पढ़ा या समझा है?' तो उन्होंने कहा, 'कइयों से पढ़ा है और समझने की कोशिश भी की है, मगर मैं संतुष्ट नहीं हुई।' तब अगले ही दिन मैं बैठा उन्हें पढ़ाने और समझाने। इस बात पर शायद किसी को विश्वास नहीं होगा कि उक्त छोटी सी रचना को मैंने लगातार चार दिनों तक उन्हें समझाया। तब जाकर वे संतुष्ट हुई और अपना शोधालेख तैयार किया।

यह अंतर है भारत और विदेश में हिन्दी भाषा और साहित्य पर हो रहे शोध कार्य में।

प्रश्न:- (8) लेखक होने के नाते आलोचकों को आप किस श्रेणी में रखते हैं?

बिरिमल्लाह जी:-

आलोचकों के प्रति अधिकांश लेखकों की राय कभी अच्छी नहीं रही। किन्तु मेरा विचार थोड़ा भिन्न है। आलोचक भी आखिर हैं तो मनुष्य ही। अतः जिस प्रकार प्रत्येक मनुष्य की पसंद और रुचि भिन्न-भिन्न होती है उसी प्रकार हर आलोचक की रुचि और पसंद अलग-अलग हो सकती है। आलोचकों से लेखकों की शिकायत प्रायः यही होती है कि उनके बारे में अमुक-अमुक आलोचकों ने कुछ क्यों नहीं लिखा? मगर मेरा विचार है कि रचना में यदि दम है तो वह किसी आलोचक की मोहताज नहीं रहेगी। अनेक लेखक ऐसे हुए हैं और हैं जिनके बारे में 'बड़े' माने जाने वाले लेखकों ने कुछ नहीं लिखा, मगर अपनी-अपनी रचना-शक्ति के बल पर वे पाठकों के

बीच लोकप्रिय रहे और कुछ तो अमर हो गये। सबसे बड़ा उदाहरण तो प्रेमचन्द का है। अगर कोई पूछे कि प्रेमचन्द के बारे में सर्वश्रेष्ठ न सही श्रेष्ठ आलोचनात्मक कृति कौन सी है? किस आलोचक की है? तो इसके जवाब में किस पुस्तक या किस आलोचक का नाम लिया जाएगा? संभवतः किसी का नहीं। रामविलास शर्मा ने प्रेमचन्द को मात्र छुआ भर है। बाकायदा लिखा तो उन्होंने कवि निराला पर है।

प्रश्न: -(9) साहित्य एवं साहित्यकारों के प्रति सरकार एवं सरकारी तंत्र की उदासीनता के बारे में आप क्या कहते हैं?

बिरिमल्लाह जी: -

साहित्य एवं साहित्यकारों के प्रति सरकार एवं सरकारी तंत्र का क्या रुख है, इस बारे में सोचना ही मेरे विचार में निरर्थक है। जहाँ उद्देश्य केवल सत्ता हो वहाँ साहित्य अथवा साहित्यकार की भला क्या पूछ होगी?

प्रश्न: -(10) प्रकाशित हो रहे सस्ते साहित्य एवं साहित्य में नकलीपन के बारे में आपकी क्या राय है।

बिरिमल्लाह जी: -

‘सस्ता साहित्य एवं साहित्य में नकलीपन’ जैसे विषयों पर न तो मैं कुछ सोचता और न ही ऐसी बातों में मेरी रुचि है।

प्रश्न: -(11) कम्प्यूटर, मोबाइल, टी.वी. एवं अत्याधुनिक यंत्रों की दुनिया में आप साहित्य को कहाँ रखते हैं?

बिरिमल्लाह जी: -

कम्प्यूटर, मोबाइल, टी.वी. एवं अत्याधुनिक यंत्रों की दुनिया में साहित्य को इनसे अलग रखता हूँ क्योंकि उपर्युक्त अत्याधुनिक यंत्रों में ‘सुविधाएँ’ तो हैं, मगर न तो उनके पास दिमाग है और न ही भावना। अनुभूति तो बिल्कुल भी नहीं है। जबकि साहित्य के लिए दिमाग, भावना और अनुभूति

का ही महत्त्व अधिक है। साहित्यकार इन्हीं के माध्यम से 'मनोविज्ञान' में जाता है। और मनोविज्ञान कोई मशीनी उपकरण है।

प्रश्न: -(12) साहित्य और समाज के आपसी संबंध एवं साहित्य की समाज को दिशा-निर्देश को आप किस दृष्टि से देखते हैं?

बिरिमल्लाह जी: -

साहित्य और समाज का संबंध अन्योन्याश्रित है। प्राचीन काल (जैसे वैदिक काल) का साहित्य भले ही जंगलों या कंदराओं में बैठ कर रचा गया हो, मगर आज की दुनिया में यदि समाज नहीं होगा तो साहित्य भी नहीं होगा। साहित्यकार समाज में रहकर ही तो अपना साहित्य रचता है। इसी प्रकार यदि साहित्य न होता तो समाज में जो बड़े बड़े परिवर्तन हुए हैं, वे न होते। वाल्टेयर ने तो फ्रांस के समाज को इतना झकझोरा कि वहाँ बहुत बड़ी क्रान्ति हो गई। भारतीय साहित्य ने भी ऐसा ही कार्य किया— अँग्रेजों की गुलामी से आज़ाद होने के लिए। मगर अफसोस है कि उसका श्रेय सिर्फ राजनेताओं को दिया जाता है।

जहाँ तक 'दिशा-निर्देश' का प्रश्न है, साहित्यकार कोई 'उपदेशक' नहीं है। वह अपना 'निर्देश' प्रकटतः नहीं, बल्कि प्रच्छन्न रूप में देता है और वह लक्षित नहीं होता।

प्रश्न: -(13) भावी लेखकों, साहित्यकारों एवं शोधार्थियों से आप किस प्रकार की उम्मीद रखते हैं ?

बिरिमल्लाह जी: -

फिलहाल तो कोई उम्मीद नहीं। मगर, चूँकि मैं निराशावादी नहीं हूँ, इसलिए उम्मीद है कि परिस्थितियाँ बदलेंगी।

प्रश्न: -(14) तटस्थ होकर स्वयं आप अपनी रचनाओं का स्वमूल्यांकन किस प्रकार करते हैं?

बिस्मिल्लाह जी: -

साहित्य की दृष्टि से तटस्थ होकर जब मैं अपनी रचनाओं का पढ़ता हूँ, तब वे मुझे अच्छी लगती हैं। मगर जब मैं उनका मूल्यांकन करता हूँ (हालाँकि अपनी ही रचनाओं का मूल्यांकन करना मूर्खता है।) तो मुझे अपनी हर रचना कमजोर लगती है। कभी-कभी तो यह भी लगता है कि आखिर मैं लेखक बना ही क्यों?

इसके अतिरिक्त मुझे इस पर भी आश्चर्य होता है कि मेरे साहित्य पर इतने सारे विद्यार्थी शोध क्यों कर रहे हैं ? कभी-कभी मैं झल्ला भी उठता हूँ! कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि लिखना छोड़ दूँ, मगर पता नहीं क्यों ऐसा कर नहीं पाता। कभी-कभी लगता है कि मुझे रचनारत रखने में मेरी बड़ी बेटी शीरीन बिस्मिल्लाह की बहुत बड़ी भूमिका है। क्योंकि शायद वही मेरे लेखन को महत्त्वपूर्ण समझती है। मैं अपनी सम्पूर्ण लिखित सामग्री को अपने ही विश्वविद्यालय के प्रेमचन्द संग्रहालय को देना चाहता हूँ, मगर वह इसके विरुद्ध हैं।

बहरहाल, यह तो भविष्य तय करेगा कि मेरे लेखन का कोई महत्व है भी अथवा नहीं।

प्रश्न: -(15) साहित्य की दृष्टि से आपकी रचनाओं समेत आपके जीवन की सामाजिक उपादेयता क्या रही है?

बिस्मिल्लाह जी: -

कुछ भी नहीं।

मगर एक उपादेयता देखी मैंने। बनारस में। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' के प्रकाशन के बाद बनारस में मेरा बहुत विरोध हुआ। जान से मारने तक की धमकियाँ भी मिलीं। बनारस के लोगों ने कहा कि अभी साल

दो साल तक आप बनारस मत आइए। आपकी जान को खतरा है। लेकिन जब मैं कई वर्षों बाद बनारस गया तो रास्ते में एक डिस्पेंसरी मिली, जिसके बाहर लगे बोर्ड पर एक महिला डॉक्टर की नेम-प्लेट लगी हुई थी। डॉक्टर के नाम के आगे 'अंसारी' लिखा हुआ था। अंसारी—अर्थात् बुनकर, जुलाहा। मैंने जब उसके बारे में दरयाफ्त किया तो पता चला कि वो अमुक हाजी साहब की बेटिया है। लोगों ने यह भी बताया कि, 'यह सब आपके नाँवेल का कमाल है। पहले तो सब लोग आपके दुश्मन थे, मगर बाद में उन्होंने महसूस किया कि आपने उन्हें सही राह दिखाई है। इसी का नतीजा है कि अब इस बिरादरी में लोग भी अपनी बेटियों को पढ़ाने लगे हैं। उनकी बेटियाँ इंजीनियरिंग और एम.बी.बी.एस. करने लगी हैं। ये जो डॉ. फरजाना अंसारी हैं न, यह अमुक गिरस्ता की बेटा है। वगैरह-वगैरह..... अब अगर इसे 'उपादेयता' समझा जाए तो ठीक, अन्यथा और कोई उपादेयता नहीं है।

अब्दुल बिरिस्मल्लाह

प्रो. अब्दुल बिरिस्मल्लाह

जी-28, कालिंदी व्यू अपार्टमेंट्स,

चौथा तल, फ्लैट नं. 404

शाहीन बाग,

नई दिल्ली-110025

मोब. 9811306331

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1: - मूल ग्रन्थ:

क. उपन्यास: -

बिस्मिल्लाह, अब्दुल. *अपवित्र आख्यान*. राजकमल प्रकाशन, 2008.

---. *जहरबाद*. राजकमल प्रकाशन, 1994.

---. *झीनी झीनी बीनी चदरिया*. राजकमल प्रकाशन, 1987.

---. *दंतकथा*. राजकमल प्रकाशन, 1990.

---. *मुखड़ा क्या देखें*. राजकमल प्रकाशन, 1996.

---. *रावी लिखता है*. राजकमल प्रकाशन, 2010.

---. *समर शेष है*. राजकमल प्रकाशन, 1986.

ख. कहानी संग्रह: -

बिस्मिल्लाह, अब्दुल. *अतिथि देवी भव*. राजकमल प्रकाशन, 1990.

---. *कितने कितने सवाल*. राजकमल प्रकाशन, 1984.

---. *टूटा हुआ पंख*. राजकमल प्रकाशन, 2000.

---. *जीनिया के फूल*. राजकमल प्रकाशन, 1991.

---. *रफ रफ मेल*. राजकमल प्रकाशन, 2000.

---. *रैन बसेरा*. राजकमल प्रकाशन, 2001.

---. *शादी का जोकर*, राजकमल प्रकाशन, 2013

2. सहायक ग्रन्थ:

अख्तर, डॉ. एस. संपादक. *उजाले की ओर*. केन्द्रीय मनश्चिकित्सा संस्थान,
2003-04.

अग्रवाल. डॉ. पद्मा. *मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ*. मनोविज्ञान
प्रकाशन, 1955.

---. *विकृत मनोविज्ञान की रूपरेखा*. नागरी प्रचारिणी सभा,
2006.

अग्रवाल, बिन्दु. *हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण*. प्रयाग विश्वविद्यालय, 1960.

आहूजा, डॉ. राम. *सामाजिक समस्याएं और सामाजिक परिवर्तन*. मीनाक्षी प्रकाशन, 1975.

उपाध्याय, डॉ. देवराज. *आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान*. साहित्य भवन प्रा.लिमि., 1956.

---. *जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन*. पूर्वोदय प्रकाशन, 1968.

उपपल, श्वेता. संपादक. *भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं विकास*. एन.सी.ई. आर.टी., 2017.

---. संपादक, *मनोविज्ञान*. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और परिशिक्षण परिषद्, 2007.

एस., दुधनीकर एम.. *प्रसाद साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन*. अलका प्रकाशन, 1979.

कारसन, राबर्ट सी.. *असामान्य मनोविज्ञान*. हिन्दी अनुवादक-पल्लवी भटनागर. पियर्सन एजुकेशन इनकापोरेशन, 2017.

कुलकर्णी, डॉ. राम. *मैथिलीशरण गुप्त के पात्रों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन*. सरस्वती प्रकाशन, 1987.

कोलख्यान, प्रफुल्ल. *साहित्य समाज और जनतंत्र*. आनन्द प्रकाशन, 2003.

गाँधी, महात्मा. *विवाह समस्या अर्थात् स्त्री जीवन*. सरस्वती सदन, 1934.

गुप्त गणपतिचन्द्र, *साहित्यिक निबंध*, लोकभारती प्रकाशन, 1999

गुप्त, डॉ. लालचन्द्र. *हिन्दी कहानी का इतिहास*. संजीव प्रकाशन, 1988.

गुप्ता, डॉ. महावीर प्रसाद. *शिक्षा मनोविज्ञान*. मॉडर्न पब्लिकेशन, 2008.

गोयनका, राधादेवी. *नारी समस्या*. मारवाड़ी सेवासदन, 1946.

छिल्लर, डॉ. मंजुलता. *भारतीय समाज में महिला उत्पीड़न*. अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 2010.

जयश्री, डॉ. शिंदे. *मनोविज्ञान के कटहरे में हिन्दी*. अन्नपूर्ण प्रकाशन, 1999.

जैन, डॉ. मधु. *यशपाल के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण*. अभिलाषा प्रकाशन, 1977.

जोशी, इलाचन्द्र. *दैनिक जीवन और मनोविज्ञान*. इंडियन प्रेस लिमि.

झों, गंगाधर. *आधुनिक मनोविज्ञान और हिन्दी साहित्य*. राधाकृष्ण प्रकाशन, 1977.

तिवारी, डॉ. भोलानाथ. *हिन्दी भाषा का इतिहास*. वाणी प्रकाशन, 2004.

तिवारी, बालेन्दु शेखर. *वस्तुनिष्ठ काव्यशास्त्र: सम्पूर्ण भारतीय-पाश्चात्य काव्य चिन्तन*. क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, 2009.

दामोदर, गोपाल. *अफलातून की सामाजिक व्यवस्था*. काशी विद्यापीठ, 1927.

दिनकर, रामधारी सिंह. *संस्कृति के चार अध्याय*. जनवाणी प्रिन्टर्स, 1956.

दीक्षित, डॉ. आनन्द प्रकाश. *रस सिद्धांत: स्वरूप और विश्लेषण*. राजकमल प्रकाशन.

नगेन्द्र, डॉ.. *विचार और अनुभूति*. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1965.

---. *विचार और विश्लेषण*. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1966.

पवार, डॉ. शोभा. *हिन्दी कहानी और नारी विमर्श के अहम् सवाल*. अन्नपूर्ण प्रकाशन, 2011.

पाण्डेय, रामप्रसाद. *मनोविज्ञान का इतिहास*. राजकमल प्रकाशन, 2012.

पाण्डेय, श्री जगदानन्द. *असामान्य मनोविज्ञान*. ग्रन्थमाला-कार्यालय, 1956.

पूरी, रक्षा. *प्रेमचन्द साहित्य में व्यक्ति और समाज*. आत्माराम एण्ड सन्स, 1970.

फ्रायड, सिगमंड. *सपनों का मनोविज्ञान*. अचलेश चन्द्र शर्मा. हिन्दी अनुवादक. नया साहित्य, 2014.

---. *मनोविश्लेषण*. देवेन्द्र कुमार. हिन्दी अनुवादक. राजपाल एण्ड सन्स, 2010.

भण्डारी, चन्द्रराज. *समाज विज्ञान*. सस्ता साहित्य मंडल, 1974.

भाटिया, मनजीत सिंह. *मनोरोग: गलत धारणाएँ और सही पहलू*,

भाटिया, हंस राज. *असामान्य मनोविज्ञान*. राजकमल प्रकाशन, 1959.

मधुरेश. *हिन्दी कहानी का विकास*. सुमित प्रकाशन, 1996.

मशरूवाला, किशोरलाल. *स्त्री-पुरुष मर्यादा*. नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, 1951.

महाजन, डॉ. संजीव. *भारतीय समाज*. अजुर्न पब्लिशिंग हाउस, 2004.

माथुर. *सामाजिक मनोविज्ञान*. साहित्य मन्दिर प्रेस, 1955.

मिश्र, डॉ. पी.सी.. आज का विकासात्मक मनोविज्ञान. साहित्य प्रकाशन, 2002.

मिश्र, माधवप्रसाद. सामाजिक कुरीतियाँ. सस्ता साहित्य मंडल, 1985.

मिश्रा, बृज कुमार. मानस रोग असामान्य मनोविज्ञान: एक संक्षिप्त परिचय.

पी.एच.आई.वर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, 2015.

मुकजी, रवीन्द्रनाथ. सामाजिक मनोविज्ञान की रूपरेखा. किताब महल, 1992.

यादवेन्दु, रामनारायण. भारतीय संस्कृति और नागरिक जीवन. सस्ता साहित्य मंडल, 1942.

राणा, डॉ. बलराम सिंह. उपन्यासकार जैनेन्द्र के पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन. संजय प्रकाशन, 1979.

राय, गोपाल. हिन्दी उपन्यास का इतिहास. राजकमल प्रकाशन, 2014.

---. हिन्दी कहानी का इतिहास भाग-1. राजकमल प्रकाशन, 2014.

---. हिन्दी कहानी का इतिहास भाग-2. राजकमल प्रकाशन, 2014.

वर्मा, डॉ. भगवान दास. कहानी की संवेदनशीलता: सिद्धांत और प्रयोग. 1972.

वर्मा, डॉ. श्रीमति नीलिमा. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में नारी-चरित्र की अवधारणा. युनिवर्सिटी बुक हाउस प्रा.लि.

वर्मा, रामपाल सिंह. मनोविज्ञान के संप्रदाय. विनोद पुस्तक मंदिर, 1938.

विश्वनाथ, डॉ. त्रिपाठी. कुछ कहानियाँ कुछ विचार. राजकमल प्रकाशन, 1998.

वेंकटेश्वर, डॉ. एम.. हिन्दी उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन. अन्नापूर्ण प्रकाशन.

शर्मा, आचार्य ब्रह्मनारायण. हिन्दी उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन. नवयुग ग्रन्थागार, 1960.

शर्मा, डॉ. ब्रह्मदत्त. हिन्दी कहानी विश्लेषणात्मक अध्ययन. सरस्वती पुस्तक सदन.

शर्मा, डॉ. रामनाथ. असामान्य मनोविज्ञान की रूपरेखा. केदारनाथ रामनाथ, 1980.

शर्मा, डॉ. रेखा. कमलेश्वर के उपन्यासों में मनोविज्ञान. मिलिंद प्रकाशन, 1995.

शर्मा, देवेन्द्रनाथ. मनोविश्लेषण और साहित्यलोचन. भारती भवन, 1969.

- शर्मा, वीरेन्द्र प्रकाश. *भारतीय समाज: मुद्दे और समस्याएँ*. पंचशील प्रकाशन, 2004.
- शर्मा, श्री कृष्ण. *भारतीय समाज और अपराध*. नवचेतन प्रकाशन, 2003.
- शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र. *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. नागरी प्रचारिणी सभा, 2000.
- शुक्ल, लालजी राम. *मानसिक चिकित्सा*. नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स, 1950.
- . *सामान्य मनोविज्ञान*. नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, 1956.
- शुक्ला, डॉ. ममता. *मन्नु भण्डारी के कथा साहित्य का मनोविश्लेषात्मक अध्ययन*. जवाहर पुस्तकालय, 1989.
- शेरजंग, निर्मला. *मनोविज्ञान*. सरस्वती प्रेस, 1954.
- सक्सेना, वीरेन्द्र. *काम संबंधों का यथार्थ और समकालीन हिन्दी कहानी*. साहित्यभारती, 1975.
- सिंह, डॉ. अरुण कुमार. *आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान*. मोतीलाल बनारसी दास, 2016.
- . *मनोविज्ञान के संप्रदाय एवं इतिहास*. मोतीलाल बनारसी दास, 2016.
- सिंह, डॉ. बच्चन. *हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास*. राधाकृष्ण प्रकाशन, 1996.
- सिंह, डॉ. लाभ. *असामान्य मनोविज्ञान*. विनोद पुस्तक मंदिर, 1983.
- सिंह, जे.पी.. *समाजशास्त्र: अवधारणाएँ एवं सिद्धांत*. पी.एच.आई.लर्निंग प्राई. लिमिटेड, 2013.
- सिंह, डॉ. अरुण कुमार. *समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा*. मोतीलाल बनारसी दास, 2013.
- सुमन, डॉ. मेहरोत्रा. *हिन्दी कहानियों में द्वन्द्व*. आर्य बुक डिपो, 1975.
- सुलेमान, मुहम्मद. *असामान्य मनोविज्ञान: विषय और व्याख्या*. मातीलाल बनारसीदास, 2008.
- सुलेमान, डॉ. मुहम्मद. *उच्चतर समाज मनोविज्ञान*. मोतीलाल बनारसी दास.
- सुमन, रामनाथ. *नारी जीवन*. साधना-सदन, 1961.

सूद, डॉ. हरमोहन लाल. *हिन्दी भाषा प्रयोजनमूलकना एवं आयाम*. वागीश प्रकाशन, 2010.

श्रीवास्तव, डॉ. रामजी. *आधुनिक समाज मनोविज्ञान*. मोतीलाल बनारसी दास.

श्रीवास्तव, डा. सीमा. *हिन्दी साहित्य में मनोविज्ञान*. प्रिय साहित्य सदन, 2013.

3. शोध प्रबंध:

अक्सटाईन, जॉन. *इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण: मनोवैज्ञानिक परिपेक्ष्य*. महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय, 2015.

इबन, हसन. *हिन्दी स्वच्छन्दावादी समीक्षा के विकास में मनोवैज्ञानिक तत्वों की भूमिका*. महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, 2006.

ए., रिकू वधेर. *नमिता सिंह की कहानियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन*. महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय, 2015.

कुनजुनजामा, सी.वाई.. *जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी मनोविज्ञान: एक सैद्धांतिक अध्ययन*. महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय, 2013.

जॉसफ, कोच्चुराणी. *मन्नु भण्डारी की कहानियों में नारी मनोविज्ञान*. संत थॉमस कॉलेज, 2013.

जी, सतीश कुमार. *आधुनिक हिन्दी राम-काव्यों में समाज मनोविज्ञान की भूमिका*. महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय, 1992.

ज्योति, पी. एन.. *मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों के संदर्भ में जैनेन्द्र कुमार का कृतित्व*. महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय, 1993.

देवी, निशा. *हिन्दी कहानियों में आधुनिक नारी की सामाजिक चेतना की विवेचना*. बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, 1999.

दीपा, एम.आर.. *निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य में मनोविज्ञान एक अध्ययन*. केरला विश्वविद्यालय, 2011.

पी., डी. जॉर्ज. *यशपाल के उपन्यासों में प्रेम और यौन भावना*. महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय, 2013.

- फैयाज, अहमद. *भीष्म साहनी के उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक राजनैतिक समस्याएं*. अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, 1997.
- बालकृष्ण, ज्योति श्री. *आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में चित्रित नारी समस्याएं: उषा प्रियवंदा, कृष्णा सोबती, शाशिप्रभा शास्त्री के उपन्यासों के विशेष संदर्भ में*. महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय, 2013.
- बीना, पी.जे.. *आधुनिक हिन्दी कहानी का समाजशास्त्रीय अध्ययन*. कोचीन विश्वविद्यालय, 2009.
- भट्ट, प्रा कल्पना वी.. *मन्नु भण्डारी की कहानियों में नारी संवेदना*. सरदार पटेल विश्वविद्यालय.
- मिश्रा, सरोज. *कुमार हिन्दी नाटकों में बदलते सामाजिक मूल्यों का अनुशीलन*. महात्मा गांधी विश्वविद्यालय, 2013.
- रमाणी, वी.एन.. *स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी स्वतन्त्रता की भावना*. महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय, 1990.
- राधे. श्याम पटेल. *साठोतरी हिन्दी उपन्यासों में स्त्री का सामाजिक स्वरूप: एक अध्ययन*. महात्मा गांधी विश्वविद्यालय, 2015.
- शर्मा, अर्चना. *आठवें दशक की हिन्दी कहानी में नगरीय बोध*. महात्मा गांधी विश्वविद्यालय, 2016.
- शाह, निज़ासा. *अज्ञेय के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन*. सरदार पटेल विश्वविद्यालय, 2012.
- संध्या, एस.. *नारी मुक्ति भावना: साठोतर हिन्दी उपन्यासों के संदर्भ में*. महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय, 2013.

4. पत्र-पत्रिकाएँ:

(हिन्दी में)

पाण्डेय, डॉ.पद्माकर. *नागरीप्रचारिणी पत्रिका*. त्रैमासिक, नागरीप्रचारिणी सभा.

अंक-3-4. अक्टूबर 2017 से मार्च 2018.

पाण्डेय, स्व. पं. सुधाकर. *नागरी पत्रिका*. नागरीप्रचारिणी सभा. अंक-2.

मई-जून 2017.

पाण्डेय, स्व. पं. सुधाकर. *नागरी पत्रिका*. नागरीप्रचारिणी सभा. अंक-3.

जून-जुलाई 2016.

सिंह, डॉ. राजेन्द्र 'साहिल'.*आगमित*. साहित्य-शोध वार्षिकी.रूपकंवल प्रकाशन.

अंक-5. 2016.

श्रीवास्तव, एकांत., कुसुम, खेमानी. *वागर्थ*. साहित्य और संस्कृति की मासिक

पत्रिका. भारतीय भाषा परिषद. अंक-262. मई 2017.

(अंग्रजी में)

Jagtap, H.N. . Indian streams research journal. International

recognition multidisciplinary research journal.

Laxmi book publication.Issue-5. June-2016

Sharma, Dr. Madhvi. International journal of Hindi research

(Pushpanjali). Akinik Publication. Issue-3. May-

2016

Shinde, Dr.T.N.. Golden research thoughts. International

recognition multidisciplinary research journal.

Laxmi book publication. Issue-1. July-2016

*Yakkaldevi, Ashok. Review of Research. International online
multidisciplinary journal. Laxmi book publication.
Issue-4. January-2019*

5. Web Sites/Link

http://kavitakosh.org/kk/तोड़ती_पत्थर_/16.06.2016

<http://www.jeevankasatya.com>

6. कोश:

(हिन्दी में)

अग्रवाल, डॉ. गिरिराजशरण. डॉ. बलजीत सिंह, *हिन्दी-अंग्रेजी कोश*. डायमण्ड पब्लिकेशन, 2006.

जोशी, स.स.. *अंग्रेजी-पंजाबी कोश*. पब्लिकेशन ब्योरो, 2002.

बाहरी, हरदेव. *पॉकेट हिन्दी शब्दकोश*. राजपाल एण्ड सन्ज़, 2001.

-वही-. *हिन्दी शब्दकोश*. राजपाल एण्ड सन्ज़, 1996.

मण्डल, डॉ. विरेन्द्रनाथ. *पॉकेट हिन्दी शब्दकोश*. ईशान प्रकाशन, 2014.

(अंग्रेजी में)

www.shabadkosh.com.